

# ब्रह्मपुराण

## (प्रथम खण्ड)

(सूल व सरल भाषानुवाद सहित जनोपयोगी संस्करण)।



सम्पादकः

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चार वेद, १०८ उपनिषद्, षट्दशान्न, २० स्मृतियाँ,

१८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार और सगभय

१५० हिन्दी ग्रन्थों के रचयिता



प्रकाशकः

## प्रस्कृति संस्थान

ध्याजा कुतुब ( वेद नगर ) बरेली (उ०प्र०)

प्रकाशक :

डा० चमनलाल गौतम

संस्कृति संस्थान

छवाजा कुतुब ( वेद नगरी )

बरेली ( उ० प्र० )



सम्पादक :

श्रीराम शर्मा व्याख्यार्य



सर्वाधिकार सुरक्षित



मृद्रक :

दाऊदयाल गुप्त

सस्ता साहित्य प्रेस

मथुरा



पंचम संस्करणः

सात रुपये पचास पैसे

१६७१

# भूमिका

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः ।  
न चेत्पुराणं सम् विद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः ॥

“ब्रह्म पुराण” का यह कथन पुराणों के प्रति प्राचीन काल के विद्वानों की भावना का दिग्दर्शन कराता है। इस लेखक के मतानुसार यद्यपि ‘वेद’ भारतीय धर्म के मूलसाधार हैं, पर केवल उन्हीं के पठन-पाठन से मनुष्य धर्म के सम्पूर्ण स्वरूप की जानकारी प्राप्त नहीं कर सकता। इसीलिये वह कहता है कि “मनुष्य चाहे चारों वेदों का उपनिषदो सहित अध्ययन कर ले, परे यदि पुराणों की जानकारी नहीं है, तो उसे “विद्वान्” नहीं कहा जायगा। “हम जानते हैं कि हिन्दू-समाज के ही अनेक व्यक्ति और एकाध नवीन सम्प्रदाय वाले इस कथन से असन्तुष्ट होंगे कि पुराणों की तुलना वेदों से की जा रही है, पर हमारी सम्मति में जो कुछ ब्रह्माण्ड पुराणकार” ने कहा है वह ठीक ही है। यह सत्य है कि वेदों का महत्त्व बहुत अधिक है और आध्यात्म-विद्या की दृष्टि से उपनिषद्-उनसे भी आगे बढ़े हुये हैं, पर यह समस्त एकांगी है। भारतीय मनीषियों ने धार्मिक ज्ञान के तीन विभाग किये हैं, आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। वेद और उपनिषदों को आध्यात्मिक ज्ञान का स्रोत माना गया है, पर शेष दो विभागों का वर्णन विस्तार के साथ पुराणों में ही पाया जाता है।

जो व्यक्ति भारतवर्ष के प्राचीन ज्ञान-विज्ञान का व्यापक परिचय और व्यावहारिक स्वरूप जानना चाहता है उसको पुराणों का अध्ययन करना अनिवार्य है। यद्यपि पुराणों में प्राचीन काल के महापुरुषों, राजवंशों और प्रसिद्ध शासकों का वर्णन कथा के रूप में ही किया गया है तो भी उनसे विभिन्न कालों की राजनैतिक, सामाजिक स्थिति का कुछ बोझा तो प्राप्त होता ही है। इस प्रकार के वर्णनों का अधीन

पर ही हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि तत्कालीन व्यक्ति उन आध्यात्मिक तथा धार्मिक आदर्शों का वास्तव में कितनी हद तक पालन कर पाते थे। इस समस्या पर विचार विमर्श करते हुये एक विद्वान् ने कहा है—

भारतीय गवेषणा के स्रोत पुराण ग्रन्थ हैं। वेदों में सब प्रकार की गवेषणाओं का सूक्ष्म रूप है। “ब्राह्मण” और आरण्यक ग्रन्थों में आधिदैविक और अधिभूत गवेषणा प्रधानतया दिखाई देती है। पुराणों में सब प्रकार की बौद्धिक, व्यावहारिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक गवेषणाओं को इतिहास और कथानकों के माध्यम से आकर्षक तथा बुद्धि गम्य साहित्य के रूप में भी व्यास जी ने विस्तृत किया है। इसमें न केवल शास्त्राभिप्रेत आचार, व्यवहार, प्रायश्चित्तादि दैनिक क्रियाओं की गवेषणा मात्र है, अपितु मनुष्य जीवनोपयोगी महती भावनाओं का विस्तृत विधान है। भारतीय ज्ञान-गाथा में वेदार्थ को प्राप्त करने में मनुष्यता रूपी निधि की प्राप्ति बताई गई है। “इतिहास पुराणाभ्यां वेद समुपवृंहयेत” के अनुसार महाभारतादि इतिहास तथा अष्टादश पुराणों को समझने से वेदार्थ की निधि प्राप्त हो सकती है।

“बिना पुराण ग्रन्थों के अध्ययन के तथा निरुक्तादि शास्त्रों के जानने के वेदार्थ का यथार्थ ज्ञान असम्भव है। उपस्वी कृष्णद्वैपायन वेदव्यास जी ने “उत्तरमीमांसा ब्रह्मसूत्र” में वेद प्रतिपाद्य अध्यारम-निष्ठा द्वारा त्रिविध सन्ताप से मुक्त होने का सरल उपाय ज्ञान-निष्ठा की प्राप्ति बतसाया है, और इस ज्ञान-निष्ठा का परिपाक पुराण पाठ द्वारा कहा है। इतिहास, पुराणों के कथानकों ही प्रत्येक साधन को बुद्धि में सरलता पूर्वक ग्रहण करा सकते हैं। “यजुर्वेद” में कहा गया है—“ईशावास्व-मिदमर्षं यत्किञ्चजगत्या जगत्। ते न त्यक्तेन भुङ्क्षीया मा गूधः कस्य सिद्धनम्।” मनुष्यता के विकास का पूरा पूरा साधन इस मन्त्र में आ गया है, पर केवल मन्त्र पाठ और उनके अर्थों को जान लेते से ही जीवन में उस भावना का अनुष्ण, सकार होना कठिन है। अतः पुराणों में





घणितः सत्यनिष्ठा, त्यागनिष्ठा, अद्रोह-निष्ठा के "प्रतिपादक हरिश्चन्द्र" "शङ्ख" "ज्यवन" आदि के कथानकों का मनन करते हुये जीवन में सत्य एवं करुणा का संचार सत्कर्म होने लगता है। अतः "सत्यं वद धर्मं चर" जैसे सूत्र रूप वेद वाक्यों का भावार्थ समझाने का प्रयास वेदव्यास जी ने पुराण ग्रन्थों में किया है।"

इसमें सन्देह नहीं कि सामान्य जनसमुदाय में धार्मिक तत्वों की जानकारी तथा उनका प्रसार होने के लिये कथा-ग्रन्थों का पठन-पाठन आवश्यक और उपयोगी है। मध्यकाल में एक प्रकार से वेदों का लोप ही हो गया था और उनके जानने वाले उँगलियों पर गिनने लायक रह गये थे, फिर भी महाभारत, रामायण और विविध पुराणों की कथाओं और उनके आधार पर लिखे गये धार्मिक आख्यानो की पुस्तकों ने जनता की धर्मनिष्ठा को स्थिर रखा। यद्यपि उस समय वेदों का दर्शन होना भी कठिन हो गया था, तथापि पुराणों में उनकी चर्चा सुनकर ही लोग उनके प्रति श्रद्धा बनाये रहे। पुराणों में सत्यनिष्ठा के सम्बन्ध में महाराज हरिश्चन्द्र का उपाख्यान, पतिव्रत की निष्ठा के लिये सुकन्या और सावित्री का उपाख्यान, पितृभक्ति के लिये भीष्म पितामह का उपाख्यान पढ़-सुन कर लोग धर्म-मार्ग की भावना को ग्रहण करते रहते थे। रामायण की कथा सुनकर लोग अनुभव करते थे कि किस प्रकार राम ने पिता के वचनों की रक्षा के लिये राज्य-त्याग कर दिया, अन्याय और दुराचार का अन्त करने के लिये रावण जैसे महाबली सम्राट् से सघर्ष किया, जनमत का आदर करने के लिये अपनी परम प्रिय पत्नी का त्याग कर दिया। इन कथाओं का प्रभाव जन-जीवन पर बहुत अधिक पड़ता था और बहुसंख्यक लोग ऐसे महामानवों के चरित्र को आदर्श मानकर उनसे शिक्षा ग्रहण करते थे।

हम इससे भी इन्कार नहीं करते कि वर्तमान समय में पुराणों का जो स्वरूप दिखाई पड़ता है वह "मूल रूप" से बहुत बड़ा हुआ और भिन्न भी है। पुराणों में ही जगह-जगह यह कथन आता है कि धारम्भ

में 'वेद' एक था और "पुराण" भी एक ही था । साथ ही यह भी कहा गया है—

पुराण सर्व शास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।

अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥

(मत्स्यपुराण ५३-१)

“अर्थात्” सर्व प्रथम ब्रह्माजी ने पुराण कथन किया और तदनन्तर उनके मुखों से वेद बहिर्गत हुये ।”

इस तथ्य को सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं कि पौराणिक कथा-तको में उपमा, अलङ्कार और दृष्टान्त आदि का बहुत अधिक प्रयोग किया गया है, जिससे सामान्य बुद्धि के भौता उन्हें रुचि पूर्वक सुन सकें और धर्म के सूक्ष्म तत्वों का सार उन कथाओं में से ग्रहण कर सकें । इसलिये उपर्युक्त श्लोक में वर्णित “पुराण” और “वेद” कौन से थे जो “चतुर्मुख ब्रह्मा” द्वारा प्रकट किये गये इस वाद विवाद को उठाना हम तनिक भी आवश्यक नहीं समझते । इस तरह के पचड़े में पड़ना तो हम उन्हीं “सठन-मठन प्रिय” सज्जनों के लिये छोड़ देते हैं जिन्हें “आम खाने से नहीं बरतू पेठ गिनने” से ही प्रयोजन होता है । हम तो इसका आशय इतना ही मानते हैं कि वेद और पुराणों का आदिद्योत एक ही है । वहीं से प्रकट एक धारा ने “सिद्धान्त” का रूप ग्रहण किया और दूसरी ने “कथा” का । ये दोनों ही आवश्यक हैं । बिना सिद्धान्त के “कथा” का कोई महत्व नहीं और बिना कथा के “सिद्धान्त” का हृदयगम होना संभव नहीं । वर्तमान समय में भी विद्यालयों में पढ़ने जाते प्रत्येक विद्यार्थी को प्रत्येक सिद्धान्त अनेक “उदाहरण” (एग्जाम्पल) देकर ही बताया और समझाया जाता है ।

हम ‘पुराणों’ को ऐसे ही ग्रन्थों के रूप में ग्रहण करते हैं जिनमें भारतीय धर्म के सभी सिद्धान्त अनेक प्रकार के “उदाहरण” देकर समझाये गये हैं । इनमें “सत्य” “अद्वैत सत्य” और “काल्पानिक” सभी तरह के उदाहरण हो सकते हैं । पर जिस प्रकार “बीज गणित” में

एक संख्या की कल्पना के द्वारा ही बड़े से बड़े जटिल प्रश्नों का सही उत्तर जान लिया जाता है, वही बात अधिकांश में "पुराणों" की है। यद्यपि उनमें मनोरंजक कथाएँ भरी पड़ी हैं, पर उनका उद्देश्य श्रोताओं को धार्मिक नियमों पर सुदृढ़ रखना ही है। हम यह भी समझते हैं कि मूल लेखकों ने "पुराणों" को जिस रूप में रचा था उसमें आगे उत्पन्न होने वाले "कथा-व्यास" नये-नये उदाहरण और भी जोड़ते चले गये। इतना ही नहीं नवीन लेखकों ने अठारह पुराणों के छत्तीस, फिर चौवन और अन्त में बहत्तर तक बना दिये ! और तो क्या गुजरात में निवास करने वाले एक "पहलवान-वश" का वर्णन करने के लिये "मल्ल-पुराण" भी तैयार कर दिया गया।

पर इसका आशय इतना ही है कि उनके लेखकों ने "पुराण" शब्द को "कथा वाचक" मान कर अपनी रचनाओं का वैसा नाम करण कर दिया है। फिर उन्होंने बड़े पुराणों की यह 'शैली' भी ग्रहण कर ली कि प्रत्येक रचना पर अलग-अलग लेखकों का नाम न देकर सबको "मूल लेखक" व्यासजी के ही नाम से प्रचलित कर दिया। अब छापे-खानों की वृद्धि होकर पुस्तकों की बाढ़ आ जाने से हमको सबसे पहले प्रत्येक पुस्तक के लेखक और प्रकाशक की खोज करने की आवश्यकता पड़ती है, पर पहले जमाने में जब छापेखानों की "ऑटोमेटिक मशीनें" तो दूर रही, लिखने का कागज भी एक दुर्लभ वस्तु माना जाता था, पुस्तकें लिख कर नाम और धन कमाने का विचार किसी के ध्यान में नहीं आता था। विशेषतः धार्मिक लेखक तो अपनी रचनायें परोपकार और पुण्य की भावना से ही प्रस्तुत करते थे। इस प्रकार की प्रथा आरम्भ हो जाने से कुछ दोष और भ्रम भी उत्पन्न हो गये पर तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए उनको क्षम्य माना जा सकता है। जब पचास वर्ष पहले हमारे सामने अंगरेज शासकों के पर्याप्त प्रयत्न करने और लाखों सार्वजनिक स्कूल खोल दिये जाने पर भी "साक्षर" व्यक्तियों की संख्या सौ में से सात ही थी तो पुराने समय में जब कि कागज का

उन्मूलन अधिकांश में राजा और जमीन सोन ही करते थे, एतने-तिथने वाले व्यक्तियों की सख्या दो-चार सौ में केवल एक हो तो भी कुछ आश्चर्य नहीं, ऐसे समय में जिन सज्जनों ने धार्मिक विचारों को लिखने और फैलाने में जो परिश्रम किया उसे गनीमत ही समझना चाहिये।

इतने विवेचन से पाठक यह अनुमान करने में समर्थ हो सकते हैं कि भारतीय धार्मिक-साहित्य में पुराणों का क्या स्थान है? उन्हें न तो धर्म का “मूलधार” अथवा “अन्तिम निर्णायक” माना जा सकता है और न रुढ़िवादी “अनुसूचियों” या “त्याग्य” कहना उचित है। यह दोनों ही प्रकार की सम्मतिदा “अतिवादी” अथवा “कट्टर” श्रेणी के सज्जनों की ही हो सकती हैं। हम पुराणों की त्रुटियों को जानते हुये भी उनके महत्त्व से इनकार नहीं करते। गुण-दोष किसमें नहीं होते। केवल “गुणों” का दावा करने वाले “कल्पना राज्य” में नये ही विचरण करते हों, प्रत्यक्ष संसार में तो उनका अस्तित्व ढूँढने पर भी नहीं मिलता। इसी दृष्टि से समन्वयवादी प्रकृति के सत्सुख पुराणों को भी अनुसूची मान लेते हैं।

हमने इसी दृष्टिकोण से अपनी यह “पुराण-सौरीज” तैयार की है। कितनी ही बातें ऐसी हैं जो “पुराणों के पच सस्रणों” की प्रकृति के लिये सब पुराणों में एक प्रकार से ही वर्णन कर दी गई हैं। कुछ बड़े साम्प्रदायिक महत्ता निष्ठ करने के लिये किसी विशेष पुराण में बहुत अधिक मात्रा में वर्णन की गई हैं। कुछ बातें सेषक की रजि या जानकारी का परिचय देने के अर्थ से विस्तारपूर्वक शामिल की गई हैं। कुछ उपाख्यान विशेष प्रभावशाली और लोकप्रिय समझ कर एक दूसरे से उद्धृत कर लिये गये हैं। इन कारणों से अधिकांश पुराणों का बतेवर बहुत बड़ा गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि अंशतः दसों के पठकों द्वारा पुराणों का पठन-पाठन प्रायः समाप्त ही हो गया। यदि किसी ने साहस करके पुराणों को प्रकाशित भी किया तो वे बीनियों वषं तक ज्यों के त्यों घरे रह गये और धीरे-धीरे साहित्य-क्षेत्र से लोप होने लग गये। आज

स्थिति ऐसी आ गई है कि कितने ही मूल पुराणों का प्राप्त कर सकना भी बड़ा कठिन हो गया है। उदाहरण के लिये अठारह पुराणों की 'नामावली' में इस "ब्रह्म पुराण" का नम्बर सबसे पहला है, पर कहीं भी प्राप्त न हो सकने के कारण इसका प्रकाशन सम्भव न हो सका। अब सब पुराणों के छप चुकने पर अन्त में यह प्राप्त हो सका है।

इस स्थिति को देखकर ही हमने पुराणों के "जनोपयोगी" (पोपुलर) संस्करण निकालने का निश्चय किया। इनमें से सब पुराणों में बार-बार आने वाले वर्णनों, साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से बहुत बड़ा-बड़ाकर किये गये वर्णनों, एक दूसरे से उद्धृत किये हुये उपाख्यानो, लेखकों की विशेष रुचि के आधार बहुत विस्तार से वर्णन की गई वस्तु, विद्या सम्बन्धी बातों और किसी विशेष स्वायंपूर्ण या अभिसन्धि की दृष्टि से शामिल किये गये अनुचित और हानिकारक वर्णनों को पृथक् करके हमने प्रत्येक पुराण के उपयोगी अंशों को मञ्जुलित किया है। इनमें पाठकों को प्रामाणिक मूल पाठ के सहित उसका निष्पक्ष भाव से किया गया भावार्थ मिल जाता है। इससे उनकी ज्ञान वृद्धि होकर पुराणों की समस्त उपयोगी सामग्री की जानकारी हो जाती है। इससे सामान्य जनता में पुराणों के प्रति आकर्षण पर्याप्त मात्रा में बढ़ा है और वे उनको रुचिपूर्वक पढ़ने लगे हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य के प्रेमियों की दृष्टि में हमारी यह सेवा महत्वपूर्ण प्रतीत हुई जिसका अनुमान हमारे पास ऐसे प्रेमियों के आये हुये पत्रों से किया जा सकता है।

### “ब्रह्मपुराण” की महत्ता—

विभिन्न पुराणों के अन्तर्गत और अन्य प्राचीन ग्रन्थों में भी पुराणों की जो सूचियाँ दी गई हैं, उनमें थोड़ा बहुत भेद देखने में आता है, किन्तु सभी लेखकों ने प्रथम स्थान "ब्रह्मपुराण" को ही दिया है। इसका कारण यह हो सकता है कि यह समस्त विश्व 'ब्रह्म' से ही उद्भूत है, इसलिये सर्व प्रथम उसी का कीर्तन किया जाना उचित है। पर इसमें निराकार ब्रह्म 'धर्मा' कहीं नहीं पाई जाती, अरम्भ से अन्त तक "ब्रह्म" के साकार

रूपों की ही चर्चा है। सबसे पहले सूर्योपासना का विषय आया है और वास्तव में इस जगत् के प्रत्यक्ष कर्त्ता-धर्त्ता "सूर्य नारायण" ही है। पुण्योत्तम क्षेत्र ( जगन्नाथ पुरी ) की चर्चा बड़े विस्तार से की गई है, और इसे पुराण का मुख्य प्रतिपाद्य विषय कहा जा सकता है। अन्य भी बहुत से तीर्थों का वर्णन है, पर वह प्रायः पाँच सात पृष्ठों में ही पूरा होता चला गया है। शिव-पार्वती का विवाह और कृष्ण-चरित् पर्याप्त विस्तार से वर्णित हैं। कंस के अत्याचारों से लेकर द्वारिका गमन तथा बाणासुर वध तक की समस्त कथाएँ जो भागवत आदि में वर्णित हैं "ब्रह्मपुराण" में भी पूर्ण रीति से दी गई हैं। बागदह, नृसिंह, वामन आदि अन्य अवतारों के चरित्र भी उसमें स्थान-स्थान पर अच्छे रूप में दिये गये हैं। इन समस्त कथाओं के सुपरिचित होने तथा अन्य पुराणों में अधिक विस्तार से वर्णित होने के कारण हमने उनको संक्षिप्त रूप में ही दिया है।

### सूर्य माहात्म्य और सूर्यपूजा—

"ब्रह्म-पुराण" की विषय सूची पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि सूर्य भगवान् का माहात्म्य, उनकी पूजा-उपासना की विधि, और उनके द्वारा महान् पुण्य-फल की प्राप्ति का वर्णन इसकी एक उल्लेखनीय विशेषता है। "सूर्यदेव" का प्रमुख मन्दिर उड़ीसा प्रान्त के "कोणादित्य" ( अथवा "कोणाक" ) नामक स्थान में अवस्थित है, उसका परिधय भी इस पुराण में बड़ी भक्ति प्रयणता से दिया गया है। अन्य पुराणों में जैसी विस्तृत और साधोपाग उपासना-विधि विष्णु और शिव की दी गई है वैसी ही इस पुराण के आरम्भ में "सूर्य भगवान्" की सन्निवधित है। "कोणाक" के प्रसिद्ध मन्दिर का परिचय देते हुये पुराणकार ने लिखा है।

"भारतवर्ष में दक्षिण सागर में संस्थित "ओड्र देश" (उड़ीसा) है जो स्वर्ग और मोक्ष दोनों के प्रधान करने वाला है। वह सब गुणों से भल्लूत और पुण्य शीलो का देश है। उस देश में उत्तम ब्राह्मण संप्रदाय

और स्वाध्याय में निरत रहने वाले हैं और सदा ही वन्दना करने योग्य तथा पूज्य हैं । उसी प्रदेश में “कोणादित्य” नाम से प्रसिद्ध भगवान् सूर्य देव का मन्दिर अवस्थित है जिसमें भुवन-भास्कर का दर्शन करके मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पा जाता है । भगवान् रविदेव का यह पुण्य-क्षेत्र डेढ़ योजन विस्तार वाला है जो भोग और मोक्ष दोनों का प्रदानकर्त्ता है । वहाँ पर सहस्रांशु-देव स्वयं विराजमान रहते हैं, जिनका शुभ नाम “कोणादित्य” प्रसिद्ध है । माघ शुक्ल सप्तमी के दिन सूर्य-भगवान् की उपासना का विशेष पर्व होता है । उस दिन “कोणादित्य” की यात्रा करके मकरासय में स्नान करे और विशुद्ध आत्मा वाला होकर दिवाकर देव का स्मरण करे । रात्रि के अन्त में समाहित होकर सागर में विधिपूर्वक स्नान करके देव, ऋषि तथा मनुष्यों का भली भाँति तर्पण करना चाहिये ।

“इसके पश्चात् नवीन घुले हुये वस्त्र धारण करके आचमन करे और भक्ति पूर्वक समुद्र तट पर उपनिष्ट हो जाय । उस सूर्योदय काल में पूर्व दिशा की ओर मुख करके स्थित होना चाहिये और रक्त-चन्दन को घिस कर उससे एक अष्ट-दल पद्म चित्रित करना चाहिये । तत्पश्चात् एक ताम्र पात्र अथवा अर्क-पत्रों से बने दोने में तिल, अक्षत रक्त चन्दन से युक्त जल, रक्त पुष्प और दर्भ रख कर सूर्य भगवान् की पूजा करे । उदय आदि अंगों से करन्यास तथा अंग न्यास करके परम श्रद्धा के साथ भगवान् भास्कर का ध्यान करे फिर उस रक्त चन्दन से निर्मित अष्टदल पद्म में अन्तरिक्ष में स्थित सूर्यदेव का आवाहन करके विधि पूर्वक पूजा करे । पूजा समाप्त हो जाने पर फिर ध्यान मग्न होकर आम्बर देव का ध्यान करे कि विंगल वर्ण के नेत्र वाले, दो भुजाओं से युक्त रक्त वर्ण वाले, पद्म दल के समान अरुण अम्बर से युक्त रवि देव सब सुलक्षणों से समन्वित हैं और समस्त आभरणों से सुशोभित हैं । वे सुन्दर रूप वाले, वरदान प्रदान करने वाले, परम शान्त रूप से स्थित और अभा-मदल से मण्डित हैं । सिन्दूर के समान सपन वर्ण के



उदय कालीन सूर्य-देव का दर्शन करे । फिर उस पूजा पात्र को मस्तक पर रख कर, जानुओं से पृथ्वी पर स्थित होकर चित्त को एकाग्र करे और मौन रह कर भगवान् सूर्यदेव को अर्घ्य दे । भगवान् सूर्य भक्ति-भाव से युक्त मनुष्य का ही अर्घ्य ग्रहण करते हैं, वह दीक्षित हैं या अदीक्षित इसका ध्यान नहीं रखते ।”

लेखक ने उपरोक्त वर्णन में कोई नई बात नहीं कही है । जो पूजा-विधान अन्य प्रमुख देवताओं का है वही सूर्य का भी बतला दिया है । केवल ध्यान करने में सूर्य की विशेषताओं के अनुसार उनके स्वरूप और वर्ण का वर्णन थोड़ा पृथक् है । इस पूजा और उपासना का फल भी उषो का रसो कहा गया है । यथा—

“भगवान् आदित्य देव को अर्घ्य देने से रोग मुक्त मनुष्य रोग से विमुक्त हो जाता है, धन के अभिलाषी को धन की प्राप्ति होती है, विद्यार्थी विद्या के प्राप्त करने में सफल होता है और पुत्र की अभिलाषा रखने वाला पुत्रवान् बन जाता है । जिस-जिस वामना को रख कर सूर्य भगवान् को अर्घ्य दिया जाता है सुधी पुरुष उसी-उसी वामना के अनुसार फल प्राप्त करते हैं । इसके पश्चात् सूर्यदेव के मन्दिर में जाकर पुष्प द्वारा देवार्चन करके मौन रहते हुए तीन बार प्रदक्षिणा करना चाहिये । फिर दण्डवत् प्रणाम करके “अय” शब्दों की छवि के साथ स्तवन करे । इस प्रकार महर्षाणु देव का, जो इस जगत के पति हैं, पूजन करने से मनुष्य को दश अश्वमेधों का फल प्राप्त होता है ।”

**सूर्य की सर्वोपरि महिमा—**

“आदित्य-माहात्म्य” की इति थी यही मही हो गई है । जिज्ञासुओं ने फिर प्रश्न किया कि “गृहस्थ, गृह्यकारी, धानप्रस्थ और सन्यासी-इनमें से जो मोक्ष चाहता है, वह किस देव की उपासना करे, इस विश्व-ब्रह्माण्ड में देवों का भी देव कौन है ? और पितृगणों का भी पिता कौन होगा है ? हम सब से बड़े देव को जानने के अभिलाषी हूँ ।”



इस प्रश्न का समाधान करते हुये ब्रह्मा बाबा ने कहा—“हे द्विजोत्तमो ! ये भगवान् भास्कर ही समस्त जगत को अन्धकार से रहित कर दिया करते हैं । इनसे बड़ा कोई भी देव नहीं है । अर्थात् यह सूर्य ही परात्पर देव हैं । यह देव आदि और अन्त से रहित हैं और यह शाश्वत और अव्यय पुरुष हैं । अपनी किरणों से अत्यन्त तेजोमय रूप धारण करके यह तीनो लोकों को तपाया करते हैं । ये सर्व देवमय और तपन करने वालों में सर्व श्रेष्ठ हैं । ये ही इस सम्पूर्ण जगत् के नाथ और सर्व साक्षी हैं । ये सब भूतों को लय और पुनः सृजन करते रहते हैं । ये ही प्रकाश देते हैं, अपनी उष्णता द्वारा शीत से रक्षा करते हैं और अपनी किरणों द्वारा वर्षा किया करते हैं । यही धाता है, यही विधाता हैं, यही समस्त भूतों के आदि हैं और समस्त भूतों पर कृपा करके उनका पालन करने वाले हैं, इनका कभी क्षय नहीं होता, इनका मण्डल चिरस्थायी ही बना रहता है । यही पितृगणों के पिता सया देवों के भी देव हैं । जब सृष्टि का अवसर होता है तो सम्पूर्ण जगत आदित्य से ही प्रसूत होता है और जब प्रलय होनी है तो समस्त विश्व उन्ही में लीन हो जाता है । ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवगण तो शब्द से ही कहे जाते हैं, वास्तव में तो यह सूर्य ही परम देव हैं जिनकी एक मात्र भक्ति की जानी चाहिये ॥”

सूर्य के स्वरूप का जो यह विवेचन धार्मिक भावना से और वैसी ही भाषा में किया गया है पूर्णतः सत्य और प्रमाण सिद्ध है । आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी इस सम्बन्ध में यही कहा है । उनके मतानुसार हमारी पृथ्वी और इसके समीप के बुध, मंगल, शुक्र, बृहस्पति, शनि आदि समस्त ग्रह और चन्द्रमा आदि उपग्रह सूर्य के ही भाग हैं जो एक-एक करके सूर्य में से निकले हैं और अन्त में एक समय ऐसा आयेगा जब ये पुनः उसी में लीन हो जायेंगे । ये दोनों अवस्थाएँ सृष्टि और प्रलय की ही मानी गई हैं । इसी प्रकार वैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि संसार के समस्त पदार्थ और प्राणी सूर्य के प्रभाव से भिन्न-भिन्न स्वरूपों और

रङ्गो के दिखाई पड़ते हैं। जब सूर्य की शक्ति उनमें से निकल जाती है, उनके देह प्राकृतिक अथवा कृत्रिम ताप से दग्ध हो जाते हैं तो सब कोपले या उसके भी पश्चात् भस्म के रूप में परिणित हो जाते हैं, जो कि समस्त भौतिक पदार्थों का मूल रूप है। इस प्रकार नेत्रों से दिखाई पड़ने वाला यह प्रत्यक्ष जगत असदिग्ध रूप से सूर्य से ही प्रादुर्भूत होता है और उसी में लीन हो जाता है, ऐसी परिस्थिति में सूर्य को सबका “आदि कारण” या “आदि देव” कहा जाय तो कोई गलती नहीं है।  
**उत्कल प्रदेश की महिमा —**

यद्यपि वर्तमान समय में उत्कल ( उड़ीसा ) का प्रदेश अनेक दृष्टि से पिछड़ा हुआ माना जाता है और उससे लगे हुए बंगाल प्रान्त में अधिकांश उड़िया लोगो को ‘कुली’ या मजदूर ही कहा जाता है, पर यह स्थिति सदैव से नहीं चली आई है। अब से दो-ढाई हजार वर्ष पहले यह भू-भाग “कलिङ्ग” के नाम से प्रसिद्ध था और भारतवर्ष का एक महत्त्वपूर्ण भू-भाग माना जाता था। मगध के अगस्त प्रसिद्ध सम्राट अशोक ने कलिङ्ग को जीतने के लिये अत्यन्त घोर संग्राम किया था। वहाँ का शासक महाराज सार्वसेन ( जिसको नई इतिहासकारों ने जैन धर्मावलम्बी कहा है ) उस युद्ध में अत्यन्त वीरता से लड़ा था। इतिहास से विदित होता है कि इस अवसर पर इतनी अधिक सख्या में सेना का विनाश हुआ कि उसे देख कर अशोक का हार्दिक भाव बदल गया। यद्यपि उसने एक लाख से भी अधिक सैनिकों का बंध हो जाने पर कलिङ्ग की विजय कर ली, पर उसके पश्चात् उसने युद्ध न करने की प्रतिज्ञा कर ली और बौद्ध धर्म का अनुयायी होकर आजन्म अहिंसा और जीव दया का प्रचार करता रहा। पर उस युद्ध के फल से उत्कल की शक्ति और बलबर्द्ध शताब्दियों के लिये मष्ट हो गया और वह हीनावस्था में पहुँच गया।

हम नहीं कह सकते कि “ब्रह्म पुराण” के लेखक ने किस जमाने के “उड़ीसा-प्रदेश” का वर्णन किया है, पर इस ग्रंथ में “कोणार्क” के

मन्दिर के साथ ही वहाँ के अन्य समस्त तीर्थों और विशेष रूप से पुरुषोत्तम क्षेत्र का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। जिस प्रकार शैव-पुराणों में कहा गया है कि धाराणसी क्षेत्र से बढ़ कर संसार में कोई "पुण्य स्थान" नहीं है और वैष्णव पुराणों में जिस प्रकार वृन्दावन की महिमा सर्वोपरि बतलाई है, उसी प्रकार मध्मी जी के प्रश्न करने पर भगवान विष्णु ने कहा है।

सुखोपास्यः सुसाध्यश्चाभिरामश्च सुसत्फला ।  
आस्ते तीर्थवरं देवि विख्यातः पुरुषोत्तमः ॥  
न तेन सदृशः कश्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ।  
कीर्तनाद्यस्य देवेशि मुच्यते सर्वं पातकैः ॥

इस प्रकार पुराणकार ने इस क्षेत्र को सब प्रकार से सुख देने वाला, सुविधापूर्ण, सुन्दर और उत्तम फलो से युक्त कहा है। वहाँ पर स्थित पुरुषोत्तम क्षेत्र के समान स्थल तीनों लोकों में अन्य कोई नहीं है। उसका कीर्तन करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। "जगन्नाथ जी" की महिमा राजस्थान और उत्तर प्रदेश के एक बड़े भाग में अब भी बहुत अधिक मानी जाती है और प्रतिवर्ष लाखों व्यक्ति यहाँ से उसकी यात्रा करने जाते हैं। पर हमने इन यात्रियों को "सुन्दरता" अथवा "फल फूलों" की प्रशंसा करते नहीं सुना, वरन् वे एक भजन गाते हुये यही कहा करते हैं—“झारखण्ड में आये विराजे वृन्दावन के स्वामी।” कुछ भी हो सूर्योपासना और महाराज इन्द्रद्युम्न, द्वारा पुरुषोत्तम क्षेत्र की स्थापना का विस्तार वर्णन ब्रह्मपुराण की विशेषता अथवा जो अन्य पुराणों में ( स्कन्द महापुराण को छोड़कर ) देखने में नहीं आती।

**शिव पार्वती विवाह—**

'ब्रह्म पुराण' में अनेक कथाएँ अन्य पुराणों से भिन्न प्रकार से लिखी गई हैं। शिव पार्वती के विवाह के सम्बन्ध में कहा गया है कि पहले शिवजी विह्वल रूप बनाकर स्वयं पार्वती जी के पास गये और

उनसे विवाह का प्रस्ताव किया। पार्वती के यह कहने पर कि इसकी स्वीकृति तो मेरे पिता ही दे सकते हैं शिवजी उनके पिता हिमाचल के पास गये और विवाह का निश्चय हो गया। विवाह के अवसर पर जब सब देवगण हिमाचल के घर आये तो उन्होंने देखा कि एक छोटा शिशु जिसके पाँच शिखाएँ हैं पार्वती की गोद में तो रहा है। इस पर क्रोधित होकर इन्द्र ने उसे मारने की अपना वज्र उठाया पर उसका हाथ जहाँ की तहाँ स्तम्भित हो गया। जब ब्रह्माजी ने बहुत स्तुति की तब शंकर जी अपने रूप में प्रकट हुये। इन्द्र का हाथ ठीक हुआ और विवाह विधि भी सम्पन्न की गई। इसी प्रकार मदन-दहन की प्रसिद्ध कथा भी विवाह के पश्चात् वर्णन की गई है। कहा गया है कि विवाह हो जाने पर जब वे गृह के भीतर विराजमान हुये तो उनको एकाएक कामवृत्ति का उत्पादन करने वाले मदन महीपति पर बड़ा क्रोध आया कि यह सब ऋषि-मुनियों की तपस्या में विघ्न-हाला करता है और बहुतों को तो भ्रष्ट कर देता है। इस विचार के आने पर उन्होंने अपना तीसरा नेत्र धोला और उसे भस्म कर दिया। फिर मदन की पत्नी रति के प्रार्थना करने पर उसे अशरीरी रह कर ही ससार भर पर प्रभाव डाल सकने का वर दिया।

### समुद्र-महिमा—

समुद्र-स्नान भी जगन्नाथ पुरी की एक विशेषता है। वहाँ का समुद्री तट पर बहुत सुन्दर और स्वास्थ्यप्रद जल वायु मुक्त जाता है। "ब्रह्म-पुराण" में समुद्र-स्नान की बड़ी प्रशंसा की गई है और उसका माहात्म्य सब तीर्थों से अधिक बतलाया है। उसका कहना है कि पुष्कर, हरिद्वार, प्रयाग आदि तो केवल अपना-अपना माहात्म्य ही बतलाते हैं, पर समुद्र में तो सभी पुण्य सरिताओं तथा सरोवरों का समावेश हो जाता है। सब का जल अन्त में समुद्र में जाकर ही मिल जाता है। इसलिये समुद्र ही वास्तव में "सीर्यराज" है और उसी का महत्त्व सर्वाधिक मानना चाहिये—

तावद् गर्जन्ति तीर्थानि माहात्म्यैः स्वं पृथक् पृथक् ।

यावन्न तीर्थं राजस्य माहात्म्यं वर्ण्यते द्विजाः ॥

सागर-स्नान की विधि में “नारायण” का जो वर्णन किया गया है, वह भी सागर की महत्ता को प्रतिपादित करने वाला है। उसमें कहा है—

“सागर के समीप जाकर सर्व प्रथम आचमन करे और सब प्रकार से पवित्र होकर परम पुण्य नारायण का ध्यान करे। सत्पश्चात् शरीर और हाथों में अष्टाक्षर मंत्र का न्यास करना चाहिये। उसका मंत्र है—  
“ॐ नमो नारायणाय”। इस मंत्र की ही समस्त मनीषीगण प्रशंसा किया करते हैं। जब यह मन्त्र प्राप्त हो गया सब अन्य बहुत से मन को विभ्रम में डालने वाले मन्त्रों की क्या आवश्यकता है। “ॐ नमो नारायणाय” यह मन्त्र सब मनोरथों की पूर्ति करने वाला है। ‘नर’ के पुत्र होने से ही जल का नाम “नारा” प्रसिद्ध हुआ है। वही “नारा” नामक जल भगवान् का “अपने” (निवास-स्थल) होने से इनका नाम “नारायण” कहा गया। समस्त पुराण भगवान् नारायण का ही पारायण और प्रतिपादन करने वाले हैं। सब द्विजगण भी नारायण के स्मरण में ही तत्पर रहते हैं। सब यज्ञ भी नारायण की प्राप्ति के लिये किये जाते हैं। समस्त शास्त्रोक्त धर्म क्रियाएँ भी नारायण के उद्देश्य से ही की जाती हैं। यह समस्त पृथ्वी भी नारायण में पारायण होती है। इस विश्व के समस्त पदार्थ नारायण के ही विभिन्न स्वरूप होते हैं। उनके अतिरिक्त वहाँ कुछ भी नहीं है। जल में, स्थल में, पाताल में स्वर्ग लोक में, अम्बर में, पर्वत में भगवान् नारायण ही स्थित हैं। आप अर्थात् जल ही भगवान् विष्णु का आश्रय (निवास स्थल) है इसलिये जलनिधि (समुद्र) में स्नान करते समय नारायण का स्मरण करना अनिवार्य है।”

पुरुषोत्तम क्षेत्र के वर्णन में मत्स्य वाराह नरसिंह आदि समस्त अवतारों के स्थान भी वही पर बतलाये हैं। सबके मन्दिर वहाँ पर बने हैं जिनकी पूजा-उपासना महान् फल को देने वाली कही गई है। इन

मन्दिरों में नृसिंह अवतार भस्त्र-माधव श्वेत-माधव आदि के मन्दिर प्रसिद्ध हैं । वहाँ श्वेत गङ्गा और नट रूपी कल्पवृक्ष भी है ।

गंगा के दो स्वरूप—

गङ्गावतरण के विषय में एक अद्भुत कथा यह दी है कि पार्वती से विवाह हो जाने के पश्चात् भी भगवान् शिव गङ्गाजी को अपने जटाजूट में छिपाये रहते थे और उससे बड़ी प्रीति रखते थे । यह बात उमादेवी को सहन नहीं होती थी । अतएव उन्होंने अपने पुत्र गणेश स्कन्द तथा पुत्री जयादेवी को एकान्त में बुलाकर कहा कि तुम्हारे पिता बड़े रसिक और कामुक हो गये हैं मैंने बहुत कुछ प्रयत्न किया पर वे किसी प्रकार गङ्गा को नहीं छोड़ते । इसलिये तुम सब मिलकर कोई ऐसा उपाय करो जिससे गङ्गाजी उनकी जटाओं से निकलकर भूलोक में बहने लग जायें अन्यथा मैं पुनः अपने पिता हिमालय के यहाँ जाकर तपस्या करने लगूँगी । इस पर परम बुद्धिमान गणेश जी ब्राह्मण का वेप धारण करके और अपनी बहिन जया को लेकर गौतम ऋषि के आश्रम में गये । वहाँ जया गौ का रूप धारण करके गौतम के चावल के खेत को खाने तथा नट करने लगी । यह देखकर गौतम ने उसे हटाने का प्रयत्न किया तो वह मूर्छित सी होकर वहीं गिर पड़ी । इस पर उस आश्रम में रहने वाले सभी मुनिगण, विशेषतया ब्राह्मण वेपधारी, गणेश जी बहुत हाय-हाय करने लगे । जब गौतम जी ने उपाय पूछा तो उनसे कहा कि शिवजी की जटाओं में रहने वाली गङ्गा को यहाँ से आओ, उनके जल से अग्नि-पिप्पल करने से यह गौ स्वस्थ हो जायगी । गौतम जी ने यही किया और वे शिवजी को अपनी स्तुति और प्रार्थनाओं से प्रसन्न करके वर-स्वरूप गौतमी-गङ्गा को माँग साये । इससे एक तरफ सासारिक मनुष्यों को पुण्य प्राप्त कर सकने का सुअवसर प्राप्त हुआ और दूसरी तरफ पार्वती जी का उद्देश्य पूरा हो गया ।

इस प्रकार की कथाएँ चाहे कुछ लोगो को पसन्द आती हो, पर हम नहीं समझते कि ससारो लोगो की तरह देवता और देवियों में भी

“सौतिया डाह” की प्रवृत्ति बतलाना कोई अच्छी बात है। फिर एक तरफ तो शिवजी को कामदेव को भस्म करने वाले योगिराज के रूप में चित्रित करना और दूसरी तरफ इतना “कामुक” बतलाना कि वे अपनी विवाहिता पत्नी के सामने हो एक अन्य नारी को सदैव समीप रखते हैं, एक असम्भ्यता की सी बात प्रतीत होती है। संभव है उत्कल प्रान्त में जिस समय वाम मार्गीय तन्त्र-शास्त्र का विशेष जोर था किसी लेखक ने इस प्रकार के वर्णन इस पुराण में सम्मिलित कर दिये हों। जगन्नाथ पुरी के प्रसिद्ध मन्दिर के ऊपर जो स्त्री-पुरुष के “काम-व्यवहार” की अनेक मूर्तियाँ बनी हुई हैं, उनका मूल-स्रोत भी विद्वानों ने वहाँ पर प्रचलित वाम-मार्ग को ही बतलाया है। उन मूर्तियों के विरुद्ध कई बार आवाज भी उठाई गई थी, और संभवतः अब उनमें से कुछ को ढक दिया गया है।

### गङ्गा के पन्द्रह रूप—

आगे चलकर गंगा के महत्त्व की वृद्धि करने के लिये एक विशेष वर्णन यह भी मिलता है कि जिस भागीरथी को हम एक मात्र गङ्गा मानते हैं केवल वही एकमात्र गंगा नहीं है वरन् जब गौतम ऋषि भूलोक के कल्याणार्थ उसे माँगकर लाये तो वह पंद्रह स्थानों में बँट गई। इनमें से चार धारायें तो स्वर्ग लोक को गई, सात मनुष्य लोक में आईं। नर्मदा, सरस्वती, कृष्णा, भीमरथी, तुंगभद्रा और गोदावरी ये सब गंगा के ही रूप हैं। इनमें भी गौतमी गंगा या गोदावरी का महारूप सर्वाधिक है। इसके विषय में पुराणकार ने लिखा है—

“यह गौतम गंगा सर्वदा ही समस्त मनुष्यों के लिये महान तीर्थ है। यह इन दो सौ योजनों में बहेगी उतमें साढ़े तीन करोड़ तीर्थ समुत्पन्न होंगे। ब्राह्मी गंगा, गोदावरी नन्दा, सुनन्दा और काम दायिनी है। यह ब्रह्मदेव द्वारा लाई गई है और सब प्रकार के पापों का शमन करने में समर्थ है। यह शिव-प्रिया स्मरण मात्र से ही पापों के समुदाय को नष्ट कर देने

वाली है। पाँचो भूतो मे जल ही परम श्रेष्ठता को प्राप्त हुआ है। उसमे जो तीर्थभूत जल है वह सब से प्रमुख माना गया है। सब तीर्थ जलो मे भागीरथी का जल श्रेष्ठ कहा गया है, और उससे भी गौतमी का जल परम श्रेष्ठ है। यह गौतमी दिवजी की जटाओ सहित ही लाई गई है। इससे बढ़कर शुभ तथा समस्त मनोरथो का पूरा करने वाला तीर्थ स्वर्ग मे तथा भूतल मे कही भी नहीं है।”

पौराणिक माहात्म्य वर्णन की यह विशेषता है कि जिसकी प्रशंसा की जाती है उसी को उस अवसर पर सर्वोपरि बना दिया जाता है। गंगा के वर्णन मे स्थान-स्थान पर ऐसी ही प्रशंसा की गई है। एक अन्य पुराण मे सर्व श्रेष्ठ तीर्थ सरिता और तीर्थ का स्थान नर्मदा को दिया गया है।

### “ब्रह्मपुराण” का तीर्थ वर्णन—

“ब्रह्म पुराण” के तीर्थ वर्णन में भी कुछ विशेषता है। इसमें जिन कपोत तीर्थ, पंचाच तीर्थ, दुष्ठा तीर्थ, चक्र तीर्थ, गणिका-संगम, अहिल्या सगमेन्द्र तीर्थ, श्वेत तीर्थ, वृद्धा-सगम तीर्थ, श्रृण प्रमोचन तीर्थ, सरस्वती सगम तीर्थ, रेवती सगम तीर्थ, राम तीर्थ, पुन तीर्थ, यक्षिणी सगम तीर्थ, वाणी सगम तीर्थ, कपिला सगम तीर्थ, खड्ग तीर्थ, आनन्द तीर्थ, निम्न भेद तीर्थ, आदि का नामोल्लेख है वे किसी अन्य पुराण में नहीं मिलते। फिर दूसरी विशेषता यह भी है कि इन तीर्थों में से अधिकांश “गौतमी” से सम्बन्ध रखते हैं। इन कथाओ से सम्बन्ध रखने वाले अधिकांश व्यक्तियों का उद्धार “गौतमी” द्वारा ही हुआ। इन कथाओ में से कितनी में बिल्कुल नई बातों का पता लगता है।

“वृद्धा-सगम तीर्थ” में एक बड़ी विचित्र कथा कही गई है कि एक गौतम वसीय ब्राह्मण, जो भाग्यवश विद्या, धन तथा सोम्य, सभी गुणों से वंचित रह गया था, घ्रमण करता हुआ एक दिन किसी पहाड़ की गुफा मे जा पहुँचा। उसे वहाँ एक बहुत बृद्धा स्त्री दिखाई पड़ी।



वृद्धा ने ब्राह्मण से आग्रह किया कि तुम मेरे गुरु बन जाओ। ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि मैं सत्य प्रकार से गुणहीन हूँ तुम्हारा गुरु कैसे बन सकता हूँ ? वृद्धा ने बतलाया कि मैं क्षत्रिय राजा और गन्धर्व कन्या से उत्पन्न हुई हूँ। मेरी माता चलते समय भुक्ष से कह गई थी कि तेरी इस गुफा में जो पुरुष सबसे पहले प्रविष्ट हो वही तेरा पति होगा। पर संकटों वर्ष बीत जाने पर भी यहाँ कोई पुरुष नहीं आया। आज सबसे पहले पुरुष तुम्हीं इसमें प्रविष्ट हुये हो, इसलिये मैंने तुमसे इस प्रकार का प्रस्ताव किया। फिर वृद्धा ने अग्नि देव से प्रार्थना करके गौतम ब्राह्मण को विद्वान् और स्वरूपवान भी करा दिया। तब वे दोनों उसी गुफा में पति-पत्नी के रूप में निवास करने लगे। किसी समय सप्त ऋषिगण उनकी गुफा के निकट होकर निकले और गौतम ब्राह्मण ने उनकी भली प्रकार धर्म्यर्चना की। वे ऋषिगण इस युवक तथा वृद्धा की जोड़ी को देख कर विस्मित हुये और इसका कारण पूछा। गौतम ने पूरा किस्सा कह सुनाया। अगस्त ऋषि ने उस पर दण्डाद्रं होकर गौतमी में स्नान करने की सम्मति दी। गौतमी की कृपा से वृद्धा नव-यौवना हो गई और फिर वे पति-पत्नी बहुत काल तक सुख पूर्वक निवास करते रहे।

दूसरी कथा "सरमा" नामक कुतिया की है जो स्वर्गलोक में देव-ताओं की गोशों की रखवाली करती थी। एक बार वहाँ कुछ दैत्य आये और सरमा को घूस ( रिश्वत ) के रूप में कुछ धन लेकर गायों का हरण करके ले गये। जब इस घटना की जांच पड़ताल की जाने लगी तो सरमा ने कहा कि दैत्यगण भुक्षे बाँध कर जबरदस्ती गायों को लेकर चले गये। पर देवगुरु ब्रह्मस्पति ने ध्यान द्वारा सारी घटना की जान लिया और सरमा के शोध की बात इन्द्र को धत्तादी। इन्द्र ने कुतिया को लात मारी और शाप दिया कि तू मनुष्य-लोक में जाकर जन्म ले। सरमा पृथ्वी पर कुतिया के रूप में इधर-उधर फिरती हुई कष्ट सहन करने लगी। यह देख कर उसके दो पुत्रों ने जो यमराज के

प्रिय सेवक थे, अपनी माता की दुर्दशा के सम्बन्ध में यमराज को सब कथा सुनाई। इस पर यमराज ने अपने पिता सूर्य से सम्मति ली और सन्तुष्ट हो गौतमी-गङ्गा की आराधना करके सरमा को शाप से विमुक्त कराया।

यद्यपि ये दोनों कथाएँ गौतमी गङ्गा की माहारम्य बढ़ाने की दृष्टि से रची गई हैं, पर हर तरह के दोष करने वाले को थोड़ी बहुत क्षमा-प्राप्ति और पुण्यदान करने पर दण्ड से मुक्त कर देना कोई श्रेष्ठ आदर्श नहीं कहा जा सकता। प्रथम तो देवलोक के सुख साधनों में रह कर जहां कल्पवृक्ष से सब कामनाओं की पूर्ति होती बताई गई है, रिश्वत सेना और कर्तव्य विमुख हो जाना, एक बड़ा जघन्य अपराध है। ऐसे साला व्यक्ति को अपने यहाँ से निकाल देना सर्वथा उचित ही था। दूसरी कथा एक वृद्धा का एक नवयुवक के साथ परिणय होना भी कोई अच्छा आदर्श नहीं कहा जा सकता। यदि कोई व्यक्ति दिव्यता या सामर्थ्य के कारण ऐसा कार्य कर लेता है, तो भी वह लोक निन्दा का पात्र ही बनता है।

अन्य बहुत सी कथाएँ उपदेश पूर्ण और प्रेरणा दायक भी हैं। "वसु तीर्थ" की कथा में बताया गया है कि किस प्रकार मनुष्य को ज्ञान की आराधना करके शोध, तृष्णा, आसक्ति, सशय आदि दोषों पर विजय प्राप्त करने की आवश्यकता है। ससार में सब कोई धनी और वैभव दाली नहीं हो सकते, ऐसी अवस्था में तृष्णा मनुष्य को अत्यन्त दुःख देती है। पर ज्ञान की साधना करने वाला इसी संसार की वास्तविकता को समझ कर जैसी भी परिस्थिति सामने आवे उसी में संतुष्ट रह सकता है। इसी प्रकार "भाव तीर्थ" की कथा में जब शिवजी ने राजा को वरदान माँगने को कहा था तो उसने यही याचना की कि इस तीर्थ में जो व्यक्ति महान् रोग, महान् विपत्ति से ग्रस्त होकर आवे वे सफल मनोरथ होकर जायें। "वसु तीर्थ" की कथा में सज्जन और दुष्ट व्यक्ति का अन्तर बहुत शिक्षाप्रद ढङ्ग से प्रकट किया गया है। धर्म-परा के

समर्थन करने वाला मणिकुण्डल वैश्य यद्यपि अपने दुष्ट मित्र द्वारा बहुत सताया गया और ठगा गया, पर अन्त में उसके सब कष्ट दूर हो गये और वह एक प्रसिद्ध तथा वैभव-शाली व्यक्ति बन गया ।

जैसा हम कह चुके हैं कि "ब्रह्म पुराण" में वर्णित सभी तीर्थ एक प्रकार से नये ढङ्ग के हैं और उनका मुख्य उद्देश्य गौतमी-मुञ्जा के महत्त्व का प्रतिपादन करना है । इस प्रकार की कथाओं में ऐतिहासिक सत्य अथवा वास्तविक घटनाओं को ढूँढना अनावश्यक है । उन्हें धर्म कथा या कहानी मानना ही ठीक है और जितना सङ्क्षेप उनसे प्राप्त हो सके उतना करना चाहिये ।

### कलियुग वर्णन

अन्य पुराणों की तरह इस पुराण में भी कलियुग का वर्णन काफी विस्तार से दिया गया है और वर्तमान दशा से उसका मिलान करके उसे हम बहुत कुछ ठीक भी कह सकते हैं । ऐसे वर्णनों में ज्योतिष शास्त्र द्वारा प्राप्त भविष्य-ज्ञान की विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती । वह समय के चिह्नों को समझ सकने वाली मानव-बुद्धि से ही जाना जा सकता है जिन वातों के बीज आज समाज और व्यक्तियों में मौजूद हैं वे आगे चलकर पीढ़े और वृक्ष के रूप में प्रत्यक्ष होंगे ही, यह तथ्य स्वाभाविक और प्रकृति के अनुकूल ही है । इसी के आधार पर बुद्धिमान व्यक्ति कितने ही आगामी परिवर्तनों का अनुमान सही तौर पर कर लेते हैं । कलियुगी आचार विचारों की चर्चा करते हुये पुराणकार का कथन है—

"कलियुग में वर्णाश्रम-धर्म तथा आचार-विचार की प्रवृत्ति मनुष्यों में नहीं रहती । वह ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद के अनुकूल वैदिक आचरणों में भी श्रद्धा नहीं रखते । कलियुग में विवाह को राजधर्म किया न मान कर उसका मुख्य उद्देश्य विलासता ही समझा जाता है । शिष्यगण गुरु की आज्ञा और अनुशासन में नहीं रहते । उस-समय अग्निहोत्रादि

क्रियाओं को भी नियम से करना रुक जाता है। वंश की श्रेष्ठता नष्ट होकर किसी भी कुल में उत्पन्न व्यक्ति जो शक्तिशाली होता है, वही सर्वोपरि बन जाता है। सभी वर्णों के व्यक्ति कन्योपजीवी बन जाते हैं। कलियुग के व्यक्ति चाहे जिससे किसी प्रकार दीक्षा लेकर ही दीक्षित बन जाते हैं। प्रत्येक क्रिया को प्रायश्चित्त के योग्य मान लिया जाता है। कलियुग में जो कुछ कही भी लिखा या कहा गया होता है उसी को 'शास्त्र' मान लिया जाता है। कलियुग में सभी देवता हैं और चाहे जो व्यक्ति इच्छानुसार किसी भी आश्रम का अनुयायी बन जाता है।”

“कलियुग में लोग उदास और पर्व आदि मनाते हैं तथा धन धन्य भी करते हैं, पर यह सब कार्य शास्त्र विधि के बजाय अपनी हृत्ति के अनुसार ही किये जाते हैं। बहुत थोड़े धन से लोगों को धन-मद हो जाता है और स्त्रियाँ प्रायः रूप का मद करती देखी जाती हैं, चाहे केश-प्रसाधन के अतिरिक्त उनके पास कोई अन्य साधन न हो। वे अपने पतियों को भी धन के आधार पर ही मान्यता देती हैं। इसी प्रकार जो अधिक धन दे सके वही दूसरों का स्वामी बन जाता है। इस समय में जो भी धन प्राप्त होगा वह भोगों में ही व्यय किया जायेगा और अन्याय से द्रव्योपार्जन में किसी को तनिक भी सकोच न होगा। किसी निजी सम्बन्धी अथवा मित्र के प्रार्थना करने पर भी कोई अपनी स्वार्थ हानि करके सहायता को प्रस्तुत न होगा। सब मनुष्य सदैव अपनी स्वार्थ सिद्धि की दृष्टि से उद्योग करेंगे। गौओं की मान्यता भी अधिक दूध देने की दृष्टि से होगी न कि धार्मिक विचार से। वर्षा का क्रम बिगड़ जाने से प्रजा सदैव अकाल से भयभीत रहा करेगी। लोग आलस्य और श्रम से बचने के कारण सदा ही अकाल का वृष्ट भोगते रहेंगे। उस समय लोग बिना स्नान किये ही भोजन करेंगे और अग्निहोत्र, अतिथि-भोजन, पिण्डादक आदि धर्मनिष्ठानों की तरफ किसी का ध्यान नहीं रहेगा।”

इसी प्रकार चारों वर्ण आश्रम तथा स्त्रियों का वर्णन करते हुये बताया गया है कि उस समय सभी विषयों में लोग धर्म-शास्त्रों के

नियमों की परवाह न करके स्वेच्छा व्यवहार करने वाले बन जायेंगे । यद्यपि वर्तमान समय में हम इस प्रकार के व्यवहार को उन्नति का चिह्न मानते हैं और उसे विचार स्वातंत्र्य का नाम देते हैं पर समाज-कल्याण की दृष्टि से यह प्रशस्तनीय नहीं कहा जा सकता । हम यह नहीं कहते कि प्राचीन काल के सब नियम उपयोगी अथवा सब कालों में लाभकारी हैं । अग्निहोत्र पिण्डोदक और अतिथि पूजा के जो नियम शास्त्रों में वर्णन किये गये हैं वे समाज-संगठन और आर्थिक-व्यवस्था में अनावश्यक भी हो सकते हैं पर समाज में अनुशासन और मर्यादा-पालन की प्रवृत्ति सदैव उचित और आवश्यक है । समस्त समाज के हित-अनहित के कार्यों में मनमाना व्यवहार किसी काल में उचित नहीं कहा जा सकता । यही दोष वर्तमान समय में विशेष बढ़ गया है और इसी से सर्वत्र एक हलचल फैली हुई है । इस समय मनुष्यों का मुख्य लक्ष्य अधिक से अधिक धन कमाना हो गया है चाहे उसके कारण अन्य व्यक्तियों अथवा समस्त समाज की कितनी भी हानि क्यों न होती हो । हम इसी स्वार्थ पूर्ण प्रवृत्ति को वास्तविक कलियुगी भावना कहते हैं और पुराणकार के वर्णन से भी यही श्रुति निकलती है । इस कलियुगी-भावना को दूर करना हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य है ।

### योगाभ्यास की वास्तविकता —

योग, साध्य, वेदान्त, जैसे ज्ञानमार्गीय विद्यों का संक्षिप्त वर्णन अनेक पुराणों में पाया जाता है और अधिकांश विद्वान् इन्हीं को मुक्ति का हेतु स्वीकार करते हैं । यद्यपि पुराणों का मुख्य उद्देश्य किसी न किसी देव की भक्ति और उपासना का निरूपण और उसी के द्वारा सब कामनाओं की सिद्धि प्रतिपादन करना है, फिर भी पुराण-कारों ने “ज्ञान मार्ग” के महत्त्व को स्वीकार किया है । “भगवद्गीता” में कृष्ण भगवान् ने कहा कि जो व्यक्ति मेरा भक्त बनकर अपने सब कर्मों को मुझे समर्पित कर देता है वह मुझे सब से अधिक प्रिय है । पर इसके साथ उन्होंने यह भी बतलाया है कि “इस संसार में ज्ञान से बढ़कर पवित्र अन्य कोई

तथ्य या शक्ति नहीं है।" इसलिये "ब्रह्मपुराणकार" ने भी अति संक्षेप में योग का वर्णन किया है और हमें स्वीकार करना पड़ता है कि उनका विवेचन अन्य कितने ही पुराणों से उष्ण कोटि का है। जहाँ अन्य लेखकों ने प्रायः आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान आदि अष्टांगों का पचड़ा ही सुनाया है "ब्रह्मपुराण" में योग का मूल मत की एकग्रता बतलाया है, जैसा की "पातञ्जल योग-दर्शन" का भी अभिमत है। उसने लिखा है—

"जिस योगाभ्यासी का मन दशीभूत हो जाता है और वह उस मन को परमात्मा में भली प्रकार न सग्न कर देता है और विषयो से दबे रहने का सदैव पूर्ण प्रयत्न करता रहता है, वही योग की सिद्धि प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है। जिस समय चित्त विषयो से छूटकर परब्रह्म में लीन हो जाता है उस समय समाधि बहुत सहज ही में लग जाती है। जब योगी का मन किसी कर्म में आसक्त नहीं रहता तभी वह आनन्द प्राप्त करके निर्वाण-पद का अधिकारी बन जाता है। योग-बल से योगी आध्यात्मि क्षेत्र के तीनों दर्जों से भी ऊपर उठकर उस सुखाविस्था को पा जाता है, जिसमें परमात्मा का साक्षिध्व निश्चित हो जाता। जो योगी सभी इच्छाओं से रहित होकर संसार के प्रत्येक पदार्थ में अनित्य-भावना रखता है। साथ ही सब से शुद्ध प्रेम की भावना को त्याग नहीं करता, वह जन्म, जरा, मृत्यु से अवश्य छुटकारा पाकर मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं। अन्य कोई मार्ग छुटकारा पाने का नहीं है। योग मार्ग वाले को भूतकर भी इन्द्रियो का सेवन नहीं करना चाहिये और वैराग्य धारण करके ही रहना चाहिये। यदि कोई केवल पचासन लगाकर और नासिका के अग्रभाग का निरीक्षण करते रह कर योग में पूर्णता पान की आशा करे, तो यह उसकी भूल है। इन्द्रियो और मन के स योग को मिटा देना या नियन्त्रण में रखना ही योग का सच्चा स्वरूप है।"

**सांख्य-योग से आत्मा की एकता—**

आगे चल कर सांख्य-योग के अनुसार मुक्ति-प्राप्ति का मार्ग दर्शन करते हुये कहा है—

“समस्त प्राणियों में जब एक ही परमात्मा विराजमान है और उस परमात्म-तत्त्व की दृष्टि से किमी में कुछ अन्तर नहीं है तो हमको सब प्राणियों में अपनी आत्मा ही देखनी चाहिये । जब ऐसा सच्चा दृष्टिकोण प्राप्त हो जाता है तो मनुष्य स्वयं ही “ब्रह्म” के समान हो जाता है । वह जितना ही अधिक आत्मा को जानता है उतना ही पराई आत्मा में भी अपनी आत्मा को देखने लगता है । इस प्रकार की भावना निरन्तर बनी रहने से मनुष्य अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है । जिस तरह पक्षियों की गति अन्तरिक्ष में होती है और मत्स्यों की जल में हुआ करती है उसी प्रकार उपर्युक्त ज्ञानवेत्ताओं की गति ऐसी सूक्ष्म होती है जो एका-एक दिखाई नहीं पड़ती । आत्मा के द्वारा आत्मा को यह काल प्रसता और पचन करता रहना है पर उस काल के विषय में सभी सासारिक व्यक्ति अनभिज्ञ रहा करते हैं । ये सभी लोक उस काल के भीतर ही रहा करते हैं, उससे बाहर कुछ भी नहीं है ।”

उपर्युक्त आत्म-भावना किम प्रकार प्राप्त की जा सकती है इसका विवेचन करते हुये पुराणकार ने कहा है कि “आत्मा को सर्व व्यापकता का ज्ञान मनुष्य के अपने प्रशान्त, दमनशील और आत्म प्रेमी स्वभाव द्वारा प्राप्त हो सकता है । इस सम्बन्ध में विद्वानों ने पाँच दोष ऐसे बतलाये हैं कि जिनका मूलोच्छेदन करने से आत्मज्ञान प्रबुद्ध हो सकता है । वे दोष हैं—काम, क्रोध, लोभ, भय और स्वप्न । योगी क्रोध को शम के द्वारा जीतता है, काम को सत्त्वों का वञ्चित करने से दबाया जाता है, सत्त्व के अभ्यास से निद्रा का उच्छेद किया जाता है । धैर्य से निश्चिन्त और उदर की रक्षा करनी चाहिये । श्रोत्र तथा चक्षु की मन के द्वारा और वाणी की कर्म के द्वारा सुरक्षा करे । प्रमाद का त्याग कर देने से भय भी जाता रहता है और सत्पुरुषों की सेवा करने से दम्भ दूर हो सकता है ।”

### ज्ञान योग की प्रशंसा—

अभ्यास-योग और साध्य योग का वर्णन करके लेखक ने ज्ञान-योग का परिचय दिया है इसके लिये उन्होंने मनुष्यों की प्रवृत्ति को मुख्यतः

दो प्राणों में बाँटा है—कर्म और विद्या। कर्म से मनुष्य सुख और दुःख प्राप्त करता है और विद्या द्वारा संसार-सागर को पार करके मुक्ति का अधिकारी बनता है। इन कर्ममय तथा विद्या से परिपूर्ण दो प्रकार के व्यक्तियों में बड़ा अन्तर होता है। “मूढम कला से युक्त होकर भन्द्रमा के समान सुखद स्पर्श वाला विद्या से युक्त हुआ करता है वह वस्त्र में धक्र के समु के समान देगा जा सकता है, किन्तु तल्लग्या नही जा सकता। प्रकृति के प्रभाव से मनुष्य का जीवात्मा सत्, रज, तम के गुण वाला होता है, अन्य दृष्टि से उसे परमात्मा के गुण वाला कहा जाता है। सांसारिक रूप में जीव का गुण वेशा करना होता है और उस अवस्था में वह ‘क्षेत्रज्ञ’ कहा जाता है। इससे ऊपर ज्ञान की दृष्टि से वह “क्षेत्रविद्” कहा जाता है और मातों मुक्तों की जानकारी रखने वाला होता है। जिस प्रकार योग्य सारथी उत्तम श्रेणी के अश्वों को स्वयं में रखते हुए रथ को दृष्टानुसार चलाता है, वैसे ही सुयोग्य मन भी इन्द्रियों का संचालन करता है। इन्द्रियों से ऊपर अयं (विषय) होते हैं, उनसे ऊपर मन होता है, मन से ऊपर बुद्धि और उससे भी ऊपर महान् आत्मा होता है। “महत्” से ऊपर “अव्यक्त” और उससे भी ऊपर “अमृत” अर्थात् आदि-अनन्त, अविनाशी होता है। इस अमृत पद को प्राप्त कर लेना ही जीव का अन्तिम और सर्वोच्च लक्ष्य होता है।”

इस प्रकार ज्ञान-योग का उपासक समस्त विश्व के गूढ़ तत्त्व को चरतलगत करने भी उसे प्रकट नहीं करता। जैसा भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है सांसारिक मनुष्यों में बुद्धि भेद उत्पन्न करने के उद्देश्य से वह बाह्य दृष्टि से समाज के सामान्य नियमानुसार चलता रहता है। फिर भी अग्न्य बुद्धिमान व्यक्तियों में उसकी परम मूढम बुद्धि अनुभव द्वारा जानी जा सकती है। वह आत्मज्ञान से अधिष्ठित होकर बुद्धि, मन, और विषयों सहित इन्द्रियों को संचालित करता है और उनको पूर्णतः स्वयं रखता है। “इस प्रकार विद्या-मार्ग वाला साधक संसार में



रहता हुआ भी परम पद में स्थित होकर "अमृत" स्थान को प्राप्त करता है। इसके विपरीत कर्म-मार्ग वाला मनुष्य सांसारिक कार्यों और उपलब्धियों को ही मुख्य उद्देश्य मान कर जीवन का संचालन करता है, इस लिये वह मृत्यु को प्राप्त होता है और आवगमन चक्र में पड़ा सुख-दुःख भोगता रहता है।'

इस प्रकार पुराणकार ने कर्म-योग, साध्य-योग और ज्ञान-योग के मार्गों का परिचय दिया है, जिनको एक से बढ़ कर एक सम्पन्न लेना चाहिये। इनमें "ज्ञान-योग" सर्व श्रेष्ठ कहा गया है, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य गेरुआ वस्त्र धारण करके अथवा नग्न होकर सांसारिक कार्यों को छोड़ कर संन्यासी अथवा अवधूत बन जाय, और स्वयं उपार्जन न करके दूसरों से भिक्षा मांग कर या दान ग्रहण करके पेट भरने लगे। ऐसा व्यक्ति तो सब से निम्न श्रेणी का और सबसे अधिक "अज्ञानी" होता है। अथवा उसे ढोंगी या पाखण्डी कहा जा सकता है, क्योंकि वह स्वयं परिश्रम और उत्तरदायित्व से बच कर दूसरों के परिश्रम के फल को अपहरण करना और चैन का जीवन व्यतीत करना चाहता है। हमें खेद से कहना पड़ता है कि आजकल हमारे देश के अधिकांश "ज्ञान मार्गी" कहलाने वाले "संत" "महात्मा" "महन्त" "स्वामी" "साधु" आदि इसी श्रेणी में आते हैं। वे अपनी स्वार्थपरता और ठग विद्या को ढकने के लिये "ज्ञानी" होने का दावा तो करते हैं, पर भीतर से न तो उनका हृदय शुद्ध होता है और न वे स्वयं "अमृत" पद को प्राप्त करने के लिये सचेष्ट होते हैं। वे तो अन्य मनुष्यों को भुलावे में डालकर सांसारिक भोगों का उपभोग करने में ही प्रयत्नशील रहते हैं। वे दूसरों को आत्म-ज्ञान का उपदेश क्या देंगे जब स्वयं उनका ही आचरण और उद्देश्य उससे विपरीत होता है।

इसलिये "अमृतत्व" के अभिलाषी व्यक्ति के लिये सर्वोत्तम और सच्चा मार्ग वही है जिसे भगवान् कृष्ण ने "गीता" में बहुत स्पष्ट रूप से प्रकट किया है। अपने जीवन निर्वाह के लिये आवश्यक सामान्य धर्मों का

कभी त्याग न करो और कभी किसी अन्य के आश्रित बन कर न रहो । ज्ञान की ऊँची से ऊँची स्थिति तक पहुँच कर भी उसके आधार पर कोई ऐसा व्यवहार न करो जिससे सामान्य जनता में बुद्धि भेद उत्पन्न हो और वे अपने उचित कर्तव्यों को त्याग कर अनुचित मार्गों को ग्रहण करने लगें । इसलिये सच्चा “ज्ञानी” अथवा ‘विद्या-मार्ग’ का पथिक वही कहा जा सकता है जो सांसारिक दृष्टि से आदर्श जीवन व्यतीत करता हुआ समाज के अन्य व्यक्तियों के सम्मुख उच्च उदाहरण उपस्थित करता है और हर तरह से उन्हें नीचे स्तर से ऊँचे स्तर पर जाने का मार्ग प्रदर्शन करता है । और इन सब व्यवहारों को करते हुये भी वह सांसारिक मोह, लोभ, माया आदि में तनिक भी लिप्त नहीं होता और अपना आन्तरिक लक्ष्य सदा आत्मा और परमात्मा में ही रखता है ।

“ब्रह्मपुराण” के रचयिता ने भी अन्त में यही निष्कर्ष निकाला है । उसका कथन यह है कि “जिस प्रकार जल में संचरण करने वाला पक्षी जल में लिप्त नहीं हुआ करता वैसे ही आरमजयी योगी त्रिगुणात्मक सृष्टि में रहता हुआ भी उसके दोषों में कभी लिप्त नहीं होता । ऐसा योगमुक्त मनुष्य चारों प्रकट में विषयो और वैभव में रहता जान, पडे पर वह उनसे सदा अलिप्त ही रहता है । ( जैसा उदाहरण महाराज विदेह जनक का दत्ताया जाता है ) । इस प्रकार आत्मा “त्रिगुणों” को जानता है और उनको उत्तरा भी करता है, पर “त्रिगुण” आत्मा को नहीं जानते और न ज्ञानी की आत्मा को वशीभूत कर सकने में समर्थ हो सकते हैं ।”

हमने इस जनोपयोगी सस्वरण में यही प्रयत्न किया है कि सभी ध्येयों के ध्येय इससे लाभ उठा सकें । आशा है कि पुराण-पाठकों के लिए यह सब प्रकार से बल्याणकारी सिद्ध होगा और वे धर्ममार्ग में निरन्तर प्रगति करते हुए अंतिम लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे ।

# ब्रह्मपुराण

प्रथम खण्ड

## विषय सूची

विषय	पृ० सं०
१ नैमिषारण्य वर्णन	३३
२ स्वयम्भुवमनु वंश वर्णन	४३
३ देवदानवोत्पत्ति वर्णन	५३
४ सूर्यवंश वर्णन	७२
५ सूर्यवंश वर्णन (२)	८६
६ सोमोत्पत्ति वर्णन	१०४
७ सोमवंश वर्णन	११०
८ सोमवंश में आयुर्वंश वर्णन	१२०
९ ययातिधरित्र वर्णन	१२६
१० पूरुवंश वर्णन	१३८
११ यदुपुत्र क्लोष्ठुवंश वर्णन	१७०
१२ वृष्णिवंश वर्णन	१७६
१३ सत्राजित उपाख्यान वर्णन	१८८
१४ स्थमन्तक उपाख्यान वर्णन	१९७
१५ भूमिवः स्वरादिलोक वर्णन	२०४
१६ ध्रुवसंस्थिति निरूपण	२११
१७ सर्वरीर्यमहारम्य वर्णन	२१६
१८ स्वयम्भूयत्सवि संवाद वर्णन	२२७
१९ भारतवर्ष वर्णन	२३३

२० कौणादित्य माहात्म्यवर्णन	२४५
२१ सूर्यपूजा प्रकरण	२४६
२२ आदित्यमाहात्म्य वर्णन	२६९
२३ आदित्यमाहात्म्य वर्णन (२)	२८१
२४ पंचतीर्थविधि वर्णन	२८७
२५ नरसिंहमाहात्म्य वर्णन	२९७
२६ श्वेतमाधवमाहात्म्य वर्णन	३१०
२७ समुद्रस्नानविधि वर्णन	३२६
२८ पूजाविधि कथन	३३७
२९ समुद्रस्नानमाहात्म्य वर्णन	३४४
३० पञ्चतीर्थमाहात्म्य निरूपण	३४८
३१ महाज्येष्ठीप्रशंसा वर्णन	३५२
३२ कृष्णस्नानमाहात्म्य वर्णन	३५५
३३ तीर्थसंख्या के विषय में नारजी का प्रश्न	३७३
३४ गङ्गात्री के दो रूप कथन	३८०
३५ गौतमकृतमुमामहेश्वर स्तवन	३९५
३६ स्वर्गादीष्वदसाकृत्यागङ्गायागमन	४०६
३७ गौतमीमहत्त्व वर्णन	४१०
३८ वसोवतीर्थ वर्णन	४१२
३९ दशाश्वमेधतीर्थ वर्णन	४२६
४० वैशाखतीर्थ वर्णन	४३४
४१ सुधातीर्थवर्णन	४३८
४२ अन्मस्थानतीर्थ वर्णन	४४२
४३ गरुडतीर्थ वर्णन	४४७
४४ अग्नितीर्थवर्णन	४५४
४५ श्रृणुप्रमोचनतीर्थ वर्णन	४५८
४६ पिप्पलतीर्थ वर्णन	४६०

# ब्रह्मपुराण

## प्रथम खण्ड

—\*—

### १—नैमिषारण्य वर्णन

नारायण नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।

देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

यस्मात् सर्वमिदं प्रपञ्चरन्तितं मायाजगज्जायते,  
यस्मिंस्तिष्ठति याति चास्तसमये कल्पानुकल्पे पुनः ।  
य ध्यात्वा मुनयः प्रपञ्चरहितं विन्दन्ति मोक्षं ध्रुव,  
तं वन्दे पुरुषोत्तमाख्यममल नित्यं विभुं निश्चलम् ॥१॥

यं ध्यायन्ति बुधाः समाधिसमये शुद्धं वियत्सन्निभं,  
नित्यानन्दमयं प्रसन्नममलं सर्वेश्वर निर्गुणम् ।

व्यक्ताव्यक्तपरं प्रपञ्चरहितं ध्यानैकगम्यं विभुं,  
तं संसारविनाशहेतुमजरं वन्दे हरिं मुक्तिदम् ॥२॥

सुपुण्ये नैमिषारण्ये पवित्रे सुमनोहरे ।

नानामुनिजनाकीर्णं नानापुष्पोपशोभिते ॥३॥

सरलैः कर्णिकारैश्च पनसैरघंखादिरेः ।

आम्रजम्बूकपित्त्यंश्च न्यग्रोधैर्देवदारुभिः ॥४॥

वश्रत्यैः पारिजातैश्च चन्दनागुरुपाटलैः ।

वकुलैः सप्तपर्णैश्च पुन्नागैर्नागिकेशरैः ॥५॥

शालैस्तालैस्तमालैश्च नारिकेलैस्तथाज्जुनैः ।

अन्यैश्च बहुभिर्वृक्षैश्चम्पकाद्यैश्च शोभिते ॥६॥

नानावक्षिगणाकीर्णं नानामृगगणैर्युते ।

नानाजलाशयैः पुण्येदीधिकाद्यैरलकृते ॥७॥

प्रथमाध्याय के आदि में नैमिषारण्य का वर्णन है—सर्व प्रथम नमस्कारात्मक भगलाचरण किया जाता है—भगवान् नारायण की सेवा में तथा नरों में उत्तम नर की ओर देवी सरस्वती के चरणों में प्रणाम करके इसके अनन्तर 'जय' शब्द का उच्चारण करना चाहिए । जिनसे प्रपञ्च के द्वारा रचना किया हुआ यह सम्पूर्ण माया जगत् समुत्पन्न हुआ करता है, जिसमें यह सम्पूर्ण विश्व स्थित रहा करता है और अस्त के समय में पुनः कल्प-प्रनुकला में गमन किया करता है, जिस प्रपञ्च से रहित विशुद्ध स्वरूप वाले भगवान् का ध्यान करके मुनिगण अटल मीश पद को प्राप्त किया करते हैं मैं उन्हीं नित्य-विभु-निश्चय और अमल पुरुषोत्तम नाम वाले भगवान् की वन्दना करता हूँ ॥१॥ जिसका बुध पुरुष समाधि के समय में अन्तरिक्ष के तुल्य शुद्ध स्वरूप का ध्यान किया करते हैं, जो निरय और आनन्द मम है, जिसका स्वरूप परम असन्न, अमल है और सबका ईश्वर एवं निर्गुण है, जो व्यक्त और अव्यक्त से भी परे है एवं प्रपञ्च से रहित तथा ध्यान के ही द्वारा जानने के योग्य है और विभु (व्यापक) है उन्हीं इस ससार के विनाश के हेतु तथा जरा से रहित और मुक्ति के प्रदान करने वाले भगवान् श्रीहरि की मैं वन्दना करता हूँ ॥२॥ नैमिषारण्य परम पुण्यमय-भुवनोद्धार एवं पवित्रतम स्थान है जो अनेक मुनिगणों से घिरा हुआ और विविध भौति के पुष्पों से शोभायमान है ॥३॥ जिस नैमिषारण्य में सरस-कणिकार-वनस-प्रघञ्जादिर-आम्र-आमुन-कपिल-वट और देवदारु के वृक्षों से शोभित है तथा अवश्य-पारिजात-चन्दन-अगुरु-पाटल-वक्रुव-मस्तपर्ण-पुन्नाग--नागकेशर-गाल-ताम्र-समान-नारि-मल और अजुन के द्रुमों से एवं अन्य चम्पक आदि बहुत प्रकार के वृक्षों से परम शोभा सम्पन्न है ॥४-६॥ उस नैमिषारण्य में विविध भौति के पक्षियों का समूह निवास किया करता है और अनेक तरह के वन्य पशुओं का समुदाय वहाँ विचरण किया करता है जिनसे उस

विपिन की अत्यधिक शोभा होती है । उसमें बहुत-से जलाशय हैं और पुष्पमय दीर्घ का आदि से वह परम विभूषित रहा करता है ॥७॥

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च जातिभिः ।

वानप्रस्थैर्गृहस्थैश्च यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः ॥८॥

सम्पन्नैर्गोकुलैश्चैव सर्वत्र समलंकृते ।

यवगोधूमचणकैर्मपिमुद्गतिलैश्चुभिः ॥९॥

चीनकाद्यैस्तथा मेघ्यैःशस्यैश्चान्यैश्च शोभिते ।

तत्र दीप्ते हुतावहे हूयमाने महामखे ॥१०॥

यजतां नैमिषेयाणां सत्रे द्वादशवापिके ।

आजग्मुस्तत्र मुनयस्तथाऽन्येऽपि द्विजातयः ॥११॥

तानागतान् द्विजांस्ते तु पूजांचक्रुर्यथोचिताम् ।

तेषु तत्रोपविष्टेषु ऋत्विग्भिः सहितेषु च ॥१२॥

तत्ताजगाम मूतस्तुमतिमाल्लोमहर्षणः ।

तं दृष्ट्वा ते मुनिवराः पूजां चक्रमुदान्विताः ॥१३॥

सोऽपि तान् प्रतिपूज्यैव सविवेश वरासने ।

कथां चक्रुस्तदान्योन्यं सूतेन सहिता द्विजाः ॥१४॥

कथान्ते व्यासशिष्यं ते पप्रच्छुः सशयं मुदा ।

ऋत्विग्भिः सहिताः सर्वे सदस्यैः सह दीक्षिताः ॥१५॥

उप नैमिषारण्य में ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र तथा अन्य जातियों भी तपश्चर्या के लिये निवास किया करते हैं । वहाँ पर सभी आश्रमों में स्थित रहने वाले मनुष्य रहते हैं ब्रह्मचारी-गृहस्थ-वानप्रस्थ और सन्यासी लोग अपना-व्रतानुष्ठान किया करते हैं वह विपिन सुसम्पन्न गायों के कुलों से परम असंकृत रहता है । उस अरण्य में सभी प्रकार के घान्यों की उत्पत्ति होती है-यव-गोधूम-चना-उद-मूंग-तिल-ईख और चीमक आदि एवं परम पवित्र शस्यों एवं घान्यों की उपज होने के कारण उस नैमिषारण्य की अनुपम शोभा होती है । उस वन में अग्नि के प्रदीप्त होने पर जब महामख में आहुतियाँ दी जाया करती हैं तो वहाँ की अद्भुत शोभा हुआ करती है । एक बार वहाँ पर बारह वर्ष

सक होने वाला एक सत्र का आरम्भ हुआ था जिसमें नैमिषेय लोग यजन कर रहे थे । उसी समय में वहाँ पर कुछ मुनिगण एवं अन्य द्विजातीय लोग समागत हुए थे । वहाँ पर निवास कर सत्र करने वालों ने उन सम्प्राप्त द्विजगणों को देख कर उनकी सविधि समुचित पूजा-अर्चना की थी । वे सब ऋत्विजों के साथ ही वहाँ पर एक स्थान पर बैठ गये थे ॥८-१२॥ उसी समय में वहाँ पर महा मतिमान् लोमहर्षण श्रीसूतजी आगये थे । सब लोगों ने उन महा मनीषी सूतजी को समागत हुए देख कर आत्यन्त प्रसन्नता के साथ उन समस्त मुनिवरों ने श्रीसूतजी का स्वागत-सत्कार एवं अर्चन किया था ॥१३॥ सूतजी ने भी उन सबकी प्रति पूजा की और इसके अनन्तर वे एक परम श्रेष्ठ आसन पर उपविष्ट हो गये थे । उस समय में सभी द्विजों ने श्रीसूतजी के साथ परस्पर में कथा-वार्ता की थी इस प्रकार से बहुत समय पर्यन्त कथा प्रसंग चलता रहा था ॥१४॥ कथा छत्रम होने पर जोभी सदस्यों सहित दीक्षित थे तथा ऋत्विजों के साथमें स्थित थे, सभी ने व्यासजी के शिष्य श्रीसूतजी से हृदयगत संशयो के विषय में प्रसन्नता के साथ प्रश्न किये थे ॥१५॥

पुराणागमशास्त्राणिसेहिहासानि सत्तम ।

जानासि देवदैत्यानां चरितं जन्म कर्मच ॥१६॥

न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिद्देवे शास्त्रे च शरते ।

पुराणे मोक्ष शास्त्रे च सर्व्वज्ञोऽसि महामते ॥१७॥

यथापूर्व्वमिदं सर्व्वं मुरपन्न सचराचरम् ।

ससुरासुरगन्धर्व्वं सयक्षोरगराक्षसम् ॥१८॥

योतुमिच्छामहे सूत ब्रूहि सर्व्वं यथा जगत् ।

वभूय भूतदच यथा महाभाग भविष्यति ॥१९॥

यतश्चैव जगत् सूत यतश्चैव चराचरम् ॥

लीनमासीत्तथा यस्य लयमेव्यति यत्र च ॥२०॥

मुनिगण ने कहा—हे श्रेष्ठ वर ! आप तो इतिहास के सहित सम्पूर्ण पुराण-आगम और शास्त्रों की सभी माँति जानते हैं और समस्त देव, गणों तथा दैत्यों का चरित्र-वृत्त और कर्म भी जानते हैं । आप तो



ऐसे महा मनीषी हैं कि आप से कुछ भी छिपा हुआ नहीं है ॥१६॥  
 वेदों में और शास्त्रों में तथा महाभारत में जो कुछ भी लिखा एवं  
 बताया गया है वह कुछ भी आप से अविदित नहीं है । आप तो महती  
 मति रखने वाले विद्वान् महानुभाव हैं पुराणों में और मोक्ष शास्त्रों  
 में आप सर्वज्ञ हैं अर्थात् पूणतया इनके ज्ञाता हैं ॥१७॥ यह सभी कुछ  
 जैसा पहिले या और चराचर सम्पूर्ण जिस प्रकार से यह विश्व उत्पन्न  
 हुआ जिसमें सुर-असुर-गन्धर्व-यक्ष-उरग और राक्षस सभी उत्पन्न हुए  
 हैं ॥१८॥ हे धीसूतजी ! हम यह सम्पूर्ण क्या श्रवण करने को उत्कट  
 अभिनाया रखते हैं । आप कृपा करके यह सभी हमारे समक्ष में बत-  
 लाने की उदारता कीजिए । जिस प्रकार से यह सम्पूर्ण जगत् रचा गया  
 था और हे महामाग ! पुनः जिन तरह से होगा-यह सभी वर्णन कीजिए  
 ॥१९॥ हे सूतजी ! जिससे यह स्यावर और जंगम सम्पूर्ण जगत् रचा  
 गया है और जैसे यह सोन हुआ था, मणिष्य में भी जिसमें जाकर यह  
 चराचर समस्त जगत् को प्राप्त होगा वहभी कृपया सब बतलाइये ॥२०॥

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने ।

सदैकरूपरूपाय विष्णवे सध्वजिष्णवे ॥ २१

नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च ।

वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकर्मणे ॥ २२

एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः ।

अव्यक्ताभूताय विष्णवे मुक्तिहेतवे ॥ २३

स्वगस्थितविनाशाय जगतो योऽजरामरः ।

मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने ॥ २४

आधार भूतं विश्वस्याप्यणीयां समणीयसाम् ।

प्रणम्य सर्वभूतस्थयच्युतं पुरुषोत्तमम् ॥ २५

ज्ञानस्वरूपमत्यन्तं निर्मल परमार्थतः

तमेवार्थस्वरूपेण भ्रान्तिदर्शनतः स्थितम् ॥ २६

विष्णुं प्रसिष्णुं विश्वस्य स्थितो स्वर्गे तथा प्रभुम् ।

सर्व्वं जगतामीशमजमक्षयमव्ययम् ॥ २७

आद्यं सुसूक्ष्मं विश्वेशं ब्रह्मादीन् प्रणिपत्य च ।

इतिहासपुराणज्ञं वेदवेदांगवारणम् । दग ॥२८॥

सर्व्वं शास्त्रार्थतत्त्वज्ञं पराशरसुतं प्रभुम् ।

गुरु प्रणम्य वक्ष्यामि पुराणं वेदसम्मितम् ॥ २९॥

महा महर्षि श्रीसोमहर्षणजी ने कहा—जो विचारों से रहित हैं—परम शुद्ध स्वरूप वाले हैं—नित्य एवं परमात्मा हैं और जो सदा ही एक ही रूप वाले हैं तथा सबको जीत लेने के शीन स्वामीय वाले हैं उन भगवान् विष्णु के लिये प्रणाम है ॥२९॥ हिरण्य गर्भ—श्रीहरि और भगवान् शंकर के लिये तथा बामुख तार और संसार की उत्पत्ति-परिपालन एवं जगत् के अदसान के कर्मों के करने वाले प्रभु हैं उनके लिये शतशः प्रणाम है ॥२२॥ जो एक ही होते हुए भी अनेको स्वरूप धारण करने वाले हैं तथा स्थूल और सूक्ष्म आत्मा वाले हैं उनके लिये नमस्कार है । जो अव्यक्ता व्यक्त रूप वाले तथा संसार में बारम्बार वाले जन्म मरण के आवागमन रूपी बन्धन से छुटकारा दिलाने के हेतु हैं उन भगवान् श्रीविष्णुदेव के लिये नमस्कार है ॥२३॥ इस जगत् की सृष्टि स्थिति और विनाश करने वाले हैं और स्वयं जो अजर एवं अमर हैं तथा भूतभूत हैं उन परमात्मा भगवान् विष्णु के लिये प्रणाम है ॥२४॥ जो सम्पूर्ण विश्व का आधार भूत हैं अर्थात् यह पूर्ण विश्व जिसके आधाय को प्राप्त कर टिक हुआ है और जो सूक्ष्मो में भी परम सूक्ष्म स्वरूप वाले हैं जिनमें समस्त भूत स्थित रहा करते हैं उन भगवान् पुरुषोत्तम अच्युत को प्रमाण करता हू ॥२५॥ जो प्रभु ज्ञान के ही स्वरूप वाले हैं और परमायं रूप से अत्यन्त निर्मल हैं वही अयं स्वरूप से स्थित रहते हैं—ऐसी भ्रान्ति से दर्शन उनका हुआ करता है ॥२६॥ जो इस विश्व की स्थिति में विष्णु तथा प्रसिष्णु हैं तथा जो स्वर्ग में प्रभु हैं । जो सर्वज्ञ हैं—अगतो के जो ईश हैं जो अजन्मा है—अक्षय है और अव्यय स्वरूप वाले हैं ॥२७॥ उन सब के आदि में स्थित रहने वाले-परम सूक्ष्म विश्व के स्वामी को और ब्रह्मा आदि को प्रणियास करके उसके अनन्तर नमस्त शास्त्रों के अर्थ के लक्ष के पूर्ण गाथा-इतिहास

और पुराणों के अच्छे ज्ञान रखने वाले-मनस्स वेदों और वेदों के छे अङ्ग शास्त्रों के पारगामी विद्वान् प्रभु पराशर मुनि के पुत्र अपने श्रीगुरुदेव वेदध्यास जी के चरणों में प्रणाम करके जो वेदों का सम्मिश्रित पुराण है उस ब्रह्मपुराण का मैं वर्णन करूंगा । तात्पर्य यह है-कि यह पुराण वेदानुकूल है ॥२८-२९॥

कथयामि यथापूर्वं दक्षार्थमुनिसित्तमे ।

पृष्टः प्रोवाच भगवान् जयानिः पितामहः ॥३०॥

शृणुष्व सम्प्रवक्ष्यामि कथांपापप्रणाशिनीम् ।

कथ्यमाना मया चित्रां बह्वर्थां श्रुतिविस्तराम् ॥३१॥

यस्त्विदमां धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः ।

स्ववशाधारणं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥३२॥

अध्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ।

प्रधानं पुरुषस्तस्मान्निम्नमे विश्वमीश्वरः ॥३३॥

तं बुध्यन्व मुनिश्चेष्टा ब्रह्माणममितीजसम् ।

स्रष्टारं सर्वभूतानां नारायणपरायणम् ॥३४॥

अहंकारस्तु महत्तस्माद्भूतानि जज्ञिरे ।

भूततभेदाच्च भूतेभ्य इति सर्गः सनातनः ॥३५॥

दक्ष आदि परम श्रेष्ठ मुनियों ने अजयोनि पितामह भगवान् से पूछा था उस समय जो भी उन्होंने वर्णन किया था वही यथा पूर्व में अब आप लोगों के समक्ष में वर्णन करता हूँ ॥३०॥ अब आप लोग सब परम समाहित मन वाले होकर श्रवण कीजिए मैं वर्णन करूंगा । यह कथा सभी प्रकार के पाप-तापों का विनाश कर देने वाली है और मेरे द्वारा कही जाने वाली यह कथा अतीव अद्भुत-बहुत विशेष अर्थ से भरी हुई और श्रुति के विस्तार से समन्वित है ॥३१॥ जो पुरुष इस कथा को नित्य ही धारण किया करता है अथवा बारम्बार इस का श्रवण किया करता है वह अपने वंश को धारण करके स्वर्ग लोक में निवास करने की प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥३२॥ जो सत् और असत् स्वरूप बाला-नित्य कारण अव्यक्त है वह प्रधान है परम पुरुष । प्रभु जो सर्वेश्वर है उसी से इस विश्व का निर्माण उन्होंने किया था

॥३३॥ हे परम श्रेष्ठ मुनिगणो ! अपरिमित मोक्ष से युक्त-नारायण परायण उसी ब्रह्म को समस्त भूतों का सृजन करने वाला समझो ॥३४॥ उस प्रधान अव्यक्त से यह तत्त्व और महत् से बृहद्भकार और अहंकार से सब भूत और उन भूतों से भूतों के भेद-इन सबको इस उक्त क्रम से उत्पन्न किया था—यही सर्वदा से चने आने वाला सदातन सर्म होता है ॥३५॥

विस्तरावयवं चैव यथाप्रज्ञं यथाश्रति ।

कीदृयमानं शृणुष्वं वः सर्वेषां कीर्त्तिवद्धनम् ॥३६॥

कीर्त्तितं स्थिरकीर्त्तीनां सर्वेषां पुण्यवद्धनम् ।

ततः स्वयम्भूमंगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥३७॥

अप एव ससंज्ज्ञादौ तासु धीम्यमयासृजत् ।

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवा ॥३८॥

अयन तस्य ताः पूर्व्वं तेन नारायणः स्मृतः ।

हिरण्यवर्णमभवत्तदन्तमुदकेशयम् ॥३९॥

तत्र जज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूरिति नः श्रुतम् ।

हिरण्यवर्णो भगवानुसित्वा परिवत्सरम् ॥४०॥

तदन्तमकरोद्द्वेष्टं दिवं भुवमयापि च ।

तयोः शकलयोर्मध्य आकाशमकरोत्प्रभुः ॥४१॥

अप्सु पारिप्लवां पृथ्वी दिशश्च दशधा दधे ।

तस्य कासं मनो वाच कामं क्रोधमयो रतिम् ॥४२॥

इस सगं का विस्तार जिन अवयवों से होता है उसकी भी जैसा मैंने अवण किया है और जैसी भी मेरी प्रजा है उसी के अनुसार मेरे द्वारा कीर्त्तित किया जा रहा है । इस का ध्यान करिए । यह श्रवण करना आप सबकी कीर्त्ति की वृद्धि करने वाला है ॥३६॥ जिनकी कीर्त्ति सदा स्थिर रहा करती है ऐसे उन सबके चरित का कीर्त्तन करना भी महाम् पुण्य का वर्धन करने वाला ही होता है । रचना करके प्रजा का सृजन करने की इच्छा वाले होंगये थे । ॥३७॥ सबके आदि में उस की ही सृष्टि की थी और उन्ही जनों में धर्म का सृजन किया था ।

ये जल 'नार'-इस नाम से कहे गये हैं और ये जल नर की सन्तति हैं ।  
ये ही जल सबसे पूर्व उस परम पुरुष नर के निवास का स्थल था और  
इसी कारण से उनका नाम नारायण होगया है । उनके अन्दर जल में  
शयन करने वाले हिरण्य वर्ण हुए थे ॥३८-३९॥ वहीं पर स्वयं ब्रह्मा  
जी ने जन्म ग्रहण किया था जिनको स्वयम्भू-यह नाम से हम लोगो  
ने सुना या जाना है यह स्वयं ही समुत्पन्न हुए थे अतएव स्वयम्भू नाम  
अन्वय है । हिरण्य वर्ण भगवान् कितने ही वर्षों तक वहाँ पर निवास  
करते रहे थे ॥४०॥ इसके अन्त में दो प्रकार की रचना की थी । एक  
तो दिव लोक बनाया और भूलोक बनाया था । उन दोनों खण्डों के मध्य  
में प्रभु ने आकाश की रचना की थी ॥४१॥ यह पृथ्वी जल में  
पारितपवित हो रही थी अर्थात् डूबी हुई थी । सभी दशो दिशाओं को  
निमित्त किया था । वहीं पर फिर वास-मन-वाणी काम-क्रोध और  
रति का सृजन किया था ॥४२॥

ससर्जं सृष्टिं तद्रूपां स्रष्टुमिच्छन् प्रजामतीन् ।  
मरीचिमथ्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं कतुम् ॥४३॥  
वसिष्ठं च महातेजाः सोऽसृजत्सप्त मानसान् ।  
सप्त ब्राह्मण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ॥४४॥  
नारायणात्मकानां तु सप्तानां ब्रह्मजन्मनाम् ।  
ततोऽसृजत् पुरा ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसम्भवम् ॥४५॥  
सनत्कुमारं च विभुं पूर्वपामपि पूर्वजम् ।  
सप्तस्वेता अजायन्त प्रजा रुद्राश्च भो द्विजाः ॥४६॥  
स्कन्दः सनत्कुमारश्च तेजः संक्षिप्य तिष्ठतः ।  
तेषां सप्त महावंशः शिष्या देवगणान्विताः ॥४७॥  
क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलङ्कृताः ।  
विद्युतोऽश्निमेघाश्च रोहितेन्द्रधनूः पि च ॥ ४८॥  
वयांसि च ससर्जदो पर्जन्यश्च ससर्ज ह ।  
ऋचो यजूं पि सामानि निम्मंमे यज्ञसिद्धये ॥ ४९॥

प्रजापतियों की सृष्टि करने की इच्छा वाले प्रभु ने तद्रूपा ही सृष्टि का सृजन किया था । मरीचि-अत्रि-अङ्गिरा-पुनस्त्य-पुनह-कतु और वसिष्ठ की महाम् सेज वाले परमेश्वरी ने इन सात मानस पुत्रों का सृजन किया था । ये सातों ब्रह्माजी के मन से ही समुत्पन्न हुए ये अतएव मानस पुत्र कहे जाते हैं । ये सात ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं ऐसा पुराण में निश्चय को प्राप्त हुए थे ॥४३-४४॥ ये सातों ब्रह्माजी से जन्म ग्रहण करने वाले हैं और साक्षात् मारायण के ही स्वरूप वाले हैं । इसके अनन्तर पहिले ब्रह्माजी ने रोच के स्वरूप से जन्म लेने वाले भगशम् रुद्रदेव का सृजन किया था । ॥४५॥ पूर्ण में होने वाले थे श्री सत्र से पूर्ण में समुत्पन्न प्राप्त करने वाले विष्णु सनत्कुमार की सृष्टि की थी । हे द्विजगण ! इन्हीं सातों में यह सम्पूर्ण प्रजा और रुद्र गण उत्पन्न हुए थे ॥४६॥ तेज को संक्षिप्त करके सनत्कुमार और स्कन्द स्थित हुए थे । उनके ही दिव्य देवगणों से समन्वित सन्त महाम् ब्रह्मा हुए थे । ॥४७॥ ये महाब्रह्मा सब क्रियाओं वाले प्रजाओं से युक्त और महर्षियों से समस्तकृत हुये थे । फिर विद्युत्-घञ्ज-मेघ-रोहितेन्द्र धनुष-पत्तीगण और पर्जन्य इन सबका आदि कास में सृजन किया था । इसके उपरान्त यज्ञ कर्मों को सुसम्पादित करके सिद्धि प्राप्त करने के लिये ऋग्वेद-यजुर्वेद और सामवेद की ऋषियों का सृजन तथा निर्माण किया था ॥४८-४९॥

साध्यानजनयद्देवानित्येवमनुसञ्जगुः ।

उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥५०॥

आपर्वस्य प्रजासग सृजतो हि प्रजापतेः ।

सृज्यमानाः प्रजा नैव विवर्द्धन्ते यदा तदा ॥५१॥

द्विधाकृत्वात्मनो देहवर्द्धनं पुरुषोऽभवत् ।

अर्द्धेन नारी तस्यां तु सोऽसृजद्विविधाः प्रजाः ॥५२॥

दिवञ्च पृथिवी चैव महिम्न व्याप्य तिष्ठति ।

विराजभसृजद्विष्णुः सोऽसृजत् पुरुषं विराट् ॥५३॥

पुरुषं तं मनुं विद्यात्तस्य मन्वन्तरं स्मृतम् ।

द्वितीयं मानसस्यैतन्मनोरन्तरमुच्यते । ५४

स वैराजः प्रजासर्गं ससर्ज पुरुषः प्रभुः ।

नारायणविसर्गस्य प्रजास्तस्याप्ययोनिजाः ॥५५॥

आयुष्मान् कीर्त्तिमान् तूर्णप्रज्ञावांश्च भवेन्नरः ।

आदिसर्गं विदित्वेमं यथेष्टं चाप्नुयाद्गतिम् ॥५६॥

इसके अनन्तर साध्य देवों को जन्म दिया था जो इस प्रकार से नित्य ही भली भाँति अनुगम किया करते थे । उन ब्रह्माजी के अंगों से उच्चावच अर्थात् ऊँचे-नीचे भूतों ने जन्म ग्रहण किया था ॥५०॥ आपवं प्रजाओं के सृजन करने वाले प्रजापति की ये सब सृष्टि हुई प्रजा थी किन्तु जब देखा कि वह प्रजा बढ़ती हुई नहीं है तो प्रजा की पुष्कल वृद्धि का ध्यान हुआ था ॥५१॥ अयोनिज प्रजा से विशेष वृद्ध होती हुई न देख कर अयोनि से जन्म ग्रहण करने वाली प्रजा के लिये ब्रह्माजी ने अपने शरीर के दो भाग निमित्त किये थे आधे शरीर के भाग से वे पुरुष हुए थे और आधे वायांग से नारी का स्वरूप निमित्त किया था । उसी नारी में फिर उन्होंने विविध भाँति की प्रजा की सृष्टि की थी जो दिव लोक और पृथ्वी में ध्यात होकर महिमा से सम-वस्थित है । भगवान् विष्णु ने विराट् का सृजन किया था और उस विराट् ने पुरुष का सृजन किया था ॥५२-५३॥ उस पुरुष को मनु समझलो । उसका मन्वन्तर भी कहा गया है । मानस का यह द्वितीय मन्वन्तर कहा जाता है ॥५४॥ उस प्रभु पुरुष वैराज ने प्रजा के सर्ग का सृजन किया था । उस नारायण विसर्ग की समस्त प्रजा भी अयो-निज ही थी । इस आदि सर्ग का ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य आयुष्मान्-कीर्त्तिमान् और पूर्ण प्रज्ञावान् हो जाया करता है तथा अपनी अभीष्ट गति को भी प्राप्त कर लेता है ॥५५-५६॥

## २—स्वयम्भुव मनु वंश वर्णन

स सृष्ट्वा तु प्रजास्त्वेवमापवो वं प्रजापतिः ।

लेभे वं पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम् ॥१॥

आपवस्य महिम्ना तु दिवमानृत्य तिष्ठतः ।

धर्मेणैव मुनिश्रेष्ठाः शतरूपा व्यजायत ॥२॥

सा तु वर्षायुतं तपसा तपः परमदुश्चरम् ।

भर्तारि दीप्ततपसं पुरुषं प्रत्यपद्यत ॥३॥

सा वै स्वायम्भुवो विप्राः पुरुषो मनुश्च्यवते ।

सम्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥४॥

वैराजात् पुरुषाद्वीर शतरूपा व्यजायत ।

प्रियव्रतोत्तानपादौ वीरात् काम्या व्यजायत ॥५॥

काम्या नाम सुता श्रेष्ठा कर्दमस्य प्रजापतेः ।

काम्यापुत्रास्तु चत्वारः सम्राट् कुक्षिविराट्प्रभुः ॥६॥

उत्तानपाद जग्राह पुत्रमग्निः प्रजापतिः ।

उत्तानपादाच्चतुरः सूनृता सुपुत्रे सुतान् ॥७॥

श्री लोमहर्षण मुनि ने कहा—उन आपव प्रजापति ने इस प्रकार से प्रजाओं का सृजन किया था । उस पुरुष ने वर्षात् स्वायम्भू मनु ने जोकि प्रजापति के दक्षिणार्ध अंग से समुत्पन्न हुआ था अयोनिज शतरूपा पत्नी को प्राप्त किया था ॥१॥ आपव की महिमा से मे दिव को आवृत करके ही स्थित थे । हे श्रेष्ठ मुनियो ! धर्म से ही शतरूपा समुत्पन्न हुई थी ॥२॥ उस शतरूपा ने दक्ष हजार वर्ष पर्यन्त तपश्चर्या की थी और परम दुश्चर तप किया था इस तप के प्रभाव से ही उस शतरूपा ने प्रदीप्त तप वाले पुरुष स्वायम्भू मनु को अपना भर्ता प्राप्त किया था ॥३॥ हे विप्रो ! वही स्वायम्भुव पुरुष मनु कहा जाता है उस स्वायम्भुव मनु का कार्य काल इकहत्तर युगो की चोकिर्मा होती है जो एक मन्वन्तर कहा जाता करता है ॥४॥ यही से योनिज सृष्टि का समारम्भ होता है जो पुरुष के साथ नारी सम्मोग का सुख प्राप्त करती हुई गर्भ धारण किया करती है और अपनी योनि द्वार से प्रसव काल समुपस्थित होने पर सन्तति को जन्म ग्रहण कराया करती है । मनु के द्वारा उत्पन्न होने ही से मनुष्य कहलाये जाते हैं । उस शतरूपा पत्नी ने वैराज पुरुष के साथ सहवास करके उसके बीर्य से वीर को



उत्पन्न किया था । उस वीर की पत्नी काम्या थी उस काम्या ने वीर वीर के साथ सपवास करके उसके वीर्य से प्रिय व्रत और उत्तानपाद को उत्पन्न किया था ॥५॥ यह काम्या प्रजापति कर्दम की परम श्रेष्ठ सुता थी । इस काम्या से सभाट्-कुक्षि विराट् और प्रभु ये चारपुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥६॥ प्रजापति अत्रि ने उत्तानपाद को पुत्र ग्रहण कर लिया था । उस उत्तानपाद के साथ संग कर उसकी वीर्य से सुन्दर श्रोणी तट वाली परम विश्रुत सूनृता ने चार पुत्रों को प्रसूत किया था ॥७॥

धर्मस्य कन्या सुश्रोणी सूनृता नाम विश्रुता ।

उत्पन्ना वाजिमेधेन ध्रुवस्य जननी शुभा । न

ध्रुवश्च कीर्त्तिमन्तश्च आयुष्मन्तं वसुं तथा ।

उत्तानपादोऽजनयत् सूनृतायां प्रजापतिः ॥६॥

ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि भो द्विजाः ।

तपस्तेपे महाभागः प्रार्थयन् समुहदयशः ॥१०॥

तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतः स्थानमात्मसमं प्रभुः ।

अचलञ्चैव पुरतः सप्तर्षीणां प्रजापतिः ॥११॥

तस्याभिमानमृद्धिश्च महिमानं निरीदय च ।

देवासुराणामाचार्य्यः श्लोक प्रागुशना जगौ ॥१२॥

अहोऽश्य तपसो वीर्य्यमहो श्रुतमहोऽद्भुतम् ।

यमद्य पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ॥१३॥

तस्माच्छ्लष्टि च भव्य च ध्रुवाच्छम्भुर्व्यजायत ।

श्लष्टे राघत्त सुच्छाया पञ्च पुत्रनकल्मषान् ॥१४॥

सूनृता नाम से विख्यात सुन्दर श्रोणी वाली कन्या धर्म की पुत्री थी । यह परम भक्त ध्रुव की माता जो अतीव-शुभ थी वाजिमेध यज्ञ के द्वारा समुत्पन्न हुई थी ॥६॥ प्रजापति राजा उत्तानपाद ने अपनी प्रिय पत्नी सूनृता के कार्य से ध्रुव-कीर्त्तिमान्-आयुष्मान् और वसु नामों वाले पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था ॥६॥ हे द्विजवरो ! महान् भाग वाले ध्रुव ने पाँच वर्ष की कुमार अवस्था ही में समहान् यश की

इच्छा रखते हुए तीन सहस्रा दिव्य वर्षों तक परम दुश्चर तप किया था ॥१०॥ प्रभु ब्रह्माजी ने उसको परम प्रसन्न होकर अपने ही समान स्थान प्रदान किया था जो बहुत ही भमल स्थान था । प्रजापति ने मत्स्यियों के समक्ष में बहू स्थान प्रदान किया था ॥११॥ उस कुमार ध्रुव के स्वामिमान-महिमा और समृद्धि को देख कर देवासुरों के आचार्यवर उशना (शुक्राचार्य) ने इस लोक का गान किया था ॥१२॥ ओ हो ! इस कुमार के तप का वीर्य और ध्युत कितना अद्भुत है जिस ध्रुव को अपने आगे स्थित करके सप्तविंशति विराजमान रहते हैं ॥१३॥ उस ध्रुव से शम्भु ने शिल्पि और भण्ड को उत्पन्न किया था । उस शिल्पि के साथ सहवास करके उसके वीर्य से सुच्छाया नामक उसकी प्रिय पत्नी ने कल्मष रहित पाँच पुत्रों को प्रसूत किया था ॥१४॥

रिपुं रिपुह्णयं वीरं वृकलं वृकतेजसम् ।

रिपोराघत वृहती चक्षुष सवन्तेजसम् ॥१५॥

अजीजनत् पुष्करिण्या वीरण्या चाक्षुषं मनुम् ।

प्रजापतेरात्मजाया वीरजस्य महारमनः ॥१६॥

मनोरजायन्त दश नड्वलायां महोजसः ।

कन्यायां मुनिशार्दूला वीराजस्य प्रजापतेः ॥१७॥

कुत्सः पुरुः शतद्यन्मस्तपस्वी सत्यवाक्पविः ।

अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्यन्मश्चेति ते नव ॥१८॥

अभिमन्युश्च दशमो नड्वलाया महोजसः ।

पुरोरजनयत् पुत्रान् पद्माग्नेयी महाप्रभान् ॥१९॥

अङ्गं सुमनसं व्याति क्रतुमङ्गिरस गयम् ।

अङ्गात् सुनोयापत्य वै वेनमेक व्यजायत ॥२०॥

अपचारेण वेनस्य प्रकोपः सुमहानभूत् ।

प्रजार्धमृषयो यस्य भमन्धुदक्षिण करम् ॥२१॥

उन पाँचों पुत्र ने शुभ नाम ये थे—रिपु-रिपुञ्जय-वीर-वृकल और वृहतेजा । वृहती ने सर्व तेजस चक्षुष को रिपु से धारण किया था

॥१५॥ महान् अरमा वाले प्रजापति वीरण की आत्मजा में जो पुष्करिणी वरिणी थी उसमें चाक्षुष मनु को समुत्पन्न किया था ॥१६॥ हे मुनि शाङ्गो ! प्रजा पति वीराज की कन्या नवला में मनु से महान् बोजवाले दश पुत्रों की समुत्पत्ति हुई थी ॥१७॥ उनके नाम ये हैं—कुतून-पुरु-शतद्युम्न-तनस्वो-सत्यवाक्-कवि-अतिष्ठुत्-अतिरात्र और सुद्युम्न ये तो हैं ॥१८॥ अभिमन्यु दशम पुत्र था । ये नहुवला में महान् बोज वाले हुए थे । पुरु के वीर्य से आग्नेयी ने महती प्रमाणात्ते छे पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था ॥१९॥ उन छे पुत्रों के नाम ये हैं—अंग-सुमनस-व्याति-ऋतु-अंगिरा-गम । अंग के वीर्य से सुनीया नाम वाली भार्या ने एक ही सन्तति उत्पन्न की थी जिसका नाम वेन था ॥२०॥ वेन बहुत ही अय नारी था जिसके बुरे अपचार से ऋषियों का बहुत भारी प्रकोप हो गया था । प्रजा के लिये ऋषिगणों ने जिसके दक्षिण कर का मन्थन किया था ॥२१॥

वेनस्य मथिते पाणी स वभूव महानृपः ।

तं दृष्ट्वा मुनयः प्रादुरेप च मुदिताः प्रजाः ॥२२॥

करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत् ।

स घन्वी कवची जातो जलज्ज्वलनसन्निभः ॥२३॥

पृथुर्वैन्यस्तथा चेमां ररक्ष क्षत्रपूर्वजः ।

राजसूयाभिपिक्तानामाद्यः सा वसुधाधिपः ॥२४॥

तस्माच्चैव समुत्पन्नो निपुणो सूतमागधौ ।

तेनैवं गोम्भुनिश्रेष्ठा दुग्धा शस्यानि भूभृता ॥२५॥

प्रजानां वृत्तिकामेन देवैः सपिगणैः सह ।

पितृभिर्दानैर्वैश्वैर्व गन्धर्वैरप्सरोगणैः ॥२६॥

सर्पैः पुण्यजनेश्चैव वीरुद्भिः पर्वतैस्तथा ।

तेषु तेषु च च णत्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा ॥२७॥

प्रादाद्यथेप्सितं क्षीरं तेन प्राणानधारयन् ।

पृथोस्तु पुत्नौ घर्मज्ञौ जज्ञातेऽन्तर्धिपातिनौ ॥२८॥

राजा वेन के हाथ का मन्थन करने पर एक महान् नृप उत्पन्न हुआ था । उसको देखकर समस्त मुनियों ने कहा था—यह महान् तेज वाला राजा अपनी सब प्रजा को परम प्रसन्न करेगा और संसार में बहुत ही अधिक यश की प्राप्ति भी करेगा । वह धनुषधारी तथा कवच पहिने हुए उत्पन्न हुआ था और प्रदीप्त अग्नि के समान ही तेजस्वी था ॥२२-२३॥ यह क्षत्रियो में सबसे प्रथम उत्पन्न होने वाला पृथुर्वश्य नामधारी था और उसने इस भूमि को पूर्णतया रक्षा की थी । राज-सूय नामक यज्ञ के द्वारा जो अभिषिक्त राजा हुए हैं उनमें यह सबसे प्रथम वसुधा का स्वामी हुआ था ॥२४॥ हे मुनियो में परम श्रेष्ठो ! उसी नृप से परम निपुण सूत तथा मागध उत्पन्न हुए थे । उसी राजा ने इस प्रकार से इस भूमि रूपिणी गौ को दोहन किया था जिसमे सभी प्रकार के शस्य समुत्पन्न होने लगे थे ॥२५॥ अपनी समस्त प्रजाजनों की वृत्ति की कामना वाले उस नृप ने देवगण-ऋषियों का समुदाय-वितृगण-दानव-गन्धर्व-अप्सरारों के समूह-सर्प पुण्ड्रजल-वीर्य-और पर्वतों के साथ उन-उन पात्रों में यह वसुधारी ह्यमान की थी अर्थात् भूमि का दोहन किया था ॥२६-२७॥ इस भूमि ने यथोचित क्षीरफट्ट प्रदान किया था उसके द्वारा प्राणों को धारण न करते हुए ही दिया था । राजा पृथु के धर्म क पूर्ण ज्ञाता थे और अन्तर्धियासी समुत्पन्न हुए थे ॥२८॥

शिखण्डिनो हविर्घनिमन्तर्घानाद् व्याजायत ।

हविर्घानात् पहाग्नेयी घिषणाजनयत् सुतान् ॥२९॥

प्राचीनवर्हिषशुक्रं गय कृष्णं प्रजाजिनो ।

प्राचीनवर्हिभंगवान्महानासीत्प्रजापतिः ॥३०॥

हविर्घानान्मुनिश्रेष्ठा येन सर्वद्विताः प्रजाः ।

प्राचीनाप्राः कुशास्तस्य पृथिव्यां द्विजसत्तमाः ।

प्राचीनवर्हिभगवान् पृथिवीतलचारिणीः ॥३१॥

समुद्रतनयायां तु कृतदारोऽभवत् प्रभुः ।

महत्स्वपसः पारे सवर्णायां प्रजापतिः ॥३२॥

सवर्णाधित्त सामुद्री दश प्राचीनवर्हिपः ।

सर्वान् प्राचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगान् ॥३३॥

अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः ।

दश वर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ॥३४॥

तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेतःसु महीरुहाः ।

अरक्ष्यमाणाभावन्नुर्वभूवाथ प्रजाक्षयः ॥३५॥

अन्तर्धान के वीर्य से शिखण्डिनी ने हविर्धान को जन्म दिया था । आग्नेयी धिपगा नाम धारिणी पत्नी ने हविर्धान के साथ सहवास करके उसके वीर्य से छै सुतों को प्रसव दिया था ॥३६॥ उन छै पुत्रों के नाम ये हैं—प्राचीन वर्हि-शुक्र-गय-कृष्ण-व्रज और अजिन । भगवान् प्राचीन वर्हि महान् प्रजापति हुए थे ॥३७॥ हे मुनि ध्येष्ठो ! जिसने हविर्धान से अपनी प्रजाजनों को भली भाँति धधित किया था । हे द्विज ध्येष्ठो ! उसके पृथिवी में पृथ्वीतल पर चरण करने वाली प्राचीन नाम कुशा हुए थे ॥३८॥ प्राचीन वर्हि भगवान् समुद्र की तनया में दारा को ग्रहण करने वाले प्रभु हुए थे । महान् तप से सवर्ण में प्रजापति हुए ॥३९॥ सामुद्री सवर्ण ने दश प्राचीन वर्हि धारण किये थे । उन सबके प्राचेतस नाम थे और वे सब धनुर्वेद के पारगामी विद्वान् थे ॥४०॥ अपृथक् धर्म के चरण करने वाले उन्होंने महान् तपश्चर्या की थी । दश हजार वर्ष पर्यन्त उन्होंने समुद्र के जल में ही शयन किया था ॥४१॥ प्रचेताओं के तप करने पर महीरुह अरक्ष्यमाण पृथिवी से बोले—प्रजाक्षय होगया था ॥४२॥

नाशकन्मासतो वातुं वृतं खममवद्द्रुमः ।

दश वर्षसहस्राणि न शेकुश्चेष्टितुं प्रजाः ॥४३॥

तदुप्रश्रुत्य तपसा युक्तां सर्वं प्रचेतसः ।

मुखेभ्यो वायुमग्निं च ससृजुर्जातमन्यवाः ॥४४॥

उन्मूलानथ वृक्षांस्तु कृत्वा वायुरणोपयत् ।

तानग्निरददद्घोर एवमासी दद्रुमक्षयः ॥४५॥

क्रमक्षयमथो बुद्ध्वा किञ्चिच्छिष्टं पुंशःपिपु ।  
 उपगम्यान्नवीदेतास्तदा सोमः प्रजापतीन् ॥३६॥  
 कोऽयं यच्छत राजानः सर्वे प्राचीनवर्हिषः ।  
 वृक्षशून्या कृता पृथ्वी शाम्येतामग्निमारुतो ॥३७॥  
 रत्नभूता च कन्येय वृक्षाणां वरवर्णिनी ।  
 भविष्य जानता सान धृता गर्भेण वे मया ॥३८॥  
 मारिषा नाम नाम्नेषा वृक्षाणामिति निर्मिता ।  
 मार्या घोऽस्तु महाभागाः सोमवशविवर्द्धिनी ॥३९॥

वायु यज्ञ नदी कर सका था और आकाश द्रुमों से समावृत  
 हो गया था । दश हजार वर्ष तक प्रजा कुछ भी चेटा न कर सकी थी  
 ॥३६॥ यह श्रवण करके भय से मुक्त सब प्रचेतस बहुत क्रोधित होगये  
 ये और मुखो से उन्होंने वायु की ओर अग्नि की सृष्टि की थी ॥३७॥  
 वायु ने सम्स्त वृक्षों को उखाड़ कर सुखा दिया था और धार अग्नि  
 ने उनकी दाह कर दिया था । इस प्रकार से द्रुमों का क्षय हो गया  
 था ॥३८॥ इसके इस क्रम से क्षय का ज्ञान प्राप्त करके जबकि कुछ  
 थोड़े से ही शाखी अर्थात् वृक्ष शेष रह गये थे उस समय में सोम ने  
 वहाँ उपस्थित होकर इन प्रजापतिों से कहा था—आप सभी प्राचीन  
 वहीँ राजा लोगो ! क्रोध को शान्त करो । इस पृथिवी को वृक्षों से  
 शून्य कर दिया है अब अग्नि और वायु का समन करो ॥३९-४०॥  
 यह वर वर्णिनी वृक्षों की रत्न भूय कन्या है । हे तात ! भविष्य का  
 ज्ञान रखने वाले मैंने गर्भ के द्वारा इसकी धारण किया था ॥४१॥  
 नाम से यह मारिषा है और यह वृक्षों की है—इनीलिये निमित्त की  
 थी । यह महान् भाग वाली सोमवंश का विवर्धन करने वाली आपकी  
 भार्या होगी ॥४२॥

युष्माकं तेजसोऽद्वेन मम चाद्वेन तेजसः ।  
 अस्यामुत्पत्स्यते विद्वान् दक्षो नाम प्रजापतिः ॥४३॥  
 स इमा दग्धभूयिष्ठा युष्मत्तजोमयेन य ।  
 सन्निनाग्निममो भूयः प्रजाः सवर्दयिष्यति ॥४४॥

ततः सोमस्य वचनाज्जगृह्णस्ते प्रचेतसः ।  
 संहृत्य कोपं वृक्षेभ्यः पत्नीं घर्म्मण मारिषाम् ॥४५॥  
 दशभ्यस्त प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतिः ।  
 दक्षो जज्ञे महातेजाः सोमस्यांशेन भो द्विजाः ॥४६॥  
 अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदः ।  
 स सृष्ट्वा मनसा दक्षः पश्चादसृजत स्त्रियः ॥४७॥  
 ददौ दश स घर्म्मण्य कश्यपाय त्रयोदश ।  
 शिष्टाः सोमाय राज्ञे च नक्षत्राद्या ददौ प्रभुः ॥४८॥  
 तासु देवाः खगा गावो नागा दितिजदानवाः ।  
 गन्धर्वाप्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः ॥४९॥  
 ततः प्रभृति विप्रेन्द्राः प्रजा मंथुनसंभवाः ।  
 सङ्कल्पादर्शनात्स्पर्शत्पूर्व्वेषा प्रोच्यते प्रजाः ॥५०॥

आपके आधे तेज से और मेरे आधे तेज से इसमें दक्ष नाम धारी एक प्रजापति की उत्पत्ति होगी ॥४३॥ वह प्रायः दग्ध हुई इसको आपके तेजोमय अग्नि से अग्नि के ही समान पुनः प्रजाओं का सम्बर्धन करेगा ॥४४॥ इसके अनन्तर सोम के वचन से उन्होंने प्रचेताओं ने इसको स्वीकार कर लिया था । कोप को हटाकर जो कि वृक्षों पर था मारिषा पत्नी को घर्म विधि के साथ ग्रहण किया था ॥४५॥ उन दश प्रचेताओं से उस मारिषा में वह महान् तेजस्वी है द्विजगण ! सोम के अंश से प्रजापति दक्ष ने जन्म ग्रहण किया था ॥४६॥ उस दक्ष ने चर और अचर, ह्रियद और चतुष्पद इन सबका सृजन करके फिर पीछे मन से उभने स्त्रियों की सृष्टि की थी ॥४७॥ उन सृजन की हुई कन्याओं में से दश तो उस प्रभु ने घर्म को समर्पित की थी—तेरह कश्यप ऋषि को प्रदान की और नक्षत्र नाम वाली कन्याओं को सोम के लिये प्रदान किया था ॥४८॥ उन्हीं कन्याओं के गर्भों से समस्त देवता-खग-गीर्ण-नाग-दैत्य-दानव-गन्धर्व-अप्सरार्य और अन्य सब जातियाँ उत्पन्न हुए थे ॥४९॥ हे विप्रेन्द्रो ! तभी से आरम्भ करके ये सगुण प्रजा मंथुन के द्वारा जन्म ग्रहण करने वाली हुई थी । इससे पूर्वकाल में तो केवल

मानसिक संकल्प से--दर्शन मात्र से--स्पर्श कर लेने भर से ब्रह्मा पूर्वजों की हुई थी और वह सब अयोनिज थी ॥५०॥

देवानां दानवानाञ्च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।

सम्भवस्तु श्रुतोऽस्माभिर्दक्षस्य च महात्मनः ॥५१॥

अङ्गुष्ठाद्ब्रह्मणो जज्ञे दक्षः किल शुभव्रतः ।

वामाङ्गुष्ठात्तथा चैवं तस्य पत्नी व्यजायत ॥५२॥

कथं प्राचेतसत्वं स पुनर्लभे महातपाः ।

एतं च सशयं सूनं व्याख्यातुं त्वमिहार्हसि ।

दोहितश्चैव सोमस्य कथं इवशुरतां गतः ॥५३॥

उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यं भतेषु भोद्विजाः ।

ऋशयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्यावन्तश्च ये जनाः ॥५४॥

युगे युगे भवन्त्येते पुनर्दक्षादयो नृपाः ।

पुनश्चैव निरुध्यन्ते विद्वांस्तत्र न मुह्यति ॥५५॥

ज्यैष्ठ्यं कानिष्ठ्यमप्येषां पूर्व्वेनासीद्द्विजोत्तमाः ।

तप एव गरीयोऽभूत्प्रभावश्चैव कारणम् ॥५६॥

इमा विसृष्टिं दक्षस्य यो विद्यात् सचराचराम् ।

प्रजावानायुरुत्तीर्णं स्वर्गलोके महोयते ॥५७॥

शौनकादि मुनियो ने कहा—हे सूतजी ! देवों का-दानवों का-गन्धर्व-उरग और राक्षसों का जन्म जिस प्रकार से और जिनसे हुआ—यह तो हमने श्रवण कर लिया और महात्मा दक्ष की उत्पत्ति भी सुन ली है कि यह दक्ष प्रजापति जो परम शुभ धन वाला था ब्रह्माजी के अङ्गुष्ठ से समुत्पन्न हुआ था और प्रजापति दक्ष की पत्नी उग्री के बाँये अङ्गुष्ठ से समुत्पन्न हुई थी ॥५१-५२॥ किन्तु यही रर यह सन्देह होता है कि वह महा तपस्वी प्राचेत सत्त्व को पुनः कैसे प्राप्त हो गया था । हे सूतजी ! हमारे हृदय में यह बड़ा संशय हो रहा है । अब आप हमका स्पष्टीकरण करते हुए व्याख्या करने की कृपा कीजिए । यह महातुभाव तो सोम का धेवता था फिर यह वशुर कौन बन गया



था ? ॥५३॥ श्रीलोमहर्षणजी ने कहा—हे द्विजगणो ! प्राणियों में उत्पत्ति और निरोध निश्च ही हुआ करता है । जो महापुरुष विद्वान् है तथा जो ऋषिगण हैं वे इस विषय में मोह को प्राप्त नहीं होते हैं क्योंकि उनकी ज्ञान होता है और जो नहीं जानती है वह कभी मोह को प्राप्त नहीं करता है मोह तो अज्ञान से ही होता है ॥५४॥ युग-युग में ये दक्ष आदि नृप पुनः पुनः उत्पन्न हुआ करते हैं और फिर-फिर इनका निरोध भी हुआ करता है । जो विद्वान् हैं वे उस विषय में मोह को प्राप्त नहीं होते हैं ॥५५॥ हे द्विजोत्तमो ! पूर्व में इनकी ज्येष्ठता और कनिष्ठता नहीं थी केवल तब ही बड़ा होना या और उसका प्रभाव छोटे-बड़े होने का कारण था ॥५६॥ जो मनुष्य इस घर और अघर से युक्त दक्ष प्रजापति की विशेष सृष्टि का ज्ञान प्राप्त कर लेता है वह प्रजा वाला और आयु में उत्तम होकर अन्त में स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥५७॥

### ३—देवादानवोत्पत्ति वर्णन

देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।  
उत्पत्तिं विस्तरेणैव लोमहर्षण कीर्तय ॥१॥  
प्रजाः सृजति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा ।  
यथा ससर्ज भूतानि तथा शृणुत भो द्विजाः ॥२॥  
मानसान्येव भूतानि पूर्वमेवासृजत् प्रभुः ।  
ऋषीन् देवान्सगन्धर्वानिसुरान्यक्षराक्षसान् ॥३॥  
यदास्य मानसी विप्रा न व्यवद्वन्त वै प्रजाः ।  
सदा सञ्चिन्त्य घम्मतिमा प्रजहेतोः प्रजापतिः ॥४॥  
स मेथुनेन घम्मेण सिसृक्षुर्विविधा प्रजाः ।  
असिकनीमावहत् पत्नीं वीर्यस्य प्रजापतेः ॥५॥  
सुतां मुतपसा युक्तां महती लोकधारिणीम् ।  
अथ पुनसहस्राणि वैरण्यां पञ्च वीर्यवान् ॥६॥

असिक्न्या जनयामास दक्ष एव प्रजापतिः ।

तास्तु दृष्ट्वा महानागान्सविबद्धं पिपून् प्रजाः ॥७॥

मुनिगणों ने कहा—हे सोमहर्षंप्रजो ! अब आन कृपा करके देवों की—दानवों की और गन्धर्व, उरग तथा राक्षसों की उत्पत्ति का वर्णन विस्तार पूर्वक करिये ॥१॥ मगवान् सोमहर्षंप्रजो ने कहा—हे द्विज-गणो ! सबसे पूर्व मैं स्वप्नभू ने दक्ष प्रजापति को विशेष रूप से आज्ञा प्रदान की और वह ही प्रजा का सृजन करता है । उसने जिस प्रकार से भूतो का सृजन किया उसका मैं वर्णन करता हूँ आप लोग ध्यान करो ॥२॥ सबसे प्रथम तो भू ने मानसी सृष्टि की रचना की और समस्त भूतों को—सृष्टियों को—देवों को—गन्धर्वों को—असुरों को—रक्षों को और राक्षसों को बनाया अर्थात् इन सबका सृजन मन से ही किया ॥३॥ किन्तु अब उन्होंने देखा कि वह मानसी सृष्टि जो हुई उससे प्रजा में कोई वृद्धि न हुई उस समय में धर्मोत्तमा प्रजापति ने सोच-विचार करके प्रजा की वृद्धि के लिये उसने विविध प्रकार की प्रजा की सृष्टि की इच्छा रखते हुए मैयुन के द्वारा रचना करने की बात सोची और वीरण प्रजापति की अतिवनी नाम वाली पत्नी हुई ॥४-५॥ वह सुता सुन्दर रूप से सम्न्वित महती और लोको को धारण करने वाली थी । बल कीयें वाले प्रजापति दक्ष ने उस अनिवनी के गर्भ से जो वैदिनी यो, पाँच सहस्र पुत्रों की जन्म प्रदण कराया । देवपि भीनारदजी ने उन प्रजाओं का सवर्धन करने की इच्छा यति महाभागों की देखा ॥६-७॥

देवपिः प्रियसवादा नारदः प्राश्नवीदिदम् ।

नाशाय वचन तेषां शापार्थवात्मनस्तथा ॥८॥

य कश्यपः सुनवर परमेष्ठी व्यजो जनसु ।

दक्षस्य वै दुहितरि दक्षणापमयान्मुनिः ॥९॥

पूर्वं स हि समुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिनः ।

असिक्न्यामथ वैरण्या भूयो देवविषत्तमः ॥१०॥

त भूयो जनयामास पितेव मुनिबुद्धवन् ।

तेन दक्षस्य वै पुत्रा ह्यप्या इति विश्रुताः ॥११॥

निर्मम्य नाशिताः सर्वे विधिना च न संशयः ।

तस्योद्यतस्तदा दक्षो नाशायामिनविक्रमः ॥१२

ब्रह्मर्षीन् पुरतः कृत्वा याचितः परमेष्ठिना ।

ततोऽभिसन्धिश्चक्रे वै दक्षस्य परमेष्ठिना ॥१३

कन्यायां नारदो मह्यं तव पुत्रो भवेदिति ।

ततो दक्षः सुतां प्रादात् प्रियां वै परमेष्ठिने ।

स तस्यां नारदो जज्ञे भूयः शापमयादृषिः ॥१४

परम प्रिय मन्त्राद वाले देवर्षि नारदजी ने उनको देखकर यह वचन कहा । उनका यह वचन नाश के लिये तथा अपने आपके शाप के लिये था ॥१२॥ दक्ष की दुहिता में दक्ष के शाप के भय से परमेश्वी कश्यप मुनि ने जिस पुत्र को समुत्पन्न किया था ॥१३॥ वह पूर्व में परमेश्वी के नारद समुत्पन्न हुआ । फिर वैरिणी यसिकनी में परम श्रेष्ठ देवर्षि हुआ ॥१४॥ पिता के ही समान पुनः उस मुनियो में श्रेष्ठ को जन्म ग्रहण कराया गया । इसी कारण दक्ष के पुत्र 'हयैश्वर'—इस नाम से प्रसिद्ध हुए ॥१५॥ त्रिधाता ने निर्णयन करके सबका नाश कर दिया था—इसमें कुछ भी शंका नहीं है । उस समय अपरिमित बल विक्रम शाली दक्ष उसके विनाश करने के लिए उद्यत होगया ॥१६॥ ब्रह्मर्षियों को आगे करके परमेश्वी के द्वारा याचना की गयी । इसके अनन्तर, परमेश्वी ने दक्ष की अभिसन्धि की थी ॥१७॥ मेरे लिये नारद कन्या में तेरा पुत्र होवेगा, यह अभिसन्धि थी । इसके अनन्तर दक्ष ने प्रिय कन्या को परमेश्वी के लिए अर्पित कर दिया । उस ऋषि ने पुनः शाप के भय से उसमें नारद होकर जन्म लिया था ॥१८॥

कथं प्रणाशिताः पुत्रा नारदेन महर्षिणा ।

प्रजापतेः सूतवय्यं श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥१५

दक्षस्य पुत्रा हय्यैश्वा विवर्द्धयिषवः प्रजाः ।

समागता महावीर्या नारदस्तानुवाच ह ॥१६

वालिशा वत यूयं वै नास्या जानीत वै भुवः ।

प्रमाण सष्टकामा वै प्रजाः प्राचेतसारमजाः ॥१७

अन्तरुद्ध्वंमघश्च कथं सृजथ वै प्रजाः ।

ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्व्वतो दिशः ॥१८

अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ।

ह्र्यंश्वेष्वथ नष्टेषु दक्षः प्राचेतसः पुनः ॥१९

वैरण्यामय पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः ।

विवर्द्धयिष्यस्ते तु शबलाश्चास्तथा प्रजाः ॥२०

पूर्व्वोक्तं वचनं ते तु नारदेन प्रचोदिताः ।

अन्योन्यमूचुस्ते सर्व्वे सम्यगाह महानृपिः ॥२१

शौनकादि मुनियों ने कहा—हे सूतजी ! महर्षि नारदजी ने प्रजापति के पुत्रों का क्यों नाश किया था ? हम लोग इसका कारण तात्त्विक रूप से श्रवण करना चाहते हैं । आप कृपया इसका वर्णन कीजिए ॥१५॥ श्री सोमहर्षण जी ने कहा—प्रजापति दक्ष के छोटे पुत्र ह्र्यंश्व नाम वाले थे वे सब प्रजा की वृद्धि करने की इच्छा वाले थे और महान् धीर्य वाले समागत हुए थे । उनसे श्री नारदजी ने कहा था : श्री नारदजी बोले—बड़े खेद की बात है कि तुम सब बड़े मूर्ख हो और इस भूमि के विषय में कुछ भी नहीं जानते हो कि इसका क्या प्रमाण है और प्राचेतसात्मज प्रजा का सृजन करने की इच्छा वाले होगये हो ॥१६-१७॥ अन्दर ऊपर-नीचे कैसे प्रजा का सृजन करें । वे उनके वचन का श्रवण करके सभी दिशाओं की ओर प्रयाण कर गये थे ॥१८॥ समुद्र की प्राप्ति करके जैसे फिर नदियाँ वापिस नहीं होती हैं वे आज तक निवृत्त नहीं हो रहे हैं । इन सगृह हर्षश्रवों के नष्ट हो जाने पर प्राचेतस प्रभु दक्ष प्रजापति ने वैरिणी में एक सहस्र पुत्रों को उत्पन्न किया था तथा वे सब सबनाशक प्रजाओं के वर्धन करने की इच्छा वाले थे ॥१९-२०॥ देवर्षि नारदजी के द्वारा प्रेरित हुए उन्होंने परस्पर में पूर्वोक्त वचन कहा था कि महान् ऋषि ने ठीक ही कहा है ॥२१॥

भ्रातृणा पदधी ज्ञातुं गन्तव्यं नाश सशय ।

ज्ञात्वा प्रमाणं पृथग्यज्ञं मूढन सदया महै प्रजाः ॥२२

तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सर्व्वतो दिशम् ।  
 अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ॥२३॥  
 तदा प्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेपणे द्विजाः ।  
 प्रयातो नश्यति क्षिप्रं तन्न कार्य्यं विपश्चिता ॥२४॥  
 तांश्चैव नष्टान् विज्ञाय पुत्रान् दक्षा प्रजापतिः ।  
 पष्टि ततोऽसृजत् कन्या वरण्यामिति नः श्रुतम् ॥ ५  
 तास्तदा प्रतिजग्राह भार्य्यार्थिं कश्यपः प्रभुः ।  
 सोमो घर्ममंश्च भो विप्रास्तथैवान्ये महर्षयः ॥२६॥  
 ददौ स दश घर्मयि कश्यपाय त्रयोदश ।  
 सप्तविंशतिः सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥२७॥  
 द्वेचैव बहुपुत्राय द्वेचैवाङ्गिरसे तथा ।  
 द्वेकृशाशवाय विदुषे तासां नामानि मे शृणु ॥२८॥

अपने माइयो के मार्ग का ज्ञान प्राप्त करने के लिये जाना चाहिए—  
 इसमें कुछ भी सशय नहीं है । पृथ्वी के सूक्ष्म प्रमाण का ज्ञान प्राप्त  
 करके प्रजा का सृजन करेंगे ॥२२॥ वे सब भी उसी मार्ग से सभी  
 दिशाओं में चले गये थे और आज तक भी सागर में गई हुई सरिताओं  
 के समान आज तक भी वापिस नहीं लौट रहे हैं ॥२३॥ हे द्विजगणों !  
 तब से लेकर माई माई के अन्वेपण में गया और शीघ्र नष्ट हो जाता है  
 अतः वह कार्य विद्वान् पुरुष को नहीं करना चाहिए ॥२४॥ प्रजापति  
 दक्ष ने उन पुत्रों को विनष्ट हुए जान कर फिर उस बैरिणी के गर्म से  
 साठ कन्याओं को जन्म ग्रहण कराया था—ऐसा हमने सुना है ॥२५॥  
 उस समय में प्रभु कश्यप ने उन सबको अपनी भार्या बनाने के लिये  
 ग्रहण किया था । हे विप्रों ! सोम ने, घर्म ने तथा अन्य महर्षियों ने  
 ग्रहण की थीं ॥२६॥ उन कन्याओं में से दश तो घर्म को दी थी और  
 तेरह कश्यप ऋषि को समर्पित की थी—उत्तार्द्धि सोम को दी और चार  
 अरिष्टनेमि को प्रदान की थी । दो बहुपुत्र के लिये तथा दो अंगिरा  
 ऋषि को दी थी । दो कृशाश्व को दी थी जो परम विद्वान् थे । अब  
 उन सबके नामों का श्रवण करिए ॥२७-२८॥

अरुन्धती वसुयामी लम्बा भानुमरुत्वती ।  
 सङ्कल्पा च मृहूर्त्ता च साध्या विश्वा च भो द्विजाः ॥२६॥  
 घम्मपत्न्यो दश स्वेतास्तास्वपत्यानि बोधत ।  
 विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यान् व्यजायत ॥२७॥  
 मरुत्वत्या मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवः सुताः ।  
 भानोस्तु भानवः पुत्रा मृहूर्त्तास्तु मृहूर्त्तजाः ॥२८॥  
 लम्बायाश्च व घोषोऽथ नागवीथी च यामिजा ।  
 पृथिवीविषय सध्वमरुन्धत्यां व्यजायत ॥२९॥  
 सङ्कल्पायास्तु विश्वात्मा अजो सङ्कल्प एव हि ।  
 नागवीथ्याश्च यामिन्या वृषलश्च व्यजायत ॥३०॥  
 परा याः सोमपत्नीश्च दशः प्राचेतमो ददौ ।  
 सर्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्योतिषे परिकीर्त्तिताः ॥३१॥  
 ये त्वन्ये द्यातिमन्तो वै देवा ज्योतिष्पुरोगमाः ।  
 वसवोऽष्टौ समाद्यातास्तेषा वक्ष्यामि विस्तरम् ॥३२॥

हे द्विजगणो ! अरुन्धती-वसु-यामी-लम्बा-भानु-मरुत्वती-सङ्कल्पा-  
 साध्या और विश्वा तथा मृहूर्त्ता—ये दश घर्म की पत्नियों के नाम थे ।  
 अब उनके गर्भों से जो सन्तति समुत्पन्न हुई उनका भी ज्ञान प्राप्त कर  
 लो । जो विश्वेदेवा हैं वे विश्वा घर्म की पत्नी के गर्भ से उत्पन्न हुए  
 थे । साध्या नाम वाली पत्नी ने साध्यों को जन्म दिया था ॥२६-३०॥  
 मरुत्वती के गर्भ से मरुत्वान् उत्पन्न हुए तथा वसु से वसुगण प्रसूत हुए  
 थे । भानु के भानुषण पुत्र हुए और मृहूर्त्ता ने मृहूर्त्तों को जन्म दिया  
 था ॥३१॥ लम्बा ने घोष को उत्पन्न किया और नागवीथी ने यामिर्षों  
 को जन्म दिया था । पृथिवी का विषय सब अरुन्धती में समुत्पन्न हुआ  
 था ॥३२॥ सङ्कल्पा के गर्भ से विश्वात्मा संकल्प ने जन्म ग्रहण  
 किया था । नागवीथी और यामिनी में वृषल समुत्पन्न हुआ था ॥३३॥  
 दूसरी जो सोम की पत्नियाँ थीं जिनको कि प्रजापति प्राचेतस दश ने  
 सोम की समर्पित किया था वे सब नक्षत्रों के नाम वाली थीं जोकि  
 ज्योतिष शास्त्र में वर्णित की गयी हैं ॥३४॥ जो परम द्याति वासे

ज्योतिष शास्त्र के पुरोगम हैं वे देव आठ वसुगण हैं और इसी नाम से प्रसिद्ध हैं । अब मैं उन सबका विस्तार पूर्वक वर्णन करता हूँ ॥३५॥

आपो ध्रुवश्च सोमश्च ध्रुवश्चवानिलोऽनलः ।

प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः ॥३६॥

आपस्य पुत्रो वंतण्डः श्रमः शान्तो मुनिस्तथा ।

ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालोलोकप्रकालनः ॥३७॥

सोमस्य भगवान् वचः वचस्वी येन जायते ।

ध्रुवस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा ॥३८॥

मनोहरायाः शिशिरः प्राणोऽय रमणस्तस्या ।

अनिलस्य शिवा भार्या तस्याः पुत्रो मनोजवः ।

अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य च ॥३९॥

अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तन्वेश्रिया वृतः ।

तस्य शाखो विशाखश्च नंगमेयश्च पृष्ठजः ॥४०॥

अपत्यं कृत्तिकानां तु कातिकेय इति स्मृतः ।

प्रत्यूषस्य विद्मः पुष्पमृषि नाम्नाय देवलम् ॥४१॥

द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ मनीषिणौ ।

वृहस्पतेस्तु भगिनी वरखी ब्रह्मवादिनी ॥४२॥

आप-ध्रुव-सोम-ध्रुव-अनिल-अनल-प्रत्यूष और प्रभास ये सब वसु नाम से कहे गये हैं ॥३६॥ आप का पुत्र वंतण्ड, श्रम, शान्त तथा मुनि ये । ध्रुव का पुत्र भगवान् काल हैं जो लोक का प्रकालन करने वाला है ॥३७॥ सोम का भगवान् वचः या जिससे वचस्वी उत्पन्न होता है । ध्रुव का आत्मज द्रविण तथा हुतहव्य रहा था ॥३८॥ मनोहरा का पुत्र शिशिर-प्राण तथा रमण ये । अनिल की भार्या शिवा थी । उसका पुत्र मनोजव हुआ था । और दूसरा अविज्ञातगति था । इस तरह से अनल के दो पुत्र हुए ये ॥३९॥ अग्निपुत्र कुमार शर को तन्वेश्री ने धरण किया । उसके शाख-विशाख और नंगमेय पृष्ठज हुए ये ॥४०॥ कृत्तिकार्यों की सन्तति कातिकेय-इस नाम से विभूत कहा गया है । प्रत्यूष

का पुत्र देवत ऋषि के नाम वाला था ॥४१॥ देवल के भी समावाप्त मनीषी हुए थे । बृहस्पति की मणिनी ब्रह्मवादिनी वररत्नी थी ॥४२॥

योगसिद्धा जगत् कृत्स्नममक्ता विचचार ह ।

प्रभासस्य तु सा भार्या वनूनामष्टमस्य तु ॥४३॥

विश्वकर्म्मो महाभागो यस्या जज्ञे प्रजापतिः ।

कर्त्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानाञ्च बाद्ध किः ॥४४॥

भूषणानाञ्च सर्वेषां कर्त्ता शिल्पवतां वरः ।

यः सर्वेषां विमानानि देवतानां चकार ह ॥४५॥

मानुषाश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महारमनः ।

सुरभी कश्यपाद् द्रुपदानेकादश विनिर्ममे ॥४६॥

महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती ।

अर्जकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्रश्च वीर्यवान् ॥४७॥

हरश्च बहुरुपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः ।

वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा ॥४८॥

मृगव्याघ्रश्च शश्वश्च कपाली च द्विजोत्तमाः ।

एकादशैते विख्याता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ॥४९॥

सम्पूर्ण जगत् में अमक्त योगसिद्धा विचरण किया करती थी । वसु-  
गण में जो आठवा वसु प्रभास था , उसकी वह भार्या थी ॥४३॥  
वसुगणों में जो अष्टम वसु प्रभास था उसकी वह भार्या थी जिसके गर्भ  
से महान् भागवाना विश्वकर्मा प्रजापति समुत्पन्न हुआ । वह विश्व-  
कर्मा सहस्रों प्रकार के शिल्पों की रचना वाले थे और देव गणों के  
बाद्ध कि अर्थात् भवनादि निर्माण कराने वाले थे ॥४४॥ विश्वकर्मा  
सहस्रों प्रकार के भूषणों के निर्माण करने वाले तथा शिल्प के जानाओं  
में परम श्रेष्ठ थे । जिसने सब देवों के लिये विमानों की रचना की थी  
॥४५॥ जिस महान् आत्मा के रखने वाले के शिल्प के द्वारा मनुष्य  
उपजीविन रहा करते हैं । सुरभी ने कश्यप ऋषि से एकादश रुद्रों की  
रचना की ॥४६॥ महादेवजी के प्रसाद से तप के द्वारा वह सती होगई  
थी । एकादश रुद्रों के नाम बताये जाते हैं—अर्जकपाद-अहिर्बुध्न्य-स्त्वष्टा



वीर्यवान् रुद्र-हृ-बहुरूप-अपराजित-वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी-रैवत  
मृगव्याघ शवं कपालो हे द्विजोत्तमो ! ये एकादश रुद्र त्रिमुवन के  
ईश्वर विख्यात हुए हैं ॥४७-४८॥

शतं त्वेवं समाख्यातं रुद्राणाममितीजसाम् ।

पुराणे मुनिशादूर्ध्वा यैर्व्याप्तं सचराचरम् ॥५०॥

दारान्शृणुष्वं विप्रेन्द्राः कश्यपस्य प्रजापतेः ।

अदितिदितिदनुश्चैव अरिष्टा सुरसा खसा ॥५१॥

सुरमिविनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इला ।

कद्रू मुनिश्च भो विप्रास्तास्वपत्यानि बोधत ॥५२॥

पूर्वमन्वतरे श्रेष्ठाद्वादशासन् सुरोत्तमाः ।

तुपिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वैवस्वतेऽनरे ॥५३॥

उपस्थितेऽतियशसश्चाक्षुपस्यान्तरे मनोः ।

हितायं सर्वलोकानां समागम्य परस्परम् ॥५४॥

आगच्छत द्रुतं देवा अदिति सम्प्रविश्य वं ।

मन्वन्तरे प्रसूयामस्तप्तःश्रेयो भविष्यति ॥५५॥

एवमुक्ता तु ते सर्वे चाक्षुपस्यान्तरे मनोः ।

मारीचात् कश्यपाज्जाजास्त्वदित्या दक्षकन्यया ॥५६॥

हे मुनिशादूर्ध्वो ! इन प्रकार से अमित ओज वाले रुद्रों के शान  
समाख्यात किये गये हैं अर्थात् बताया गये हैं । जिसकी पुण्य में चर्चा  
है और जिनके द्वारा यह समस्त चराचर व्याप्त हो रहा है ॥५०॥ हे  
विप्रेन्द्रो ! अब प्रजापति कश्यप की परिनियों के विषय में आज लोग  
श्रवण करिए । उनके नाम ये हैं—अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा,  
खसा, सुरमि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इला, कद्रू और मुनि ये इतनी  
कश्यप मुनि की दारएँ थी । हे विप्रो ! उन सब परिनियों में जो सन्तानें  
हुई थी उनको भी जान लो ॥५१-५२॥ पूर्व मन्वन्तर में परम श्रेष्ठ  
द्वादश मुनेश्वर थे । वैवस्वत मन्वन्तर में वे परस्पर में 'तुपिता'—इस  
नाम से कहा करते थे ॥५३॥ चाक्षुप मनु के अन्तर में जब वह उप-  
स्थित हुआ तो अति यशस रहे जाते थे । समस्त लोकों के हित सम्पा-

द्वन करने के लिये सब देवगण परस्पर में समागत होकर बहुत शीघ्र ही अदिति के समीप आगये थे और अदिति में प्रवेग कर गये थे और उन्होंने कहा था—हम मन्वन्तर में प्रसूत होंगे उससे हमारा ध्ये होगा ॥५४-५५॥ इस प्रकार से कहे गये वे सब चाक्षुष मनु के अन्नर में मारीच कश्यप के तीर्थ से दक्ष की कन्या अदिति के गर्भ से समुत्पन्न हुए थे ॥५६॥

तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव हि ।

अय्यमा चैव घाता च स्वष्टा पूषा तयैव च ॥५७

विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च ।

अंशो भगश्चातितजा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥५८

चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासस्ते तुपिताः सुराः ।

ववस्वनेऽन्तरे ते वा आदित्या द्वादश स्मृताः ।

सप्तविंशति ताः प्रोक्ताः सोमवत्स्यो महाव्रताः ।

सासामपत्यान्यभवन् द पान्यमिततेजसः ॥५९

अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह णोडश ।

वहपुसस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः ॥६०

चाक्षुषस्यान्तरे पूर्व ऋचो ब्रह्मपिसङ्गताः ।

कृशाद्वस्य च देवर्षेदवप्रहरणा स्मृताः ॥६१

एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि ।

सत्त्वं देवगणाश्चात्र त्र्यहसि शत कामजाः ॥६२

तेषामपि च भो विप्रा निरोधोत्पत्तिरुच्यते ।

यथा सूर्यस्य गगन उदयास्तमयाविह ॥६३

ससमे विष्णु-शक्र-पुनः समुत्पन्न हुए थे । अय्यमा-घाता-स्वष्टा-पूषा-विवस्वान् सविता-मित्र-वरुण-अंश-भग और अतितेजा ये द्वादश आदिश्य कहे गये हैं ॥५७- ८॥ ये चाक्षुष के अन्नर में पादिते तुपितासुर थे । ववस्वत मन्वन्तर में ये द्वादश आदिश्य कहे गये हैं । सोम की पत्नियों सत्ताईस महाव्रत वाली बनी गयी हैं । उनको सन्तान अमित तेज वाली परम दीप्ता हुई थी ॥५९॥ अरिष्टनेमि की पत्नियों की सन्तति

सोलह हुई थी । बहुपुत्र विद्वान् के चार विद्युत् कही गयी हैं ॥६०॥  
 वाक्षुषमनु के अन्तर में पूर्वञ्चबाएँ ब्रह्मणियों के द्वारा सत्कृत थी ।  
 देवपि कृणाश्व की देव प्रहरण नाम से कही गयी हैं ॥६१॥ ये सब  
 एक सहस्र युगों के अन्त में पुनः उत्पन्न हुआ करते हैं समस्त देवगण  
 कामज यहाँ पर तैनीस हैं ॥६२॥ हे विप्रो ! उनकी भी निरोधोत्पत्ति  
 कही जाती है । जिस तरह से गगन में सूर्यदेव का यहाँ पर उदय और  
 अस्त दोनों ही हुआ करते हैं ॥६३॥

एवं देवनिकायास्ते सम्भवन्ति युगे युगे ।

दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुताम् ॥६४॥

हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्यवान् ।

सिंहिकाचाभवत् कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः ॥६५॥

सैहिकेया इति द्याना तस्याः पुत्रा महाबलाः ।

हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितोजसः ॥६६॥

ह्लादश्च अनुह्लादश्च प्रह्लादश्चैव वीर्यवान् ।

सह्लादश्च चतुर्थोऽभूदघ्रादपुत्रो ह्लादस्तथा ॥६७॥

ह्लादस्य पुत्री द्वौ वीरौ शिवः कालस्तथैव च ।

विरोचनस्तु प्राह्लादिवलिजज्ञं विरोचनात् ॥६८॥

बलेः पुत्रगत त्वामीद्वाराण्येष्वं तपोधनाः ।

घृतराष्ट्रश्च सूर्यश्चन्द्रमाश्चन्द्रनापनः ॥६९॥

कुम्भनामो गर्द्दमाक्षः कुक्षिरित्येवमादयः ।

वाणस्तंषामनिबलो ज्येष्ठः पशुपतेः प्रियः ॥७०॥

इसी प्रकार से देवों के निकाय अर्थात् समुदाय युग-युग में उत्पन्न  
 हुआ करते हैं । दिति के गर्भ से कश्यप महर्षि के वीर्य से दो पुत्र हुए  
 थे—ऐसा ही हमने सुना है ॥६४॥ एक का नाम हिरण्यकशिपु या और  
 दूसरा महान् बल वीर्य वाला हिरण्याक्ष या । एक सिंहिका नाम वाली  
 कन्या थी जो विप्रचित्ति का परिग्रह थी ॥६५॥ उनके महान् बल वाले  
 पुत्र "सैहिकेय"—इन नाम से प्रसिद्ध हुए थे । हिरण्यकशिपु के प्रथित  
 ओज वाले चार पुत्र हुए थे ॥६६॥ ह्लाद-अनुह्लाद और वीर्यवान् प्रह्लाद

या वीया पृथ संहृदया ह्याद का पुत्र हृद हृमा या ॥६७॥ हृद  
के दो महान् बीर पुत्र मनुस्मृत हुए थे उनके नाम शिव और काल थे  
दो थे । प्राह्लादि विरोचन उत्पन्न हुआ और विरोचन से बलि ने जन्म  
ग्रहण किया था ॥६८॥ राजा बलि के एक सौ पुत्रों ने जन्म लिया था ।  
हे तपोधनो ! नन मव मे बाण मवसे बड़ा पुत्र था । अन्य पुत्रों के नाम  
भी धृतराष्ट्र-गूर्य-चन्द्रमा-चन्द्रनाभ-शुम्भनाभ-गर्दभाक्ष और कुक्षि  
इत्यादि थे । उन सब मे बाण अत्यन्त बलवान् और ज्येष्ठ था जो कि  
भगवान् पशुपति का अत्यन्त प्रिय भक्त था ॥६९-७०॥

पुरा कल्पे तु याणेन प्रसाद्योमापति प्रभुम् ।  
पाश्वंतो विहारिण्यामि हृत्त्येवं याचितो वरः ॥६९॥  
हिरण्याक्षमुनाश्वेवं विद्वामश्च महाबलाः ।  
उज्ज्वरः शक्रुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा ॥७२॥  
महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च ।  
अभवन् दनुपुत्राश्च शत तीव्रपराक्रमाः ॥७३॥  
तपस्विनो महावीर्याः प्राधान्येन श्रवीमि तान् ।  
द्विमूर्द्धा शङ्खुकर्णश्च तथा ह्यशिरा विभुः ॥७४॥  
अयोमुखः शम्बरश्च करिलो वामनस्तथा ।  
भारीचिमंघवाश्चैव इत्वलः रघुमस्तथा ॥७५॥  
विक्षोभणश्च धेतुश्च धेतुधीर्य्यंशनहृदो ।  
इन्द्रजित्सर्वजिच्चैव वज्रः ॥भस्तथैव च ॥७६॥  
एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः ।  
धंश्चानरः पुलोमा च विद्रावणमहाशिराः ॥७७॥  
स्वभानुर्वृषपथ्या च विप्रचित्तिश्च वीर्य्यवान् ।  
सर्व एते दनोः पुत्राः कथ्यपादभिर्जजिरे ॥७८॥

पहिले कल्प मे बाण ने उमापति प्रभु को प्रसन्न करने पार्श्व माग  
में विहार बर्णा-यष्ट वरदान माँगा था ॥७९॥ हिरण्याक्ष के पुत्र भी  
महान् बलवान् और परम विद्वान् थे । उज्ज्वर-शक्रुनि-भूत सन्तापन  
महानाभ विद्रावण और कालनाभ आदि इनके परम तीव्र पराक्रम वाले

एक ही पुत्र हुए थे । ये बड़े तपस्वी महान वीर्य वाले थे । उनमें जो विशेष प्रधान थे उनके नाम इस समय में मैं बतलाता हूँ । द्विमूर्धा-शंकु-कर्ण, हयशिरा, विष्णु, अयोमुख, शम्बर, करिल, वामन, मारीचि, मघवान् इत्थल, ससृम ये तथा विशोभण, केतु, केतुवीर्य, शतहृद, इन्द्रजित्, सर्वजित् वज्रनाभ, एकचक्र, महाबाहु महावत, तारक वैश्वानर, पुलोमा, विद्रावण महाशिरा, स्वर्मानु, वृषपर्वा, वीर्यवान् विप्रचित्ति ये सब दनु के ही पुत्र थे जो महर्षि कश्यपजी के वीर्य से दनु के गर्भ से समुत्पन्न हुए थे ॥७२-७८॥

विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवाः सुमहाबलाः ।

एतेषां पुत्रपौत्रन्तु न तच्छक्यं द्विजोत्तमाः ॥७९॥

प्रसंख्यातुं बहुत्वाच्च पुत्रपौत्रमनन्तकम् ।

स्वर्मानोस्तु प्रभा कन्या पुलोमस्तु शची सुता ॥८०॥

उपदानवी हयशिराः शर्मिष्ठा वार्यपर्वणी ।

पुलोमा कालिका चैव वैश्वानरसुते उभे ।

बह्वपत्ये महापत्ये मारीचेस्तु परिग्रहः ॥८१॥

तयोः पुत्रसहस्राणि पष्टिर्दानवनन्दनाः ।

चतुर्दशशतानन्यान् हिरण्यपुरवासिनः ।

मारीचिर्जनयामास महता तपसान्वितः ॥८२॥

पुलोमाः कालकेयाश्च दानवास्ते महाबलाः ।

अवध्या देवतानां हि हिरण्यपुरवासिनः ॥८३॥

पितामहप्रसादेन ये हताः सव्यसाचिना ।

ततोऽपरे महावीर्या दानवास्त्वतिदारुणाः ॥८४॥

विप्रचित्ति जिनमें परम प्रमुख था ऐसे थे सब दानव महान बलवान् थे । हे द्विजोत्तमो ! इनके पुत्रों और पौत्रों की संख्या तो इतनी अधिक थी कि उनकी संख्या नहीं की जा सकती है क्योंकि इतने ज्यादा थे तथा अनन्त थे कि गणना हो ही नहीं सकती है । स्वर्मानु की कन्या प्रभा नाम वाली थी और शची पुलोमा की पुत्री थी ॥७९-८०॥ उपदानवी हयशिरा, शर्मिष्ठा, वार्यपर्वणी और पुलोमा कालिका ये दोनों

धैरवानर की पुत्रियाँ थीं । बहुत सन्तति वाली और महान् सन्तान वाली मारीचि का परिग्रह था ॥८१॥ उस दोनों में महान् तपस्या से युक्त मारीचि ने साठ हजार दानव मन्दन, पुन और चौदह सौ अग्न्यं हिरण्यपुर वासी लोगों को जन्मग्रहण कराया था ॥८२॥ वे हिरण्यपुर के निवास करने वाले पीलोम कालकेय और महाम् बलवान् दानव जो देवों के द्वारा भी वध करने के योग्य नहीं थे उत्पन्न हुए थे ॥८३॥ पितामह के प्रसाद से ही ये ऐसे हुए थे किन्तु वे मध्यमाची के द्वारा हन हुए थे । इसके अनन्तर महान् वीर्यशाले अत्यन्त दारुण दूसरे दामव भा हुए थे ॥८४॥

सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेः सुतास्तथा ।

दैत्यदानवसयोगाज्जातास्तीव्रपराक्रमाः ॥८५॥

सैहिकेया इति ख्यातास्सयोदश महाबलाः ।

वशः शल्यश्च बलिनी नलश्चैव तथा बलः ॥८६॥

वातापिर्नमुचिश्चैव इत्वलः खसृमस्तथा ।

अश्लिकी नरकश्चैव कालनामस्मर्यैव च ॥८७॥

सरमाणस्तथा चैव स्वरकल्पश्च वीर्यवान् ॥८८॥

मुकश्चैव तुहण्डश्च हृदपुत्री बभ्रुवतुः ।

मारीचः सुन्दपुत्रश्च प्रस्तुताया व्यजायत ॥८९॥

एते च दानवाः श्रेष्ठा दनोर्वंशविवर्द्धनाः ।

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽप्य सहस्रशः ॥९०॥

सह्रादस्य तु दैत्यस्य निवातकयचाः कुले ।

समुत्पन्नाः सुमहता तपसा भावितात्मनः ॥९१॥

ये सब दानव विप्रचित्ति के सुत सिंहिका से उत्पन्न हुए थे और दैत्यों तथा दामवों के संयोग से ये सब बहुत ही तीव्र पराक्रम वाले हुए थे ॥८५॥ ये तेरह महान् बल वाले सैहिकेय इस नाम से विख्यात हुए थे । बलवान् वश और शल्य नल तथा बल-वातापि, नमुचि, इत्वल, खसृम-अश्लिक, नरक, कालनाम, सरमाण और वीर्यवान् स्वरकल्पयुक्त और तुहण्ड दोनों हृद के पुत्र थे । मारीच और सुन्दपुत्र प्रस्तुता में समुत्पन्न हुए थे

॥८६-८८॥ ये परम श्रेष्ठ और दनु के वंश का वर्धन करने वाले हुए थे । उनके पुत्र पौत्र सैकड़ों तथा सहस्रों ही हुए थे ॥८७॥ संह्लाद दैत्य के कुल में निवात कवच सुमहान् तप से भाविष्ठ आज्या वाले समुत्पन्न हुए थे ॥८९॥

तिस्त्रः कोटयः सुतास्त्रेपांमनिवत्यां निवासिनः॥

अवध्यास्तेऽपि देवानामर्जुनेन निपातिताः ।

पट्सुताः सुमहाभागास्ताम्रायाः परिकीर्तिताः ॥८२॥

क्रौञ्ची श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचिगृधिका ।

क्रौञ्ची तु जनयामास उलूकप्रत्यलूककान् ॥८३॥

श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासान्गृध्रांश्च गृध्र्यपि ।

शुचिरोदकान्पक्षिणान्सुग्रीवी तु द्विजोत्तमाः ॥८४॥

अश्वानुष्टान् गर्दभांश्च ताम्रावंशः प्रकीर्तितः ।

विननायास्तु द्वौ पुत्रौ विख्यातौ गरुडारुणौ ॥८५॥

गरुडः पतता श्रेष्ठो दारुणः स्वेन कर्मणा ।

सुरसायाः सहस्रान्तु सर्पाणाममितीजसाम् ॥८६॥

अनेकशिरसां विप्राः खचराणा महात्मनाम् ।

काद्रवेयास्तु बलिनः सहस्रममितीजसः ॥८७॥

सुपर्णवशगा नागा जज्ञिरे नैकमस्तकाः ।

येषां प्रधानाः सततं शेषवासुकितक्षकाः ॥८८॥

इसके तीन करोड़ पुत्र थे जो अनिवर्ती में निवास करने वाले थे । वे सभी देवों के द्वारा अवध्य थे तथा अर्जुन ने उनको मार गिराया था । छे पुत्र महान् भाग वाले ताम्रा के बताये गये हैं ॥८२॥ श्येनीने श्येनों को, भासी ने भासी को, गृध्र्यपि ने गृध्रों को, शुचि ने जल में रहने वालों को तथा द्विजोत्तमो । सुग्रीवी ने पक्षिणों को उत्पन्न किया था तथा अश्वों को- उष्ट्रों को और गर्दभों को जन्म दिया था । यह ताम्र वंश वर्णन किया गया है । विनना नाम वाली कश्यप मुनि की पत्नी के दो पुत्र हुए थे । एक का नाम गरुड था और दूसरा अरुण था ॥८३-८५॥ गरुड पक्षियों में परम श्रेष्ठ था तथा महान् दारुण अपने कर्म से

या । सुरसा नाम की भार्या से अपरिमित भोज वाले सर्पों के एक सहस्र पुत्र हुए थे ॥६६॥ हे विप्रगणो ! अनेक शिर वाले महात्मा खचरों के अमित भोज वाले एक सहस्र महान् बलवान् काश्रवेय हुए थे ॥६७॥ अनेक मस्तकों वाले सुपर्ण वक्षग नाग उत्पन्न हुए थे जिनमे निरम्बर शेष-वासुकि और तक्षक ये तीनों प्रमुख थे ॥६८॥

ऐरावती महापद्मः कम्बलाश्वतरावुभौ ।

एलापसश्च शङ्खश्च कर्कोटकघनञ्जयो ॥६९॥

महानीलमहाकर्णो घृतराष्ट्रबलाहको ।

कुहरः पुष्पदण्डश्च दुर्मुखः सुमुखस्तथा ॥१००॥

शङ्खश्च शङ्खपालश्च कपिलो वामनस्तथा ।

नहुषः शङ्खरोमाच मनिरित्येवमादयः ॥१०१॥

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽप्य सहस्रशः ।

चतुर्दशसहस्राणि क्रूराणामनिलाशिनाम् ॥१०२॥

गणं क्रोधवशं विप्रास्तस्य सर्व्वे च दंष्ट्रिणः ।

स्थलजाः पक्षिणोऽजाश्च घरायाः प्रसवाः स्मृताः ॥१०३॥

गास्तु च जनयामास सुरभिमहिषीस्तथा ।

इरा वृक्षलता बलीस्तुनजातीश्च सर्व्वशः ॥१०४॥

खसा तु यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा ।

अरिष्टा तु महासिद्धा गन्धर्वानिमिषीजसः ॥१०५॥

ऐरावत-महापद्म-दोनों कम्बल और अश्वतर-एलापव-शङ्ख-कर्कोटक घनञ्जय-महानील-महाकर्ण-घृतराष्ट्र-बलाहक-कुहर-पुष्पदण्ड-दुर्मुख सुमुख शङ्ख-शङ्खपाल-कपिल-वामन-नहुष-शङ्ख रोमा और मनि इत्यादि उनके पुत्र तथा पौत्र संकलों एवं सहस्रों ही थे । इन अनिस ( वायु ) के अशान करने वालों के जो बहुत ही क्रूर हैं जोदह सहस्र भेद प्रभेद हैं ॥६६-१०२॥ हे विप्रो ! उसका गण क्रोध के वशीभूत था और उसके समस्त दंष्ट्रा वाले हुए हैं । स्थल में उत्पन्न पक्षी और अज ये सब घरा की सग्वति कही गयी हैं ॥१०३॥ गायों की सुरभि महिवियों का जन्म दिया था । इरा वृक्ष लता, बली और सब तनु जातीयों को उत्पन्न



किया था ॥१०४॥ उसी नाम वाली कश्यपजी की पत्नी ने यक्षों और राक्षसों को जन्म ग्रहण कराया था तथा मुनि ने अप्सरार्यों को समुत्पन्न किया था । अरिष्टा महासिद्धा थी । उसने अमिष भोज वाले गन्धर्वों को उत्पन्न किया था ॥१०५॥

एते कश्यपदायादाः कीर्त्तिताः स्थाणुजङ्गमाः ।  
 येषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥१०६॥  
 एष मन्वन्तरे विप्राः सर्गः स्वारोचिषे स्मृतः ।  
 वैवश्वतेऽतिमहति वारुणे वितते कृतौ ॥१०७॥  
 जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासग इहोच्यते ।  
 पूर्वं यत्र समुत्पन्नान्ब्रह्मर्षीन्सप्त मानसान् ॥१०८॥  
 पुत्रत्वे कल्पयामास स्वयमेव पितामहः ।  
 ततो विरोधे देवानां दानवानां च भी द्विजाः ॥१०९॥  
 दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम् ।  
 कश्यपस्तु प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तया ॥११०॥  
 वरेण छन्दयामास सा च वक्रं वरं तदा ।  
 पुत्रमिन्द्रवधार्थाय समर्थममितीजसम् ॥१११॥  
 स च तस्मै वरं प्रादात् प्राथितः सुमहातपाः ।  
 दत्त्वा च वरमत्युग्रो मारीचः समभाषत ॥११२॥  
 इन्द्रं पृक्षो निहन्ता ते गर्भं वै शरदां शतम् ।  
 यदि धारयसे शौचतत्परा व्रतमास्थिता ॥११३॥  
 तथेत्यभिहितो भर्त्ता तया देव्या महातपाः ।  
 धारयामास गर्भं तु शुचिः सा मुनिसत्तमाः ॥११४॥

ये सब कश्यप मुनि के दायाद थे जो भी स्थाणु और जगम बतलाये गये हैं । बिनके पुत्र और पौत्र सैकड़ों तथा सहस्रों की संख्या वाले हुए हैं ॥१०६॥ हे विप्रो ! यह सर्ग अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति स्वारोचिष मन्वन्तर में बताई गयी है । अति महान् वैवस्वत मन्वन्तर में वारुण कतु के वितत होने पर आहुतिर्गा देने वाले ब्रह्माजी का जो प्रजा का सृजन हुआ था वह धव यहाँ पर बतलाया जाता है ॥१०७॥ जहाँ

पर पूर्व में सात मानस ब्रह्मणियों के उत्पन्न होने पर स्वयं ही पितामह ने उनको अपना पुत्र मान लिया था । इसके पश्चात् हे द्विजगणो ! देवी और दानवी का विरोध उत्पन्न होगया था ॥१०८-१०९॥ जिसके पुत्र युद्ध में नष्ट हो गये थे ऐसी उस दिति ने कश्यप जी को सन्तुष्ट अर्थात् प्रसन्न किया था । उन प्रसन्न आत्मा वाले कश्यप जी की उस दिति ने भली भाँति आराधना की थी ॥११०॥ जब कश्यपजी ने उसे वरदान माँगने की आज्ञा दी तो उन समय में उसने कश्यप जी के यही वरदान माँगा था कि मुझे इन्द्र के वध करने के लिये शक्ति शाली एवं अपरिमित ओज वाला पुत्र प्रदान कीजिए ॥१११॥ वह महान् तपस्वी कश्यप महर्षि से जब ऐसी प्रार्थना की तो उन्होंने उसको वही वरदान दे दिया था । अत्यन्त उग्र मारीच ने वरदान देकर उससे यह कहा था ॥११२॥ इन्द्र के मारने वाला पुत्र तो होगा किन्तु उसको यदि तू भी वर्ष तक गर्भ में परम शीघ्र व्रत में परायण होकर धारण कर लेगी । तो वर्ष पर्यन्त पूरा व्रत रक्षना होगा ॥११३॥ हे मुनियेष्टो ! उस देवी दिति ने ऐसा ही करूंगी—यह कहकर अपने स्वामी कश्यप जी को सन्तुष्ट कर दिया था । फिर महा तपस्वी से उस देवी ने परम शुचि होकर गर्भधारण कर लिया था ॥११४॥

ततोऽभ्युपागमद्वित्यां गर्भमाधाय कश्यपः ।

रोधयन् वं गणं श्रेष्ठं देवनाममिसौजसम् ॥११५॥

तेजः सहस्रं दुर्धर्षमवध्यममरैरपि ।

जगाम पथ्यं तार्यैव तपसे संशितव्रता ॥११६॥

तस्याश्चैवाग्निरप्रेप्सुरमवत् पाकशासनः ।

जाते वर्षं शते चास्या ददर्शान्तरमच्युतः ॥११७॥

अकृत्वा पादयोः शीघ्रं दितिः दायनमाविशत् ।

निद्रां चाहारयामास तस्यां कुक्षिं प्रविश्य सा ॥११८॥

घञ्जपाणिस्ततो गर्भं सप्तधा तं भ्यकृन्तयत् ।

यः पातयामासो गर्भोऽसौ मन्त्रेण मन्त्रेण च ॥११९॥

इसके अनन्तर कश्यप मुनि आप स्वयं दिति मे गर्भ धारण कराकर वहां से चले गये थे और देवों का जो परम धृष्ट गण था जिसका आज शमित या उसका रोधन करने वाला तथा देवों के द्वारा भी अवध्य अपना दुर्घपं तेज उसमे डालकर वे चले गये थे । फिर प्रतघारिणी दिति भी तप के लिये पर्वत पर चली गयी थी ॥११५-११६॥ इन्द्र उस दिति के उदर मे गमन करने की इच्छा वाला हो गया था । एक सौवां वर्ष जब व्रत का चल रहा था उस समय मे इन्द्र ने उस तपोव्रत में अन्तर देखा था कि अपने देवों को न छोकर ही किता शीघ्र किये दिति अपनी शय्या पर शयन करने को चली गयी थी और निद्रा सेने लग गयी थी । उसी व्रत के विरुद्ध होने के समय में इन्द्र देव ने उस दिति की कुक्षि मे प्रवेश किया था ॥११७-११८॥ वज्रपाणि इन्द्र ने दिति के गर्भ को वज्र से काटकर सात टुकड़े कर दिये थे । वज्र के द्वारा जब गर्भ के टुकड़े किये गये थे उस समय मे बहू गर्भ रुदन करने लगा था ॥११९॥

मा रोदोदिति त शक्रः पुनःपुनरथाव्रवीत् ।

सोऽभवत् सप्तधा गर्भस्तमिन्द्रो रुपितः पुनः ॥१२०॥

एकैकं सप्तधा चक्रे वज्रेण वारिकर्णणः ।

मरुतो नाम ते देवा वभूवु द्विजसत्तमाः ॥१२१॥

यथोक्तं वै भवता तथैव मरुतोऽभवन् ।

देवाश्च कोनपञ्चाशत्सहाया वज्रपाणिनः ॥१२२॥

तेषामेव प्रवृत्ताना भूताना द्विजसत्तमाः ।

रोचयन् वै गणश्रेष्ठान् देवानाममितीजसाम् ॥१२३॥

निकायेषु निकायेषु हरिः प्रादात् प्रजापतीन् ।

क्रमशस्तानि राज्यानि पृथुपूर्वाणि भो द्विजाः ॥१२४॥

स हरिः पुरुषो वीरः कृष्णो जिष्णुः प्रजापतिः ।

पर्जन्यस्तपतोऽनन्तस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥१२५॥

भूतसर्गमिमं सम्यग्जानतो द्विजसत्तमाः ।

नावृत्तिमयमस्तीह परलोभयं कुतः ॥१२६॥

उस समय में इन्द्र ने बारम्बार उस गर्मस्थ बालक से कहा था—  
 'तू रुदन मत करे' । वह गर्म सात टुकड़ों में जब होगया था तो इन्द्र  
 ने फिर उसके एक-एक टुकड़े के भी सात-सात खण्ड कर दिये थे क्योंकि  
 इन्द्रदेव सो यन्त्र के कर्षण करने के लिये ही उदर में प्रविष्ट हुए थे ।  
 हे द्विजश्रेष्ठो ! वे सब मरुद्गण नाम वाले देव हुए थे ॥१२०-१२१॥  
 मघवान् ने जैसा भी कहा था वैसे ही मरुत हुए थे । ये उनचास देवगण  
 इन्द्र के सहायक ही हुए थे ॥१२२॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! अपरिमित भोज  
 वाले देवों के जो समस्त भूतों में प्रवृत्त हैं उन्हीं गण श्रेष्ठों को वे देव  
 रोचित किया करते हैं । इन्द्रदेव ने प्रजापतियों को उनके निकाशों में  
 उनको दे दिया था । हे द्विजो ! उनको कम से पृथु पूर्व राज्य प्रदान  
 कर दिये थे । वह हरि वीर पुरुष है तथा कृष्ण जपन शील और प्रजाओं  
 का स्वामी है । वही पार्जन्य है—तपन है—और अनन्त है तथा उसी का  
 यह सम्पूर्ण अंग है ॥१२३-१२४॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! इन प्रकार से इन  
 भूतों के सृजन को जो जानता है और मली प्रकार से ज्ञान रखता है  
 उसको पुनर्जन्म ग्रहण करने का मय तो होता ही नहीं है फिर परलोक  
 का मय भी कैसे होसकता है ॥१२६॥

### ४—सूर्यवंश वर्णन (१)

मनोर्व्वस्वतस्यासन् पुत्रा वै नव तत्समाः ।  
 इक्ष्वाकुश्चैव नामागो धृष्टः शर्यासिरेव च ॥१॥  
 नरिष्यन्तश्च पटो धर्मा प्राणू रिष्टश्च सप्तमः ।  
 कल्पश्च पूषधश्च नवमे मुनिसत्तमाः ॥२॥  
 अकरोत् पुत्रकामस्तु मनुरिष्टि प्रजापतिः ।  
 मित्रावरुणयोर्विप्राः पूषधमेव महामतिः ॥३॥  
 अनुस्पन्नेषु बहुषु पुत्रेष्वेतेषु भो द्विजाः ।  
 तस्यां च वर्त्तमानायामिष्टया च द्विजसत्तमाः ॥४॥

मित्रावरुणयोरंशे मनुराहुतिमावहत् ।  
 तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्यामरणभूषिता ॥५॥  
 दिव्यसहनना चैव इला जज्ञ इति श्रुतिः ।  
 त मिलेत्येव होवाच मनुर्दण्ड धरस्तदा ॥६॥  
 अनुगच्छस्व मां भद्रे तमिला प्रत्युवाच ह ।  
 धर्मयुक्तमिदं वाक्यं पुत्रकामं प्रजापतिम् ॥७॥

श्री लोमहर्षण जी ने कहा—वैवस्वत मनु के उन्हीं के समान परम  
 श्रेष्ठ नी पुत्र समुत्पन्न हुए थे । उनके नाम ये हैं—इक्ष्वाकु-नाभाग-  
 धुष्ट-शर्याति-नरिष्यन्त और छट्वा प्रांशु-सातवा रिष्ट-करुण-पृषज्ज ये नी  
 पुत्र थे ॥१-२॥ पुत्र की कामना वाले प्रजापति मनु ने पुत्रेष्टि यज्ञ  
 किया था हे विप्रो ! उस महती मति वाले मनु ने पहिले ही मित्रावरुणों  
 की इष्टि की थी जब तक इसके बहुत से पुत्र समुत्पन्न नहीं हुए थे । हे द्विज-  
 श्रेष्ठो ! उस वर्तमान इष्टि में अर्थात् यज्ञ में मनु ने मित्रावरुणों के अंश  
 में आहुतियाँ दी थीं । उसमें परम दिव्य वस्त्रों के धारण करने वाली  
 तथा दिव्य आभरणों से विभूषित और दिव्य सहनन वाली इला समु-  
 त्पन्न हुई थी—ऐसी श्रुति है । उस अवस्था में दण्डधारी मनु ने उस इला  
 से यह कहा था ॥३-६॥ हे भद्रे ! मेरे पीछे आगमन करो । उस समय  
 मैं उस मनु से इला ने जोकि धर्म से युक्त और पुत्र की कामना करने  
 वाला प्रजापति था, यह कहा था ॥७॥

मित्रावरुणयोरंशे जातास्मि वदनांबर ।  
 तयोः सकाशं यास्यामि न मां धर्महतां कुरु ॥८॥  
 सेवमुक्त्वा मनुं देवं मित्रावरुणयोरिला ।  
 गत्वान्तिकं वरारोहा प्राञ्जलिवक्त्रियमब्रवीत् ॥९॥  
 अंशेऽस्मि युवयोरजाता देवी किं करवाणि वाम् ।  
 मनुना चाहमुक्ता वा अनुगच्छस्व मामिति ॥१०॥  
 तौ तथावादिनीं साध्वीमिलां धर्मपरायणाम् ।  
 मित्रश्च वरुणश्चोभावूचतुस्तां द्विजोत्तमाः ॥११॥

अनेन तव धर्म्मण प्रश्रयेण दमेन च ।

सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतौ स्वो वरवणिनि ॥१२

आवयोस्त्वं महाभागे ख्यातिं कन्येति यास्यसि ।

मनोर्व्वंशकरः पुत्रस्त्वमेव च भविष्यसि ॥१३

सुद्युम्न इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु शोभने ।

जगत्प्रियो धर्म्मशीलो मनोर्व्वंशविवर्द्धनः ॥१४

इला ने कहा—हे बोलने वालो मैं परम अच्छे ! मित्रावरुणो !  
अंश मे मैं समुत्पन्न हुई हूँ । मैं उन्ही के समीप मे आऊंगी । मुझको  
धर्म से हस्त मत करो ॥१२॥ यह मित्रावरुण की इला देव मनु स इस  
प्रकार से कहकर फिर वह वरारोहा उनके समीप मे जाकर दोनों हाथ  
जोड़कर यह कहने लगी थी ॥१३॥ इला ने कहा—हे देवो ! मैं तो आप  
दोनों के ही अंश से उत्पन्न हुई हूँ । मैं आप दोनों के लिये क्या करूँ  
मनु ने मुझ से कहा है कि तुम मेरे पीछे गमन करो ॥१४॥ धर्म मे  
परायण उस प्रकार से प्रार्थना करने वाली उस परम साठवी इला है  
मित्र और वरुण दोनों ही यह बोले ॥१५॥ मित्रावरुणो ने कहा—हे  
वरवणिनी ! तुम्हारे इस धर्म-प्रथय-दम और सत्य से हम दोनों हे  
सुश्रोणी ! परम प्रसन्न हुए हैं ॥१६॥ हे महाभागे ! तुम हम दोनों की  
काया हो—इसी प्रसिद्धि को प्राप्त करोगी और इन वैश्वदेव मनु के वश  
के करने वाला तुमही पुत्र हो जाओगी ॥१७॥ हे शोभने ! तीनों लोकों  
में सुद्युम्न-इस नाम से विख्यात होगा । वह सम्पूर्ण जगत् का प्यारा  
धर्म में शील स्वभाव रखने वाला और मनु के वश का बढ़ाने वाला  
होगा ॥१८॥

निवृत्ता सा तु तच्छ्रद्धया गच्छन्ती पितुरन्तिकात् ॥१५

बुधेनान्तरमासाद्य मैथुनायोपमन्त्रिता ।

सौमपुत्रादबुधाद्विप्रास्तस्यां जज्ञे पुरूरवाः ॥१६

जनमितया ततः सा तमिला सुद्युम्नतां गता ।

सुद्युम्नस्य तु दायादास्तयः परमघाम्मिकाः ॥१७

उत्कलश्च गयश्च विनताश्च मो द्विजाः ।

उत्कलस्योत्कला विप्रा विनताश्चस्य पश्चिमाः ॥१८

दिक् पूर्वा मुनिशादहं ला गयस्य तु गया स्मृता ।

प्रविष्टेषु तु मनो विप्रा दिवाकरमरिन्दमम् ॥१९

दशधा तत्पुनः क्षत्रमकरोत् पृथिवीमिमाम् ।

इक्ष्वाकुज्येष्ठदायादो मध्यदेशपवाप्तवान् ॥२०

कन्याभावात् सुद्युम्नो नैतद्राज्यमवाप्तवान् ।

वसिष्ठवचनात्वासीत् प्रतिष्ठाने महात्मनः ॥२१

यह सुनकर वह इला अपने पिता के समीप से सौट कर वापिस जारही थी कि इसी बीच मे बुध ने उसको मैथुन के सिये बुला लिया था । हे विप्रो ! सोम के पुत्र बुध के वीर्य से उस इला के गर्भ से पुत्र रवा उत्पन्न हुआ था ॥१५-१६॥ उस इला ने उस पुत्ररवा को जन्म देकर फिर वह सुद्युम्न होगई थी । उस सुद्युम्न के तीन दायाद अर्थात् पुत्र परम धार्मिक उत्पन्न हुए थे ॥१७॥ उनके नाम ये थे—हे विप्रो ! उत्कल-गय और विनताएव ये तीन पुत्र हुए थे । उत्कल की राजधानी उत्कला थी और विनताएव की परिचमा थी । गय की पूर्व दिशा में गया राजधानी हुई थी । मनु के अरिन्दम दिवाकर में प्रविष्ट हो जाने पर फिर इस पृथ्वी के दश भाग किये थे । इक्ष्वाकु सबसे बड़ा पुत्र था उसने मध्य देश को प्राप्त किया था । वसिष्ठजी के वचन से महात्मा के प्रतिष्ठान में था ॥१८-२१॥

प्रतिष्ठा घर्म्मराजस्य सुद्युम्नस्य द्विजोत्तमाः ।

तत्पुरुवरसे प्रादाद्राज्यं प्राप्य महायशाः ॥२२

मानवेयो मुनिश्रेष्ठाः स्त्रीषु सोल क्षणैर्युताः ।

घृतवांस्तामिलेत्येवं सुद्युम्नेति च विश्रुतः ॥२३

नरिष्यन्ताः शकाः पुत्रा नामागस्य तु मो द्विजाः ।

अम्बरीषोऽभवत् पुत्रा पाथिवपंससत्तमः ॥२४

घृष्टस्य घाष्टिकं क्षत्रं रणद्वष्टं बभूव ह ।

करूपस्य च कारूपाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥२५

नाभागघृष्टपुत्राश्च क्षत्रिया वैश्यतां गताः ।  
 प्राशोरेकोऽभवत्पुत्रः प्रजापतिरिति स्मृतः ॥२६॥  
 नरिष्यन्तस्य दायादो राजा दन्तधरो यमः ।  
 दयतिमिधुनं त्वासीदानर्त्तो नाम विश्रुतः ॥२७॥  
 पुत्रः कन्या सुकन्या च या पत्नी च्यवनस्य ह ।  
 आनर्त्तस्य तु दायादो रैवो नाम महाद्युतिः ॥२८॥

हेऽन्तम द्विजगण ! समंराज सुद्युम्न की प्रतिष्ठा यह थी कि महान्  
 यद्य्वाले में प्राप्त करके वह सम्पूर्ण राज्य खरवा को दे दिया था  
 ॥२२॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! वह मानवेय स्त्री और पृथ्वी दोनों के ससणो  
 से युक्त था । स्त्री के ससणों से उसका नाम इला-यज्ञी था और वह  
 सुद्युम्ना-इस नाम से भी विद्युत् हुआ था ॥२३॥ नरिष्यन्त शक पुत्र ये  
 और राजा नामाग का पुत्र राजाओं में परम श्रेष्ठ अम्बरीष हुआ था  
 ॥२४॥ घृष्ट का पुत्र घामिक क्षत्रिय था जो रण के बहुत अधिक दण्ड  
 वाला था । कश्यप के कारुण्य रण दुर्मंद क्षत्रिय हुए थे ॥२५॥ नामाग  
 घृष्ट के पुत्र क्षत्रिय होते हुए भी वैश्य भाव को प्राप्त हो गये थे । प्रानु  
 का एक ही पुत्र था जो प्रजापति-इस नाम से कहा गया है ॥२६॥  
 नरिष्यन्त का दायाद (पुत्र) राजा दन्तधरयम था । दयति राजा के  
 एक पुत्र और पुत्री का जोड़ा था । पुत्र का नाम आनर्त्त प्रसिद्ध था  
 और सुकन्या नाम वाली पुत्री थी जो च्यवन ऋषि की पत्नी हुई थी ।  
 आनर्त्त के पुत्र का नाम रैव हुआ था जो महनी द्युति से सम्पन्न था  
 ॥२७-२८॥

आनर्त्तविषयश्चैव पुरी चास्य कुशस्यलो ।  
 रैवस्य रैवता पुत्रं ककुद्मी नाम घामिकः ॥२९॥  
 ज्येष्ठः पुत्रः स तस्यासीद्राज्यं प्राप्य कुशस्यलोम् ।  
 स कन्यासहितः पुरा गान्धर्व्यं ब्रह्मणोऽन्तिके ॥३०॥  
 मुहूर्तभूतं देवस्य तस्यो बहुयुगं द्विजाः ।  
 आजगाम स चंवाय स्वां पुरीं पादवैवृताम् ॥३१॥



कृतां द्वारवतीं नाम वदुद्वारां मनोरमाम् ।  
भोजवृष्ण्यन्धकैर्गुप्तां वसुदेवपुरोगमः ॥३२  
तर्जनं रैवतो ज्ञात्वा यथातत्त्वं द्विजोत्तमाः ।  
कन्यां तां बलदेवाय सुमद्रां नाम रेवतीम् ॥३३  
द्रष्ट्वा जंगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः ।  
रेमे रामोऽपि घर्ममात्मा रेवत्या सहितः सुखी ॥३४

आनर्त्त का विषय (दिग) और इसकी पुरी कुशस्थली थी । रैव का पुत्र रैवत या ककुत्थी परम घाम्मिक एवं उसका ज्येष्ठ पुत्र था । वह कुशस्थली के राज्य को पाकर अपनी कन्या के सहित गान्धर्व नगर को सुनकर ब्रह्मा-जो के समीप पहुँच गया । वह वहाँ परदेव की सन्निधि में एक मुहूर्त मान ही ठहरा था किन्तु बहुत से युग व्यतीत होगये थे । वहाँ से जब फिर ब्रह्मा वापिस आया तो उसने अपनी पुरी को यादवों से घिरी हुई देखा था जो द्वारवती नाम से प्रसिद्ध हुई थी । उसमें बहुत से द्वार थे और बहुत ही सुन्दर थी । भोज और वृष्णि तथा अन्यक जाति वाले यादव क्षत्रियों के द्वारा वह सुरक्षित थी जिनमें वसुदेव प्रमुख थे ॥२६- २॥ हे द्विजो-त्तमो ! वहाँ पर ही रैवत ने यथा तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करके उसमे सुमद्रा नाम वाली रेवती कन्या को बलदेवजी को दे दिया था और अपनी कन्या का अर्पण कर के फिर वह मेरु पर्वत पर चला गया था और तप में संस्थित हो गया था । वनरामजी भी परम घर्ममात्मा थे और उस रेवती नाम वाली अपनी पत्नी के साथ परम सुखी होकर रपण किया करते थे ॥३३-३४॥

कथं बहुयुगे काले समतीते महामते ।  
न जरा रेवतीं प्राप्ता रैवतं च ककुद्मिनम् ॥३५  
मेरुं गतस्य वा तस्य शर्यातिः सन्ततिः कथम् ।  
स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥३६  
न जरा क्षुत्पिपासा वा न मृत्युर्मुनिसत्तमाः ।  
श्रुतुचक्रं प्रभवति ब्रह्मलोके सदानघाः ।  
ककुद्मिनः स्वर्लोक तु रैवतस्य गतस्य ह ॥३७

हृता पुण्यजनविप्रा राक्षसैः सा कुचस्यली ।  
 तस्य आतृशतं त्वासीद्वाम्भिकस्य महात्मनः । ३८  
 तद्वध्यमान रक्षोनिदिशः प्राक्कामदच्युताः ।  
 विद्रुतस्य च विप्रेन्द्रास्तस्य आतृशतस्य वै ॥३९॥  
 जम्बवायस्तु सुमहांस्तत्र तप्त द्विजोत्तमाः ।  
 तेषां ह्येते मुनिश्रेष्ठाः शर्याता इति विश्रुताः ॥४०॥  
 क्षत्रिया गुगुसम्पन्ना दिभुःसर्वांशु विश्रुताः ।  
 सर्व्वंशः सर्व्वंगहन प्रविष्टास्ते महोजसः ॥४१॥  
 नानागरिष्टपुत्रो द्वौ वंद्यौ ब्राह्मणतं गतौ ।  
 कस्यपस्य तु कारूपाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥४२॥

मुनिगण न कहा—हे महामते ! बहुत से युगों के काल के व्यतीत  
 हो जाने पर भी उस रेवती की तथा उस कटुपी रेवत की बुझाया कैसे  
 नहीं हुआ था ॥३९॥ जब वह स्वयं मेघ पर्वत पर तर करने चला गया  
 था तो उस शर्याति राजा की सन्तति मात्र एक भी इस पृथिवी पर  
 कैसे स्थित हुई थी—इस की हम सब लोग टोकर सुनना चाहते हैं  
 ॥३९॥ श्री सोमहर्षणजी ने कहा—हे मुनिगणो ! ब्रह्म लोक का  
 प्रभाव ही ऐसा अद्भुत होता है कि वहाँ पर न तो वृद्धावस्था होती है  
 और न मूल तथा व्यास ही सताया करती है । श्रुतियों का भी वहाँ यह  
 कुछ प्रभाव नहीं होता है । ब्रह्म लोक में तो सब सर्व्वदा अनप ही रहा  
 करते हैं । जब कटुपी रेवत स्वर्लोक में चला गया था तो हे विप्रगण !  
 उसकी जो कुचस्यली पुरी थी उसकी पुण्य जन राक्षसों ने हरण कर  
 लिया था । उस महारमा परम घामिक रेवत के सौ भाई ये राक्षसों के  
 द्वारा वे बध्यमान होकर इतर-उपर अन्य दिशाओं में भान गये थे ।  
 हे विप्रेन्द्रो ! भागे हुए उन सौ भाइयों का वंश बहुत बड़ा था जो जहाँ-  
 जहाँ पर स्थित हो गया था हे मुनिगणो ! जहाँ के वे शर्यात नाम से  
 प्रसिद्ध लोग हैं ॥३९-४०॥ ये शक्ति गुणों से सुसम्पन्न हैं और सभी  
 ओर से सभी जनों में ये महान् ओज वाले प्रसिद्ध होयते थे ॥४१॥

नामागारिष्ट के दो पुत्र जो वंश्य थे ब्राह्मणता को प्राप्त होगये थे ।  
कश्यप के कश्यप क्षत्रिय थे जो युद्ध में बहुत ही दुर्मंद थे ॥४२॥

पृषधो हिसयित्वा तु गुरोर्गा द्विजसत्तमाः ।

शापाच्छूद्रत्वमापन्नो नवेते परिकीर्त्तिताः ॥४३॥

वैवस्वतस्य तनया मुनेर्वै मुनिसत्तमाः ।

क्षुवतस्तु मनोविप्रा इक्ष्वाकुरभवत् सुतः ॥४४॥

तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोभूँरिदक्षिणम् ।

तेषां विकुक्षिर्ज्येष्ठस्तु विकुक्षित्वादयोधताम् ॥४५॥

प्राप्तः परमघर्मज्ञः सोऽयोध्याधिपतिः प्रभुः ।

शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पञ्चशतं स्मृताः ॥४६॥

उत्तरापथदेशस्य रक्षितारो महाबलाः ।

चत्वारिंशद्दशाष्टौ च दक्षिणस्यां तथा दिशि ॥४७॥

षष्ठातिप्रमुखाश्चान्ते रक्षितारो द्विजोत्तमाः ।

इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षिवा अष्टकायामथादिशत् ॥४८॥

मासमानय श्राद्धार्थं मृगान् हत्वा महाबलः ।

श्राद्धकर्मणि चोद्दिष्टे अकृते श्राद्धकर्मणि ॥४९॥

हे द्विज ओष्ठो ! पृषध ने अपने ही गुरुदेव की गाय की हिंसा की थी अतएव वह शूद्रत्व को प्राप्त हो गया था । इस प्रकार से ये नौ पुत्रों का वर्णन किया गया है ॥४३॥ हे मुनिसत्तमो ! वैवस्वत मनु के ये पुत्र हुए हैं । हे विप्रगण ! क्षुवत मनु का इक्ष्वाकु पुत्र हुआ था ॥४४॥ उस इक्ष्वाकु राजा के बहुत दक्षिणा वाले एक सौ पुत्र हुये थे । उन सब में विकुक्षि नाम वाला पुत्र सब में ज्येष्ठ था । वह विकुक्षित्व होने के कारण अयोधता को प्राप्त होगया था ॥४५॥ यह बहुत ही अधिक धर्म का जाता था और वही अयोध्या का पति प्रभु हुआ था । उस राजा के पाँच सौ पुत्र हुए थे जिन में शकुनि प्रमुख था । ये सब उत्तरापथ के रक्षा करने वाले महान् बलवान् हुए थे । इनमें से अष्टावन दक्षिण दिशा में रक्षा करने वाले थे । हे द्विजोत्तमो ! वंश जिनमें प्रमुख थे और अन्य भी रक्षा करने वाले हुए थे । अष्टका के समय में इक्ष्वाकु ने विकुक्षि

को यह आदेश दिया था कि आठ के लिये मांस साम्रो । उस महान् बलवान् ने आठ कर्म के उद्दिष्ट होने पर मृगों का हनन करके शश का भक्षण करके वह शश को खाने वाला शिकार करने को चला गया था और आठ का कर्म पूर्ण नहीं हुआ था ॥४६-४६॥

भक्षयित्वा शशं विप्रा शशादो मृगयां गतः ।

इक्ष्वाकुणा परित्यक्तो वसिष्ठश्च वनात् प्रभुः ॥५०॥

इक्ष्वाकी संस्थिते विप्राः शशादस्तु नृपोऽभवत् ।

शशादस्य तु दायादः ककुत्स्थो नाम वीर्यवान् ॥५१॥

अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुश्चातेनसः स्मृतः ।

विष्टराश्वः पृथोः पुनस्तस्मादाद्र्स्त्वजायत ॥५२॥

आर्द्रस्य युवनाश्वस्तु श्रावस्तस्तप्सुनो द्विजाः ।

जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निम्मिता ॥५३॥

श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महीपतिः ।

कुवलाश्वः सुतस्तस्य राजा परमधार्मिकः ॥५४॥

यः स धुन्धुवघाद्राजा धुन्धुमारस्त्वमागतः ॥५५॥

महर्षि वसिष्ठ के वचन से राजा इक्ष्वाकु ने उसका परित्याग कर दिया था ॥५०॥ इक्ष्वाकु के संस्थित रहने पर ही हे विपणन ! शशाद भक्ष हो गया था । उस शशाद का पुत्र महान् बन वीर्य वाला ककुत्स्थ हुआ था ॥५१॥ इस ककुत्स्थ का पुत्र अनेना हुआ था और अनेना का पुत्र पृथु कहा गया है । उस पृथु के पुत्र का नाम विष्टराश्व था और फिर उस विष्टराश्व से आर्द्र समुत्पन्न हुआ ॥५२॥ आर्द्र का पुत्र युवनाश्व समुत्पन्न हुआ । हे द्विजगण ! इस युवनाश्व के पुत्र का नाम श्राव था । वही श्रावस्तक राजा हुआ जिसने श्रावस्ती पुरी का निर्माण किया ॥५३॥ इस श्रावस्तक का दायाद राजा बृहदश्व हुआ । बृहदश्व का पुत्र कुवलाश्व नाम वाला परम धार्मिक राजा हुआ । यह वही राजा था जिसने धुन्धु का वध किया था और धुन्धुमारस्व को प्राप्त हो गया ॥५४-५५॥

घुन्धोर्व्वंघं महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ।  
यद्वघात्कुवलाश्वोऽसौ घुन्धुमारत्वमागतः ॥५६॥  
कुवलाश्वस्य पुत्राणां शतमुत्तमघन्विनाम् ।  
सर्व्वे विद्यासु निष्णाता वनवन्तो दुरासदः ॥५७॥  
वभूवुर्धाम्मिकाः सर्व्वे यज्वानो भूरिदक्षिणाः ।  
कुवलाश्वं पिता राज्ये बृहदश्वो न्ययोजयत् ॥५८॥  
पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु वन राजा विवेश ह ।  
तमुत्तङ्कोऽय विप्रपिः प्रयान्तं प्रत्यवारयत् ॥५९॥  
भवता रक्षणं कार्य्यं तच्च कर्त्तुं त्वमर्हसि ।  
निरुद्विग्नस्तपश्चतुं न हि शक्नोमि पार्थिव ॥६०॥  
ममाश्रमसमीपे वै समेषु मरुधन्वसु ।  
समुद्रो बालुकापूर्ण उद्दालक इति स्मृतः ॥६१॥  
देवतानामवध्यश्च महाकायो महाबलः ।  
अन्तर्भूमिगतस्तस्य बालुकागर्तहितो महान् ॥६२॥  
राक्षसस्य मघोः पुत्रो घुन्धुर्नाम महासुरः ।  
शेते लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम् ॥६३॥

मुनिगण ने कहा—हे महान् प्रजा वाले ! हम लोग सब इन घुन्धु के वध को तात्त्विक रूप से अर्थात् ठीक-ठीक धारण करना चाहते हैं जिसके वध कर देने पर यह कुवलाश्व भी घुन्धु मारत्व को प्राप्त होगया था ॥५६॥ श्री लोमहर्षणजी ने कहा—उस कुवलाश्व के एक सौ पुत्र थे जो उत्तम धनुष धारी थे, ये सभी समस्त विद्याओं में परम कुशल थे—महान् वनशाली थे और शत्रुओं के द्वारा दुरासद भी थे अर्थात् ऐसे थे कि शत्रु इनको जीतने में असमर्थ हो जाते थे ॥५७॥ ये सभी यजन करने वाले—अधिक दक्षिणा देने वाले तथा अत्यधिक धार्मिक थे । बृहदश्व पिता ने कुवलाश्व को राज्यासन पर नियोजित कर दिया था ॥५८॥ अपने पुत्र को सम्पूर्ण राज्य भी सौंप कर फिर वह राजा वन में तपश्चर्या करने के लिये चला गया था । जब वह राजा वन को आ रहा था उस समय में उत्तंक नाम धारी विप्रपि ने गमन करने वाले

उसको दारित किया था ॥५६॥ उत्तंक ने कहा—हे राजन् ! आपको अपने राज्य की रक्षा का कर्म करना चाहिए क्योंकि आप रक्षा करने के योग्य हैं । मैं उद्वेग से रहित होकर तप नहीं कर सकता हूँ ॥६०॥ मेरे आश्रय के समीप मैं सम मरुधन्वाओं में बालु का पूर्ण समुद्र है जो चहालक कहा गया है ॥६१॥ यह देवों के द्वारा भी अवश्य है अर्थात् इसको देवगण भी नहीं मार सकते हैं । यह महाम् काया वाला और महाम् बलशाली है । वहाँ पर यह भूमि के अन्तर्गत रहता है तथा बालुकाओं में छिपा रहा करता है ॥६२॥ यह मधु नामक राक्षस का पुत्र है और इस महान् असुर का नाम धुन्धु है । परम दारुण तप में समास्थित होकर लोकों के विनाश करने के लिये ही शयन किया करता है ॥६३॥

संवत्सरस्य पय्यन्ते स निश्वासं विमुञ्चति ।  
 यदा तदा मही तत्र चलति स्म नराधिप ॥६४॥  
 तस्य निःश्वासवातेन रज उड्यते महत् ।  
 आदित्यपयमावृष्य सप्ताह भूमिकम्पनम् ॥६५॥  
 सविस्फुलिङ्ग साङ्गारं मधुममतिदारुणम् ।  
 तेन तात न शक्नोमि तस्मिन् स्थातुं स्व आश्रमे ॥६६॥  
 तं मारय महाकायं लोकना हितकाम्यया ।  
 लोकाः स्वस्या भवन्त्यद्य तस्मिन् विनिहते स्वया ॥६७॥  
 एवं हि तस्य वधायकः समर्थः पृथिवीपते ।  
 विष्णुना च वरो दत्तो मह्यं पूष्वयुगे नृप ॥६८॥  
 यस्त महासुरं रौद्रं हनिष्यति महाबलम् ।  
 तस्य त्व वरदानेन तेजश्चाद्यापयिष्यसि ॥६९॥  
 न हि धुन्धुमं हातेजास्तेजसात्पेन शक्यते ।  
 निदग्धुं पृथिवीहास चिरं युगशतैरपि ॥७०॥  
 शीर्षेऽथ सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासदम् ।  
 स एवमुक्तो राजपिरत्तद्वेन महात्मना ।  
 कुवलाश्वं सुत प्रादात्तस्मै धुन्धुनिबहूणे ॥७१॥

वह सम्बरसर के पर्यन्त में अपना निश्वास छोड़ता है जिस समय में यह निश्वास छोड़ता है उस समय में हे नराधिप ! यह सम्पूर्ण भूमि चलायमान होजाती थी ॥६४॥ उसके निश्वास की वायु से बहुत अधिक रज उड़ा करती है और वह रज सूर्य के मार्ग को रोककर एक सप्ताह तक भूमि का कम्पन कर दिया करती है ॥६५॥ वह मधु विस्फुलिङ्गों से युक्त तथा अंगारों वाला परम दाहक है । हे साध ! इसके कारण से उस अपने आश्रम में मैं स्थिर नहीं रह सकता हूँ ॥६६॥ अतएव सभी लोगों के हित की कामना से आप उसको मारिए जो कि महान् शरीर वाला दाहक राक्षस है । आपके द्वारा उसके मारे जाने पर सभी लोक आज स्वस्थ हो जायेंगे ॥६७॥ हे रामन् ! आप ही एक ऐसे हैं जो उसके मार देने की शक्ति रखते हैं । हे नृप ! पूर्वं युग में भगवान् विष्णु ने मुझे वरदान दिया था । जो उस महान् बलवान् और रौद्र महासुर को मार डालेगा उसके वरदान से तुम तेज को आख्यापित करोगे ॥६८-६९॥ हे पृथ्वीपाल ! धुन्धु बड़ा महान् तेज वाला है और किसी भी अल्प तेज वाले के द्वारा चिरकाल तक और सैकड़ों युगों में भी निर्दोष नहीं । क्या जा सकता है ॥७०॥ उसका बल वीर्य बहुत ही अधिक है जिसको देवगण भी नहीं सहन कर सकते हैं । उत्तम महारमा के द्वारा वह राजर्षि इस प्रकार से कहा गया था । उस धुन्धु के निवर्द्धन करने के कार्य में उसने अपने पुत्र कुबलाश्व को उसके सुपुर्द कर दिया था ॥७१॥

भगवन्त्यस्तशस्त्रोऽहमयं तु तनयो मम ।

भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न संशयः ॥७२॥

स तं व्यादिश्य तनयं राजर्षिर्धुन्धुमारणे ।

जगाम पठ्वन्तायैव नृपतिः संशितव्रतः ॥७३॥

कुबलाश्वस्तु पुत्राणां शतेन सह भी द्विजोः ।

प्रायादुत्तङ्कसहितो धुन्धोस्तस्य निवर्हणे ॥७४॥

तमाविशत्तदा विष्णुस्तेजसा भगवान् प्रभुः ।

उत्तङ्कस्य नियोगाद् लोकानां हितकाम्यया ॥७५॥

तस्मिन् प्रयाते दुर्दयं दिवि शब्दो महानभूत् ।

एष श्रीमानवध्योऽथ घुन्धुमारो भविष्यति ॥७६॥

दिव्यगन्धैश्च मातृयैश्च तं देवाः समवाकिरन् ।

देवदुन्दुभयश्चैव प्रणेदुद्विजसत्तमाः ॥७७॥

बृहदश्व ने कहा—हे भगवान् ! मैं तो शस्त्रों का त्याग कर देने वाला होगया हूँ । हे द्विजर्षे ! यह मेरा पुत्र घुन्धु के मार देने वाला होगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । श्री लोमहर्षणजी ने कहा—वह राजा अपने पुत्र को उस घुन्धु के मारने के कार्य के लिये आज्ञा देकर स्वयं तो सशित-धृत नृपति पर्वत को ही चला गया था ॥७२-७३॥ हे द्विजगणों ! वह कुत्साश्व अपने सौ पुत्रों के सहित उत्तंक को साथ में लेकर उस घुन्धु दैत्य के मारने के लिये वहाँ से रवाना होगया था ॥७४॥ उस समय में प्रभु भगवान् विष्णु उत्तंक के नियोग से सोको के हित की कामना से तेज के द्वारा उसमें आविष्ट होगये थे ॥७५॥ उस दुर्दय के प्रयोग करने पर दिवलोक में महाम् शब्द हुआ था कि आज यह श्रीमान् घुन्धुमार अवध्य होगा ॥७६॥ देवगण न दिव्यगन्ध और मातृयों से उस पर दृष्टि की थी । हे द्विजसत्तमो ! देव दुन्दुभियाँ उस समय में बजने लग गयी थी ॥७७॥

स गत्वा जयतां श्रेष्ठस्तनयः सह धीर्यवान् ।

समुद्रं खानयामास बालुकान्तरमव्ययम् ॥७८॥

तस्य पुत्रैः खनद्भिश्च बालुकात्तहितस्तदा ।

घुन्धुरासदितो विप्रा दिशमावृत्य पश्चिमाम् ॥ ८० ॥

मुषजेनाग्निना क्रोधात्लोकानुदूर्त्तयन्निव ।

धारि सुखाव वेगेन महोदधिरिवोदये ॥८०॥

सोमस्य मुनिशादुं ला वरोर्मिकलिलो महान् ।

तस्य पुत्रशत दग्धं त्रिभिस्त्नत्तु रक्षसा ॥८१॥

ततः स राजा च तिमोन् राक्षसं तं महाबलम् ।

आससाद महातेजा घुन्धुं घुन्धुविनाशनः ॥८२॥



तस्य वारिमयं वेगमापीय स नराधिपः ।

योगी योगेन बल्लिञ्च शमयामास वारिणा ॥८३॥

निहत्य तं महाकार्यं बलेनोदकराक्षसम् ।

उत्ताङ्कं दर्शयामास कृतकर्म्म नराधिपः ॥८४॥

वह श्रेष्ठ धीर्यवान् अपने पुत्रों के साथ वहाँ पर जाकर विजय प्राप्त करे । उस अव्यय बालुकान्तर समुद्र को खनन किया था ॥७८॥ उसके पुत्रों ने जब समुद्र का खनन किया तो उन्होंने उस समय में बालुका में छिपे हुए उसको प्राप्त किया था । वह धुन्धु पश्चिम दिशा में आवृत्त होकर वहाँ पर स्थित प्राप्त होगया था ॥७९॥ उसने क्रोध से मुख में उत्पन्न अग्नि के द्वारा लोहों को उद्भसित करते हुए बड़े वेग से उदय काल में समुद्र के समान जल कर स्रवण किया था ॥८०॥ हे मुनि शादूलो ! सोम के उदय में श्रेष्ठ कर्मियों से कलिल और महान् वह होगया था उस राक्षस ने तीन कम उसके सौ पुत्रों को दग्ध कर दिया था ॥८१॥ इसके अनन्तर उस धन्धु के विनाश करने वाले राजा ने जो बहुत धुत्तिमान् था उस महान् बलशाली राक्षस को प्राप्त किया था क्योंकि वह नृप भी महान् तेजस्वी था ॥८२॥ उसके वारिमय वेग को पान करके उस नराधिप ने जो योगी था, योग के द्वारा जल से उसकी फैलाई हुई अग्नि को शान्त कर दिया ॥८३॥ कृतवर्मा नराधिप ने अपने बल से उस उदक राक्षस को जो महान् शरीर वाला था मारकर उस उत्ताङ्क को दिखा दिया था ॥८४॥

उत्ताङ्कस्य वरं प्रादात्तास्मै राज्ञे महात्मने ।

ददौ तस्याक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चापराजितम् ॥८५॥

धर्मो रतिश्च सनतं स्वर्गं वासं तथाक्षयम् ।

पुत्राणां चाक्षयल्लोकान् स्वर्गं ये रक्षसा हताः ॥८६॥

तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते ।

चन्द्राश्वकपिलाश्वौ तु कनीयांसौ कुमारकौ ॥८७॥

घोन्धुमारेट्टं द्वाश्वस्य हय्यश्वश्चात्मजः स्मृतः ।

हय्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत् क्षत्रधर्म्मरता सदा ॥८८॥

संहताश्वो निकुम्भस्य सुतो रणविशारदः ।

अकृशाश्वकृशाश्वौ तु संहताश्वसुतो द्विजाः ॥८८॥

तस्य हैमवती कन्या स तां मत्वा द्वयद्वती ।

विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रश्चास्याः प्रसेनजित् ॥ ८९ ॥

लेभे प्रसेनजिद्वार्या गौरीं नाम पतिव्रताम् ।

अभिशास्ता तु सा भर्ता नदी वै बाहुदामवत् ॥९०॥

उस महात् आत्मा वाले राजा को उत्तंक ने वरदान दिया था । उसको अक्षय धन दिया था और शत्रुओं के द्वारा अपराजित होने का भी वरदान दिया था ॥८५॥ धर्म में निरन्तर रति तथा स्वर्ग में अक्षय निवास और जो उस राजस के द्वारा पुन मार डाले गये थे उनको स्वर्ग में अक्षय लोको की प्राप्ति का वरदान दिया था ॥८६॥ अब उस राजा के उन सौ पुत्रों में से केवल तीन ही बचे थे । उन तीनों में दृढाश्व सबसे बड़ा पुत्र था । चन्द्राश्व और कपिताश्व ये दो छोटे कुमार थे ॥८७॥ घोन्धुमारि का जो दृढाश्व पुत्र था उसका पुत्र हयंश्व कहा गया है । हयंश्व का पुत्र निकुम्भ नाम वाला उत्पन्न हुआ था जो सदा क्षत्रियों के धर्म में रति रखने वाला था ॥८८॥ निकुम्भ का पुत्र संहताश्व हुआ था जो रण करने की विद्या का बहुत बड़ा पण्डित था । हे द्विजो ! उस संहताश्व के अकृशाश्व और कृशाश्व दो पुत्र हुए थे ॥८९॥ उसकी हैमवती नाम वाली एक कन्या थी वह उसकी द्वयद्वती मानता था और इसी नाम से वह तीनों लोकों में विख्यात हुई थी । उसके पुत्र का नाम प्रसेनजित् था ॥९०॥ उस प्रसेनजित् ने गौरी नाम वाली परम पतिव्रता भार्या प्राप्त की थी । वह भर्ता के द्वारा अभिशास्त होगई थी और बाहुदा नाम की नदी होगई थी ॥९१॥

तस्य पुत्रो महानासीद्युधनाश्वो नराधिपः ।

मान्धाता युवनाश्वस्य सिलोकविजयी सुतः ॥९२॥

तस्य चैत्ररथो भार्या शशविन्दोः सुताभवत् ।

साध्वी विन्दुमती नाम रूपेणासदृशी भुवि ॥९३॥

पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातृणामयुतस्य वै ।  
 तस्यामुत्पादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ द्विजाः ॥६४॥  
 पुरुकुत्सश्च धम्मंजं मुचुकुन्दञ्च पार्थिवम् ।  
 पुरुकुत्ससुतस्त्वासीत्ससस्युर्महीपतिः ॥६५॥  
 नर्मदायामयोत्पन्नः सम्भृतस्तस्य चात्मजः ।  
 सम्भृतस्य तु दायादसिघन्वा रिपुमर्दनः ॥६६॥  
 राज्ञस्त्रिघन्वनस्त्वासीद्विद्वांश्चरय्यारुणः प्रभुः ।  
 तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः ॥६७॥  
 परिग्रहणमन्त्राणां विघ्नं चक्रे सुदुर्मतिः ।  
 येन भार्या कृतोद्वाहा हता चैव परस्य ह ॥६८॥

उस प्रसेनजित का पुत्र युवनाश्व महान् नराधिप हुआ था । उस युवनाश्व के पुत्र मान्धाता हुआ था जो तीनों लोकों का विजय करने वाला बड़ा प्रतापी राजा हुआ है ॥६२॥ उसकी भार्या चैत्ररथी शश-विन्दु की पुत्री हुई थी । यह विन्दुमती नाम वाली भूलोक में रूपसावण्य में अनुपम थी और परम साध्वी थी ॥६३॥ यह पतिव्रता थी और दश हजार अपने माइयों में सबसे बड़ी थी । हे द्विजगण ! मान्धाता ने उस अपनी पत्नी के गर्भ से दो पुत्रों को उत्पन्न किया था ॥६४॥ एक परम धर्मज्ञ पुरुकुत्स था और दूसरा मुचुकुन्द राजा था । इस पुरुकुत्स के पुत्र का नाम तसद्दस्यु महीपति था ॥६५॥ इस तसद्दस्यु के पुत्र का नाम सम्भृत था जो नर्मदा नाम वाली रानी के गर्भ से समुत्पन्न हुआ था और इस सम्भृत का सुत त्रिघन्वा था जो शत्रुओं का मर्दन करने वाला हुआ था ॥६६॥ उसका पुत्र विद्वांश्चरय्यारुण प्रभु हुआ था । इसके जो कुमार हुआ था वह सत्यव्रत नाम वाला और महान् बलवान् हुआ था ॥६७॥ इस सुदुर्मति ने परिग्रहण मन्त्रों का विघ्न किया था जिसने दूसरे की विवाहिता स्त्री का हरण किया था ॥६८॥

आल्यात् कामाञ्च भोहाञ्च साहसाञ्चापलेन च ।  
 अहार कन्यां कामार्त्ताः कस्यचित् पुरवासिनः ॥६९॥

अयोध्यां चैव राज्यं च तथैवान्त पुरं मुनिः ।

याज्योपाध्यायसंयोगाद्वसिष्ठा पर्यरक्षत ॥४॥

सत्यव्रतस्तु बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ।

वसिष्ठेऽभ्यधिकं मन्युं धारयायास नित्यशः ॥५॥

पित्रा हि तं तदा राष्ट्रत्यज्यमानं प्रियं सुतम् ।

निवारयामास मुनिर्बहुना कारणेन च ॥६॥

पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे ॥७॥

श्री लोमहृष्यंजी ने कहा—सत्यव्रत ने भक्ति से-कृपा से और प्रतिज्ञा से विनय में स्थित होकर विश्वामित्रजी की कलत्र का भरण किया था ॥१॥ मृगों को-बराहों को-महिषों को और वनचरों को मार कर विश्वामित्र के आश्रम के समीप में मांस को घृत में बाँध दिया था ॥२॥ उपाशु व्रत में समास्थित होकर बारह वर्ष की दीक्षा लेकर उस रूप के वन में चले जाने पर पिता की आज्ञा से उसमें ही निवास किया था ॥३॥ अयोध्या-सम्पूर्ण राज्य तथा अन्तःपुर को वसिष्ठ मुनि ने याज्योपाध्याय के संयोग से परिशिष्ट किया था ॥४॥ सत्यव्रत वचन से और भावी अर्थ के बल से वसिष्ठ मुनि में निगम ही अधिक मन्यु अर्थात् क्रोध को धारण करता था ॥५॥ उस समय में पिता के द्वारा पागे हुए उस प्रिय पुत्र को बहुत कारण से मुनि ने निवारण किया था ॥६॥ पाणिग्रहण मन्त्रों की निष्ठा सप्तम पद में होती है ॥७॥

न च सत्यव्रतस्तस्माद्व्रतवान् सप्तमे पदे ।

जानन् धर्मवसिष्ठस्तु न मां त्रातीति भो द्विजाः ।

सत्यव्रतस्तदा रोष वसिष्ठे मनसाकरोत् ॥८॥

गुणबुद्ध्या तु भगवान् वसिष्ठः कृतवांस्तथा ।

न च सत्यव्रतस्तस्य समुपाशुमबुध्यत ॥९॥

तस्मिन्परितोषञ्च पितुरासीन्महात्मनः ।

तेन द्वादश वर्षाणि नायर्षत् पाकशासनः ॥१०॥

तेन त्विदानीं विहिता दीक्षा तां दुषंही भुवि ।

कुलस्य निष्कृतिविप्राः कृता सा वै भवेदिति ॥११॥

न तं वसिष्ठो भगवान् पित्रा त्यक्तं न्यवारयत् ।

अभिपेक्षाम्यहं पुत्रमस्येत्येवंमतिर्मुनिः ॥१२

स तु द्वादश वर्षाणि तां दीक्षामवहद्वली ।

अविद्यमाने मांसे तु वसिष्ठस्य महात्मनः ॥१३

सर्वकामदुर्घां दोग्ध्री स ददर्श नृपात्मजा ।

तां वं क्रोधाच्च मोहाच्च श्रमाच्चैव क्षुधान्वितः ॥१४

सत्यव्रत ने इस कारण से सप्तम पद में हनन नहीं किया था । वसिष्ठमुनि धर्म को जानते हुए हे द्विजगण । मेरी रक्षा नहीं करते हैं । उसी समय मे सत्यव्रत ने मन से वसिष्ठ मुनि के विषय में रोष किया था ॥८॥ गुणों की बुद्धि से भगवान् वसिष्ठ ने बंसा किया था और सत्यव्रत ने उसके उस उपाशु को नहीं समझा था ॥९॥ किन्तु उसमे पिता का जो एक महान् आत्मा वाले थे बहुत ही अवरितोष हुआ था इसी कारण से बारह वर्ष तक महेश्वर ने वर्षा नहीं की थी ॥१०॥ इसी कारण से इस समय में भूजोक में अत्यन्त दुर्बह उस दीक्षा को किया था । हे विप्रो ! वह की हुई दीक्षा कब की निष्कृति हो जावेगी ॥१॥ भगवान् वसिष्ठ ने उसको निवारित नहीं किया था क्योंकि मुनि का ऐसा विचार था कि मैं इसके पुत्र का अभिषेक कर दूंगा ॥१२॥ उस ब्रह्मन् ने बारह वर्ष तक उन दीक्षा का सहन किया था । मांस के विद्यमान न रहने पर उस नृप के पुत्र ने महात्मा वसिष्ठ की समस्त कामनाओं को देने वाली दोग्ध्री धेनु को देखा था । हे मुनिश्रेष्ठो ! उस धेनु को क्रोध से-मोह से और श्रम के कारण से भूख से अन्वित होकर मार डाला था ॥१३-१४॥

देशधर्मंगतो राजा जघान मुनिसत्तमाः ।

तन्मांसं स स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चात्मजान् ॥१५

भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठोऽप्यस्य चुक्रुधे ॥१६

पातयेयमहं क्रूर तव शंकुमसंशयम् ।

यदि ते द्वाविमौ शस्त्रं न स्यातां वै कृती पुनः ॥१७

पितुश्चापरितोषेण गुरुदोग्ध्रीवधेन च ।

आप्रोक्षितोपयोगञ्च त्रिविधस्ते ध्यतिक्रमः ॥१८॥

एवं श्रीप्यस्य शङ्खूनि तानि दृष्ट्वा महातपाः ।

क्षिपंशंकुरिति होवाच क्षिपंशुस्तेन स स्मृतः ॥१९॥

विश्वामित्रस्य दाराणामनेन भरणं कृतम् ।

तेन तस्मै वरं प्रादान्मुनिः प्रीतस्त्रिशङ्खवे ॥२०॥

छन्दमानो वरेणाय वरं वप्नो नृपात्मजा ।

सशरीरो ब्रजे स्वर्गमित्येवं याचितो वरः ॥२१॥

देश धर्म में जाने वाले उस राजा ने उस धेनु का हनन कर दिया था और उसके मांस को स्वयं तथा विश्वामित्र के पुत्रों को खिला दिया था । यह अवण करके वसिष्ठ मुनि भी इस पर अत्यन्त क्रुपित हो गये थे ॥१५-१६॥ वसिष्ठजी ने कहा—मैं बिना किसी संशय के निश्चित रूप से तेरे इस शङ्खु को गिरा देता यदि पुनः कृत मे तेरे ये दो शङ्खु न होते ॥१७॥ पिताजी के अपरितोष से और गुरु की दोग्ध्री का वध कर डालने से तथा आप्रोक्षितोप के योग से तेरा तीन प्रकार का ध्यतिक्रम है ॥१८॥ इस प्रकार से उस महाम् सपत्नी ने इसके उन तीन शङ्खुओं को देख कर उससे त्रिशङ्ख—इस नाम से कहा था । इस कारण से वह त्रिशङ्ख ही कहा गया है ॥१९॥ इसने विश्वामित्र की दाराओं का भरण किया है इस कारण से मुनि ने प्रसन्न होकर उस त्रिशङ्खु के लिये वरदान प्रदान किया था ॥२०॥ जब उससे वरदान की यचना करने की मांग दी तो उन नृपात्मजा ने यह वरदान मांगा था कि मैं इसी शरीर को लेकर स्वर्गलोक में गमन करूं ॥२१॥

अनावृष्टिमये तस्मिन् गते द्वादशवार्षिके ।

पित्र्ये राज्येऽभिषिष्याथ याजयामास पार्ष्विवम् ॥२२॥

मिपतां देवतानां च वसिष्ठस्य च कोशिकाः ।

दिवमारोगयामास सशरीरं महातपाः ॥२३॥

तस्य सत्यरथा नाम पत्नी कंकेयवंशजा ।

कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ॥२४॥

स वै राजा हरिश्चन्द्रस्त्वेषां शङ्ख इति स्मृतः ।

आहर्ता राजसूयस्य सम्राडिति ह विश्रुतः ॥२५॥

हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूदरोहितो नाम पार्थिवः ।

हरितो रोहितस्याथ चक्षुर्हरित उच्यते ॥२६॥

विजयश्च मुनिश्रेष्ठाश्चक्षुः पुत्रो बभूव ह ।

जेता स सर्व्वपृथिवीं विजयस्तेन स स्मृतः ॥२७॥

रुरुकस्तनयस्तस्य राजा धर्म्मार्थिकोविदः ।

रुरुकस्य वृकः पुत्रो वृकाद्वाहुस्तु जज्ञिवान् ॥२८॥

उस बारह वर्ष के अनावृष्टि के भय के दृष्टीत हो आने पर पिता के राज्य पर अमिषेक करके उस पार्थिव को यजन कराया था ॥२२॥

महा तपस्वी कौशिक ने सब देवताओं के और षसिष्ठ मुनि के देखते हुए उसको शरीर के सहित दिवलोक में आरोपित कर दिया था ॥२३॥

उसकी सत्यरथा नाम वाली कंकेय के वंश में समुत्पन्न पत्नी थी जिसने कल्मष रहित हरिश्चन्द्र नाम वाले कुमार को जन्म दिया था जो राज-

सूय यज्ञ का आहर्ता था और सम्राट्—इस नाम से लोक में विश्रुत हुआ था ॥२४-२५॥ उस सम्राट् हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहित नाम वाला राजा

हुआ था । रोहित का दायाद हरि तथा जो चक्षुर्हरित कहा जाया करता है ॥२६॥ हे मुनिगणो ! उस चक्षु के पुत्र का नाम विजय था ।

वह सम्पूर्ण पृथ्वी का जीतने वाला था अतएव “विजय”—इस नाम से कहा गया है ॥२७॥ उसका पुत्र रुरुक हुआ था जो कि राजा धर्म और

अर्थ का महान् पण्डित था । रुरुक के पुत्र का नाम वृक था तथा वृक के वीर्य से बाहु नामक पुत्र समुत्पन्न हुआ था ॥२८॥

हैहयास्तालजंघाश्च निरस्पन्ति स्म तं नृपम् ।

तत्पत्नी गर्भमादाय ऊवस्याश्रममाविशत् ॥२९॥

नात्यथं धार्म्मिकश्चैव स हि धर्म्मयुगेऽभवत् ।

सगरस्तु सुतो बाहोर्यज्ञे सह गणेन वै ॥३०॥

ऊवस्याश्रममासाद्य मार्गवेणामिरक्षितः ।

आग्नेयमस्तं लब्ध्वा च भागंवात् सगसे नृपः ॥३१॥

जिगाय पृथिवीं हत्वा तालजङ्घान् सहैहयान् ।  
 शकानां सहलवानां च धम्मं निरसदच्युतः ।  
 क्षत्रियाणां मुनिश्रेष्ठाः पारदानां च धम्मं वित् ॥३२॥  
 कथं स सगरो जातां गरेणैव सहाच्युतः ।  
 किमर्थं च शकादीनां क्षत्रियाणां महीजसान् ॥३३॥  
 धर्मान्कुलोचितान् राजा क्रुद्धो निरसदच्युतः ।  
 एतन्नः सर्व्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामते ॥३४॥

हैहय और तालजङ्घों ने उस राजा को निरस्त कर दिया था ।  
 उसकी पत्नी को भी वह गर्म लेकर ऊर्ध्व के आश्रम में प्रवेश कर गयी  
 थी ॥३२॥ वह उस धर्म के युग में भी अत्यधिक घामिक नहीं हुआ  
 था । बाहु का पुत्र सगर था जो यज्ञ में गर के साथ समुत्पन्न हुआ था  
 ॥३०॥ ऊर्ध्व के आश्रम को प्राप्त कर वह, मार्गव के द्वारा अभिरक्षित  
 हुआ था । उस सगर नृप ने मार्गव से आग्नेय अस्त्र की उपलब्धि की  
 थी ॥३१॥ फिर उस सगर ने सामज्यों हैह्यों के सहित मारकर सम्पूर्ण  
 पृथ्वी को जीत लिया था । उस धर्म के वेत्ता ने, हे मुनिगणों ! शकों  
 का—पहलवानों का और पारद क्षत्रियों का धर्म निरस्त कर दिया  
 था ॥३२॥ मुनिगण ने कहा—वह सगर परम अच्युत गर के साथ किस  
 प्रकार से समुत्पन्न हुआ था ? और क्या कारण था कि उस राजा ने  
 क्रुद्ध होकर महान् श्रीजस्वी शकादि क्षत्रियों को, जो धर्मान्कूल उचित  
 थे निरस्त कर दिया था ? हे महामते ! यह समस्त हास कृपा  
 करके विस्तार के साथ हमारे सामने वर्णन करने की उदारता करिए  
 ॥३३-३४॥

बाहोर्व्यसनिनः पूर्व्वं हृतं राज्यमभूत् किल ।  
 हैह्येस्तालजङ्घंश्च शकैः साट्टं द्विजोत्तमाः ॥३५॥  
 यवनाः पारदारचैव काम्बोजाः पहनवास्तयाः ।  
 एते ह्यपि गणाः पञ्च हैह्यार्थं पराक्रमम् ॥३६॥  
 हस्तराज्यस्तदा राजा सर्व्वं बाहुर्वेनं ययौ ।  
 परम्या चानुगती दुःखी तत्र प्राणानवासृजत् ॥३७॥



पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽङ्गगात् ।  
 सपत्न्या च गरस्तन्यं दत्तः पूर्वं किलानघा ॥३८॥  
 सा तु भक्तुं श्रितां कृत्वा वने तामभ्यरोहत् ।  
 ऊर्ध्वस्तां भार्गवो विप्राः कारुण्यात् समवारयन् ॥३९॥  
 तस्याश्रमे च गर्भः स गरेणैव सहाच्युतः ।  
 व्यजायत महाबाहुः सगरो नाम पार्थिवः ॥४०॥  
 ऊर्ध्वंस्तु जातकर्मणादीस्तस्य कृत्वा महात्मनः ।  
 अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत् ॥४१॥  
 आग्नेयं तु महाभागो अमरं रपि दुःसहम् ।  
 स तेनास्त्रवलेनाजौ वलेन च समन्वितः ॥४२॥

श्री लोमहर्षण जी ने कहा—हे द्विजगणो ! यह बाहु राजा पहिले बहुत ही व्यसन शील था । इसी लिये शकों के साथ हैहय और तातर्जर्षों ने इसका राज्य छीन लिया था ॥३५॥ यवनभारद-काम्बोज-पह्लव ये भी पाँच गण ये जो हैहयों के लिये अपना पराक्रम दिखाया करते थे ॥३६॥ जब राज्य छीन लिया गया था तो वह बाहु राजा वन में चला गया था । उसकी पत्नी उसके पीछे गयी थी किन्तु वह राज्य के ह्राण होने के कारण अत्यन्त दुःखित होगया था और वही पर उसने प्राणों को त्याग दिया था ॥३७॥ उसकी यादवी पत्नी गर्भवती थी और अपने पति के साथ ही पीछे से गयी थी । हे अनघो ! उसकी सपत्नी ने पहिले ही उसको गर ( विप ) दे दिया था ॥३८॥ अपने स्वामी के मर जाने पर उसने चिता बनाकर वन में वह भी उस चिता पर सती होने के लिये प्रस्तुत होरही थी । उसी समय में भार्गव ऊर्ध्व दया करके उसे सती होने से रोक दिया था ॥३९॥ फिर वह वही पर आश्रम में निवास करने लग गई थी । वही पर वह अच्युत गर्भ गर के साथ उत्पन्न हुआ महाबाहु राजा सगर था ॥४०॥ ऊर्ध्व मुनि ने ही उसके जात कर्म आदि समस्त संस्कार कराये थे और उस महान् आत्मा वाले को वेद शास्त्र सब पढ़ाकर इसके पश्चात् उसे ब्रह्म दिया था ॥४१॥ जो आग्नेय अस्त्र उस सगर राजा को दिया वह इतना चमत्का

कि देवगणभी उसे सहन नहीं कर सकने थे वह सगर उसी अग्नि के बल से और अपने बल विक्रम से मुद्र में समन्वित होकर गया था ॥४२॥

हैहयान् विजघानाशु क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ।

आजहार च लोकेषु कीर्त्ति कीर्त्तिमतां वरः ॥४३॥

ततः शकाश्च यवनान् काम्बोजान् पारदांस्तथा ।

पहनुवाश्चैव निःशेषान् कर्त्तुं व्यवमितो नृपः ॥४४॥

ते बध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना ।

वसिष्ठं शरणं गत्वा प्रणिपेतुर्मनीशिनम् ॥४५॥

वसिष्ठस्त्वयतान् दृष्ट्वा समयेन महाद्युतिः ।

सगरं वारयामास तेषां दृष्ट्वाभयं तदा ॥४६॥

सगरः स्वां प्रतिज्ञां तु गुरोर्वाक्यं निशम्य च ।

धर्मं जघान तेषां च वेशानन्याश्चकार ह ॥४७॥

अद्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत् ।

यवनानां शिवं सर्वं काम्बोजानां तथैव च ॥४८॥

पारदा मुक्तकेशाश्च पहनुवाः प्रमथधारिणः ।

निःस्वाध्यायवपट्काराः कृतास्तेन महात्मना ॥४९॥

कीर्त्तिमानों में परम ध्येष्ठ उस सगर राजा ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर जैसे क्रुपित रुद्र पशुओं का हनन किया करते हैं उसी भाँति समस्त हैहयों का हनन कर दिया था और लोकों में परम कीर्त्ति को प्राप्त किया ॥४३॥ इसके अनन्तर उस नृप ने समस्त शक-यवन-काम्बोज-पारव और पहनुओं को निःशेष करने का निश्चय कर लिया था ॥४४॥ महात्मा वीर सगर के द्वारा बध्यमान होकर सबके सब महामनीषी वसिष्ठ ऋषि की शरण में जाकर प्रणिपात करने लगे थे ॥४५॥ महान् द्युति सम्पन्न वसिष्ठ मुनि ने उन सबको शरण में समागत देखकर समय (समञ्जस) के द्वारा उन सबको अमय दान देकर सगर को मारने से रोक दिया था ॥४६॥ राजा सगर ने अपनी की हुई प्रतिज्ञा और गुरुदेव वसिष्ठ जी के वचनों का पबग कर उनका हनन तो नहीं किया किन्तु उनके धर्म को नष्ट कर दिया तथा अन्य वेश धारिणों को हनन कर,

दिया था ॥४७॥ अर्घ शकों का शिर मुंडवा कर उनको छोड़ दिया था । यवनों का तथा काम्बोजों का पूरा माथा मुंडवा कर छोड़ दिया था । पारद युक्त केशों वाले और पल्लव शम्भुधारी बना दिये थे । स्वाध्याय और बपट्कार से रहित उस महात्मा ने उन सबको कर दिया था ॥४८॥

शका यवनकाम्बोजाः पारदाश्च द्विजोत्तमाः ।

कोणिसर्ग माहिषका दर्व्राश्चोलाः सकेरलाः ॥५०

सर्वे ते क्षत्रिया विप्रः धर्मस्तेषां निराकृतः ।

वसिष्ठवचनाद्राज्ञा सगरेण महात्मना ॥५१

स धर्मविजयी राजा विजित्येमां वसुन्धराम् ।

अश्व प्रचारयामास वाजिमेधाय दीक्षितः ॥५२

तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्व्वं दक्षिणे ।

वेलासमीपेऽपहतो भूमि चं व प्रवेशतः ॥५३

स त देशं तदा पुत्रैः खानयामास पार्थिवः ।

आसेदुस्तु तदा तस्य खत्यमाने महार्णवे ॥५४

तमादिपुरुषं देव हरि कृष्णं प्रजापतिम् ।

विष्णुं कपिलरूपेण स्वयन्तं पुरुषं तदा ॥५५

तस्य चक्षुःसमुत्थेन तेजसा प्रतिबुध्यतः ।

दग्धाः सर्वे मुनिश्चेष्ट श्रत्वारस्त्ववशोपिताः ॥५६

शक-यवन-काम्बोज-पारद-कोणिसर्ग-माहिषिक-दर्व-ओल-केरल ये हे विप्रो ! क्षत्रिय ही रहे, केवल इनका धर्म निराकृत कर दिया गया था और क्यों कि ये सभी अपने प्राणों की रक्षा के लिये वसिष्ठजी की शरण में चले गये थे अतएव श्रीगुरुदेव के वचनों से महात्मा सगर ने इनको फिर मारा नहीं था केवल इनके धर्म को परिवर्तित कराकर क्षत्रिय ही बना रहने दिया था ॥५०-५१॥ वह सगर धर्म का विजयी राजा हुआ था और उसने इस सम्पूर्ण वसुन्धरा को जीत कर अश्वमेध यज्ञ करने के लिये दीक्षित होकर उस यज्ञ के अश्व को वाजिमेध के सम्पूर्ण होने के लिये समस्त भूमि पर प्रचारित किया था ॥५२॥ चरण कराने वाले

के वह अश्वमेध का अश्व पूर्व दक्षिण समुद्र में वेला के समीप में अपहृत हुआ भूमि में प्रवेशित कर दिया गया था ॥५३॥ उस समय में उसके पुत्रों के द्वारा उस राजा ने उस देश को खुदवाया था । उस समय में उस महार्णव खनन किये जाने पर वहाँ पर उन सगर के पुत्रों ने देखा था कि वहाँ पर आदिपुरुष प्रजापति कृष्ण हरि देव विष्णु कपिल मुनि के स्वरूप में शयन कर रहे थे ॥५४-५५॥ जब जाग्रत हुए तो उनके शत्रुओं से निकले हुए तेज से ह मुनिगण ! वे सब सगर के पुत्र दग्ध होकर राख के ढेरी हो गये थे केवल चार अवशिष्ट रहे थे ॥५६॥

बहिकेतुः सुकेतुश्च तथा घर्मरथो नृपः ।

शूरः पञ्चनदश्चैव तस्य वंशकरः नृपाः ॥५७

प्रादाच्च तस्मै भगवान् हरिर्नारायणो वरम् ।

अक्षय वंशमिदवाकोः कीर्ति चाप्यनिवर्त्तिनीम् ॥५८

पुत्रं समुद्रं च विभुः स्वर्गं वासं तथाक्षयम् ।

समुद्रश्चाप्यर्पमादाय ववन्दे त महीपतिम् ॥५९

सागरस्य च लेभे स कर्मणा तेन तस्य ह ।

त्यञ्चाश्वमेधिकं सोऽश्वं समुद्रादुपलब्धवान् ॥६०

आजहाराश्वमेधानां शत स सुमहातपाः ।

पुत्रः सां च सहस्राणि पष्टिस्तस्येति नः श्रुतम् ॥६१

सगरास्यात्मजा धीराः कथं जाता महाबलाः ।

विक्रान्ताः पष्टिसाहस्राः धिधिना केन सप्तम ॥६२

बहिकेतु-सुकेतु-घर्मरथ नृप-शूर और पञ्चनद ये ही नृप उस के वंश के जाने वाले तेज बचे थे ॥५७॥ भगवान् हरि नारायण ने उसको वरदान दिया था कि राजा इक्ष्वाकु का वंश क्षय हित होगा और कभी निवृत्त न होने वाली कीर्ति सौक में रहेगी ॥५८॥ विभु ने पुत्र समुद्र को तथा अक्षय स्वर्गलोक का निवास प्रदान किया था । समुद्र ने अर्घ्य लेकर उस महीपति की बन्धना की थी ॥५९॥ उसने उसके उस कम से सागररत्न को प्राप्त किया और वह तू उस अश्वमेध यज्ञ के अश्व को समुद्र से प्राप्त करने वाला हुआ था ॥६०॥ उस सुन्दर महान् तप

के करने वाले ने एक भी अश्वमेध यज्ञों का यजन किया था । उसके साथ हजार पुत्र थे—ऐसा हमने सुना है ॥६१॥ मुनिगण ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! उस राजा सगर के किस विधि से महान् बलशाली परम वीर और विक्रान्त साठ हजार पुत्र समुत्पन्न हुए थे ? ॥६२॥

द्वे भाय्ये सगरस्यास्तां तपसा दग्धकिल्बिषे ।

ज्येष्ठा विदर्भदुहिता केशिनी नाम नामतः ॥६३॥

कनीयसी तु महती पत्नी परमधम्मिणी ।

अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥६४॥

ऊर्ध्वस्ताम्यां वरं प्रादात्तद्बुध्यन् द्विजोमताः ।

पष्टि पुत्रसहस्राणि गृह्णात्वेका नितम्बिनी ॥६५॥

एकं वंशघरं त्वेका यथेष्टं वरयत्विति ।

तत्वेका जगृहे पुत्रान् पष्टिसाहस्रसम्मितान् ॥६६॥

एकं वंशघरं त्वेका तमेत्याह ततो मुनिः ।

राजा पञ्चजनो नाम वभूव स महाद्युतिः ॥६७॥

इतरा सुपुत्रे तुम्बीं बीजपूर्णमिति श्रुतिः ।

तत्र पष्टिसहस्राणि गर्भास्ते तिलसम्मिताः ॥६८॥

घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान् गर्भान्निदधे ततः ॥६९॥

घात्रीश्चकंकशः प्रादात्तावतीः पोषणे नृपः ।

ततो दशसु मासेषु समुत्पत्युपयाक्रमम् ॥७०॥

श्रीलोमहर्षण मुनि ने कहा—उस राजा सगर के दो भायाँ थीं जो तपश्चर्या के द्वारा किल्बिषों को दग्ध कर देने वाली थीं । जो सबसे बड़ी रानी थी वह विदर्भ की पुत्री थी और उसका नाम केशिनी था ॥६३॥ छोटी रानी जो थी वह भी परम धर्म वाली पत्नी थी । यह अरिष्टनेमि की पुत्री थी और भूमण्डल में अपने रूप लावण्य में अनुपम था ॥६४॥ हे द्विजोत्तमो ! ऊर्ध्व ने उन दोनों को घरदान प्रदान किया । उसका अब आप लोग श्रवण करो । उन दोनों में एक नितम्बिनी साठ हजार पुत्रों की ग्रहण करे ॥६५॥ और उनमें केवल एक वंश चलाने वाली पुत्र प्राप्त करेगी । जो भी इन दोनों घरों में से

जिसको भी चाहे अपनी इच्छानुसार ग्रहण कर लेवे । उनमें से एक ने तो साठ हजार पुत्रों का प्राप्त करना ही वर प्राप्त कर लिया । और एक ने केवल एक वंशधर पुत्र की प्राप्ति का वरदान प्राप्त किया । तब मुनि ने कहा—ऐसा ही होगा । वह महती धृति वाला पञ्चजन नाम वाला राजा हुआ ॥६६-६७॥ दूसरी पत्नी ने एक वीरों से भरी हुई तुम्बी का प्रसव किया—ऐसा ही सुना जाता है । उसमें तिलो के समान साठ सहस्र गर्भों वे थे ॥६८॥ फिर यह किया गया कि घृत से भरे हुए कलशों में उन गर्भों को डाल दिया गया । राजा ने एक-एक गर्भ के लिये एक-एक घाय पोषण कार्य के लिये दे दी थी । इसके पश्चात् दश मासों में वे यथा क्रम समुत्पन्न हो गये थे ॥६९-७०॥

कुमारास्ते यथाकालं सगरप्रीतिवर्द्धनाः ।

पष्टिपुत्रसहस्राणि तस्यैवमभवन् द्विजाः ॥७१॥

गर्भादितानुमध्याद् जातानि पृथिवीपतेः ।

तेषां नारायण तेजः प्रविष्टानां महात्मनाम् ॥७२॥

एकः पञ्चजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह ।

शूरः पञ्चजनस्यासौदंशुमात्राम वीर्यवान् ॥७३॥

दिलीपस्तस्य तनयः खट्वाङ्ग इति विभ्रुतः ।

येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्तं प्राप्य जीवितम् ॥७४॥

त्रयोऽभिसन्धिता लोका बुद्ध्या सत्येन चानघाः ।

दिलीपस्य तु दायादो महाराजो भगीरथा ॥७५॥

यः स गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा महातारयत प्रभुः ।

समुद्रमानपञ्चनां दुहितृत्वेऽप्यकल्पयत् ॥७६॥

तस्माद्भागीरथी गङ्गा कथ्यते वसचिन्तकः ।

भगीरथसुतो राजा श्रुत इत्यभिविभ्रुतः ॥७७॥

वे समस्त कुमार बाल के अनुसार महाराज सगर की प्रीति की वृष्टि करने लगे हो गये थे । हे द्विजगण ! इस प्रकार से साठ हजार उस राजा के पुत्र हुए थे ॥७३॥ उस राजा के गर्भ दसायु मध्य से वे सब पुत्र समुत्पन्न हुए थे । वे सब महारमा नारायण के तेज में प्रविष्ट

हुए थे ॥७२॥ एक जो पञ्चजन नाम वाला पुत्र दूसरी पत्नी के हुआ वह राजा हुआ । उस पञ्चजन का महान् वीर्य वाला शूर अंशुमान् पुत्र हुआ । उसका पुत्र दिलीप था जो खट्वाङ्ग इस नाम से लोक में विश्रुत हुआ था जिसने स्वर्ग से यहाँ आकर एक मुहूर्त मात्र (दो घड़ी का समय) जीवित प्राप्त किया ॥७३-७४॥ इसने हे अनघो ! अपनी बुद्धि से और सत्य से तीनों लोकों को अभिसन्धित कर लिया । दिलीप का पुत्र महाराज भगीरथ हुए थे ॥७५॥ जिन प्रभु ने सरिताओं में परमं श्रेष्ठ गंगा का अवतारण किया था और इसको समुद्र में ले आये थे तथा दुहितृत्व में कल्पित कर दिया ॥७६॥ इसी कारण से वंश के विस्तार करने वालों के द्वारा यह भगीरथी गङ्गा कही जाया करती है । उन महाराज भगीरथ का पुत्र श्रुत इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥७७॥

नामागस्तु श्रुतस्यासीत् पुत्रः परमघाम्मिकः ।

अम्बरीषस्तु नाभागिः सिन्धुद्वीपपिताभवत् ॥७८॥

अयुताजित् दायादः सिन्धुद्वीपस्य वीर्यवान् ।

अयुताजित्सुतस्त्वासीदतुपर्णो महायशः ॥७९॥

दिव्याक्षहृदयशो वै राजा नलसखो बली ।

ऋतुपर्णसुतस्त्वासीदात्तं पर्णिमं हायशाः ॥८०॥

सुदासस्तस्य तनयो राजा इन्द्रमखोऽभवत् ।

सुदासस्य सुतः प्रोक्तः सीदासो नाम पार्थिवः ॥८१॥

रयातः कल्माषपादो वै राजा मित्रसहोऽभवत् ।

कल्माषपादस्य सुतः सव्वकर्मैति विश्रुतः ॥८२॥

अनरण्यस्तु पुत्रोऽभूद्विश्रुतः सव्वकर्मणः ।

अनरण्यसुतो निघ्नो निघ्नोतो द्वौ बभूवतुः ॥८३॥

अत्रिनमो रघुश्चैव पार्थिवपुत्रसत्तमौ ।

अनमित्रसुतो राजा विद्वान् दुलिदुहोऽभवत् ॥८४॥

श्रुत का पुत्र नामाग हुआ जो परमं घमस्मि था । नामाग का पुत्र राजा अम्बरीष हुआ और यह अम्बरीष सिन्धुद्वीप नामक पुत्र के पिता थे ॥७८॥ सिन्धुद्वीप का पुत्र बड़ा ही वीर्य वाला अयुताजित्

हुमा । इस अयुताजिन् के पुत्र का नाम अनुपर्ण था जो महाम् यशस्वी  
 हुआ ॥७६॥ यह दिव्य बली (पाशों) के हृदय का ताता था तथा बली  
 बली और राजा नल का सखा हुआ । इस अनुपर्ण का पुत्र बह्म  
 अतिक्रिय बाना आर्तपणि हुआ ॥८०॥ इसका पुत्र राजा सुदाम  
 समुत्पन्न हुआ जो कि देशराज इन्द्र का सखा था । इस सुदाम का सुत  
 सीदास नाम वाला राजा हुआ ॥८१॥ कल्माषपाद के नाम से विख्यात  
 वह राजा मित्रसहू हुआ । उस कल्माषपाद का सुत सर्व कर्मा-इस  
 नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥८२॥ सर्वकर्मा का आत्मज अनरण्य हुआ ।  
 अनरण्य का पुत्र विघ्न नाम वाला उत्पन्न हुआ । उस विघ्न के दो पुत्र  
 समुत्पन्न हुए थे ॥८३॥ ये दोनों पाण्डवों में परम श्रेष्ठ अनमित्र और  
 रघु नाम वाले थे । अनमित्र का सुत परम विद्वान् राजा दुर्लभिह  
 हुआ ॥८४॥

दिलीपस्तनयस्तस्य रामस्य प्रपितामहः ।

दीर्घबाहुर्दिलीपस्य रघुर्नाम्ना सुतोऽभवत् ॥८५॥

अयोध्याया महाराजो यः पुरासीन्महाबलः ।

अजस्तु राघवो जज्ञे तथा दशरथोऽप्यजात् ॥८६॥

रामो दशरथाजज्ञे धर्म्मरिमा सुमहायशाः ।

रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिसंज्ञितः ॥८७॥

अतिथिस्तु कुशाजज्ञे धर्म्मरिमा सुमहायशाः ।

अतिथेस्त्वभवत्पुत्रो निषघो नाम वीर्यवान् ॥८८॥

निषघस्य नमः पुत्रो नमः पुत्रो नलस्य तु ।

नमस्य पुण्डरीकस्तु क्षेमघन्वा ततः स्मृतः ॥८९॥

क्षेमघन्वसुतस्त्वासीद्देवानीका प्रतापवान् ।

आसीदहीनगुर्नाम देवानीकात्मजः प्रभुः ॥९०॥

अहीनगोस्तु दायादः सुघन्वा नाम पाण्डवः ।

सुघन्वनः सुतरचापि ततो जज्ञे शाली नृपः ॥९१॥

उस दुर्लभिह का पुत्र राजा दिभीप उत्पन्न हुआ जो धीराम का  
 पितामह (बाबा) था । राजा दिभीप का सुत दीर्घ बाहुओं वाला रघु



उत्पन्न हुआ ॥८५॥ जो अयोध्यापुरी में महान् बलवान् पहिले महाराज हुए थे । महाराज प्रतापी रघु के सुत का नाम अज या और उस अज के वीर्य से महाराज दशरथ की उत्पत्ति हुई ॥८६॥ श्रीराम ने दशरथ से जन्म ग्रहण किया जो परम धर्मात्मा और महान् यशस्वी हुए थे । श्रीराम के पुत्र का नाम कुश हुआ ॥८७॥ श्रीरामचन्द्र के सुत कुश से अतिथि नाम वाले पुत्र की समुत्पत्ति हुई । यह अतिथि बहुत ही धर्मात्मा और बहुत अधिक यश वाले हुए थे । इस अतिथि के वीर्य से निषध नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया । यह निषध महान् बल-विक्रम वाला राजा हुआ ॥८८॥ निषध से नल नामक पुत्र ने जन्म लिया और नल का पुत्र नभ हुआ । नभ के पुण्डरीक सुत ने जन्म लिया तथा पुण्डरीक के क्षेमधन्वा सुत उत्पन्न हुआ ॥८९॥ क्षेमधन्वा का पुत्र देवानीक था जो बहुत ही प्रताप वाला था । इस देवानीक से अहीनगु नामक पुत्र ने जन्मग्रहण किया । अहीनगु का दायद (पुत्र) सुधन्वा नाम वाला राजा हुआ । सुधवा के वीर्य से शल नाम धारी नृप ने प्रसव प्राप्त किया ॥९०-९१॥

उक्तो नाम स धर्मात्मा शलपुत्रो बभूव ह ।

वज्रनाजः सुतस्तस्य नलस्तस्य महात्मनः ॥९२॥

नलो द्वावेव विख्यातो पुराणे मुनिसत्तमाः ।

वीरसेनात्मजश्च यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्बहः ॥९३॥

इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येन प्रकीर्तिताः ।

एते विवस्वतो वंशे राजानो भूरिस्तेजसाः ॥९४॥

पठन् सम्यगिमां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः ।

श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च ।

प्रजावानेति सायुज्यमादित्यस्य विवस्वतः ॥९५॥

उक्त नाम वाला परम धार्मिक राजा शल का सुत समुत्पन्न हुआ । इसका पुत्र वज्रनाभ और उस महात्मा वज्रनाभ का सुत नल हुआ ॥९२॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! पुराण में दो ही नल विख्यात हुए हैं । राजा वीरसेन का पुत्र जो इक्ष्वाकु के कुल का उद्बहन करने वाला था ॥९३॥

यही पर प्रधान रूप से उन्हीं नृपों का वर्णन किया गया है जो इक्ष्वाकु  
क वंश में समुत्पन्न हुए हैं । ये विवस्वान् के वंश में बहुत अधिक तेज  
वाले नृप हुए हैं ॥६४॥ जो इन विवस्वान् आदित्य की सृष्टि की ओर  
प्रजापति की पृष्टि के देने वाले आद्य देव की सृष्टि को पठता है वह प्रजा-  
वान् और विवस्वान् आदित्य के सामुज्य को प्राप्त होता है ॥६५॥

### ६—सोमोत्पत्ति वर्णन

पिता सोमस्य सो विप्रा जज्ञंऽग्निमंगवानृषिः ।  
ब्रह्मणो मानसात्पूर्वं प्रजासर्गं विधित्सतः ॥१॥  
अनुत्तरं नाम सपो येन तप्यं हि तत्पुरा ।  
श्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि ना श्रुतम् ॥२॥  
ऊर्ध्वमाचक्रमेतस्य रेतः सोमरवमोयिवान् ।  
नेत्राभ्यां वारि सुम्राव दशधा द्यौनयन् दिशः ॥३॥  
तं गर्भं विधिनादिष्टो दश देव्यो ददुस्ततः ।  
समेत्य धारयामासुर्न च ताः समशक्नुवन् ॥४॥  
यदा न धारणे शक्तास्तस्य गर्भस्य ता दिशः ।  
सतस्ताभिः स त्यक्तस्तु निपपात वसुन्धराम् ॥५॥  
पतितं सोममालोचय ब्रह्मा लोकपितामहः ।  
रयमारोपयामास लोकानां हितकाम्यया ॥६॥  
तस्मिन्निपतितं देवाः पूत्रेऽग्नेः परमात्मनि ।  
सुष्टुबुधं ह्यणः पुत्रास्तयान्ये मुनिसत्तमाः ॥७॥

श्रीनोमहर्षणजी ने कहा—हे विप्रो ! प्रजा के सर्ग के करने की  
इच्छा वाले ब्रह्माजी के मन से पूर्व में मगवान् अग्नि ऋषि उत्पन्न हुए  
थे ॥१॥ जिसने पढ़िसे समय अनुत्तर नाम ब्रह्मा तब तीन हजार दिव्य  
वर्ष तक तपा था ऐसा हमने सुना है ॥२॥ उनका रेतस् ऊर्ध्व भाग में  
आशान्न हो गया और वह सोमस को प्राप्त हो गया । दशों दिशामें

को चोत्तिष्ठ करता हुआ उनके नेत्रों से जल का क्षवण हुआ ॥३॥ विधि ने उस गर्भ को आशा दी थी और फिर दश देवियां दी थीं । उनने एकत्रित होकर धारण किया किन्तु वे समर्थ नहीं हुई थीं ॥४॥ जब वे दशों दिशाएँ उस गर्भ को धारण करने में समर्थ न हुई थीं तो इसके अनन्तर उन्होंने उसका परित्याग कर दिया और वह वसुन्धरा पर गिर गया ॥५॥ लोकों के पितामह श्रीब्रह्माजी ने सोम को गिरता हुआ देखा तो उन्होंने लोकों के हित की कामना से उसको एक रथपर समारोपित कर दिया ॥६॥ देवगणों ने अग्नि के पुत्र परमात्मा के निपटित हो जाने पर तब ब्रह्माजी के पुत्र तथा अन्यो ने हे मुनि-श्रेष्ठो ! स्तवन किया ॥७॥

तस्य संस्तूयमानस्य तेजः सोमस्य भास्वतः ।

आप्यायनाय लोकानां भावयामास सर्वतः ॥८॥

स तेन रथमुख्येन सागरान्तां वसुन्धराम् ।

त्रिःसप्तकृत्वोऽतियशाश्चकाराभिप्रदक्षिणाम् ॥९॥

तस्य यच्चरितं तेजः पृथिवीमन्वपद्यत ।

ओषध्यस्ताः समुद्भूता याभिः सन्धार्यते जगत् ॥१०॥

स लब्धतेजा भगवान् संस्तवंश्च स्वकर्मभिः ।

तपस्तेपे महाभागः पद्मानां दर्शनाय सः ॥११॥

ततस्तस्मै ददौ राज्यं ब्रह्मा ब्रह्मविदांवरः ।

बीजोपघ्नीनां विप्राणामपां च मुनिसत्तमाः ॥१२॥

स तत्प्राप्य महाराज्यं सोमः सोम्यवतांवरः ।

समाजह्य राजसूयं सहस्रशतदक्षिणाम् ॥१३॥

दक्षिणामददात् सोमस्त्रील्लोकानिति नः श्रुतम् ।

तेभ्यो ब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः सदस्येभ्यश्च भो द्विजाः ॥१४॥

उस भली भाँति संस्तुत और भासमान सोम का तेज लोकों को आप्यायित करने के लिये सभी ओर भावित हुआ ॥८॥ उस सोम ने अपने प्रमुख रथ के द्वारा सागर की समाप्ति पर्यन्त - सम्पूर्ण - वसुन्धरा का अत्यधिक दश घासे ने इसकी चार बार भूमि की प्रदक्षिणा की ॥९॥

उसका जो तेज इस पृथ्वी पर आया और चारों ओर भ्रमण किया  
 तो उससे वे समस्त ओषधियाँ समुत्पन्न हुई थी जिनके द्वारा यह जगत्  
 सधारण किया जाता है ॥१०॥ उस तेज को प्राप्त कर लेने वाले  
 मगवान् ने संस्तवों तथा स्तवों के द्वारा महामाग उसने पशु के दर्शन  
 के लिये तपश्चर्या की थी ॥११॥ हे मुनिगणों ! इसके अनन्तर श्रीब्रह्मा  
 जी ने जो वेदों के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ थे फिर उस सोमदेव को  
 बीजोषधियों का—विप्रों का और जलो का राज्य प्रदान कर दिया  
 ॥१२॥ सौम्यता रखने वालों में परमोत्तम उस सोम ने उस महान् राज्य  
 को प्राप्त करके सहस्रशत दक्षिणा वाले राजसूय यज्ञ का यजन किया  
 ॥१३॥ उस यज्ञ में हमने ऐसा ही सुना है कि सोम ने तीनों लोकों  
 को दक्षिणा में दे दिया । हे द्विजगणों ! वह दक्षिणा उन्हीं ब्रह्मपियों  
 में प्रमुद्धों और सदस्यों को दी गयी ॥१४॥

हिरण्यगर्भो ब्रह्माग्निर्भृंगुश्च ऋत्विजोऽभवत् ।

सदस्योऽभूद्वरिस्तत्र मुनिभिर्वन्दुर्भवत् ॥१५॥

त सिनीध्रं कुहूश्चैव द्युतिः पुष्टिः प्रभा वसुः ।

कीर्तिर्घृतिश्च लक्ष्मीश्च नव दध्यः सिधेविरे ॥१६॥

प्राध्यावभृथमप्यग्न्यं सध्वंद्वपिपूजितः ।

विरराजाधिराजेन्द्रो दशधा भासयन् दिशः ॥१७॥

तस्य तत्प्राप्य दुष्प्राप्यमैश्वर्यं मृपिसत्कृतम् ।

विबभ्रा मतिस्ताताविनयादनयाहता ॥१८॥

यृहस्पतेः स धे मायर्षमैश्वर्यमदमोहितः ।

जहार तरसा सोमो विमरयाङ्गिरसः सुतम् ॥१९॥

स यान्यमानो देवैश्च तथा देवपिभिर्बुधैः ।

मेधं व्यसज्जयत्तारां तस्मा आङ्गिरसे तदा ॥२०॥

उशना तस्य जग्राह पाणिमाङ्गिरसस्तथा ।

रुद्रश्च पाणि जग्राह गृहीत्वाजगधं घनुः ॥२१॥

उम सोमदेव के द्वारा किये हुए राजसूय यज्ञ में हिरण्य गर्भं ब्रह्मा-अग्नि  
 और भृगु ऋत्विज हुए थे और उद्यमें सदस्य बहूय-से मुनिवों के मण्डल

से युक्त श्रीहरि हुए थे ॥१५॥ उसका सेवन सिनी-कुहू-धृति पुष्टि-प्रभा-वसु-कीर्ति-धृति-और सहस्री नी देवियों ने किया ॥१६॥ समस्त देवपियों के द्वारा पूजित वह अविराजेन्द्र अत्युत्तम अवभृथ को प्राप्त कर दस प्रकार से दिशाओं को भासित करता हुआ शोभित हुए थे ॥१७॥ ऋषियों के द्वारा सत्कृत-दुष्प्राप्य उस ऐश्वर्य को प्राप्त करके अविनय से आहूत उसकी मति हे साठ ! विभ्रमित हो गई थी ॥१८॥ उस ऐश्वर्य के मद से मोहित होते हुए उसने अंगिरा के पुत्र वृहस्पति का अपमान करके सोमदेव ने वेग के साथ वृहस्पति की भार्या का हरण कर लिया ॥१९॥ उस समय में सब देवगणों ने और देवपियों ने उस सोम से बारम्बार याचना की थी सो भी उस समय में उस सोम ने वृहस्पति की पत्नी तारा को उसके लिये नहीं दिया था ॥२०॥ उषना (शुक्राचार्य) ने उस अंगिरा के पुत्र वृहस्पति की पाणि का ग्रहण किया था अर्थात् वृहस्पति की सहायता की थी तथा रुद्रदेव ने भी अपना अजगव धनुष ग्रहण करके वृहस्पति की सहायता की थी ॥२१॥

तेन ब्रह्मशिरो नाम परमास्त्रं महात्मना ।

उद्दिश्य देवानुत्सृष्टं येनपां नाशितं यशः ॥२२॥

तस्य तदयुद्धमभवत् प्रख्यातं तारकामयम् ।

देवानां दानवानाश्च लोकक्षयकरं महत् ॥२३॥

तत्र शिष्टाश्च ये देवास्तु पिताश्च ये द्विजाः ।

ब्रह्माणं शरणं जग्मुरादिदेवं सनातनम् ॥२४॥

तदा निवार्योशनसं त वै रुद्रञ्च शङ्करम् ।

ददावाङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः ॥२५॥

तामस्तःप्रसवां दृष्ट्वा क्रुद्धः प्राह वृहस्पतिः ।

मदीयायां न ते योनौ गर्भो धार्य्यं कथञ्चन ॥२६॥

इषीकास्तम्बमासाद्य गर्भं सा चोत्ससज्जं ह ।

जातमासः स भगवान् देवानामाक्षिपद्वपुः ॥२७॥

ततः संशयमापन्नास्तारामूचुः सुरोत्तमा ।

सत्यं ब्रूहि सुतः कस्य सोमस्यार्थं वृहस्पतेः ॥२८॥

उस महात्मा ने भी ब्रह्मशिर नाम वाला परमात्म को देवों का उद्देश्य करके छोड़ दिया जिससे उसका यश नष्ट हो गया ॥२२॥ वहाँ पर बड़ा युद्ध हुआ था जो तारकामय युद्ध के नाम से प्रसिद्ध हो गया यह ऐसा भयानक युद्ध हुआ जो देवों और दानवों का लोको का क्षय करने वाला बहुत बड़ा था ॥२३॥ वहाँ पर जो परम शिष्ट देवगण थे तथा तुषित द्विजगण ये वे सब आदि देव सनातन ब्रह्माजी की शरण में प्राप्त हो गये थे ॥२४॥ उस समय में पितामह ने स्वयं वहीं उपस्थित होकर उद्यना को तथा शकर भगवान् रुद्र को निवारित किया और उस तारा बृहस्पति की पत्नी को उनको दे दिया ॥२५॥ उस अपनी पत्नी तारा को गमिणी देतकर बृहस्पतिजी को बहुत अधिक क्रोध आया और उन्होंने कहा—मेरी योनि में तुझको किसी भी प्रकार से गर्भ नहीं धारण करना चाहिए था ॥२६॥ उसने फिर इषीका स्तम्भ पर जाकर अपने उस गर्भ का उत्सर्ग कर दिया । वह उत्पन्न होते ही भगवान् ने अपने वपु को देवों के मध्य में आक्षिप्त किया था ॥२७॥ उस समय में बहुत अधिक समय को प्राप्त हुए देवों ने उसी समय में सुरोत्तमो ने उस तारा से पूछा था—तू यह सत्य बात हमको बतला दे कि यह गर्भ किसका है सोमदेव का कीर्ति से हुआ है अथवा बृहस्पति का है ॥२८॥

पृच्छयमाना यदा देवैर्नाह सा विबुधान् किल ।  
 तदा तां शप्तुमारब्धः कुमारो दस्युहन्तमः । २ ।  
 त निवार्य ततो ब्रह्मा तारा पप्रच्छ सशयम् ।  
 यदस तस्य तद्व हि तारे कस्य सुतस्त्वयम् । ३०  
 उवाच प्राञ्जलिः सा तसोमस्येति पितामहम् ।  
 तदा त मूर्ध्निचाघ्राय सोमो राजा सुतप्रति ॥३१॥  
 बुध इत्यकरोन्नाम तस्य बालस्य धीमतः ।  
 प्रतिब्रूलश्च गगने समभ्युत्तिष्ठते यूथः ॥३२॥  
 उत्पादयामास तदा पुंसं वै राजबुत्रिकाम् ।  
 तस्यापत्य महातेजा बभूवैलः पुरुरवाः ॥३३॥

उर्व्वंश्यां जज्ञिरे यस्य पुत्राः सप्त महात्मनः ।

एतत् सोमस्य वो जन्म कीर्तितं कीर्त्तिवर्द्धनम् ॥३४॥

वंशमस्य मुनिश्रेष्ठाः कीर्त्यमानं निबोधत ।

घन्यमायुष्यमारोग्यं पुण्यं सङ्कल्पसाधनम् ॥

सोमस्य जन्म श्रुत्वेव पापेभ्यो विप्रमुच्यते ॥३५॥

इस प्रकार से जब वह तारा देवों के द्वारा बहुत पूछी भी गयी तो भी उसने देवों को यह नहीं बताया कि यह गर्भ सोम का था । उस समय मे दस्युओं के हनन करने वाले कुमार उसको शाप देने के लिये उद्यत हो गये थे । उसी समय में उनको ब्रह्माजी ने रोक दिया और स्वयं उन्होंने उस तारा से उस संवत्स के वाचत पूछा था—हे तारा ! इस वेष्य में जो भी कुछ सत्य बात हो वही तू बतला दे कि यह पुत्र तेरे गर्भ में किसका आया था ॥३६-३७॥ उस समय में वह तारा हाथ जोड़कर पितामह से बोली कि यह गर्भ सोमदेव के वीर्य से ही मेरे उदर में हुआ । उसी समय में राजा सोम ने उस सुत के मस्तक का घ्राण किया ॥३९॥ फिर सोमदेव ने उसका नाम बुध रख दिया क्यों कि वह बालक बहुत बुद्धिमान् था । बुध गगन में प्रतिकूल समुत्थित हुआ करता है ॥३२॥ उस समय में उसने पुत्र और राजपुत्रिका को उत्पन्न किया था । उसकी सन्तति महान् तेजस्वी पुरुषवा ऐस हुआ था ॥३३॥ जिस महारमा के उर्व्वंशी में सात पुत्र समुत्पन्न हुए थे । यह सोमदेव की उत्पत्ति का वर्णन हमने आपको सुना दिया है जो कीर्त्ति को बढ़ाने वाला है ॥३४॥ हे मुनिगणों ! इसके वंश का कीर्त्तन करना परम घन्य—आयु के बढ़ाने वाला—आरोग्य-प्रद तथा परम पुण्य प्रदान करने वाला और मन के मनोरथों का पूर्ण करने वाला होता है । इस सोमदेव के जन्म का कथा का ध्वनन मात्र करने ही से मनुष्य पापों से छूट जाया करता है ॥३५॥

## ७-सोमवंशवर्णन

बुधस्य तु मुनिधृष्टा विद्वान् पुत्रः पुरुरवाः ॥

तेजस्वी दानशीलश्च यज्वा विपलदक्षिणः ॥१॥

ब्रह्मवादी पराक्रान्तः शत्रुभिर्युधि दुर्दमः ।

लाहर्ता चाग्निहोत्रस्य यज्ञानाञ्च महीपतिः ॥२॥

सत्यवादी पुष्पमनिः सम्भक् संवृणमंधुनः ।

वतीव त्रिषु लोकेषु यशसाप्रदिप्तः सदा ॥३॥

सं ब्रह्मवादिनं दान् घर्ममंशं सत्यवादिनम् ।

उर्वशी वरयामास हित्वा मानं यशस्विनी ॥४॥

तया सहावसद्राजा दश वर्णणि पञ्च च ।

पटपञ्च सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ च भो द्विजाः ॥५॥

वनं चैत्ररये रम्ये तथा मन्दाकिनोत्तटे ।

अलकायां विशालाया नन्दने च वनोत्तमे ॥६॥

उत्तरान् स कुरुन् प्राप्य मनोरमफलद्रुमान् ।

गन्धमादनपादेषु मेरुमृङ्गे तथोत्तरे ॥७॥

धीनोमहर्षग जी ने कहा—१ मुनिधेशो ! बुध का पुत्र पुरुरवा बहुत विद्वान् था—तेजस्वी-दान देने के स्वभाव वाला-यज्ञ करने वाला-विशेष दक्षिण देने वाला-ब्रह्मवादी-दुर्दम तथा युद्ध में शत्रुओं के द्वारा पराक्रान्त-अग्निहोत्र करने वाला तथा यह महीपति यशों के करने वाला हुआ ॥१-२॥ राजा पुरुरवा सदा सत्य भाषन करने वाला पुष्पमय मणि से युक्त-वती-मौलि मंधुन करने वाला था और भूमण्डल में सदा तीनों लोकों में अनुग्रह यज्ञ से युक्त हुआ ॥३॥ परम यशस्विनी उर्वशी ने उस ब्रह्मवादी-परम शांत स्वभाव वाले-धर्म के ज्ञाता और सत्यवादी नृप पुरुरवा को अपना मान त्याग कर वर्ण कर लिया था ॥४॥ हे द्विजगण ! उस उर्वशी के साथ उस राजा ने १८७५६५१० वर्ष तक निवास किया । चैत्ररय अति सुन्दर वन में मन्दाकिनी के तट पर-विशाल अलकानुरी में और परम उत्तम नन्दन वन में उर्वशी के साथ रमण किया । उसने सुन्दर फलों से युक्त द्रुमों वाले उत्तर कुण्ड



देशों को प्राप्त कर लिया । गन्धमादन पर्वत के प्रान्तों में तथा उत्तर मेरु पर्वत के शिखर पर भी उसने सर्वश्री के साथ आनन्द विहार किया था ॥१५-७॥

एतेषु वनमुख्येषु सुरैराचरितेषु च ।

उन्वेषया सहितो राजा रेमे परमया मुदा ॥८॥

देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते ।

राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः ॥९॥

एवम्प्रभावो राजासीदलस्तु नरसत्तमः ॥१०॥

ऐलपुत्रा बभूवुस्ते सप्त देवसुतोत्तमाः ।

गन्धर्वल्लोके विदिता आयुर्धोमानमावसुः ॥११॥

विश्वायुश्चैव धर्मर्त्तिमा श्रुतायुश्च तथापरः ।

दृढायुश्च वनायुश्च बह्वायुश्चोन्वशीसुताः ॥१२॥

अमावसोस्तु दायादो भीमो राजाय राजराट् ।

धीमान् भीमस्य दायादो राजासीत्काञ्चनप्रभः ॥१३॥

विद्वांस्तु काञ्चनस्यापि सुहोसोऽभून्महाबलः ।

सुहोतस्याभवज्जहनुः केशिन्या गर्भसम्भवः ॥१४॥

इन उपर्युक्त प्रमुख वनों में जहाँ पर देवगण विहार किया करते हैं अत्यधिक आनन्द के साथ उस राजा ने उस सर्वश्री अप्सरा के साथ रमण किया ॥८॥ उस पृथिवीपति ने अपनी राजधानी महान् पुण्यतम और बड़े महर्षियों के द्वारा अभिष्टुत प्रयाग में बनायी थी ॥९॥ राजा ऐल मनुष्यों में परम श्रेष्ठ इस प्रकार के प्रभाव से सम्पन्न हुआ ॥१०॥ श्री महर्षि लोमहर्षणजी ने कहा—उस ऐल के यहाँ देवों के पुत्रों के समान सात सुतो ने जन्म लिया । ये सब गन्धर्व लोक में प्रख्यात थे इनके नाम आयु-धीमान्-अमावसु-विश्वायु धर्मर्त्तिमा श्रुतायु-दृढायु और वनायु तथा बह्वायु ये सात सर्वश्री से समुत्पन्न पुत्र थे ॥११-१२॥ राजाओं का राजा भीम राजा अमावसु का सुत हुआ था तथा उस राजा भीम का दायाद काञ्चनप्रभ नाम वाला उत्पन्न हुआ ॥१३॥ उस

काञ्चनप्रम हा पुत्र महान् बल बासा सुहोत्र दुआ पा । इस सुहोत्र  
का मत्स्य जह्नु हुमा जो केशिनी के गर्भ से समुत्पन्न हुआ पा ॥१४॥

आजह्ने यो महत् ससं सर्पमेघ महामखम् ।

पतिलोभेन यं गङ्गा पतित्वेन ससार ह ॥१५॥

नेच्छतः प्लावयामास तस्य गङ्गा तदा सदः ।

स तथा प्लावित दृष्ट्वा यज्ञवाट समन्ततः ॥१६॥

सोहोत्रिरश्वदगङ्गा क्रुद्धो राजा द्वित्रोत्तमाः ।

एष ते विफल यत्न पिवन्नम्मः करोम्यहम् ॥१७॥

अस्य गङ्गेऽवलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि ।

जह्नु राजपिणा पीता गङ्गा दृष्ट्वा महर्षयः ॥१८॥

उपनिन्युमहामागा दुहितृत्वेन जाह्नवीम् ।

युवनाश्वस्य पुत्री तु कावेरी जह्नु रावहत् ॥१९॥

युवनाश्वस्य शापेन गङ्गाद्धनं विनिगंता ।

कावेरी सरिता श्रेष्ठा जह्नुर्मामिनिन्दिताम् ॥२०॥

जह्नुस्तु दयितं पुंसं मुनयं नाम धाम्मिकम् ।

कावेर्या जनयामास अजकस्तस्य आत्मजः ॥२१॥

यह ऐसा प्रतापी जह्नु राजा पा जिसने महान् सर्पमेघ नामक महा-  
मघ सत्र किया और जिसको गंगा देवी ने अपना पतिवरण करने के  
नोध से इसके समीप में गमन किया ॥१५॥ इच्छा न रखने वाले उस  
राजा की समाधी उस समय में गंगा ने प्लावित कर दिया । उस  
समय में उस गंगा के द्वारा चारों ओर से प्लावित उस अग्ने यज्ञवाट  
को देखकर हे द्वित्रगण ! उस सोहोत्रि राजा ने अत्यन्त क्रुपित होकर  
उस समय में गंगा की शाय दे दिया या और कहा या कि यह तेरा यत्न  
विफल है । मैं तेरे सम्पूर्ण अन्न का पान किये सेना हूँ । हे गये ! तू  
इस तेरे अमिमान का बहुत ही शीघ्र फल प्राप्त करेगी । अब राजा  
जह्नु के द्वारा सम्पूर्ण गंगा के अन्न का पान करने वाला देखा तो  
उमस्त महर्षियों ने उस महाभाग गंगा की बेटी बना कर जाह्नवी उप-  
नीत किया । युवनाश्व की पुत्री कावेरी को जह्नु ने बहू बना लिया या

॥१६-१६॥ यह युवनाश्व के शाप से गंगा के अर्ध भाग से विनिर्मल हुई थी समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ कावेरी सरिता जहनु की अनिन्दिते मार्या थी । उस कावेरी में जहनु ने परम धार्मिक महानघ नामक पुत्र को समुत्पन्न किया और इसके पुत्र का नाम अजक हुआ था ॥२०-२१॥

अजकस्य तु दायादो बलाकाश्वो महीपतिः ।

बभूव मृगयाशीलः कुशस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥२२

कुशपुत्रा बभूवुहि चत्वारो देववर्चसः ।

कुशिकः कुशानामश्च कुशाम्बो मूर्तिमांस्तथा ॥२३

वल्लवैः सह सवृद्धो राजा वनचरः सदा ॥

कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिन्द्रसमं प्रभुः ॥२४

लभेयमिति तं शकृन्नानादभ्येत्य जज्ञिवान् ।

पूर्णे वरसहस्रे वै ततः शक्रो ह्यपश्यत् ॥२५

अत्युग्रतपसं दृष्ट्वा सहस्राक्षः पुरन्दरः ।

समर्थः पुत्रजनने स्वयमेवास्य शाश्वतः ॥२६

पुत्रार्थं कल्पयामास देवेन्द्रः सुरसत्तमः ।

स गाधिरभवद्राजा मघवान् कौशिका स्वयम् ॥२७

पौरकुत्साभवद्भ्रात्र्या गाधिस्तस्यामजायत ।

गाधेः कन्या महामागा नाम्ना सत्यवती शुभा ॥२८

राजा अजक दायाद बलाकाश्व नाम वाला महीपति हुआ था ।

यह बहुत ही अधिक मृगया करने के स्वभाव वाला था । इसके यहाँ कुश नाम वाले पुत्र ने जन्म धारण किया ॥२२॥ इस कुश के वीर्य से चार देवों के समान वर्चस वाले पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया । उनके नाम कुशिक-कुशानाम-कुशाम्ब और मूर्तिमान ये हुए थे ॥२३॥ वल्लव के साथ सवर्धन पाने वाला राजा सदा वनचर ही रहा । कुशिक ने बड़ा धीर तप किया था कि मैं इन्द्र के समान पुत्र की प्राप्ति करूँ । इसके पश्चात् त्रास से इन्द्र ने उसके समीप आकर स्वयं ही जन्म ग्रहण किया । एक सहस्र वर्षों के पूर्ण होजाने पर फिर इन्द्र ने उसको देखा था । पुत्र के जनन में समर्थ उसने स्वयं ही पुत्र के लिये अपने आपकी

बलिष्ठ किया और सुर श्रेष्ठ देवेन्द्र ही स्वयं पुत्र रूप से समुत्पन्न हुआ था । वह राजा गाधि नाम वाला हुआ और वह कीशिक स्वयं ही मघवान् था ॥२४-२७॥ उसकी भार्या पोरकुत्सा थी । उसमें ही गाधि ने जन्म लिया । उस गाधि राजा को कन्या महामाता परम शुभ सरयवती नाम वाली हुई थी ॥२८॥

ता गाधिः काव्यपुत्राय ऋचीकाय ददौ प्रभुः ।

तस्याः प्रीतः स वै भर्ता भार्गवो भृगुनन्दनः ॥२९॥

पुत्रार्थं साधयामास चरुं गाधेस्त्वर्थं च ।

उवाचाहूय तां भार्यामृचीको भार्गवस्तदा ॥३०॥

उपयोज्यश्चरुय स्वया मासा स्वयं शुभे ।

तस्यां जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान्क्षत्रियपंभः ॥३१॥

अजेयः क्षत्रियलोके क्षत्रियपंभसूदनः ।

तथापि पुत्रं कल्याणि घृतिगन्तं तपोधनम् ॥३२॥

समात्मकं द्विजश्रुष्ठं चरुरेव विद्यास्यति ।

एवमुक्त्या तु ता भार्यामृचीको भृगुनन्दनः ॥३३॥

तपस्यभिरतो निर्यमरप्य प्रविवेश ह ।

गाधिः सदारम्तु तदा ऋचीकाश्रममभ्यगात् ॥३४॥

तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सुता द्रष्टुं नरेश्वरः ।

चरुद्वयं गृहीत्वा सा श्रुपे सत्यवती तदा ॥३५॥

घरुमादाय यत्नेन सा तु मात्रे न्यवेदयत् ।

माता तु तस्या दैवेन दुहित्रे स्व चरुं ददौ ॥३६॥

राजा गाधि ने उस अरुची कन्या को काव्य के पुत्र ऋचीक के लिये समर्पित कर दिया । उसने भर्ता भृगुनन्दन भार्गव ने परम प्रसन्न होकर गाधि के पुत्र समुत्पन्न होने के लिये चरु का मागन किया । उस समय में भार्गव ऋचीक ने उस भार्या को बुलाकर कहा—हे शुभे ! तुझे और तुम्हारी माता को स्वयं इस चरु का उपयोग करना चाहिए । उसमें क्षत्रियों में परम श्रेष्ठ—दीप्तिमान् पुत्र समुत्पन्न होगा ॥२९-३१॥ यह सोच में क्षत्रियों के द्वारा अजेय और स्वयं क्षत्रियों में परम श्रेष्ठ होगा

तथा बड़े २ वीर सत्रियों का सूदन करने वाला होगा । हे कल्याणि ! यह चर जो तुझे दिया जा रहा है वह तुझको भी परम तपस्वी-श्रुति-मान्-गम स्वरूप-द्विजों में श्रेष्ठ पुत्र प्रदान करेगा । इस प्रकार से कह और अपनी भार्या को भली-भाँति दोनों चरों के विषय में समझा कर भृगुनन्दन ऋचीक नित्य ही तपश्चर्या में अभिरुत होते हुए वन में प्रवेश कर गये थे । उसी समय में गांधि राजा आनी परनी के सहित ऋचीक मुनि के आश्रम में प्राप्त हो गये थे ॥३२-३४॥ वह नरेश्वर तीर्थ यात्रा के प्रसंग से वहाँ पर अपनी पुत्री को देखने के लिये समागत हो गये थे । उस समय में वह सत्यवती ऋषि के दोनों चरों को ग्रहण कर वहाँ उपस्थित हो गई । उसने बड़े ही यत्न पूर्वक चर को लेकर माताजी को दे दिया । माता ने दैव बलात् उस अपनी पुत्री को अपना चर दे दिया ॥३५-३६॥

तस्याश्चरुमयाज्ञानादात्मसंस्थं चकार ह ।

अथ सत्यवती सर्व्वं क्षत्रियान्तकरं तदा ॥३७

धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शना ।

तामृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाभ्युपसृत्य च ॥३८

ततोऽब्रवीद्द्विजश्रेष्ठः स्वां भार्यां वरवर्णिनीम् ।

मात्रासि वञ्चिता भद्रे चरुवत्यासहेतुना ॥३९

जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्मातिदारुणः ।

भ्राता जनिष्यते चापि ब्रह्मभूतस्तपोधन ॥४०

विश्वं हि ब्रह्म तरसा मया तस्मिन् समर्पितम् ।

एवमुक्ता महामाग भर्त्रा सत्यवती तदा ॥४१

प्रसादयामास पतिं पुत्रो मे नेहशो भवेत् ।

ब्राह्मणापसदस्त्वत्त इत्युक्तो मुनिरब्रवीत् ॥४२

इसके अनन्तर अज्ञान से उसने अपनी माता का चर आत्म संस्थ कर लिया था । इसके पश्चात् उस समय में समस्त क्षत्रियों के अन्त कर देने वाले गर्भ को सत्यवती ने धारण किया और दीप्त वपु से परम घोर दर्शन वाली हो गई थी । इसके उपरान्त समीप में आकर ऋचीक ऋषि

ने चीर के द्वारा देखा था । इनके अन्तर वह द्विजश्रेष्ठ अपनी बख-  
 णिनी माता से बोले—हे भद्र ! यह के प्यारान कर देने के कारण से  
 अपनी माता के द्वारा मुनको बन्धित कर दिया गया है ॥३७-३८॥ तू  
 अब कुर कनी के करने वाला परम दास्य पुत्र को जन्म देगी और  
 तेरा भाई ब्रह्मसूत्र परम उत्तमो समुत्तम होय ॥४०॥ मैंने नम्रुर्न ब्रह्म  
 हर के द्वारा उसने सन्धित कर दिया । इस प्रकार से जब यह महान्  
 मानवानो करने स्वामी के द्वारा कही गयी थी तो उस सत्यवती ने  
 करने पति को प्रज्जल किया कि मेरा पुत्र इस प्रकार का न होवे । मार  
 से ब्राह्मणों ने नीच पुत्र नहीं होना चाहिये । जब इस तरह से पत्नी के  
 द्वारा बहुत अधिक प्राप्ति की गयी थी मुनि ने कहा—॥४१-४२॥

नैव सङ्कुलितः कानो मया भद्रे तपान्स्त्विति ।

उग्रकर्म्म नवेत् पुत्रः पितृमनोश्च वारणात् ॥४३

पुनः सत्यवती वानपनेयमुक्त्वा ब्रवीदिदम् ।

इच्छन्लोकाननि मुने नृजेया किं पुनः सुतम् ॥४४

शनात्मकनृजु त्व मे पुत्रं दानुनिहार्हनि ।

कामनेवविधः पीथो नम म्यात्तार च प्रमो ॥४५

यद्यन्यथा न शक्यं वै कर्तुं नेनद्विजोत्तम ।

ततः प्रनादमव रोत् स तस्यान्तपमो वसान् ॥४६

पुत्रे नाम्नि विद्येयो मे पीथे वा वरवर्णिनि ।

त्वया यथोक्तं वचनं तया भद्रे भविष्यति ॥४७

ततः सत्यवती पुष्टं जनयामासु भागवम् ।

तपस्यमिरत दान्त जमदग्नि शनात्मकम् ॥४८

भृगोजंगत्या वंशेऽस्तिञ्जमदग्निरजायत ।

सा हि सत्यवती पुण्या सरमधर्मपरायणा ॥४९

अधिक मुनि ने कहा—हे भद्र ! मैंने कभी भी मन में ऐसा सफल  
 नहीं किया कि ऐसा होवे । जिन्ना और माता के कारण से तेरा पुत्र  
 उग्र कर्मों के करने वाला होवेगा ॥४३॥ फिर सत्यवती ने इस प्रकार  
 से वाक्य को कह कर यह कहा—हे मुनिवर ! लोगों को चाहते हुए

भी आप फिर क्यो पुत्र का सृजन करते हैं । आप मे तो ऐसी सामर्थ्य है कि आप परम सीधा राम स्वरूप पुत्र प्रदान करने के योग्य हैं । हे प्रभो ! हे द्विजात्तम ! यदि यह अन्यथा नहीं किया जा सकता है तो यह तो आप कर सकते हैं कि भले ही मेरा और आपका पौत्र इस प्रकार का हो जावे । इसके उपरान्त उस ऋषि ने अपने तप के बल से उस पर प्रसन्नता की थी ॥४४-४६॥ हे वर वर्णिनि ! मेरे पुत्र में अथवा पौत्र मे विशेषता नहीं होगी । तुमने जैसा भी कहा है हे भद्रे ! वैसा ही होगा ॥४७॥ इसके अनन्तर उस सत्यवती ने भार्गव पुत्र को जन्म ग्रहण कराया था । जो तप मे अभिरत था—परम दमन शील था और राम-स्वरूप जमदग्नि नाम वाला हुआ ॥४८॥ जगत् मे भृगु के वंश में जमदग्नि ने जन्म लिया था । वह सत्यवती परम पुण्यमयी और सत्य तथा धर्म मे परायण हुई थी ॥४९॥

कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्तोय महानदी ।

इक्ष्वाकुवशप्रभवो रेणुर्नाम नराधिपः ॥५०॥

तस्य कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका ।

रेणुक यां तु कामत्यां तपोविद्यासमन्वितः ॥५१॥

आर्चको जनयामासजामदग्न्य सुदारुणम् ।

सर्व्वविद्यान्तग श्रुष्ठ घनुर्व्वेदस्य पारगम् ॥५२॥

राम क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम् ।

और्व्वस्यैवमृचीकस्य सत्यवत्यां महायशाः ॥५३॥

जमदग्निस्तपोवीर्याञ्जिज्ञे ब्रह्मविदांवरः ।

मध्यमश्च शुनःशेपःशुन पुच्छः कनिष्ठकः ॥५४॥

विश्वामिषं तु दायादं गाधिः कुशिकनन्दनः ।

जनयामास पुत्र तु तपोविद्याशमात्मकम् ॥५५॥

प्राप्य ब्रह्मपिसमतां योऽयं ब्रह्मपितां गतः ।

विश्वामिष-तु घर्ममर्त्तिमा नाम्ना दिश्वरयः स्मृतः ॥५६॥

यह कौशिकी नाम से समाख्यात हुई थी तथा यह महान ही प्रवृत्त हुई थी । इक्ष्वाकु राजा के वंश मे समुत्पन्न होने वाला एक रेणु नामक

गण बतला दिया है । अब इससे आगे महात्मा आयु के वंश की बतलाऊंगा ॥६७-६८॥

### ८—सौमवंश मे आयुवंशवर्णन

आयोः पुत्राश्च मे पञ्च सर्वे वीरा महारथाः ।  
स्वर्गानुन्नयाया च प्रभायां जज्ञिरे नृपाः ॥१॥  
नहुष प्रथम जज्ञे वृद्धशर्मा ततः परम् ।  
रम्भो रजिरनेनाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥२॥  
रजिः पूषणतानीह जनयामास पञ्च वै ।  
राजेयमिति विख्यातं क्षत्रिमन्द्रमभावहम् ॥३॥  
यत्र देवाभ्युरे युद्धे समुत्पन्ने सुदारुणे ।  
देवाश्चैवासुराश्चैव पितामहमप्याग्रवन् ॥४॥  
आयुर्भोगवन् युद्धे को विजेता भविष्यति ।  
यूहि नः सर्वभूतेश श्रोतुमिच्छाम तत्त्वाः ॥५॥  
येषामर्थाय सग्रामे रजिरात्तायुधः प्रभुः ।  
योत्स्यते ते विजेष्यन्ति त्रील्लोकान्नाम सशयः ॥६॥  
यतो रजिर्धृतिस्तत्र श्रीश्च तत्र यतो धृतिः ।  
यतो धृतिश्च श्रीश्चैव धर्मस्तत्र जयस्तथा ॥७॥

श्री सौमहर्षण महामुनि ने कहा—आयु के पाँच पुत्र थे और वे सब वीर एवं महारथ हुए थे । स्वर्गानु की पुत्री के गर्भ से जिसका नाम प्रभा या ये सब नृप समुत्पन्न हुए थे ॥१॥ सबसे प्रथम नहुष समुत्पन्न हुआ, इसके पश्चात् वृद्ध शर्मा हुआ था । रम्भा-रजि और अनेन ये तीनों लोकों में विप्रसूत हुए हैं ॥२॥ रजि ने एक सौ पाँच पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था । यह वंश “राजेय”—इस नाम से विख्यात हुआ जो इन्द्रदेव को भी भय देने वाला था ॥३॥ तिस समय में परम दारुण देवों और असुरों का युद्ध समुत्पन्न हो गया, उस समय में देव और असुर पितामह श्री ब्रह्माजी से जाकर कहने लगे थे ॥४॥ देवागुरों ने



कहा—हे भगवन् ! हम दोनों दलों का युद्ध होने वाला है । कृपा कर आप हमको यह बतला दीजिए कि इनमें कौन विजेता होगा । हे समस्त प्राणियों के स्वामिन् ! यह आप हमको बता दीजिए । हम तात्त्विक रूप से यह श्रवण करना चाहते हैं ॥५॥ परमेष्ठी श्री ब्रह्माजी ने कहा—  
बिनके लिये परम समर्थ शक्तिशाली रजि आयुध ग्रहण करने वाला होकर युद्ध करेगा उनके ही हाथ में तीनों लोकों की विजय श्री होगी—  
इनमें लेश मात्र भी संशय नहीं है ॥६॥ जहां पर रजि है वहीं पर घृति है और जहां घृति है वही पर श्री होती है तथा घृति और श्री दोनों जहां पर है वहीं पर धर्म तथा जय रहा करती है ॥७॥

ते देवा दानवाः प्रीता देवेनोक्ता रजितदा ।

अभ्ययुर्जयमिच्छन्तो वृष्वानास्तं नरपंथम् ॥८॥

स हि स्वभानुदोहिता प्रभायां सम्पद्यत ।

राजा परमतेजस्वी सोमवशविवर्द्धनः ॥९॥

ते हृष्टमनसा सर्वे रजि व देवदानवाः ।

ऊचुरस्मज्जयाय त्वं गृहाण वरकाम्पुंकम् ॥१०॥

अथोवाच रजिस्तस्य तयोर्व देवदैत्ययोः ।

अर्थज्ञः स्वार्थमुद्दिश्य यशः स्वं च प्रकाशयन् ॥११॥

यदि दैत्यगणान् सर्वान् जित्वा वीर्य्येण वासवाः ।

इन्द्रो भवामि धर्मेण ततो योत्स्यामि सयुगे ॥१२॥

देवाः प्रथमतो विप्राः प्रतीयुर्हृष्टमानसाः ।

एवं यथेष्टं नृपते कामः सम्पद्यतां तव ॥१३॥

श्रुत्वा सुरगणानान्तु वाक्यं राजा रजिस्तदा ।

पप्रच्छासुरमुख्यास्तु यथा देवानपृच्छत ॥१४॥

दानवा दर्पसम्पूर्णाः स्वार्थमेवावगम्य ह ।

प्रत्यूचुस्तं नृपवरं साभिमानमिदं वचः ॥१५॥

जब इस प्रकार से देवेश्वर के द्वारा सब तथा दानवों से कहा गया था तब वे सब परम प्रसन्न होकर उस समय में रजि के समीप में गये थे । दोनों ही दल उस नरश्रेष्ठ को अपनी २ ओर धरण करना

चाहते थे ॥८॥ वह रजि स्वर्मानु का धेवता था और प्रभा के गर्भ से समुत्पन्न हुआ था । वह राजा अत्यधिक तेजस्वी तथा सोम के वंश का विवर्धन करने वाला था । वे समस्त देव और पानव रजि को देखकर परम प्रसन्न हुए थे और उन दोनों ने ही उससे प्रार्थना की थी कि आप हमारी विजय होने के लिये अपने श्रेष्ठ धनुष को ग्रहण कीजिए ॥९-१०॥ इसके अनन्तर वह राजा रजि अर्घ के जानने वाला तथा स्वार्थ का उद्देश्य लेकर अपने यश का प्रकाश करने हुए उन दोनों देवों तथा दैत्यों से बोला ॥११॥ रजि नृप ने कहा—यदि समस्त दैत्य गणों को अपने बल-विक्रम से युद्ध में जीत कर धर्म से मैं वासव इन्द्र हो जाऊँ तो सग्राम युद्ध करूँगा ॥१२॥ हे विप्रो ! देव गण ने प्रथम ही प्रसन्न मन वाले होकर विश्वास कर लिया और कहा था—इ नृप ! इस प्रकार से आपकी कामना पूरी हो जायेगी ॥१३॥ उस समय में राजा रजि ने सुरगणों के वाक्य सुनकर जिस तरह देवगणों से पूछा था वैसे ही अमुरगणों से भी पूछा था ॥१४॥ दानवगण तो दर्प से भरे हुए थे और अपने स्वार्थ को ही समझ कर बड़े अभिमान के साथ उस श्रेष्ठ राजा से यह वचन बोले थे ॥१५॥

अस्माकमिन्द्रः प्रह्लादो यरयार्थं विजयामहे ।

अस्मिस्तु समरे राजस्तिष्ठ त्व राजसत्तम ॥१६॥

स तर्षेति श्र वघ्नैव देवैरप्यतिचोदितः ।

मयिष्यतीन्द्रो जिस्वैनदेवैरुक्तस्तु पायिवः ॥१७॥

जघान दानवान् सवर्षान् वेऽवधया धृज्य ॥१८॥

स विप्रनष्टा देवाना परामश्रीः श्रिय वशी ॥१९॥

निहत्य दानवान् सवर्षानाजहार रजिः प्रभुः ।

ततो रजि महावीर्यं देवैः सह शतक्रतुः ॥२०॥

रजिपुत्रोऽहमित्युक्त्वा पुनरेयाववीद्वचः ।

इन्द्रोऽसि तात देवानां सर्वेषा नास सशयः ॥२१॥

यस्याहमिन्द्रः पुत्रस्ते व्याप्ति यास्यामि कर्ममिः ।

स तु शत्रुवधः श्रुत्वा यच्चिस्तस्तेन मायया ॥२२॥

दानवों ने कहा—हम लोगों का तो इन्द्र महाराज प्रह्लाद है जिनके लिये हम विजय करते हैं । हे राजाओं मे परम श्रेष्ठ ! आप इस संग्राम में स्थित हो जाइए ॥१६॥ वह ऐसा ही होगा—यह कहने लगा था और देवों के द्वारा अत्यधिक प्रेरित किया गया था । देवगण ने उस राजा से कहा था कि आप इसको जीतकर इन्द्र हो जायेंगे ॥१७॥ उस वशी और परम श्री राजा रजि ने समस्त दानवों को मार दिया था जो कि हाथ में वज्र धारण करने वाले अवध्य थे, प्रयत्न जो इन्द्र के वध करने के योग्य नहीं थे अर्थात् इन्द्र जिनके हनन करने में अपमर्त्य थे । देवों को विनष्ट हुई श्री को समस्त दानवों को मार कर स्वयं हरण कर लिया था । इसके अनन्तर उस इन्द्र ने देवों के माथ उस महान् वीर्य वाले रजि से “मैं रजि का पुत्र हूँ” यह कहकर पुनः यह वचन बोला था । हे सात ! आप समस्त देवों के इन्द्र हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१८-२०॥ जिसका आपका मैं इन्द्र पुत्र हूँ—इस ख्याति को कर्मों के द्वारा प्राप्त हो जाऊंगा । वह तो शत्रु का वचन सुनकर उसके द्वारा माया से वञ्चित हो गया था ॥२१॥

तथैवेत्यब्रवीद्राजा प्रीयमाणः शतक्रतुम् ।  
तस्मिस्तु देवैः सदृशे दिव प्राप्ते महीपती ॥२२  
दायाद्यमिन्द्रादाजह्म राज्यं तत्तनया रजेः ।  
पञ्च पुत्रशान्त्यस्य तद्वै स्थानं शतक्रतोः ॥२३  
समाक्रामन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम् ।  
ते यदा तु स्वसम्मूढा रागोन्मत्ता विषमिनि ॥२४  
अह्यद्विपश्च संवृत्ता हतवीर्यपराक्रमाः ।  
ततो लेभे स्वमंश्चर्यमिन्द्रः स्थानं तथोत्तमम् ॥२५  
हत्वा रजिसुतान् सर्वान् कामक्रोधपरायणान् ।  
य इदं ज्ञावनं स्थानात्प्रतिष्ठानं शतक्रतोः ।  
शृणुयाद्वारयेद्वापि न स दीर्घतमाप्नुयात् ॥२६  
रम्भोजनपत्यस्त्वासीच्च वंशं वक्ष्याम्यनेनसः ।  
अनेनसः सुतो राजा प्रतिक्षत्रो महायशाः ॥२७

प्रतिक्षप्तसुतश्चासीत् सञ्जयो नाम विश्रुतः ।

सञ्जयस्य जयः पुत्री विजयस्तस्य चात्मजः ॥२८॥

उस राजा ने प्रसन्न होते हुए ऐसा ही हो—यह इन्द्र से कहा था । देवों के समान उस राजा के दिव्यलोक में प्राप्त होने पर रजि के पुत्रों ने उसके दायाद राज्य का हरण कर लिया था । इसके पाँच सौ पुत्रों ने शतक्रतु ( इन्द्र ) के उस स्थान को बहुधा विविष्टप स्वर्ग लोक को समाक्रान्त कर लिया था । वे जिस समय में स्वयं महान् सम्पूज्य होकर राग में उत्पन्न और विषर्षी हो गये तथा ब्रह्मद्विट् बन गये तो हत कीर्त्य तथा पराक्रम से हीन हो गये थे । तब तो इन्द्र ने स्वयं ही अपने सम्पूर्ण ऐश्वर्य को तथा उस उत्तम स्थान को उनसे प्राप्त कर लिया था ॥२२-२५॥ फिर उस इन्द्रदेव ने उन सब रजि के पुत्रों का हनन करके नष्ट कर दिया था क्योंकि वे सभी काम और क्रोध में परायण हो गये थे । जो कोई पुत्र इस शतक्रतु के अपने स्थान से श्रुत होने एवं प्रतिष्ठान की कथा का श्रवण किया करता है अथवा धारण करता है वह कभी भी दुर्गति को प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥२६॥ श्री महा मुनीन्द्र लोमहर्षण जी ने कहा—रम्भ तो सन्तात हीन था अब हम अनेना के वंश का वर्णन करेंगे । उस अनेना का पुत्र महान् यश वाला राजा प्रतिक्षप्त हुआ था ॥२७॥ उस प्रतिक्षप्त के यही सञ्जय नाम वाले पुत्र ने जन्म लिया था जो बहुत ही प्रतिष्ठित हुआ था । सञ्जय का सुत जय नाम वाला हुआ था और उस जय का पुत्र विजय हुआ था ॥२८॥

विजयस्य कृतिः पुत्रस्तस्य हर्ष्यस्वनः सुतः ।

हर्ष्यत्वतसुतो राजा सहदेवः प्रतापवान् । २९

सहदेवस्य घर्म्मर्त्तिमा नदीन इति विश्रुतः ।

नदीनस्य जयत्सेनो जयत्सेनस्य सङ्कृतिः ॥३०॥

सङ्कृतेरपि घर्म्मर्त्तिमा क्षत्रवृद्धो महायशः ।

अनेनसा समाप्याताः क्षत्रवृद्धस्य चापरः ॥३१॥

क्षत्रवृद्धात्मजस्तत्र मुनहोत्रो महायशः ।

मुनहोत्रस्य दायादास्त्रयः परधाम्निकाः ॥३२॥

काशः शलश्च द्वावेतौ तथा गृत्समदः प्रभुः ।

पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकः ॥३३

ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वंश्याः शूद्रास्तथैव च ।

शलात्मज आष्टिसेनस्तनयस्तस्य काश्यपः ॥३४

काशस्य काशिपो राजा पुत्रो दीर्घतपास्तथा ।

धनुस्तु दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिस्ततः ॥३५

विजय का पुत्र कृति और कृति का पुत्र हर्यस्वत हुआ था । हर्यस्वत का पुत्र महान् प्रतापी सहदेव समुत्पन्न हुआ । इस राजा सहदेव का आत्मज परम धार्मिक नदीन नाम से लोक में प्रसिद्ध हुआ था । नदीन का दायाद जयत्सेन और जयत्सेन का संकृति नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ ॥३६-३७॥ इस संसृति के यहाँ भी महान् यश से सम्पन्न-परम धार्मिक क्षत्र वृद्ध ने जन्म ग्रहण किया था । ये सब अनेक वंशित कर दिये गये हैं । उस क्षत्रवृद्ध का पुत्र महा यशस्वी सुनहोत्र हुआ । इस सुनहोत्र के परम धार्मिक तीन पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥३१-३२॥ उन तीनों में काश और शल दो तो ये थे तथा तीसरा गृत्समद प्रभु हुआ था । इस गृत्समद का पुत्र शुहक नाम वाला हुआ था जिसका शौनक हुआ था । ब्राह्मण क्षत्रिय-वैश्य तथा शूद्र हुए थे । शल का पुत्र आष्टिसेन उत्पन्न हुआ था और उसका आत्मज काश्यप हुआ था ॥३३-३४॥ काश का दायाद काशिव नृप हुआ तथा उसका पुत्र दीर्घतपा उत्पन्न हुआ था । दीर्घतपा के वीर्य से धनु ने जन्म लिया था और फिर इसका पुत्र परम विद्वान् धन्वन्तरि हुआ था ॥३५॥

तपसोऽन्ते सुमहतो जातो वृद्धस्य घीमतः ।

पुनर्धन्वन्तरिर्देवो मानुषेऽपि जन्मनि ॥३६

तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा ।

काशिराजो महाराजः सञ्चरोगप्रणाशनः ॥३७

आयुर्वेदं भरद्वाजान् प्राप्येह स भिषक्क्रियः ।

तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥३८

धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः ।

अथ केतुमनः पुत्रो वीरो भीमरथः स्मृतः ॥३६॥

पुत्रो भीमरथस्यापि दिवोदासः प्रजेश्वरः ।

दिवोदासस्तु धर्मरिमा वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥४०॥

एतस्मिन्नेव काले तु पुरी वाराणसी द्विजाः ।

शून्या निवेशयामास क्षेमको नाम राक्षसः ॥४१॥

शप्ता हि सा मतिमता निकुम्भेन महात्मना ।

शून्या वर्षसहस्रं वै भवित्री तु न सशयः ॥४२॥

वृद्ध धीमान् के महान् मप के अन्त मे पुनः इय जन्म मे मनुष्यो में धन्वन्तरि देव समुत्पन्न हुए थे ॥३६॥ उसके घर मे उस समय मे देव धन्वन्तरि ने जन्म ग्रहण किया था । महाराज काशिराज समस्त रीषों के नाश करने वाले थे ॥३७॥ यही पर भियक् की क्रिया वाले वह भरद्वाज से आयुर्वेद शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने वाले हुए थे । इन्होंने उसको आठ मागो मे विभक्त करके शिष्यों को प्रदान किया था ॥३८॥ उन महाराज धन्वन्तरि का पुत्र के तुमान् इस नाम से प्रसिद्ध हुआ । इसके अनन्तर के तुमान् का पुत्र परम वीर भीमरथ हुआ था ॥३९॥ भीमरथ का पुन प्रजेश्वर दिवोदास उत्पन्न हुआ था वह परम धर्मरिमा दिवोदास वाराणसी का स्वामी हुआ था ॥४०॥ इसी अवसर पर हे द्विजगण ! क्षेमक नाम वाले राक्षस ने वाराणसी पुरी को शून्य निवेशित कर दिया ॥४१॥ महान् मतिमान् निकुम्भ के द्वारा वह पुरी शाप वाली हो गई थी क्योंकि वह निकुम्भ महान् आत्मा वाला था । उसने वाराणसी पुरी को गृह शाप दिया था कि सहस्र वर्ष पय्यन्त वह एक-दम शून्य रहेगी—इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥४२॥

तस्या हि शप्नमात्माया दिवोदासः प्रजेश्वरः ।

विषयान्ते पुरी रम्या गोमत्या संन्यवेशयत् ॥४३॥

भद्रश्रेण्यस्य पूर्व तु पुरी वाराणसी ह्यभूत् ।

भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ॥४४॥

हत्वा निवेशयामास दिवोदासो नराधिपः ।

भद्रश्रेण्यस्य तद्राज्यं हृतं येन बलीयसा ॥४५॥

भद्रश्रेण्यस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नाम विश्रुतः ।

दिवोदासेन बालेति घृणया स विसर्जितः ॥४६॥

हैहयस्य तु दायाद्यं हृतवान् वं महीपतिः ।

आजह्ने पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं बलात् ॥४७॥

भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना ।

वंरस्यान्तो महाभागाः कृतश्चात्मीयतेजसा ॥४८॥

दिवोदासादृष्टपद्भ्यां वीरो जज्ञे प्रतर्दनः ।

तेन बालेन पुत्रेण प्रहृतं तु पुनर्बलम् ॥४९॥

प्रजेश्वर दिवोदास ने शाप दी हुई उस पुरी में विषयान्त में गोमती में परम सुरम्य पुरी को सन्निवेशित किया था ॥४३॥ पूर्व में यह वाराणसी पुरी भद्रश्रेण्य की थी । इस भद्रश्रेण्य के परमोत्तम धनुर्धारी एक ही पुत्र थे ॥४४॥ दिवोदास नृप ने उन रुबका हनन करके इस पुरी को निवेशित किया था । इस महान् बलवान् नृप ने उस भद्रश्रेण्य के सम्पूर्ण राज्य को छीन लिया था ॥४५॥ इस भद्रश्रेण्य का पुत्र दुर्दम नाम स प्रसिद्ध हुआ । दिवोदास ने उस दुर्दम को बालक है—यह कहकर मही मारा था और दया से उसको छोड़ दिया था ॥४६॥ उस राजा ने हैहय के दायाद का हरण कर लिया था । दिवोदास के द्वारा जो अपने पिता के दायाद का हरण कर लिया गया था और बलपूर्वक छीन लिया था फिर इस भद्रश्रेण्य के पुत्र ने दुर्दम ने वापिस छीन लिया था । हे महाभागो ! अपने ही तेज के द्वारा इस दुर्दम ने वीर का अन्त कर दिया ॥४७-४८॥ इस राजा दिवोदास के वीर्य से दृष्टती में महान् वीर प्रतर्दन ने जन्म लिया । उस बालक पुत्र ने पुनः बल का प्रहरण किया था ॥४९॥

प्रतर्दनस्य पुत्री द्वौ वत्सभगौ सुविश्रुतौ ।

वत्सपुत्री ह्यलर्कस्तु सन्नतिस्तस्य चात्मजः ॥५०॥

अलकंस्तस्य पुत्रस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ।  
 अलकं प्रति राजपि श्लोको गीतः पुरातनैः ॥५१॥  
 पष्टिवर्षसहस्राणि पष्टिवर्षशतानि च ।  
 युवा रूपेण सम्पन्नः प्रागासीच्च कुलोद्बहः ॥५२॥  
 लोषामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप्नवान् ।  
 तस्यासीत् सुमहद्राज्यं रूपयौवनशालिनः ॥५३॥  
 शापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम् ।  
 रम्या निवेशयामास पुरी वाराणसी पुनः ॥५४॥  
 सन्नतेरपि दाय्यादः सुनीयो नाम धार्मिकः ।  
 सुनीयस्य तु दाय्यादः क्षेमो नाम महायशः ॥५५॥  
 क्षेमस्य केतुमान् पुत्रः सुकेतुस्तस्य चात्मजः ।  
 सुकेतोस्तनयश्चापि धर्मकेतुरिति स्मृतः ॥५६॥

उस प्रनदन के वरसमर्ग के नाम से प्रसिद्ध दो पुत्र हुए थे । उसके  
 वीर्य से वरस पुत्र अलकं और सन्नात आत्मज हुए थे ॥५०॥ उसका  
 पुत्र अलकं ब्रह्मण्य वर्षान् ब्राह्मणों को रक्षा करने वाला और सत्य  
 सङ्गर वर्षात् संग्राम करने वाला हुआ था । उस राजपि अलकं के  
 विषय में पुरातन लोगो ने यह श्लोक गाया था ॥५१॥ वह साठ हजार  
 साठ सौ वर्ष पद्मन प्रथम समय में रूप साङ्ग्य से सुसम्पन्न कुल का  
 उद्बहन करने वाला युवा था ॥५२॥ लोषामुद्रा देवी के प्रसाद से उसने  
 परम आयु प्राप्त की थी । रूप और यौवन वाले उसका राज्य भी महान्  
 था ॥५३॥ शाप के अन्त में उन महाबाहु ने क्षेमक राक्षस का हनन  
 करके पुनः परम रम्य वाराणसी पुरी को निवेशित किया था ॥५४॥  
 सनति का पुत्र सुनीय परम धार्मिक था और इस सुनीय का पुत्र महाम्  
 यश दाता क्षेम नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥५५॥ इस क्षेम का आत्मज  
 केतुमान् हुआ था तथा इसका पुत्र सुकेतु ने धर्म लिया था । सुकेतु का  
 पुत्र धर्मकेतु नाम से कहा गया था ॥५६॥

धर्मकेतोस्तु दाय्यादः सत्यकेतुर्महारथः ।

सत्यकेतुमुत्तथापि विभुर्नाम प्रजेश्वरः ॥५७॥



आनर्त्तस्तु विभोः पुत्र सुकुमारश्च तत्सुतः ।  
 सुकुमारस्य पुत्रस्तु घृष्टकेतुः सुधार्मिकः ॥५८॥  
 घृष्टकेतोस्तु दायादो वेणुहोत्रः प्रजेश्वरः ।  
 वेणुहोत्रसुतश्चापि भार्गो नाम प्रजेश्वरः ॥५९॥  
 वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भार्गभूमिस्तु भार्गवः ।  
 एते त्वङ्गिरसः पुत्र जाता वशेऽथ भार्गव ॥६०॥  
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याश्च यः पुत्राः सहस्रशः ।  
 इत्येते काश्यपाः प्रोक्ता नहुपस्य निबोधत ॥६१॥

धर्मकेतु का दायाद महारथी सत्यकेतु हुआ था । सत्यकेतु का पुत्र विभु नामक प्रजेश्वर हुआ था । ॥५७॥ उस विभु के वीर्य से आनर्त्त पुत्र समुत्पन्न हुआ था, उसका पुत्र सुकुमार उत्पन्न हुआ था । सुकुमार के यहाँ परम धर्मात्मा घृष्ट केतु ने जन्म ग्रहण किया था ॥५८॥ इस घृष्ट केतु का दायाद प्रजेश्वर वेणु होत्र हुआ था और वेणु होत्र का सुत राजा भार्गव हुआ था ॥५९॥ भार्गव से जन्म लेने वाला भार्गभूमि था तथा वत्स का पुत्र वत्सभूमि हुआ था । हे भार्गव ! ये वंश मे अङ्गिरा के पुत्र हुए थे ॥६०॥ ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों सहस्रो की संख्या मे पुत्र थे । ये सब काश्यप बतलाये गये हैं । अब नहुप के पुत्रों को समझलो ॥६१॥

—\*—

८ —ययातिचरित्रवर्णन

उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महौजसः ।  
 नहुपस्य तु दायादाः पटिन्द्रोपमतेजसः ॥१॥  
 यतिर्ययातिः सयातिरायातिर्यातिरेव च ।  
 सुयातिः पष्ठस्तेषां वं ययातिः पार्थिवोऽभवत् ॥२॥  
 ककुत्स्थकन्या गां नाम लेभे परमधार्मिकः ।  
 यतिस्तु मोक्षमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन्मुनिः ॥३॥

तेषां ययातिः पञ्चानां विजित्यं वसुधामिमाम् ।

देवयानीमुशनसः सुता भार्यामिवाप सः ॥४॥

शम्भिष्ठामातुरी चैव तनया वृषपर्वणः ।

यदुश्च तुर्व्वसुञ्चैव देवयानी व्यजायत ॥५॥

द्रुह्य चानु च पूरु च शम्भिष्ठा वार्यपर्वणी ।

तस्मै शक्रो ददौ प्रीतो रथ परममास्वरम् ॥६॥

अङ्गद काञ्चन दिव्य दिव्यं परमत्राजिभिः ।

युक्त मनोजर्वः शुभ्रैर्मेन कार्य्यं समुद्धहन् ॥७॥

श्री लोमहृषणजी ने कहा—पितृ कन्या विरजा मे महाद् ओज वाले इन्द्र के समान तेज से युक्त राजा नहुष के छं पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥१॥ उनके नाम ये हैं—यति—ययाति—मयाति—आयाति—याति और छट्वां मुयाति था ॥२॥ इस परम धार्मिक राजा ने ककुत्स्थ की कन्या के साथ विवाह किया था । जो यति नाम वाला पुत्र था वह तो मोक्ष मार्ग में समास्थित होकर ब्रह्मभूत मुनि हो गया था ॥३॥ शेष पाँचों में इस ययाति ने इस सम्पूर्ण वसुधा को जीत कर उशनस की पुत्री देवयानी को अपनी पत्नी बनाया था ॥४॥ तथा वृषपर्वा की पुत्री अमुरी शम्भिष्ठा को भी अपनी पत्नी बना लिया था । उस देवयानी ने यदु और तुवसु नाम वाले पुत्रों को जन्म दिया था ॥५॥ वार्यपर्वणी ने द्रुह्य—अनु और पूरु को जन्म दहण कराया था जिसका नाम शम्भिष्ठा था । इन्द्र देव ने परम प्रसन्न होकर उससे एक अधिक भास्वर रथ प्रदान कर दिया था ॥६॥ यह रथ सुवर्ण का परम दिव्य-अङ्गद और उत्तम अश्वों से युक्त था जिनका वेग मन के ही समान था और इनका वर्ण परम शुद्ध था । जिसने द्वारा वह समुद्धन का कार्य्य किया करता था ॥७॥

स तेन रथमुख्येन पद्माग्नेणाजयन्महीम् ।

ययातिर्युधि दुर्द्धपस्तथा देवान् सदानवान् ॥८॥

स रथः कीरवाणा तु सर्व्वेषामभवत्तदा ।

सर्वत्तं वगुनामस्तु वीरवाज्जनमेजयात् ॥९॥

कुरोः पुत्रस्य राजेन्द्रराजः पारिक्षितस्य ह ।  
जगाम स रथो नाशं शापाद्गर्गस्य धीमतः ॥१०॥  
गर्गस्य हि सुतं वालं स राजा जनमेजयः ।  
कालेन हिंसयामास ब्रह्महत्यामवाप सः ॥११॥  
स लोहगन्धो राजर्षिः परिधावन्नितस्ततः ।  
पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्मं कश्चित् ॥१२॥  
ततः स दुःखसन्तप्तो नालभत्सविदं कश्चित् ।  
विप्रेन्द्रं शौनकं राजा शरणं प्रत्यपद्यत ॥१३॥  
याजयामास च ज्ञानी शौनको जनमेजयम् ।  
अश्वमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमाः ॥१४॥

उस राजा ययाति ने उस परम प्रमुख रथ के द्वारा छै ही रात्रियों में समस्त भूमि को जीत लिया था । राजा ययाति दोनों तथा दानवों के द्वारा बहुत दुर्घर्ष था और युद्ध में उसे कोई भी जीत नहीं सकता था ऐसा महान् बलवान् था ॥८॥ वह रथ उस समय समस्त कौरवों का हो गया था । कौरव जनमेजय से संवत् वसु नाम वाला उत्पन्न हुआ था । राजेन्द्रो का राजा कुरु के पुत्र पारिक्षित बृहद्रथ परम धीमान् गर्ग के शाप से नाश को प्राप्त हो गया था ॥९-१०॥ उस राजा जानमेजय ने गर्ग के बालक पुत्र को मार दिया था और वह फिर ब्रह्महत्या को प्राप्त हो गया था ॥११॥ वह लोहगन्ध राजर्षि इधर उधर भागता हुआ पुरवासी और देशवासियों के द्वारा त्याग दिया गया था तथा उस महती ब्रह्महत्या के कारण से उसने कही पर भी शान्ति प्राप्त नहीं की थी ॥१२॥ इसके पश्चात् परम दुःख से सतप्त उस राजा ने कही पर भी सुस्थिरता का लाभ प्राप्त नहीं किया था और विप्रेन्द्र शौनक जी के समीप में पहुंच शरण ग्रहण की थी ॥१३॥ उस परम ज्ञानी शौनक ने उस जनमेजय से यजन कराया था । हे द्विजोत्तमो ! उस राजा को पावन बनाने के लिये उससे अश्वमेध यज्ञ का यजन कराया था ॥१४॥

स लोहगन्धो व्यनशत्तस्यावभृथमेत्य ह ।

स च दिव्यरथो राज्ञो वशश्चैदिपतेस्तदा ॥१५॥

दत्तः शक्रं तुष्टेन लेभे तस्माद्वृहद्रथः ।  
 वृहद्रथात्क्रमेणैव गतो वह्मद्रथं नृपम् ॥१६॥  
 ततो हत्वा जरासन्धं भीमस्तं रथमुत्तमम् ।  
 प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दनः ॥१७॥  
 सप्तद्वीपा ययातिस्तु जित्वा पृथ्वी सप्तागराम् ।  
 विभज्य पञ्चधा राज्यं पुत्राणां नाहुपस्तदा ॥१८॥  
 ययातिदिशि पूर्वस्यां यदु ज्येष्ठं न्ययोजयत् ।  
 मध्ये पूरु च राजानमभ्यपिञ्चत् स नाहुपः ॥१९॥  
 दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वंसु मतिमान् नृपः ।  
 तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्न्या ॥२०॥  
 ययाप्रदेशमद्यापि धर्मेण प्रतिपाल्यते ।  
 प्रजास्तेषां पुरस्तात्तु वक्ष्यामि मुनिसत्तमा ॥२१॥

उसके अवशेष का प्राप्त करके उसका वह नोहगन्ध विनष्ट हुआ था और वह दिव्य रथ उस समय मे चेदिपति के अधीनता में था ॥१५॥ प्रसन्न होकर इन्द्रदेव ने दिया था और उसने वृहद्रथ ने प्राप्त किया था । क्रम से वृहद्रथ से वह्मद्रथ नृपति को प्राप्त हुआ था ॥१६॥ इसके अनन्तर भीम ने राजा जरासन्ध का हनन करके उस अत्युत्तम रथ को कौरव नन्दन ने प्रीति के साथ भगवान् वासुदेवजी को समर्पित कर दिया था ॥१७॥ उस नहुष के पुत्र राजा ययाति ने सातों द्वीपों वाली सागरों के सहित पृथ्वी को जीतकर अपने पाँचों पुत्रों के लिये पाँच भागों में उसका विभाजन कर दिया था ॥१८॥ राजा ययाति ने पूर्व दिशा में अपने ज्येष्ठ पुत्र यदु को नियोजित किया था । उस नहुष के पुत्र राजा ययाति ने मध्य देश में पूरु को अभिषिक्त कर दिया था ॥१९॥ मतिमान् नृप ने दक्षिण पूर्व दिशा में तुर्वंसु नामक पुत्र को नियोजित कर दिया था । उन सबने द्वारा उस सातों द्वीपों वाली पत्तनों के सहित समस्त पृथ्वी को यया प्रदेश के अनुसार धर्म पूर्वक पासन किया जाता था । हे मुनिश्रेष्ठो ! अब वहिले उनकी प्रजाओं के विषय में वर्णन करेंगे ॥२०-२१॥

धनुर्न्यस्य पृपत्कांश्च पञ्चभिः पुरुषपैभैः ।  
जरावीनभवद्राजा भारमावेश्य बन्धुषु ॥२२॥  
निक्षिप्तशस्त्रः पृथिवी चचार पृथिवीपतिः ।  
प्रोतिमानभवद्राजा ययातिरपराजितः ॥२३॥  
एवं विभज्य पृथिवी ययातिर्यदुमव्रवीत् ।  
जरा मे प्रतिग्रह्णीष्व पुत्र कृत्यान्तरेण वै ॥२४॥  
त्तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम् ।  
जरां त्वयि समावाय तं यदुः प्रत्युवाच ह ॥२५॥  
अनिदिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता ।  
अनपाकृत्य ता राजन्न ग्रहीष्यामि ते जराम् ॥२६॥  
जराया बहवो दोषाः पानभोजनकारिताः ।  
तस्माज्जरा न तेन राजन् ग्रहीतुमहमुत्सहे ॥२७॥  
सन्ति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप ।  
प्रतिग्रहीतुं धर्म्मज्ञ पुत्रमन्यं वृणीष्व वै ॥२८॥  
स एवमुक्तो यदुना राजा कोपसमन्वितः ।  
उवाच वदतां श्रेष्ठो ययातिर्गर्ह्यद् सुतम् ॥२९॥

पाँच श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा समस्त भार ग्रहण कर लेने पर उस राजा ने धनुष को पृपत्तो को न्यस्त कर दिया था । बन्धुओं पर भार को रखकर राजा जरा वाला अर्थात् वृद्ध हो गया था ॥२२॥ असत्रों के निक्षिप्त करने वाला वह राजा समस्त पृथ्वी पर विचरण किया करता था । वह अपराजित राजा ययाति परम प्रोति वाला हो गया ॥२३॥ इस प्रकार से समस्त पृथिवी का विभाजन करके राजा ययाति अपने ज्येष्ठ पुत्र यदु से बोला था—हे पुत्र ! कुछ समय के लिये तुम मेरी वृद्धावस्था को ग्रहण कर लो क्योंकि मुझे कुछ कृत्य अभी करना है अतएव अपना यौवन मुझे देदो ॥२४॥ हे पुत्र ! तुम्हारे इस तरुण रूप को ग्रहण कर मैं इस पृथिवी पर विचरण करूँगा—ऐसी मेरी इच्छा है । इस अपनी वृद्धावस्था को तुमको दे देना चाहता हूँ । यह पिता का वचन सुनकर यदु ने इसका उत्तर दिया ॥२५॥ यदु ने कहा—मैंने भिक्षा

निदिष्ट नहीं की है जो कि ब्राह्मण की प्रतियुक्त कर दी है । हे राजन् ! उसको अपाकृत न करके मैं आपकी इस जरावस्था को ग्रहण नहीं करूँगा ॥२६॥ इस जरा ( वृद्धावस्था ) में तो सान-मान सम्बन्धी बहुत से दोष हुआ करते हैं इस कारण से हे राजन् ! मैं आपकी इस वृद्धता को लेने का उत्साह ही नहीं करता हूँ ॥२७॥ हे नृप ! आपके तो मुझसे भी अधिक ध्यारे बहुत से पुत्र हैं । हे धर्म के ज्ञाता राजन् ! इस जरा को ग्रहण करने के लिये किसी अन्य पुत्र का धरण करिए ॥२८॥ जब उस यदु नामक पुत्र के द्वारा राजा से इस प्रकार से कहा गया था तो वह राजा क्रोध से मुक्त होकर बोलने वालो में श्रेष्ठ राजा ययाति अपने पुत्र की निन्दा करते हुए बोले—॥२९॥

क आश्रमस्तवान्योऽस्ति को वा धर्म्मो विधीयते ।

मामनाहत्य दुर्वृद्धो यदहं तव देशिकः ॥३०॥

एवमुक्तो यदु विप्राः शशापेन स मन्युमान् ।

अराज्या ते प्रजा मूढ भविषीति न संशयः ॥३१॥

द्रुहयु च तुर्व्वंमु चैवाप्यनु च द्विजसत्तमाः ।

एवमवाब्रवीद्राजा प्रत्याख्यातश्च तैरपि ॥३२॥

शशाप तानतिक्रुद्धो ययातिरपराजितः ।

यथावत् कथितं सर्व्वं मयास्य द्विजसत्तमाः ॥३३॥

एव शप्त्वा सुतान् सर्व्वान्श्चतुरः पूरुषूच्चजान् ।

तदेव वतनं राजा पूरुषप्याह भो द्विजाः ॥३४॥

तरुणस्तव रूपेण चरेय पृथिवीमिमाम् ।

जरा त्वयि समाधाय त्वं पूरो यदि मन्यसे ॥३५॥

ययाति ने कहा—हे दुष्ट वृद्धि वाले ! तेरा अन्य कौन-सा आश्रम है अथवा कौन सा धर्म तेरे द्वारा किया जाता है जिससे तू मेरा अनादर कर रहा है क्योंकि मैं तेरा आचार्य्य हूँ । तात्पर्य्य यह है कि मुझ आचार्य्य का अनादर करने कोई भी आश्रम और धर्म नहीं किया जा सकता है ॥३०॥ हे विप्रगण ! इस तरह से यदु को कह कर उसने उसको पार दे दिया क्योंकि वह बहुत ही क्रुण्ठित हो गया था—हे मूढ़ ! तेरी प्रजा

राज्य होन होगी—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३१॥ हे सत्तमो !  
इसके पश्चात् उस राजा ययाति ने अपने पुत्र द्रुह्यु तुर्वसु और अनु  
से भी इसी तरह से जाकर अपनी जरा लेकर यौवन देने की बात कही  
और उन सन्ने भी राजा के वचनो का खण्डन कर दिया अर्थात् किसी  
ने भी इस प्रस्ताव को स्वीकृत नहीं किया ॥३२॥ उस अपराजित राजा  
ययाति ने अत्यधिक क्रोधित होकर उन सबको भी शाप दे दिया । हे  
द्विज सत्तमो ! हमके विषय में मैंने ययावत् सन कह दिया है ॥३३॥  
इस तरह पूरु से पहिले समुत्पन्न हुए अर्थात् षडे भाइयो को सभी पुत्रों  
को चारों को राजा ने शाप दे दिया क्योंकि उन चारों ने अपने पिता के  
वचनो को, शिरोधार्य न कर घुरी तरह से ठुकरा दिया था । इसके  
अनन्तर वही वचन राजा ने अपने सुत पूरु से भी आकर कहा ॥३४॥  
वह वचन यही था कि मैं तरुण होकर और तेरे इस सारुण्य के रूप को  
ग्रहण करके अब समस्त पृथ्वी पर विचरण करना चाहता हूँ और मैं  
अपनी इस वृद्धता को तुझको देकर ऐसा विहार करूँगा यदि हे पूरु !  
तुझे यह मेरी जरा को ग्रहण करना स्वीकार हो ॥३५॥

स जरां प्रतिजग्राह पितुः पूरुः प्रतापवान् ।

ययातिरपि रूपेण पूरोः पर्य्यचरन् महीम् ॥३६॥

स मार्गमाणः कामानामन्त नृपतिसत्तमः ।

विश्वाच्या सहितो रेमे बने चैत्ररथे प्रभुः ॥३७॥

यदा स तृप्तः कामेषु भोगेषु च नराधिपः ।

तदा पूरोः सकाशाद् स्वां जरां प्रत्यपद्यत ॥३८॥

यत्र शाया मुनिश्चेष्टा गीताः किल ययातिना ।

याभिः प्रत्याहरेत् कामान् सर्वे ह्यङ्गानि कूर्ममेव ॥३९॥

न जातु कामः कामानामुपभोगेन क्षाम्यति ।

हविषा कृष्णवर्त्मव भूय एवाभिवर्द्धते ॥४०॥

तत्पृथिव्या श्रीह्रियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।

चालमेकस्य तत्सर्वमिति कृत्वा न मुह्यति ॥४१॥

यदा भावं न कुरुते सर्व्वभूतेषु पापकम् ।

कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥४२॥

उस प्रतापवान् पूरु ने अपने पिता ययाति की उस जरा को ग्रहण कर लिया और फिर राजा ययाति भी पूरु के रूप को लेकर पृथ्वी पर परिधरण करने लग गया ॥३६॥ सब नृपो में श्रेष्ठ यह राजा अपनी काम वासनाओं की समाप्ति की खोज करता हुआ वह चंद्ररथ धन में विश्वाधी अप्सरा के साथ छुव रमण किया करता रहा । जिस समय में काम वासनाओं में और भोगों के उपभोग करने में वह राजा वृत्त हो गया तो फिर आकर उसने अपने पुत्र पूरु से अपनी वृद्धावस्था को वापिस ले लिया ॥३७-३८॥ हे मुनिगणों ! राजा ययाति ने जहाँ पर यह गाया गायी थी, जिनके द्वारा कानों को प्रत्याहृत करना चाहिए । और सब लोग जैसे कछुआ अपने सब अंगों को सिकोड़ कर अन्दर लेलिया करता है वैसे ही काम वासनाओं को भी संकुचित किया करे । कामों के अधिकाधिक उपभोग करने से काम वासनाएँ कभी भी शान्त नहीं हुआ करती है प्रत्युत अधिक बढ़ जाया करती हैं जिस तरह हवि के जलने से अग्नि विशेष प्रदीप्त हो जाती है ॥३९-४०॥ इस पृथ्वी में जितने भी ब्रीहियव-हिरण्य-पशु और स्त्रियाँ हैं वे सब एक की भी काम-वासनाओं को पूर्ण करने में समर्थ नहीं हैं—यह समझ कर मोह को प्राप्त नहीं होना चाहिए ॥४१॥ जब समस्त प्राणियों में पाप की भावना नहीं करना है और कर्म-वचन तथा मन से किसी भी तरह से पाप की भावना को त्याग देता है तभी यह प्राणी ब्रह्म के स्वरूप को प्राप्त किया करता है ॥४२॥

यदा तेम्यो न विभेति यदा चास्मात्र विम्यति ।

यदा नेच्छति न ढेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥४३॥

या दुस्त्यजा दुर्ममंतिमिर्या न जीर्यति जीर्यतः ।

योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्ता वृध्ना त्यजतः सुखम् ॥४४॥

जीर्यन्ति जीर्यतः वे शा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।

घनाशा जीविताशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति ॥४५॥



यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्य महत्सुखम् ।  
 तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हन्ति षोडशी कलाम् ॥४६॥  
 एवमुक्त्वा स राजपिः सदारः प्राविशद्वनम् ।  
 कालेन महता चायं चचार विपुलं तपः ॥४७॥  
 भृगुतुङ्गे गतिं प्राप तपसोऽन्ते महायशाः ।  
 अनश्नन् देहमुत्सृज्य सदारः स्वर्गमाप्तवान् ॥४८॥  
 तस्य वंशे मुनिश्रेष्ठाः पञ्च राजपिसत्तमाः ।  
 यैर्व्याप्ता पृथिवी सर्वा सूर्यस्येव गमस्तिभिः ॥४९॥  
 यदोस्तु वशं वक्ष्यामि शृणुष्वं राजसत्कृतम् ।  
 यत्र नारायणो जज्ञे हरिवृष्णिकुलोद्बहः ॥५०॥  
 सुस्थः प्रजावानायुष्मान् कीर्त्तिमाश्च भवेन्नरः ।  
 ययातिचरितं नित्यमिदं शृण्वन् द्विजोत्तमाः ॥५१॥

जब उससे यह भयभीत नहीं होता है और हमसे भी कोई भय प्राप्त नहीं किया करता है । और जब यह कुछ भी इच्छा नहीं रखता है और न किसी से द्वेष किया करता है तभी ब्रह्म के स्वरूप को प्राप्त हुआ करता है ॥४३॥ जो बुरी बुद्धि वालों के द्वारा परम दुस्तयज है और जो जराजीर्ण होने पर भी कभी जीर्ण नहीं हुआ करती है तथा जो ऐसा एक महान् भयानक रोग है कि प्राणों के अन्त तक लगा ही रहता है तथा प्राणों का अन्त ही कर दिया करता है उस तृष्णा को त्याग देने वाले ही को सुख मिला करता है । जरा से जीर्ण होने वाले पुरुष के केश भी श्वेत होकर जीर्ण हो जाया करते हैं तथा दात भी जीर्ण होकर छलड़ जाते हैं किन्तु ये सब तो जीवन के साथी पक कर नष्ट हो जाते हैं मगर धन की आशा और जीवित बने रहने की आशाएं दोनों ऐसी प्रबल हैं कि जरा जीर्ण हो जाने पर जीर्ण नहीं हुआ करती हैं ॥४४-४५॥ जो इस लोक में कामों के उपभोग करने में सुख का अनुभव होता है और जो दिव्य स्वर्गादि लोकों के निवास करने का महान् सुख होता है ये सब तृष्णा के क्षय के हो जाने से जो सुख प्राप्त होता है उस सुख का सोलहवां भी भाग नहीं होता है ॥४६॥ इस प्रकार से तृष्णा के त्याग

का महत्त्व बतला कर उस राजा ययाति ने स्त्री के सहित वन में प्रवेश कर लिया और बहुत समय पर्यन्त इसने परम दारुण तप किया ॥४॥ उस महान् यशस्वी राजा ने तपश्चर्या के अन्त में भृगु तुङ्ग में सुगति को प्राप्त किया । अशन का त्याग करके अपने देह का त्याग कर दिया तथा अपनी दारा के साथ ही उसने स्वर्ग को प्राप्त कर लिया ॥४८॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! उस राजा ययाति के वंश में पाँच राजर्षियों में श्रेष्ठ हुए थे । उन सबने सूर्य देव की किरणों के जाल के ही समान समस्त पृथ्वी को व्याप्त कर लिया ॥४९॥ अब मैं यदु के वंश का वर्णन करूँगा जो राजाओं के द्वारा सत्कार किया गया था । उसका आप लोग श्रवण करो जिसमें वृष्णि कुल के उद्बहन करने वाले भगवान् हरि नारायण ने स्वयं जन्म ग्रहण किया ॥५०॥ इस राजा ययाति के चरित्र का नित्य ही श्रवण किया करता है हे द्विजगणो ! वह मनुष्य परम सुस्थ-प्रजा वाला आयु से युक्त और कीर्तिमान् हुआ करता है ॥५१॥

### १० — पुरुवशवर्णन

पूरोर्वशं वयं सूत श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ।  
 द्रुह्यस्यानोर्यदोर्ध्वं व तुर्वसोश्च पृथक् पृथक् ॥१॥  
 शृणुष्व मुनिशार्दूलाः पूरोर्वशं महात्मनः ।  
 विस्तरेणानुपूर्व्या च प्रथमं वदतो मम ॥२॥  
 पूरो पुत्र सुवीरोऽभून्मनस्युस्तस्य चात्मजः ।  
 राजा चाभयदो नाम मनस्योरभवत् सुतः ॥३॥  
 तथैवाभयदस्यासीत् सुधन्वा नाम पार्थिवः ।  
 सुधन्वनः सुबाहुश्च रोद्राश्वस्तस्य चात्मजः ॥४॥  
 रोद्राश्वस्य दशार्ण्यैः कृकण्यैस्तथैव च ।  
 कक्षेयुस्त्यण्डिलेयुश्च सधतेयुस्तथैव च ॥५॥  
 श्रुचैयुश्च जलेयुश्च स्यलेयुश्च महाबलः ।  
 धनेयुश्च वनेयुश्च पुत्रकाश्च दश स्त्रियः ॥६॥

भद्रा शूद्राच मद्राच शलदामलदा तथा ।

खलदा च ततो विप्रा नलदा सुरसापि च ॥७॥

ब्राह्मणो ने कहा—हे सूतजी ! हम सब लोग अब राजा पूरु के वंश का वर्णन तात्त्विक रूप से श्रवण करना चाहते हैं तथा दुह्यु-अनु-यदु और तुर्वसु के वंश को पृथक्कर श्रवण करना चाहते हैं ॥१॥ श्री लोम हर्षण जी ने कहा—हे मुनि शार्दूलो ! अब आप लोग महात्मा पूरु के वंश को सुनिए । मैं सब से प्रथम आनुपूर्वी के साथ विस्तार पूर्वक उसका वर्णन कर रहा हूँ ॥२॥ राजा पूरु के वीर्य से सुवीर पुत्र ने जन्म लिया और इस सुवीर का सुत मनस्यु हुआ । अभयद नाम वाला राजा मनस्यु का पुत्र हुआ ॥३॥ इस अभयद का दायद सुघन्वा नाम वाला नृप हुआ । सुघन्वा के पुत्र का नाम सुवाहु था तथा इसका आत्मज रौद्राश्व उत्पन्न हुआ ॥४॥ रौद्राश्व के कई पुत्र समुत्पन्न हुए । उनके नाम ये हैं—दशानेयु-कृकणेयु-कक्षेयु-स्थण्डिलेयु-सन्मतेयु-ऋचेयु-जलेयु-महाबलवान् स्थलेयुष्यनेयु और वनेयु ये सब पुत्र उत्पन्न हुए थे । तथा दश स्त्रियाँ थीं—भद्रा-शूद्रा-मद्रा-शलहा मलदा-हे विप्रो ! खलदा-नलदा और सुरसा ये सब थी ॥५—७॥

तथा गोचपला च स्त्रीरत्नकूटा च ता दश ।

ऋषिर्जातोऽत्रिवशे च तासा भर्ता प्रभाकरः ॥८॥

भद्रायां जनयामास सुत सोमं यशस्विनम् ।

स्वर्भानुना हृते सूर्ये पतमाने दिवो महीम् ॥९॥

तमोभिभूते लोके च प्रभा येन प्रवर्त्तिता ।

स्वस्ति तेऽस्त्विति चोक्त्वा वै पतमानो दिवाकरः ॥१०॥

वचनात्तस्य विप्रर्षेर्न पपात दिवो महीम् ।

अत्रिश्रेष्ठानि गोक्षाणि यश्चकार महातपाः ॥११॥

यज्ञेष्वत्रेर्वलञ्चैव देवैर्यस्य प्रतिष्ठितम् ।

स तासु जनयामास पुत्रिकास्वात्मकामजान् ॥१२॥

दश पुत्रान् महासत्त्वांस्तपस्युग्रैस्तांस्तथा ।

ते तु गोत्रकरा विप्रा ऋषयो वेदपारगाः ॥१३॥

स्वस्त्यात्रेया इति ख्याता किञ्च त्रिघनवर्जिताः ।

कक्षेयोस्तनयान्त्वासस्त्रय एव महारथाः ॥१४॥

इसी प्रकार से गो चपला और स्त्री रत्न कूटाँ थी । ये कुल सब दश सख्या मे थी । अत्रि के वश मे ऋषि सुत समुत्पन्न हुआ । उन सबका अर्त्ति प्रभाकर था ॥८॥ भद्रा नाम वाली पत्नी मे परम यशस्वी सोम सुत को जन्म ग्रहण कराया । स्वर्भानु के द्वारा सूर्य देव के हनन किये जाने पर तथा दिवलोक से भूमि पर गिर जाने पर समस्त लोक मे अन्धकार से आवृत हो जाने पर जिसने प्रभा को प्रवर्तित किया । जब दिवाकर का पतन हुआ तो गिरते हुए दिवानर मे यह कहा कि तेरा कल्याण होवे ॥९-१०॥ उस विप्रर्षि के वचन के प्रभाव से यह दिवलोक से सही पर नही गिरा । जिस महान् तपस्वी ने अत्रि श्रेष्ठ गोत्रो को कर दिया ॥११॥ जिस अत्रि के यज्ञो मे देवो के द्वारा बल को प्रतिष्ठित किया गया, उन पुत्रिकाओ मे उसने आत्मजो को जन्म ग्रहण कराया ॥१२॥ इस तरह से दश पुत्रो को जन्म दिया जो परम उग्र तपश्चर्या मे निरत थे । हे विप्रो ! वेदो के पारंगामी ऋषिगण गोत्र करने वाले थे ॥१३॥ ये सब "स्वस्त्यात्रेय" इस नाम से विख्यात हुए किञ्च त्रिघन से ये वर्जित थे । कक्षेयु के तनय बडे महारथी तीन ही हुए थे ॥१४॥

सभानरश्चाधुपश्च परमन्युस्तथैव च ।

सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान् कालानलो नृपः ॥१५॥

कालानलस्य धर्मज्ञः सृञ्जयो नाम वै सुतः ।

सृञ्जयस्याभवत् पुत्रो वीरो राजा पुरञ्जयः ॥१६॥

जनमेजयो मुनिर्धृष्टाः पुरञ्जयसुतोऽभवत् ।

जनमेजयस्य राजर्षेमहाशालोऽभवत् सुतः ॥१७॥

देवेषु स परिज्ञातः प्रतिष्ठितमशा भुवि ।

महामना नाम सुतो महाशालस्य विश्रुतः ॥१८॥

जज्ञे वीरः सुरगणैः पूजितः सुमहामना ।

महामनास्तु पुत्रो द्वौ जनयामास भो द्विजाः ॥१९॥

उशीनरञ्च धर्म्मज्ञं तितिक्षुञ्च महाबलम् ।

उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजपिवंशजाः ॥२०॥

नृगा कृमिनंवा दर्वी पञ्चमी च दृपद्वती ।

उशीनरस्य पुत्रास्तु पञ्च तासु कुलोद्बहाः ॥२१॥

उन तीनों के शुभ नाम समानर-चाशुप और परमन्यु ये थे । समानर का पुत्र परम विद्वान् कालानल नृप हुआ ॥१५॥ कालानल का सुत धर्म का ज्ञाता सृञ्जय नाम वाला उत्पन्न हुआ । इस सृञ्जय के वीर्य से परम वीर पुरञ्जय नाम वाले राजा ने जन्म प्राप्त किया ॥१६॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! राजा पुरञ्जय का दामाद जनमेजय समुत्पन्न हुआ । उस राजपि जनमेजय का आत्मज महाशाल हुआ ॥१६-१७॥ महाशाल के पुत्र का नाम महामना था जो देवगणों में भी ज्ञान था और भूलोक में अपने यश की प्रतिष्ठापित करने वाला परम विश्रुत हुआ ॥१८॥ सुरगणों के द्वारा वन्दित महामना ने जन्म धारण करके हे द्विजगणों ! अपने वीर्य से दो पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया ॥१९॥ उनमें एक का नाम उशी नर था जो बहुत बड़ा धर्म का ज्ञाता हुआ था और दूसरा तितिक्षु नाम वाला था जो परम महान् बलवान् था । उशीनर की पाँच राजपियों के वंश में समुत्पन्न पत्नियाँ थी । उनके शुभ नाम ये थे=मृगा-कृमिनवा-दर्वी और पाँचवी दृपद्वती थी । उन पाँचों पत्नियों के गर्भों से उस राजा उशीनर के पाँच कुल के उद्बहन करने वाले सत्पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥२०-२१॥

तपसा चैव महता जाता वृद्धस्य चात्मजाः ।

नृगायास्तु नृगः पुत्रः कृम्या कृमिरजायत ॥२२॥

नवायास्तु नवः पुत्रो दर्वीयाः सुव्रतोऽभवत् ।

दृपद्वत्यास्तु सञ्जज्ञे निविरोशीनरो नृपः ॥२३॥

शिवेस्तु शिवयो विप्रा यौवेयास्तु नृगस्य ह ।

नवस्य नवराष्ट्रन्तु कृमेस्तु कृमिला पुरी ॥२४॥

सुव्रस्तस्य तथाम्वष्टाः शिविपुत्राग्निवाघत ।

शिवेस्तु शिवयः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः ॥२५॥

वृषदर्मः सुवीरश्च केकयी मद्रकस्तथा ।

तेषां जनपदाः स्फीता केकया मद्रकास्तथा ॥२६॥

वृषदर्माः सुवीराश्च तितिक्षोस्तु प्रजास्त्विमाः ।

तितिक्षुरभवद्राजा पूर्वस्यां दिशि भो द्विजाः ॥२७॥

उपद्रथो महावीर्यः फेनस्तस्य सुतोऽभवत् ।

फेनस्य सुतपा जज्ञे ततः सुतपसो बलिः ॥२८॥

इसने जब महान् तपस्या की तब वृद्ध होने पर ही ये पुत्र उत्पन्न हुए थे । नृगा पत्नी के गर्भ से नृग नामधारी पुत्र हुआ कृमि से कृमि उत्पन्न हुआ ॥२२॥ नवा के पुत्र का नाम भी नव तथा दर्वा के पुत्र का नाम सुव्रत हुआ । रघुदत्ती पत्नी ने शिवि औशीनर समुत्पन्न बिये ॥२३॥ हे विप्रगण ! राजा शिवि के पुत्र शिविय और नृग के पुत्र वैश्व कहलाये गये । नव का नवराष्ट्र तथा कृमि की कृमिजा पुरी राजधानी थी ॥२४॥ राजा सुव्रत के अन्वष्ट्र हुए । अब राजा शिवि के पुत्रों के विषय में समझ लो । राजा शिवि के जो शिवय नामधारी चार पुत्र हुए ये लोकों में परम प्रसिद्ध थे ॥२५॥ वृषदर्म-सुवीर केकय और मद्रक ये उन चारों के नाम थे । उनके जो जनपद थे वे बहुत विस्तृत और केकय तथा मद्रक नर्म धाले थे ॥ २६॥ राजा तितिक्षु की प्रजा वृषदर्म और सुवीर थी । हे द्विजो ! तितिक्षु पूर्व दिशा में राजा हुआ । महान् वीर्य उपद्रथ फेन उसका पुत्र हुआ । इस फेन के यहाँ मुत्ता ने जन्म लिया और फिर सुतपा से बलि उत्पन्न हुआ ॥२८॥

जातो मानुषयोनी तु स राजा काश्वनेपुधि ।

महायोगी स तु बलिर्बभूव नृपति पुरा ॥२९॥

पुत्रानुत्पादयामास पञ्च वशकरान् भुवि ।

अङ्ग प्रथमतो जज्ञे यङ्गः सुह्यस्तथैव च ॥३०॥

पुण्ड्रः कलिङ्गश्च तथा बालेय दक्षमुच्यते ।

बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वशकरा भुवि ॥३१॥

बलेभ्य ब्राह्मणा दत्तो वरः प्रीतेन भो द्विजाः ।

महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणतः ॥३२॥

बले चाप्रतिमत्वं वै धर्मतत्त्वार्थदर्शनम् ।

संग्रामे चाप्यजेयत्व धर्मे चैव प्रधानताम् ॥३३॥

त्रैलोक्यदर्शनश्चापि प्राधान्यं प्रसवे तथा ।

चतुरो नियतान् वर्णस्त्वञ्च स्थापयितेति च ॥३४॥

इत्युक्तो विभुना राजा बलिः शान्तिं परां ययौ ।

कालेन महता विप्राः स्वञ्च स्थानमुपागमत् ॥३५॥

सुवर्ण का धनुष बाण धारण करने वाला उस बलि ने मानुष योनि में ही जन्म ग्रहण किया राजा बलि ने वश के बढ़ाने वाले भूलोक में पाँच पुत्रों को जन्म दिया । सबसे प्रथम अङ्ग ने जन्म लिया फिर सुह्य समुत्पन्न हुआ और वङ्ग हुआ इसी प्रकार से पुण्ड्र और कलिग उत्पन्न हुए । यह बालेय क्षत्र नाम से कहा जाता करता है । भूलोक में बालेय और ब्राह्मण उसके वंश चलाने वाले हुए हैं । हे द्विजगण ! ब्रह्माजी ने परम प्रसन्न होकर ही बलि को वरदान दिया । श्री ब्रह्माजी ने यह कहा कि तुम में महायोगिन्व होगा और एक कल्प के परिमाण पर्यन्त तुम्हारी आयु होगी ॥३०-३२॥ ब्रह्माजी ने कहा-हे बले ! तुम अनुग्रह होओगे अर्थात् ससार में तुम्हारी समानता रखने वाला अन्य कोई भी नहीं होगा । तुम्हारे हृदय में धर्म के तत्त्व का सही अर्थ दर्शन होगा-संग्राम में अजेयता होगी तथा धर्म में प्रधानता होगी ॥३३॥ प्रसव में ही यह प्रधानता होगी कि त्रैलोक्य का दर्शन होगा । तुम ऐसे प्रभाव वाले होओगे कि चार नियत वर्णों को स्थापित करोगे ॥३४॥ जब इस प्रकार से परमेश्वरी के द्वारा उस राजा बलि से कहा गया था तो बलि ने परमा-विक शान्ति प्राप्त की और फिर बहुत काल के पश्चात् वह अपने निवास स्थान पर वापिस आ गये ॥३५॥

तेषां जनपदाः पञ्च अङ्गा वङ्गाः सत्तुह्यकाः ।

कालिङ्गाः पुण्ड्राकाश्चैव प्रजास्त्वङ्गस्य साम्प्रतम् ॥३६॥

अङ्गपुत्रो महानासीद्राजेन्द्रो दधिवाहनः ।

दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथोऽभवत् ॥३७॥

ऋचेयोस्तनमो राजा मतिनारो महीपतिः ।  
 मतिनारसुतास्त्वासस्त्रयः परमधार्मिकाः ॥५१॥  
 वसुरोधः प्रतिरथः सुबाहुश्चैव धार्मिकः ।  
 सर्वे वेदविदश्चैव ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ॥५२॥  
 इला नाम तु यस्यासीत् कन्या वै मुनिसत्तमाः ।  
 ब्रह्मवादिन्यधिष्ठी सा तमुस्तामम्यगच्छत् ॥५३॥  
 तसो. सुतोऽयं राजर्षिधर्मनेत्रः प्रतापवान् ।  
 ब्रह्मवादी पराक्रान्तस्तस्य भार्योपदानवी ॥५४॥  
 उपदानवी ततः पुत्राश्चतुरोऽजनयच्छुभान् ।  
 दुष्यन्तमथ सुष्मन्तं प्रवीरमनघं तथा ॥५५॥  
 दुष्यन्तस्य तु दायादो भरतो नाम वीर्यवान् ।  
 स सर्व्वदमनो नाम नागायुतवनो महान् ॥५६॥

हे मुनिगणो ! रौद्राश्व के तनय का ऋचेय था । हे द्विजगण ! उस  
 राजा के वंश का मैं वर्णन करता हूँ अब आप लोग समाहित होकर  
 श्रवण करिए ॥५०॥ ऋचेय का पुत्र राजा मतिनार हुआ, उसके कीर्त्य से  
 तीन सुत परम धार्मिक उत्पन्न हुए ॥५१॥ उनके नाम सुरोध प्रतिरथ और  
 सुबाहु थे । ये सब परम धार्मिक वेदों के ज्ञाता और सत्यवादी एवं  
 ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले थे ॥५२॥ हे मुनिगण ! जिसकी इला  
 नाम वाली एक कन्या थी वह ब्रह्मवादिनी अधिष्ठी थी । तसु ने उसके  
 साथ विवाह किया था ॥५३॥ इस तसु का आश्रम बड़े ही प्रताप वाला  
 राजर्षि धर्मनेत्र हुआ । यह बड़ा ब्रह्मवादी और पराक्रान्त था तथा  
 इसकी भार्या दानवी थी । उस उप दानवी ने अपने गर्भ से परम शुभ  
 चार पुत्रों को जन्म दिया । उन चारों सुतों के नाम दुष्यन्त सुष्मन्त  
 प्रवीर और अनघ ये थे ॥५४-५५॥ इसी दुष्यन्त का पुत्र महान् वीर्य  
 वाला भरत नाम वाला हुआ जिसके नाम से इस देश का नाम भारत  
 हुआ है । यह भरत सर्वदमन था अर्थात् सारा दमन करने वाला हुआ  
 और यह महान तथा दस हजार नागों के समान बल वाला हुआ ॥५६॥



चक्रवर्ती सुतो जज्ञे दुष्यन्तस्य महात्मनः ।  
 शकुन्तलाया भरती यस्य नाम्ना तु भारताः ॥५७॥  
 भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु महीपतेः ।  
 मातृणां तु प्रकोपेण मया तत्कथितं पुरा ॥५८॥  
 बृहस्पतेरङ्गिरसः पुत्रो विप्रो महामुनिः ।  
 अयाजयद्भरद्वाजो महद्भिः क्रतुभिर्विभुः ॥५९॥  
 पूर्वं तु वितथे तस्य कृते वै पुत्रजन्मनि ।  
 ततोऽथ वितथो नाम भरद्वाजात्सुतोऽभवत् ॥६०॥  
 ततोऽथ वितथे जाते भरतस्तु दिव ययौ ।  
 वितथं चाभिपिच्याथ भरद्वाजो वनं ययौ ॥६१॥  
 स चापि वितथः पुत्रान् जनयामास पञ्च वै ।  
 सुहोत्रश्च सुहोतार गय गर्गं तथैव च ॥६२॥  
 कपिलश्च महात्मानं सुहोत्रस्य सुतद्वयम् ।  
 काशिकश्च महासत्यं तथा गृत्समिति नृपम् ॥६३॥

महात्मा दुष्यन्त के वीर्य से चक्रवर्ती पुत्र ने जन्म ग्रहण किया । यह भरत शकुन्तला के उदर से समुत्पन्न हुआ जिसके शुभ नाम से भारत नाम पड़ा ॥५७॥ राजा भरत के पुत्रों के विनष्ट हो जाने पर माताओं का प्रकोप हो गया । यह वर्णन हम पहिले ही कर चुके हैं ॥५८॥ आङ्गिरस बृहस्पति का पुत्र विप्र महामुनि था । उस विप्रु भरद्वाज ने महान् क्रतुओं के द्वारा यजन किया ॥५९॥ पूर्व में उसके पुत्र जन्म के वितथ करने पर इसके पश्चात् वितथ नाम वाला भरद्वाज मुनि का पुत्र हुआ ॥६०॥ इसके अनन्तर वितथ के समुत्पन्न होने पर भरत राजा दिवलोक वासी हो गये । भरद्वाज मुनि ने राज्यासन पर वितथ को अभिषिक्त करके वह फिर वन में चले गये ॥६१॥ उस वितथ ने भी पाँच पुत्रों को जन्म दिया । उनके नाम सुहोत्र-सुहोता-गय-गर्ग और कपिल थे । कपिल बहुत बड़े महात्मा थे । इसके पश्चात् सुहोत्र ने भी दो पुत्रों को उत्पादित किया । महासत्य काशिक तथा गृत्समिति नृप ये उन दोनों पुत्रों के शुभ नाम थे ॥६२-६३॥

तथा गृत्समर्तेः पुत्रा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः ।  
 कार्शिकस्य तु काशेयः पुत्रो दीर्घतपास्तथा ॥६४॥  
 बभूव दीर्घतपसो विद्वान् घन्वन्तरिः सुतः ।  
 घन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः ॥६५॥  
 तथा केतुमतः पुत्रो विद्वान् भीमरथः स्मृतः ।  
 पुत्रो भीमरथस्यापि वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥६६॥  
 दिवोदास इति ख्यातः सत्त्वशत्रुप्रणाशनः ।  
 दिवोदासस्य पुत्रस्तु वीरो राजा प्रतर्द्दनः ॥६७॥  
 प्रतर्द्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सो भार्गव एव च ।  
 अलर्को राजपुत्रस्तु राजा सन्मतिमान् भुवि ॥६८॥  
 हैहयस्य तु दायार्धं हृतवान् वै महीपतिः ।  
 आजह्ने पितृदायार्धं दिवोदासहृत बलात् ।  
 दिवोदासेन बालेति घृणयासौ विसर्जितः ॥६९॥

गृत्समिति के पुत्र ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य थे । कार्शिक का काशेय दीर्घतपा नाम वाला सुत समुत्पन्न हुआ ॥६४॥ इस दीर्घतपा का दायार्ध परम विद्वान् घन्वन्तरि उत्पन्न हुआ । इस घन्वन्तरि का पुत्र केतुमान् के नाम से प्रख्यात हुआ ॥६५॥ उस केतुमान् तनय बड़ा विद्वान् भीमरथ कहा गया था । भीमरथ का भी पुत्र वाराणसी का स्वामी हुआ था ॥६६॥ दिवोदास इस नाम से प्रख्यात हुआ । यह समस्त शत्रुओं का विनाश कर देने वाला था । इस राजा दिवोदास का आरम्भ परम वीर राजा प्रतर्द्दन नामधारी उत्पन्न हुआ ॥६७॥ राजा प्रतर्द्दन के वरस तथा भार्गव नाम वाले दो पुत्रों ने जन्म लिया । अलर्क राजपुत्र भूमि पर अच्छी मति वाला राजा था ॥६८॥ इस महीपति ने हैहय के दायार्ध को बलपूर्वक हरण कर लिया और अपने पिता के दायार्ध का भी आहरण कर लिया जो कि दिवोदास के द्वारा बल से हृत किया था ॥६९॥ भद्रथेय्य के पुत्र महारमा-नुदम दिवोदास ने 'यह बच्चा है'—यह दिवार करके दया से इसको छोड़ दिया ॥७०॥

अष्टारयो नाम नृपः सुतो भीमरथस्य वै ।  
 तेन पुत्रेण बालस्य प्रहृत तस्य भो द्विजाः ॥७१॥  
 चरस्यान्तं मुनिश्चण्डाः क्षत्रियेण विधित्सता ।  
 अलकः काशिराजस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ॥७२॥  
 पट्टि वर्षसहस्राणि पट्टिवर्षतानि च ।  
 युवा रूपेण सम्पन्न आसीत्काशिकुलोद्बहः ॥७३॥  
 लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप सः ।  
 चयसाञ्जन्ते मुनिश्चेष्टा हत्वा क्षेमकराक्षसम् ॥७४॥  
 रम्या निवेशयामास पुरी वाराणसी नृपः ।  
 अलकस्य तु दायादः क्षेमको नाम पार्थिवः ॥७५॥  
 क्षेमकस्य तु पुत्रो वै वर्षकेतुस्ततोऽभवत् ।  
 वर्षकेतोश्च दायादो विभुर्नाम प्रजेश्वरः ॥७६॥  
 आनर्त्तोस्तु त्रिभोः पुत्रः सुकुमारस्ततोऽभवत् ।  
 सुकुमारस्य पुत्रस्तु सत्यकेतुर्महारथः ॥७७॥

अष्टारय नाम वाला राजा भीमरथ का पुत्र था । हे द्विजगणो ! उस पुत्र के द्वारा उस बालक का जो भी कुछ प्रहृत था उसको हे मुनिगणो ! और उस क्षत्रिय ने चर का अन्त कर देने की इच्छा की । काशिराज जो अलक था वह ब्राह्मणों की रक्षा करने वाला और सत्यसङ्गर था ॥७१-७२॥ वह काशिकुलोद्बह साठ सौ साठ हजार वर्ष तक रूप से सुसम्पन्न युवा था ॥७३॥ उसने लोपामुद्रा की कृपा से परम आयु प्राप्त की थी । हे मुनिगणो ! अपनी अवस्था के अन्त में उसने क्षेमक राक्षस का हनन कर दिया ॥७४॥ उस नृप ने वाराणसी पुरी को परम रम्य निवेशित किया । अलक का पुत्र क्षेमक नाम वाला पार्थिव हुआ ॥७५॥ क्षेमक के पुत्र का नाम वर्ष केतु था । इस वर्षकेतु का दायाद विभु नामधारी प्रजेश्वर था ॥७६॥ विभु का पुत्र आनर्त्त उत्पन्न हुआ । उस से फिर सुकुमार हुआ । इस सुकुमार का पुत्र महारथ सत्यकेतु ने जन्म ग्रहण किया ॥७७॥

सुतोऽभवन्महातेजा राजा परमघाम्मिकः ।  
 वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भर्गभूमिस्तु भार्गवात् ॥७८॥  
 एते त्वङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे ।  
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तमाः ॥७९॥  
 आजमीढोऽप्ररो वंशः श्रूयतां द्विजसत्तमाः ।  
 सुहोत्रस्य बृहत्पुत्रो बृहतस्तनयास्त्रयः ॥८०॥  
 अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च वीर्यवान् ।  
 अजमीढस्य पत्न्यस्तु तिस्रो वै यशसान्विताः ॥८१॥  
 नीली च केशिनी चैव धूमिनी च वराङ्गनाः ।  
 अजमीढस्य केशिन्या जज्ञं जह्लुः प्रतापवान् ॥८२॥  
 आजह्ले यो महासत्रं सर्वमेघमस्रं विभुम् ।  
 पतिलोमेन यं गङ्गां विनीतेव ससार ह ॥८३॥  
 नेच्छतः प्लावयामास तस्य गङ्गां च तत्सदः ।  
 तत्तया प्लावितं दृष्ट्वा यशवाटं समन्वतः ॥८४॥

यह पुत्र महान् तेजस्वी राजा परम घाम्मिक था वत्स का पुत्र वत्स  
 भूमि और भार्गव से भर्ग भूमि ने जन्म प्राप्त किया ॥७८॥ ये सब अङ्गिरा  
 ऋषि के पुत्र भार्गव वंश में समुत्पन्न हुए थे । हे मुनिगणों ! ये ब्राह्मण-  
 क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र थे ॥७९॥ हे द्विजधेष्टो ! आजमीढ दूसरा वंश  
 था उसका भी श्रवण कर लो । सुहोत्र का पुत्र बृहत्पुत्र हुआ और बृहत्  
 के तीन आत्मज हुए ॥८०॥ ये तीनों अजमीढ-द्विमीढ और वीर्यवान्  
 पुरुमीढ हुए । राजा अजमीढ की तीन पत्नियाँ बहुत यशस्विनी थी ॥८१॥  
 उनके शुभ नाम नीली केशिनी और वराङ्गना धूमिनी थे । उस राजा  
 अजमीढ की जा पत्नी केशिनी थी उसके गर्भ से परम प्रतापी राजा  
 जह्लु ने जन्म प्राप्त किया ॥८२॥ जिस राजा ने सर्वमेघ मघ-विभु महा-  
 सत्र का आह्वान किया और जिसकी मथना पति बना देने के लोभ  
 से गङ्गा ने विनीता के समान सरण किया ॥८३॥ जब उसने इसकी  
 दृष्टा नदी प्रकट की तो उसकी सभा को गङ्गा ने प्लावित कर दिया ।

इस प्रकार से राजा जह्नु ने धारों ओर से यज्ञवाट को स्वयं उस गङ्गा के द्वारा प्लावित होते हुए देखा था ॥८४॥

जह्नु नुरन्मन्नवीद्मङ्गां क्रुद्धो विप्रास्तदा नृप ।

एष ते त्रिपुत्तोकेषु सक्षिप्यापः पिबाम्यहम् ॥८५॥

अस्य गङ्गाश्वलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि ।

ततः पीता महात्मानो दृष्ट्वा गङ्गां महपथः ॥८६॥

उपनिन्युर्महाभागा दुहितृ वेन जल्लिषीष्ट ।

युवनाश्वस्य पुत्री तु कावेरी जह्नु रावहव ॥८७॥

गङ्गाशापेन देहाद्ध यस्याः पञ्चाशदीकृतम् ॥

जह्नुस्तु दमितः पुत्रो अजको नाम वीर्यवान् ।

अजकस्य तु दायदो बलाकाश्वो महीपतिः ॥८८॥

चभूव मृगयाशीलः कुलिकस्तस्य चात्मजः ।

पह्नैः सह संवृद्धो राजावनचरैः सह ॥८९॥

कुशिकस्यु तपस्तेपे पुत्र मन्द्रसमं विभुम् ।

तमेयमिति त शक्रस्यासादम्येत्य जज्ञियात् ॥९०॥

स गाधिरभवद्राजा मधवा कोशिक स्वयम् ।

विश्वामित्रस्तु गाधेयो विश्वामित्रात्तथाष्टकः ॥९१॥

उस समय मे हे विप्रो ! नृप जह्नु को घडा क्रोध होगया और उसने गङ्गा में कहा-इस तुम्हारे सम्पूर्ण जल को संक्षिप्त करके मैं पी लेता हूँ ॥८५॥ हे गये ! यह जो तुझे अपने प्रवाह से प्लावित कर देने का अभिमान हो रहा है उसका फल तू प्राप्त कर ले ॥८६॥ उस महाभागा गंगा दुहिता के स्वरूप मे उसने ग्रहण किया और तभी से इसका नाम जह्नुवी पड गया । उस राजा जह्नु ने युवनाश्व की पुत्री कावेरी के साथ विवाह किया ॥८७॥ पीछे गंगा के शाप से जिसफत्र आघा देह नदी के रूप मे कर दिया गया । उस राजा जह्नु का पुत्र महान् वीर्य वाला अजक हुआ था । इस अजक का पुत्र बलाकाश्व महीपति हुआ ॥८८॥ इसका आत्मज कुशिक बहुत अधिक शिकार खेलने के स्वभाव वाला हुआ और यह राजा वनचर पशुओं के साथ ही सम्बन्धित

हुआ ॥८६॥ उस राजा कुशिक ने बड़ा उग्र तप किया कि मैं इन्द्र के सहस्र विभु पुत्र प्राप्त करूँ ॥८७॥ वह इन्द्र स्वयं कौशिक माघि राजा हुआ । इस माघि का सुत विश्वामित्र माधेय हुए तथा विश्वामित्र से अष्टक हुआ ॥८८॥

अष्टकस्य सुतो लौहि प्रोक्तोजहनुगणो मया ।

आजमीढोऽपरो वंश शृष्टतां मुनिसत्तमाः ॥८९॥

अजमीढात्तु नीत्यां वै सुशान्तिरुदपद्यत ।

पुरुजातिः सुशान्तेश्च बाह्याश्वः पुरुजातितः ॥९०॥

बाह्याश्वतनयाः पञ्च स्फीता जनपदावृताः ।

मुद्गलः सृष्टयश्चैव राजा बृहदिषुस्तथा ॥९१॥

यवीनरश्च विक्रान्तः कृमिलाश्वश्च पञ्चमः ।

पञ्चैते रक्षणायाल देशानामिति विश्रुताः ॥९२॥

पञ्चानां ते तु पञ्चालाः स्फीता जनपदावृताः ।

अल सरक्षणे तेषां पञ्चाला इति विश्रुताः ॥९३॥

मुद्गलस्य तु दायादो मोद्गल्यः सुमहायशाः ।

इन्द्रमेना यतो गर्भं ब्रध्नश्च प्रत्यपद्यत ॥९४॥

आसीत् पञ्चजनः पुत्रः सृष्टयस्य महात्मनः ।

सुतः पञ्चजनस्यापि सोमदत्तो महीपतिः ॥९५॥

इन अष्टक का सुत लौहि उरग्र हुआ जिसको मैंने जहनुगण बत-  
साया था । अब हे मुनिगणो ! दूसरा आजमीढ वंश का श्रवण करो  
॥८९॥ उस राजा आजमीढ के वीर्य से नीलो नामधारिणी पत्नी से  
सुशान्ति ने जन्म लिया । उस सुशान्ति का सुत पुरुजाति हुआ तथा फिर पुरु-  
जाति के वीर्य से बाह्याश्व ने जन्म प्राप्त किया ॥९०॥ इस बाह्याश्व के  
पाँच पुत्र हुए जो बहुत विस्तृत जनपदों से समावृत थे । मुद्गल-सृष्टय-  
राजा बृहदिषु-परम विक्रान्त यवीनर तथा पाँचवा कृमिलाश्व हुआ ।  
ये पाँचों सम्पूर्ण देशों की रक्षा करने के लिये परम समर्थ थे—इस प्रकार  
से ये पाँचों प्रख्यात हुए ॥९१॥ ९२॥ इन पाँचों के पञ्चाल स्फीत जन-  
पदों से समावृत थे । उन विस्तृत देशों की सुरक्षा के लिये पञ्चाल परम

विश्रुत हुए ॥६६॥ राजा मुद्गल का दायाद मौद्गल्य था जो सुमहान् यश वाला हुआ । जिसके वीर्य से इन्द्रसेना ने गर्भ धारण किया और बुध्नश्च नामक पुत्र की प्राप्ति की ॥६७॥ महात्मा सृञ्जय का पुत्र पञ्च-जन हुआ और पञ्चजन के सुत का नाम महीपति सोमदत्त ने जन्म लिया था ॥६८॥

सोमदत्तस्य दायादः सहदेवो महायशः ।

सहदेवसुतश्चापि सोमको नाम विश्रुतः ॥६९

अजमीढसुतो जातः क्षीरो वशे तु सोमकः ।

सोमकस्य सुतो जन्तुर्यस्त पुत्ररात वभौ ॥१००

तेषां यवीयान् पृषतो द्रुपदस्य पिता प्रभुः ।

आजमीढा. स्मृताश्च ते महात्मानस्तु सोमकाः ॥१०१

महिषी त्वजमीढस्य धूमिना पुत्रगृद्धिनी ।

पतिव्रता महाभागा कुलजा मुनिसत्तमाः ॥१०२

सा च पुत्रार्थिनी देवी व्रतचर्य्यसमन्विता ।

ततो वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥१०३

हुत्वाग्निं विधिवत् सा तु पवित्रा मितमोजना ।

अग्निहोत्रकुशेष्वेव सुप्वाप मुनिसत्तमाः ॥१०४

धूमिन्या स तथा देव्या त्वजमीढ. समीयिवान् ।

ऋक्ष सस्त्रनयामास धूम्रवर्णं सुदर्शनम् ॥१०५

इस सोमदत्त का दायाद सहदेव था जो महान् यश से सम्पन्न था ।

तथा सहदेव का पुत्र सोमक नाम वाला प्रख्यात हुआ ॥६९॥ वश के

क्षीण हो जाने पर अजमीढ का पुत्र सोमक समुत्पन्न हुआ । इस सोमक

के पुत्र का नाम जन्तु था जिसने एक ही पुत्र इस भूमण्डल में क्षोभित

हूँ ॥१००॥ उनमें यवीयान् पृषत था जो प्रभु द्रुपद का पिता था ।

ये सब आजमीढ कहे गये हैं । ये सब महान् आत्माओं वाले सोमक थे

॥१०१॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! अजमीढ की महिषी अर्थात् महामिपिता रानी

पुत्र गृद्धिनी धूमिनी थी जो सत्कुलोत्पन्ना महात् भागवाती पतिव्रता थी

॥१०२॥ यह पुत्र को चाहने वाली देवी ब्रह्मचर्य व्रत से मुक्त होकर

दश हजार वर्ष तक उसने अक्षयन्त कठिन तपस्या की ॥१०३॥ यह विधि पूर्वक अग्नि में हवन करके परम पवित्र रहा करती और परिमित भोजन किया करती थी । हे श्रेष्ठ मुनिगणो ! यह अग्निहोत्र के कुशाओं पर ही सो गई ॥१०४॥ उस देवी धूमिनी के साथ अजमीठ ने सहवास किया था । तब धूम्रवर्ण वाले सुदर्शन ऋक्ष को उसने जन्म दिया था ॥१०५॥

ऋक्षात् सम्बरणो जज्ञ कुरु. सम्बरणात्तथा ।

य. प्रयागादतिक्रम्य कुरुक्षेत्र चकार ह ॥१०६॥

पुण्य च रमणीय च पुण्यकृद्धिर्निपेवितम् ।

तस्यान्ववाय. सुमहान् यस्य नाम्नाय कौरवाः ॥१०७॥

कुरोश्च पुत्राश्चत्वारः सुधन्वा सुधनुस्तथा ।

परोक्षिच्च महाबाहुः प्रवरश्चारिमेजयः ॥१०८॥

परोक्षितस्तु दायादो धार्मिको जनमेजयः ।

श्रुतसेनोऽग्रसेनश्च भीमसेनश्च नामतः ॥१०९॥

एते सर्वे महाभागा विक्रान्ता बलशालिनः ।

जनमेजयस्य पुत्रस्तु सुरयो मतिमास्तथा ॥ १०॥

सुरयस्य तु विक्रान्तः पुत्रो जज्ञे विदूरथः ।

विदूरथस्य दायाद ऋक्ष एव महारथः ॥१११॥

द्वितीयस्तु भरद्वाजाग्राम्ना तेनैव विश्रुतः ।

द्वावृक्षौ सोमवदोऽस्मिन् द्वावेव च परोक्षितौ ॥११२॥

उस ऋक्ष से सम्बरण ने जन्म प्राप्त किया तथा फिर सम्बरण से कुरु समुत्पन्न हुआ । जिसने प्रयाग से अतिक्रमण करके कुरुक्षेत्र को किया ॥१०६॥ यह कुरुक्षेत्र परम पुण्य स्थान और अधिक रमणीय था जो कि पुण्यारमा पुरुषों के द्वारा सेवित था । उस कुरु का वंश बहुत विदाल था जिसके नाम से वीरव प्रसिद्ध हुए थे ॥१०७॥ उस महाराज कुरु के चार पुत्र हुए । सुधन्वा, सुधनु-महाबाहु परोक्षित और प्रवर अरिमेजय ये उन चारों के पुत्र नाम थे ॥१०८॥ राजा परोक्षित का पुत्र परम धार्मिक जनमेजय उत्पन्न हुआ । श्रुतसेन-अग्रसेन और भीम-



सेन इन नामों वाले सभी परम विक्रान्त एवं बलशाली थे । तथा जनमेजय का पुत्र भतिमान् सुरथ समुत्पन्न हुआ था ॥१०६-११०॥ सुरथ के वीर्य से परम विक्रान्त विदूरथ ने पुत्र रूप में जन्म लिया । इस विदूरथ का दायाद महारथी ऋक्ष ही हुआ ॥१११॥ दूसरा मरद्वाज से उसी नाम से विश्रुत हुआ । इस सोम के वंश में दो ऋक्ष हुए हैं और दो ही परीक्षित भी हुए हैं ॥११२॥

भीमसेनाख्यो विप्रा द्वौ चापि जनमेजयौ ।

ऋक्षस्य तु द्वितीयस्य भीमसेनोऽभवत्सुतः ॥११३॥

प्रपीषो भीमसेनात् प्रतीपस्य तु शान्तनुः ।

देवापिर्वाह्लिकश्च त्रय एव महारथाः ॥११४॥

शान्तनोस्त्वभवद्भ्रीष्मस्तस्मिन् वशे द्विजोत्तमाः ।

वाह्लिकस्य तु राजपर्वश शृणुत भो द्विजाः ॥११५॥

वाह्लिकस्य सुतश्च व सोमदत्तो महायशः ।

जज्ञिरे सोमदत्तात् भूरिभूरिश्रवाः शलः ॥११६॥

उपाध्यायस्तु देवानां देवापिरभवन्मुनिः ।

च्यवनपुत्रः कृतक इष्ट आसीन्महात्मनः ॥११७॥

शान्तनुस्त्वभवद्राजा कौरवाणां घुरन्धरः ।

शान्तनोः सम्प्रवक्ष्यामि वशं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥११८॥

गाङ्गां देवव्रतं नाम पुत्रं सोऽजनयत् प्रभुः ।

स तु भीष्म इति ख्यातः पाण्डवानां पितामहः ॥११९॥

हे विप्रगण ! भीमसेन तीन हुए हैं और जनमेजय भी दो हुए हैं ।

द्वितीय ऋक्ष का पुत्र भीमसेन हुआ ॥११३॥ उस भीमसेन के वीर्य से प्रतीप नामक सुत समुत्पन्न हुआ तथा प्रदीप का पुत्र शान्तनु हुआ । देवापि और वाह्लिक ये तीनों ही महारथ थे ॥११४॥ हे द्विजोत्तमो ! उस महाराज शान्तनु का पुत्र भीष्म हुआ और उस वंश में यह उत्पन्न हुए थे । अब हे द्विजो ! आप लोग वाह्लिक के विषय में श्रवण करो ॥११५॥ उस वाह्लिक का दायाद महान् यश वाला सोमदत्त समुत्पन्न हुआ । उस सोमदत्त के वीर्य से भूरि भूरिश्रवा और शल इनने जन्म

लिया । देवों का उपाध्याय देवापि मुनि हुआ । महात्मा ज्यवन का पुत्र कृतक इष्ट था ॥११७॥ समस्त कौरवों का परम धुरन्धर शान्तनु राजा हुआ । अब हम राजा शान्तनु के तीनों लोको में प्रसिद्ध वश का वर्णन करेंगे ॥११८॥ उस प्रभु शान्तनु ने गान्धर्व देववत ना । वाले पुत्र को जन्म ग्रहण कराया था । वही "भीष्म" इस नाम से विख्यात हुए थे जो कि समस्त पाण्डवों के पितामह थे ॥११९॥

काली विचित्रवीर्य्यं तु जनयामास भो द्विजाः ।  
 शान्तनोर्दयित पुत्र धर्म्मार्त्मानमकल्मषम् ॥१२०॥  
 कृष्णर्द्धपायनाच्चैव क्षेत्रे वैचित्रवीर्य्यके ।  
 धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्स्यजीजनत् ॥१२१॥  
 धृतराष्ट्रस्तु गान्धार्य्या पुत्रानुत्पादयच्छतम् ।  
 तेषां दुर्य्योधनः श्रेष्ठः सर्व्वपामपि स प्रभुः ॥१२२॥  
 पाण्डोर्धनञ्जयः पुत्रः सोभद्रस्तभ्य चात्मजः ।  
 अभिमन्योः परोक्षित् पुं पिता पारोक्षितस्य ह ॥१२३॥  
 पारिक्षितस्य काश्याया द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः ।  
 चन्द्रापीडस्तु नृपतिः सूर्य्यापीडश्च मोक्षवित् ॥१२४॥  
 चन्द्रापीडस्य पुत्राणां दातमुत्तमघन्विनाम् ।  
 जानमेजयमित्येव क्षात्रं मुवि परिश्रुतम् ॥१२५॥  
 तेषां ज्येष्ठस्तु तत्रासीत् पुरे वारणसाह्वये ।  
 सत्यकर्णो महाबाहुर्मज्ज्वा विपुलदक्षिणः ॥१२६॥

हे द्विजगण ! काली ने विचित्र वीर्य्य को उत्पन्न किया था जो शान्तनु का परम प्रिय-धर्मरत्न और कल्मष रहित पुत्र था । कृष्णर्द्धपायन से विचित्रवीर्य्य के क्षेत्र में अर्थात् उसकी पत्नी के उदर से धृतराष्ट्रपाण्डु तथा विदुर ने जन्म प्राप्त किया था ॥१२०-१२१॥ धृतराष्ट्र ने गान्धारी नाम वाली पत्नी के गर्भ से एक सौ पुत्रों को उत्पन्न किया । उन सब में दुर्योधन श्रेष्ठ था और वह सब का स्वामी बन गया था ॥१२२॥ पाण्डु का आत्मज धनञ्जय था और उसका पुत्र सोभद्र

हुआ । अभिमन्यु से परीक्षित पुत्र उत्पन्न हुआ जो पारीक्षित का पिता था ॥१२३॥ उस पारीक्षित के काशी में दो सनय उत्पन्न हुए । उनमें चन्द्रापीड़ तो नृपति हो गया तथा दूसरा जो सूर्यापीड़ था वह मोक्ष का ज्ञाता था ॥१२४॥ चन्द्रापीड़ के उत्तम धनुर्धारी एक सौ पुत्र हुए थे । यह सब जानमेजय क्षात्र भूलोक में विख्यात हुए ॥१२५॥ उस उन सब पुत्रों में जो ज्येष्ठ था वह वारणम नामक नगर में था और इसका शुभ नाम सत्यकर्ण था । यह महाबाहु और यज्ञ करने वाला तथा बहुत अधिक दक्षिणा देने वाला हुआ ॥१२६॥

सत्यकर्णस्य दायादः श्वेतकर्णः प्रतापवान् ।

अपुत्रः स तु धर्मात्मा प्रविवेश तपोवनम् ॥१२७॥

तस्माद्वनगता गर्भं यादवी प्रत्यपद्यत ।

सुचारोर्दुहिता सुभ्रूमालिनी ग्राहमालिनी ॥१२८॥

सम्भूते स च गर्भं च श्वेतकर्णः प्रजेश्वरः ।

अन्वगच्छत् कृत पूर्वं महाप्रस्थानमच्युतम् ॥१२९॥

सा तु दृष्ट्वा प्रियं तं च मालिनी पृष्ठतोऽन्वगात् ।

सुचारोर्दुहिता साध्वो वने राजीवलोचना ॥१३०॥

पथि सा सुपुत्रे वाला सुकुमारं कुमारकम् ।

तमपास्याथ तत्रैव राजानं सान्वगच्छत् ॥१३१॥

पतिव्रता महाभागा द्रौपदीव पुरा सती ।

कुमारः सुकुमारोऽग्रे गिरिपृष्ठे रुरोद ह ॥१३२॥

दयार्थं तस्य मेघास्तु प्रादुरासन्महात्मनः ।

श्रविष्ठायास्तु पुत्री द्वौ पैप्पलादिश्च कौशिकः ॥१३३॥

इस सप्तकर्ण का जो सुत उत्पन्न हुआ उसका नाम श्वेतकर्ण था तथा यह बहुत प्रताप वाला था । इस धर्मात्मा के कोई भी पुत्र नहीं था अतएव इसने तपोवन में प्रवेश कर लिया था ॥१२७॥ फिर उससे वन में गयी हुई यादवी ने गर्भ धारण किया । यह सुचार की पुत्री सुभ्रू ग्राहमालिनी थी ॥१२८॥ उस गर्भ के सम्भूत हो जाने पर प्रजेश्वर श्वेतकर्ण पूर्वकृत अच्युत महा प्रस्थान को चला गया ॥१२९॥ उस मालिनी

ने जब अपने प्रिय स्वामी को गमन करते हुए देखा तो वह भी पीछे रूँ चली गयी । वह मुष्णरु की पुत्री राजीव कमल के समान सुन्दर नेत्रवाली परम साध्वी थी ॥१३०॥ उस बाला ने मार्ग में ही परम सुकुमार कुमार को जन्म ग्रहण कराया । उसने उस कुमार को वहीं पर छोड़कर वह राजा के ही पीछे रूँ चली गयी । यह महाभागा पतिव्रता थी और जैसे पहिले सती द्रौपदी ने अपने स्वामी का अनुसरण किया था वैसे ही इसने भी किया । वह परम सुकुमार कुमार पर्वत के ऊपर पड़ा हुआ रुदन कर रहा था ॥१३१-१३२॥ उस महात्मा के ऊपर दया करके मेघ प्रादुर्भूत हो गये थे । श्रविष्ठा के दो पुत्र थे और पंप्पलादि तय कीर्तिक थे ॥१३३॥

दृष्ट्वा कृपान्वितो गृह्य तो प्राक्षालयता जले ।  
 निधृष्टौ तस्य पार्श्वौ तु शिलाया रुधिरप्सुतो ॥१३४॥  
 अजश्यामः स पार्श्वभ्या घृष्टाम्या सुसमाहितः ।  
 अजश्यामौ तु तत्पश्वौ देवेन सम्बभूवतु ॥१३५॥  
 अथाजपार्श्व इति वै चक्राते नाम तस्य तौ ।  
 स तु रेमकशालाया द्विजाम्यानभिर्वद्धितः ॥१३६॥  
 रेमकस्य तु भाग्यं तमुद्धतं पुत्रकारणात् ।  
 रेमत्या स तु पुत्रोऽभूदग्राह्यणौसचिवौतु नौ ॥१३७॥  
 तेषा पुत्राश्च पौत्राश्च युगपत्तुत्पजीविनः ।  
 स एष पौरवो वशः पाण्डवाना महात्मनाम् ॥१३८॥  
 श्लोकोऽपि चात्र गीतोऽय नाहुषेन ययातिना ।  
 जरासक्रमणे पूर्वं तदा प्रातेन धीमता ॥१३९॥  
 अचन्द्रार्कग्रहा भूमिभवेदियमसशयम् ।  
 अपौरवा मही नैव भविष्यति कदाचन ॥१४०॥

इन्होंने जिस समय में इस कुमार को देखा तो उसको उन्होंने ग्रहण कर लिया । उन्होंने उगरी जल में प्रक्षालित किया था । उसके दोनों पार्श्वभाग शिला में निधृष्ट होकर रुधिर से प्सुत हो गये ॥१३४॥ वह घृष्ट पार्श्वभागों में सुसमाहित होकर अज के समान दयाम हो गया ।

देव के द्वारा उसके दोनो पार्श्वभाग अज द्याम हो गये ॥१३५॥ इसके अनन्तर उन दोनो ने उस कुमार का नाम अज पार्श्व कर दिया । फिर वह कुमार रेमकशाला मे द्विजो के द्वारा सम्बन्धित किया गया ॥१३६॥ रेमक की भार्या ने पुत्र होने के कारण से उत्का उद्धन किया । वह अब रेमनी का पुत्र होगया और वे दोनो ब्राह्मण सचिव हो गये ॥१३६॥ उनके पुत्र और पौत्र एक साथ तुल्यजीवी थे । वह यही महात्मा पाण्डवो का पौरव वंश है ॥१३८॥ इनके विषय मे नहुष के पुत्र ययाति ने एक श्लोक का गान किया । उस राजा ययाति ने जो कि परम धीमान् एव प्रसन्न होते हुए इस श्लोक का गान जरा ( वृद्धावस्था ) के सक्रमण के पूर्व मे ही किया था ॥१३८॥ उसने कहा—यह भूमि बिना किसी संशय के बिना चन्द्र सूर्य और ग्रहो वाली हो सकती है किन्तु पौरव वंश इतना विशाल है कि यह भूमि पौरवो से रहित कभी भी नहीं होगी ॥१४०॥

एष वः पौरवो वंशो विख्यातः कथितो मया ।

तुर्व्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि द्रुद्योश्चानोर्यंदोस्तथा ॥१४१॥

तुर्व्वसोस्तु सुतो वह्निर्गोभानुस्तस्य चात्मजः ।

गोभानोस्तु सुतो राजा त्रैशानुरपराजितः ॥१४२॥

करन्धमस्तु त्रैशानेमरुत्तस्तस्य चात्मजः ।

अन्यस्त्वाक्षतो राजा मरुत्तः कथितो मया ॥१४३॥

अनपत्योऽभवद्राजा यज्वा विपुलदक्षिणः ।

दुहिता सम्मता नाम तस्यासीत् पृथिवीपतेः ॥१४४॥

दक्षिणाथ तु सा दत्ता सवर्त्तयि महात्मने ।

दुष्यन्त पौरव चापि लेभे पुत्रमकल्मषम् ॥१४५॥

एव ययातिशापेन जरासक्रमणो तदा ।

पौरव तुर्व्वसोर्व्वश प्रविवेश द्विजोत्तमाः ॥१४६॥

दुष्यन्तस्य तु दायादः करुरोमः प्रजेश्वरः ।

करुरोमादथाह्नीदश्चत्वारस्तस्य चात्मजाः ॥१४७॥

यह पौरव वंश परम विख्यात है जिसका वर्णन मैंने कर दिया है । अब तुर्व्वसु-द्रुह्य -अनु और यदु के वंश का वर्णन मैं करके आपको श्रवण

कराजंगा ॥१४१॥ तुर्वसु का पुत्र बलि उत्पन्न हुआ था और उसका  
 आत्मज गोमानु हुआ । इस गोमानु का पुत्र अपराजित राजा त्रैशानु  
 हुआ ॥१४२॥ त्रैशानु का आत्मज करन्धन उत्पन्न हुआ तथा मरु  
 इसका पुत्र हुआ । अन्य अविचक्षित राजा था जो मरु से मैने बतलाया  
 था ॥१४३॥ यह राजा यजन करने वाला तथा विपुल दक्षिणा देने वाला  
 था किन्तु यह सन्तति से हीन था । उस राजा की एक सम्भला नाम  
 वाली पुत्री थी ॥१४४॥ उस पुत्री का समर्पण महात्मा सम्बर्त के लिये  
 दक्षिणा के रूप में किया । उसने दुष्यन्त और अकल्मष पौरव पुत्र को  
 प्राप्त किया ॥१४५॥ इस प्रकार से उस समय में जरा के सक्रमण में  
 ययाति के शाप से हे द्विजगणो ! पौरव तुर्वसु के वंश में प्रवेश कर गया  
 ॥१४६॥ राजा दुष्यन्त का पुत्र प्रजश्वर भररोम हुआ । इस भररोम  
 से इसके पश्चात् आह्लाद सुत उत्पन्न हुआ और फिर इसके चार आत्मजों  
 ने जन्मग्रहण किया ॥१४७॥

पाण्ड्यश्च केरलश्चैव कोलञ्जोलश्च पार्थिवः ।

द्रुह्योश्च तनयो राजन् चक्रसेतुश्च पार्थिवः ॥१४८

अङ्गारमेनुस्तत्पुत्रो मरुता पतिरुच्यते ।

यौवनाश्वेन समरे कृच्छ्रेण निहतो वलौ ॥१४९

युद्धं सुमहदप्यासीन्मासान् परि चतुर्दश ।

अङ्गारसेतार्द्रायादो गान्धारो नाम पार्थिवः ॥१५०

ग्यायते यस्य नामना वै गान्धारविषयो महान् ।

गान्धारदेशराश्रयं व तुरगा वाजिना वराः ॥१५१

अनोस्तु पुत्रो धर्म्मोऽभूदद्युतस्तस्यात्मजोऽभवत् ।

द्युतादनदुहो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मजः ॥१५२

प्रचेतस मुचेतास्तु वीर्त्तितास्त्वनवो मया ।

चभूयुस्ते मदी, पुत्रा, पञ्च देवमुतोपमाः ॥१५३

सहस्रादः पयोदश्च क्रीष्टा नीलोऽज्जिवस्तया ।

सहस्रादस्य दद्यादाख्यः परमधार्म्मिकः ॥१५४

उनके नाग पाण्ड्य-केरल-कोल और चोल पारिव थे । हे राजन् !  
 द्रुह्य का तनय वक्रसेतु राजा ने जन्म लिया । इस वक्रसेतु का पुत्र  
 अङ्गारसेतु हुआ जो मरुतो का पति कहा जाता है । परम कृच्छ्र यौवनाश्व  
 ने संप्राम मे वली को निहत किया ॥१४८-१४९॥ यह महा भीषण  
 युद्ध चौदह मास पर्यन्त हुआ । इस अङ्गार से युक्त सेतु के वीर्य से  
 गान्धार नाम वाले पारिव पुत्र ने जन्म लिया ॥१५०॥ जिसके नाम से  
 महान् गान्धार नाम वाला देश विख्यात होता है । इस गान्धार देश में  
 उत्तम होने वाले तुरग अश्वों में परम श्रेष्ठ हुआ करते हैं ॥१५१॥ अनु  
 के पुत्र का नाम धर्म था और धर्म का सुत द्युत नाम वाला उत्पन्न हुआ ।  
 द्युत से अनदुह ने जन्म प्राप्त किया और फिर प्रचेता इसका पुत्र हुआ  
 ॥१५२॥ प्रचेता का सुचेता हुआ । इस तरह से मैंने आप लोगों के समक्ष  
 अनुओं का वर्णन कर दिया है । वे सब पाँच देव सुतो के समान यदु  
 के पुत्र हुए । उन पाँचों के शुभ नाम सहस्राद-ययोद-क्रीष्ट-नील और  
 आज्जिक थे । इस सहस्राद के वीर्य से तीन परम धार्मिक पुत्रों ने जन्म  
 ग्रहण किया ॥१५३-१५४॥

हैहयश्च ह्यश्चैव राजा वेणुहयस्तथा ।  
 हैहयस्याभवत् पुत्रो घर्म्मनेत्र इति श्रुतः ॥१५५॥  
 घर्म्मनेत्रस्य कात्तस्तु साहजस्तस्य चात्मजः ।  
 साहज्जनी नाम पुरी तेन राजा निवेशिता ॥१५६॥  
 आसीन्महिष्मतः पुत्रो भद्रश्रेण्यः प्रतापवान् ।  
 भद्रश्रेण्यस्म दायदो दुर्दमो नाम विश्रुतः ॥१५७॥  
 दुर्दमस्य सुतो धीमान् कनको नाम नामतः ।  
 कनकस्य तु दायदाश्चत्वारो लोकविश्रुताः ॥१५८॥  
 कृतवीर्यः कृतोजाश्च कृतघन्वा तथैव च ।  
 कृताग्निस्तु चतुर्योऽभूत् कृतवीर्यादियाज्जुनः ॥१५९॥  
 योऽसौ बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत् ।  
 जिगाय पृथिवीमेको रथेनादित्यवर्जसा ॥१६०॥

स हि वर्षाद्युतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ।

दत्तमाराधयामास कार्तवीर्योऽत्रिसम्भवम् ॥१६८॥

उन तीनों के नाम हैहय-हय और राजा वेणुहय थे थे । हैहय के वीर्य से घर्मनेत्र सुत ने जन्म लिया ॥१५७॥ घर्मनेत्र का सुत कार्तु हुआ तथा इस कार्तु का पुत्र साहस्य समुत्पन्न हुआ । उस राजा ने अपने ही नाम से साहस्यनी पुरी को निवेशित किया ॥१५८॥ महिष्मान् का पुत्र भद्रश्रेष्ठ का दायाददुर्दम नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१५९॥ दुर्दम का पुत्र घीमान् कनक नाम वाला उत्पन्न हुआ और फिर इस कनक के लोको में परम प्रसिद्ध चार पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया ॥१६०॥ उन चारों के परम शुभ नाम कृतवीर्य-कृतोजः कृतघन्वा और घीया कृतानि थे हुए थे । इस कृतवीर्य के वीर्य से अर्जुन समुत्पन्न हुआ ॥१६१॥ जो अर्जुन अपने एक सहस्र बाहुओं के द्वारा सातों द्वीपों का स्वामी हुआ । आदित्य के समान वर्चस्व वाले एक ही रथ व द्वारा इसने समस्त पृथ्वी को जीत लिया । ऐसा प्रतापी था ॥१६०॥ उस कार्तवीर्य ने दश हजार वर्ष पर्यन्त परम दुष्कर तपस्या करके अत्रि ऋषि से समुत्पन्न दत्त की आराधना की ॥१६१॥

तस्मै दत्तो धरान् प्रादाच्चतुरो भूरितेजसः ।

पूर्वं बाहुसहस्रं तु प्रायित सुमहद्वरम् ॥१६२॥

अधर्म्मोऽधोयमानस्य सद्भिस्तत्र निवारणम् ।

उग्रेण पृथिवीं जित्वा घर्म्मणैवानुरञ्जनम् ॥१६३॥

सग्रामान् सुबहून् जित्वा हत्वा चारीन् सहस्रशः ।

सग्रामे वर्त्तमानस्य वधं चाभ्यधिकाद्रणो ॥१६४॥

तस्य बाहुसहस्रं तु युध्यतः किल भो द्विजाः ।

योगाद्योगीश्वरस्येव प्रादुर्भवति मायया ॥१६५॥

तेनेय पृथिवीं सत्त्वां सप्तद्वीपां सपत्तना ।

समाश्रुद्वा सनगरा उग्रेण विधिना जिता ॥१६६॥

तेन सप्तगु द्वीपेषु सप्त यज्ञशतानि वै ।

प्राप्तानि विधिना राज्ञा श्रूयन्ते मुनिसत्तमाः ॥१६७॥



सर्व्वे यज्ञा मुनिश्रेष्ठाः सहस्रशतदक्षिणाः ।

सर्व्वे काञ्चनयूपाश्च सर्व्वे काञ्चनवेदयः ॥१६८॥

दत्त ने परम सन्तुष्ट होकर उसको बहुत अधिक तेज वाले चार वरदान प्रदान किये । सबसे प्रथम उसने अपनी एक सहस्र बाहुओं के हो जाने पर सुमहान् वरदान पाने की प्रार्थना की ॥१६८॥ अधर्म में अधी-यमान का वहाँ पर सत्पुरुषों के द्वारा निवारण था । अत्युग्र घर्म के द्वारा ही अनुरञ्जन था ॥१६९॥ उसने बहुत से सप्राप्तों में विजय प्राप्त करके और सहस्रो ही क्षत्रियों को जीतकर अर्थात् उनका हनन किया । संग्राम में वर्तमान अधिक बलवान् रिपु का वध कर दिया ॥१६९॥ हे द्विजपत्न्यो ! युद्ध करते हुए योगीश्वर के ही समान योग से उसके माया के द्वारा एक सहस्र बाहु प्रादुर्भूत हो जाया करती थी ॥१६९॥ उस सहस्राजुन ने यह सातों द्वीपों वाली नगरों के तथा पत्तन और सागरों के सहित समस्त पृथिवी उग्र विधि के द्वारा जीत ली ॥१६९॥ हे मुनि-श्रेष्ठो ! ऐसा सुना जाता है कि उस महान् प्रतापी राजा सहस्राजुन ने सातों द्वीपों में सात सौ यज्ञ किये ॥१६७॥ ये सभी यज्ञ हे मुनिगणो ! सहस्र शत दक्षिणा वाले थे । इन सभी यज्ञों में सुवर्ण के रूप में तथा सभी यज्ञों में काञ्चन की ही वेदियाँ निमित्त की गयी थी । ऐसा विशाल वैभव का उपभोग सभी यज्ञों में सहस्राजुन ने किया था ॥१६८॥

सर्व्वे देवैर्मुनिश्रेष्ठा विमानस्यैरलङ्कृतैः ।

गन्धर्व्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवीपशोभिताः ॥१६९॥

यस्य यज्ञे जगौ गावां गन्धर्व्वो नारदस्तथा ।

वरीदासात्मजो विद्वान्महिम्ना तस्य विस्मितः ॥१७०॥

न नून कीर्त्त वीर्य्यस्य गतिं यास्यन्ति पायिवाः ।

यज्ञं दर्शनैस्तपोभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च ॥१७१॥

स हि सप्तसु द्वीपेषु वर्मो खड्गी शरासनी ।

रथो द्वीपाननुचरन् योगी सदृश्यते नृभिः ॥१७२॥

अनष्टद्रव्यता चैव न शोको न च विभ्रमः ।

प्रभावेण मया राज्ञः प्रजा घर्म्मण रक्षतः ॥१७३॥

स सर्व्वरत्नभाक् सम्राट् चक्रवर्ती बभूव ह ।

स एव पशुपालोऽभूत् क्षेत्रपालः स एव च ॥१७४॥

स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादज्जुनोऽभवत् ।

स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनत्वचा ॥१७५॥

ये सभी यज्ञ ऐसे हुए कि हे भुनिगणो ! इनमें विमानों में बैठकर सब देवगण-गन्धर्व और अप्सराएँ नित्य ही वहाँ पर उपशोभित हुआ करते थे ॥१६६॥ जिस सहस्राजुन के यज्ञ में गन्धर्व तथा नारद मुनि गाया का गान करते । उसकी महिमा से परम विद्वान् बदरीदाम का आत्मज अत्यन्त विस्मित होगये थे ॥१७॥ देवपि नारद जी ने कहा— इस सौक में कोई भी नृप निश्चय ही इस कासर्व्वोप की शक्ति को प्राप्त नहीं होंगे । इसके ऐसे विशाल मङ्गल महान् दान अत्युत्तम तप विक्रम और श्रुत है कि इसकी समानता कोई भी प्राप्त नहीं कर सकेगा ॥१७१॥ वह सहस्राजुन सातों द्वीपों में वर्मा-सङ्गी और शरासन के धारण करने वाला है । यह रथी द्वीपों में अनुचरण करता हुआ मनुष्यों के द्वारा योगोराज ही विचरण कर रहा हो ॥१७॥ इस राजा में विशेषता यह है कि इसका द्रव्य बभी भी नाश को प्राप्त नहीं होता है । इसको न कभी शोक और विभ्रम ही होता है । इसका प्रभाव ही ऐसा है कि यह राजा घम के साथ प्रजा की रक्षा किया करता है ॥१७३॥ वह समस्त प्रकार के रत्नों को प्राप्त करने वाला चक्रवर्ती सम्राट् हुआ था । वह ही पशुपाल तथा वही क्षेत्रपाल भी था ॥१७४॥ वह ही वृष्टि के द्वारा पर्जन्य हो गया था और योगी होने में अजुन हो गया था । वह ही ज्या (घनुष की डोरी) के पान से पठित स्वचा वाली एक सहस्र पादुओं से समन्वित था ॥१७५॥

भाति रश्मिसहस्रेण शरदीव च भास्करः ।

स हि नागान्मनुष्येषु महिष्मत्या महायुतिः ॥१७६॥

कर्कोटकमुतान् जित्वा पुष्या तस्या न्यवेशयत् ।

स वै वेग नमृद्रस्य प्रावृट्कालेऽम्बुजेक्षणः ॥१७७॥

क्रीडन्निव भुजोदिभन्नं प्रतिस्रोतश्चकार ह ।  
 लुण्ठिता क्रीडता तेन नदी तद्ग्राममालिनी ॥१७८  
 चलद्गुर्मिसहस्रेण शङ्किताभ्येति नम्मदा ।  
 तस्य बाहुसहस्रेण क्षिप्यमाणे महोदधौ ॥१८९  
 भयान्निलीना निश्चेष्टाः पातालस्या महामुराः ।  
 चूर्णीकृतमहावीचि चलन्मीनमहातिमिम् ॥ २०  
 मास्ताविद्धफेनोघमावर्त्तक्षोभसङ्कुलम् ॥  
 प्रावर्त्तयत्तदा राजा सहस्रेण च बाहुना ॥१८९  
 देवासुरसमाक्षितः क्षीरोदमिव मन्दरः ।  
 मन्दरक्षोभचकिता अमृतोत्पादशङ्किनाः ॥१९२  
 सहस्रोत्पतिता भीता भीम दृष्ट्वा नृपोत्तमम् ।  
 नता निश्चलमूर्द्धानो वभूवुस्ते महोरगाः ॥१९३

वह शरत्काल में भास्कर के समान एक सहस्र किरणों से सुशोभित था । महान् द्युति वाले उस माहिष्मती ने मनुष्यों में बकौटक के सुत जागी को जीतकर उस पुरी में निवेशित कर दिया था । कमल के सदृश नेत्रों वाले उसने वर्षाकाल में क्रीडा सी करते हुए ही समुद्र के वेग को प्रतिस्रोत भुजाओं से उद्भिन्न कर दिया था । उसने उस ग्राम की मालिनी नदी को क्रीडा करते हुए ही लुण्ठित कर दिया था ॥१७८-१७९॥ उस राजा के सहस्रबाहुओं के महोदधि में क्षिप्यमाण करने पर चलती हुई सहस्र ऊर्मियों ( तरङ्गों ) से नर्मदा शङ्कित होकर गमन करती है ॥१७९॥ उस समय में पाताल में स्थित महान् असुर गण भी भय से निलीन हो गये थे और चेष्टा से रहित बन गये थे । महान् तरंगों को चूर्णों किये जाने वाले—मीन और महान् तिमियों को धलायमान किये जाने वाला—मारुत से आविद्ध फेनों के समूह वाले तथा आवर्त्तों (प्रवरो) के क्षोभ से सङ्कुल समुद्र को उस राजा ने अपनी सहस्रबाहुओं से उस समय में प्रवृत्त कराया था ॥१८०-१८१॥ देवी और असुरों के द्वारा समाक्षित मन्दर क्षीर सागर की तरह मन्दराचल ये क्षोभ से चकित तथा अमृत की उत्पत्ति में सका वाले महोरग सहसा उत्पन्नित हो गये

वे और भीम उत्तम नृप को देखकर मयभीत हो गये थे । वे सभी महो-  
रग नत होकर निश्चल मस्तक वाले हो गये ॥१८२-१८३॥

सायाह्नं कदलाखण्डाः कम्पिता इव वायुना ।

स वै वदध्वा धनुर्ज्याभिरुत्सिक्तं पञ्चभिः शरैः ॥१८४॥

लङ्घ्ये शं मोहयित्वा तु सबल रावण बलात् ।

निजित्य वशमानीय माहिष्मत्यां ववन्ध तम् ॥१८५॥

श्रुत्वा तु वद्धं पौलस्त्यं रावण त्वज्जुनेन च ।

ततो गत्वा पुलस्त्यस्तमज्जुनं ददृशे स्वयम् ॥१८६॥

मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पुलस्त्येनाभियाचितः ।

यस्य बाहुसहस्रस्य वभूव ज्यातलस्वनः ॥१८७॥

युगान्ते तोयदस्येव स्फुटतो ह्यशनेरिव ।

अहो वत मुने वीर्य्यं मार्गवस्य यदच्छिनत् ॥१८८॥

राज्ञो बाहुसहस्रस्य हैमं तालवनं यथा ।

तृपितेन कदाचित् स मिक्षितध्वित्रमानुना ॥१८९॥

सायाह्न के समय में जिस तरह से वायु के द्वारा कदलखण्ड कम्पित हो जाते हैं वैसे ही ये सब कम्पायमान हो गये थे । उस राजा सहस्राजुन ने पाँच शरों से उत्सिक्त धनुष की प्रत्यञ्चाओं से बद्ध करके बड़े भारी बल वामे सभा के राजा रावण को बलपूर्वक मोहित करके और उसे जीतकर वश में कर लिया था तथा माहिष्मती में जाकर उसको बाँध दिया था ॥१८४-१८५॥ जिस समय पुलस्त्य मुनि ने यह सुना था कि पौलस्त्य रावण को सहस्राजुन ने बाँध लिया है तो पुलस्त्य मुनि स्वयं उस सहस्राजुन के समीप में जाकर उससे मिले थे ॥१८६॥ जब पुलस्त्य महामुनि के द्वारा उहसे याचना की गयी तो उस अजुन नृप ने उस पौलस्त्य राजस को मुक्त कर दिया था । जिस सहस्राजुन की एक सहस्र बाहुओं के ज्या तल की ध्वनि होती थी तो यह ऐसी प्रतीत होती थी मानो युगान्त के समय में बर्य्य का स्फोटन करने वाले मेघ की ध्वनि हो । ऐसी भीषण ध्वनि उसके धनुष की डोरी की दृवा करती थी । ओहो ! मार्गव मुनि का मित्रता विनाश यत्न भीयं था जिनन उस सह-

अर्जुन के एक सहस्र बाहुओं को हैम तालवन के समान ही काट दिया था । किसी समय में तृपित चित्रमानु ने उससे शिक्षा की याचना की थी ॥१८०-१८६॥

स भिक्षामददाद्वीरः सप्त द्वीपान् विभासोः ।

पुराणि ग्रामघोषांश्च विषयाएर्वच सर्व्वशः ॥१८७॥

जज्वाल तस्य सर्वाणि चित्रमानुर्दिदृक्षया ।

स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेण महात्मनः ॥१८८॥

ददाह कार्तवीर्य्यस्तु शैलांश्चैव वनानि च ।

सशून्यमाश्रमं रम्यं वरुणस्यात्मजस्य वै ॥१८९॥

ददाह बलवद्भीतश्चित्रमानुः सहैहयः ।

य लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भास्वन्तमुत्तमम् ॥१९०॥

चशिष्ठं नाम स मुनिः ख्यात आपव इत्युत ।

तत्रापवस्तु तं क्रोधाच्छप्तवानज्जुनं विभुः ॥१९१॥

यस्मान्न वर्ज्जितमिदं वनं ते मम हैहय ।

तस्मात्ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हनिष्यति ॥१९२॥

रामो नाम महाबाहुर्जमिदमन्यः प्रतापवान् ।

द्वित्वा बाहुसदृशन्तेप्रमथ्य तरसा बली ॥१९३॥

उस वीर ने विभावसु को सात द्वीप भिक्षा में दे दिये और पुर-ग्राम-घोष और सभी विषयो ( देशों ) को दे दिया ॥१८७॥ देखने की इच्छा से चित्रमानु ने उसके सबों को जला दिया । उस महात्मा पुरुषेन्द्र के प्रभाव से कार्तवीर्य ने शैलों को और वनों को दग्ध कर दिया । वरुण आत्मज का शून्य मुरम्य आश्रम को सहैहय चित्रमानु ने बलवान् से भीत होकर दग्ध कर दिया जिस उत्तम भास्वान् पुत्र को वरुण ने पहिले प्राप्त किया था ॥१८८-१८९॥ वह मुनि चशिष्ठ इस नाम धारा आपव इससे ख्यात थे । वहाँ पर विभु आपव ने क्रोध से उस अर्जुन को शाप दे दिया—हे हैहय ! क्योंकि तुमने मेरे इस वन को वर्जित नहीं किया है इसी कारण तुम्हारे इस दुष्कृत कर्म को कृतमन्य हनन कर देगा ॥१९०-१९१॥ जमदग्नि ऋषि का पुत्र महान् बाहुओं वाले महान् प्रतापी राम

( परशुराम ) बहुत बली है और वह वेग के साथ तेरी एक सहस्र भुजाओं को प्रमथन करके छेदन करेंगे ॥१६६॥

तपस्वी ब्राह्मणस्त्वां तु हनिष्यति स भार्गवः ।

अनष्टद्रव्यता यस्य बभूवामित्रकर्षिणः ॥१६७॥

प्रतापेन नरेन्द्रस्य प्रजा धर्म्मेण रक्षतः ।

प्राप्तस्ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शापान्महामुनेः ॥१६८॥

वरस्तथैव भो विप्राः स्वयमेव वृतः पुरा ।

तस्य पुत्रशतं त्वासीत् पञ्च शेषा महात्मनः ॥१६९॥

कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्म्मात्मानो यशस्विनः ।

शूरसेनश्च शूरश्च वृषणो मधुपध्वजः ॥२००॥

जयध्वजश्च नाम्नासीदावन्त्यो नृपतिर्महान् ।

कार्तवीर्यस्य तनया वीर्यवन्तो महाबलाः ॥२०१॥

जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः ।

तस्य पुत्रशतं ख्यातास्तालजङ्घा इति स्मृताः ॥२०२॥

तेषां कुले मुनिश्रेष्ठा हैहयाना महात्मनाम् ।

वीतिहोसा मुयताश्चमोजाश्चावन्त्यस्मृताः ॥२०३॥

वह परम तपस्वी ब्राह्मण भार्गव तेरा हनन करेगा । अमित्र कर्षी जिसकी अनष्ट द्रव्यता हुई थी ॥१६७॥ धर्म से प्रजा की रक्षा करने वाले उस नरेन्द्र के प्रताप से इसके अनन्तर महामुनीन्द्र के शाप से इसकी मृत्यु प्राप्त हुई थी ॥१६८॥ हे विप्रो ! उसने स्वयं ही एक वरदान भी प्राप्त किया । उस महारमा के एक ही पुत्र उनमें से पाँच शेष रहे थे ॥१६९॥ ये पाँचो अस्त्रधारी-बली-शूर-धर्मात्मा और यशस्वी थे । शूरसेन, शूर, वृषण, मधुपध्वज, और जयध्वज—इनके ये नाम थे और आवन्त्य महान् नृपति हुआ था । कार्तवीर्य के तनय महान् बल वाले वीर्यवान् हुए थे ॥२००-२०१॥ जयध्वज या आत्मज तालजङ्घ उत्पन्न हुआ जो महान् बलवान् था । उनमें एक ही पुत्र हुए जो सबके गये "तालजङ्घा"—इसी नाम से सोचो मे प्रख्यात हुए ॥२०२॥ हे मुनि-

श्रेष्ठो ! महारत्ना हैहयों के कुल में भीतिहीन-सुव्रत-भोज और आवन्तय  
कहे गये थे ॥२०३॥

तौण्डिकेयाश्च विख्यातास्तालजङ्घास्तथैव च ।

भरताश्च सुजाताश्च बहुत्वाभानुकीर्तिताः ॥२०४॥

वृषप्रभृतयो विप्रा यादवाः पुण्यकर्मिणः ।

वृषो वशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः ॥२०५॥

मधोः पुत्रशत त्वासीद्वृषस्तस्य वशकृत् ।

वृषणाद्वृष्णयः सर्व्वे मघोस्तु माघवाः स्मृताः ॥२०६॥

यादवा यदुनाम्ना ते निरुच्यन्ते च हैहयाः ।

न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं प्रतिलभेच्च सः ॥२०७॥

कार्तवीर्य्यस्य यो जन्म कथयेदिह नित्यशः ।

एते ययातिपुत्राणां पञ्च वशा द्विजोत्तमाः ॥२०८॥

कीर्तिता लोकवोराणां ये लोकान् धारयन्ति वै ।

भूतानीव मुनिश्रेष्ठाः पञ्च स्यावरजङ्गमान् ॥२०९॥

श्रुत्वा पञ्च विसर्गास्तु राजा धम्मार्थिकोविदः ।

वशी भवति पञ्चानामात्मजानां तथेश्वरः ॥२१०॥

जिस प्रकार से तालजङ्घ विख्यात हुए वंसे ही तौण्डिकेय-भरत और  
सुजात भी प्रख्यात हुए । ये सब बहुत थे अतएव उनका वर्णन नहीं  
किया गया है ॥२०४॥ हे विप्रो ! वृष प्रभृति पुण्य कर्म वाले यादव थे ।  
उनमें वृषवशधर था और इस वृष का पुत्र मधु हुआ । इस मधु के भी सौ  
पुत्र हुए उसका वशधर वृष्ण था । वृष्ण से समस्त वृष्णि हुए तथा मधु से  
होने वाले सब माघव कहे गये हैं ॥२०५-२०६॥ यदु के नाम से यादव  
हैहय कहे जाया करते हैं । उसके वित्त का नाश नहीं होता है और जो  
नष्ट भी हो गया है वह पुनः प्राप्त हो जाया करता है ॥२०७॥ जो नित्य  
प्रति इस कार्तवीर्य के जन्म की कथा को कहा करता है उसका धन  
विनष्ट नहीं होता है और विनष्ट भी प्राप्त हो जाया करता है । हे द्विजो-  
त्तमो ! ये ययाति राजा के पाँच वंश हैं ॥२०८॥ इन लोक वीरों का  
वर्णन किया गया है जो लोको को धारण करने वाले थे । हे मुनिश्रेष्ठो !

पाँच भूतों के समान स्थावर जगमो का श्रवण करके धर्मार्थ का परम कोविद राजा पंच विसर्ग पाँच आत्मजों का ईश्वर बशी हो जाया करता है ॥२०६-२१॥

लभेत् पञ्च वरांश्चैव दुर्लभानिह लोकिकान् ।  
 आयुः कीर्ति तथा पुत्रानैश्वर्यं भूमिमेव च ॥२११॥  
 घारणान्छ्रवणाच्चैव पञ्चवर्गस्य भो द्विजाः ।  
 क्रोष्टोर्व्वश मुनिश्चेष्टाः शृणुध्वं गदतो मम ॥२१२॥  
 यदोर्व्वशघरस्याथ यज्विनः पुण्यकर्मिणः ।  
 क्रोष्टोर्व्वश हि श्रुत्वैव सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥२१३॥  
 यस्यान्ववायजो विष्णुर्हरिर्वृष्णि कुलोद्बहः ॥२१४॥

वह परम दुर्लभ लोक में होने वाले पाँच बरों की भी प्राप्ति किया करता है । वे पाँच वरदान उभयु-कीर्ति पुत्र-ऐश्वर्य और भूमि ये होते हैं ॥२११॥ हे द्विजगण ! जो पञ्चवर्ग का श्रवण किया करता है तथा घारण करता है उसी को उपयुक्त पाँच वरदान प्राप्त हुआ करते हैं । अब हम हे मुनिश्चेष्टो ! क्रोष्टु के वश का वर्णन करते हैं आप लोग मुझसे श्रवण करिये ॥२१२॥ यदु के वश का घारण करने वाला यज्वज और पुण्य कर्मों के करने वाले क्रोष्टु के वश का बेबल श्रवण करने भर से ही मनुष्य सब तरह के पापों से मुक्त हो जाया करता है ॥२१३॥ जिसके वश में समुत्पन्न होने वाले वृष्णि कुल के उद्बहन करने वाले साध्यात् विष्णु श्री हरि ये ॥२१४॥

-:❀:-

११—यदुपुत्र क्रोष्टुवंशवर्णन् ।

गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टोर्भार्य्यै बभूवतुः ।  
 गान्धारी जनयामास अनमित्र महाबलम् ॥१॥



माद्री युधाजितं पुत्रं ततोऽन्यं देवमीदुपम् ।  
 तेषा वशस्त्रिया भूतो वृष्णीनां कुलवर्द्धनः ॥२॥  
 माद्र्याः पुत्रौ तु जज्ञाते श्रुतौ वृष्ण्यन्धकाबुभे ।  
 जज्ञाते तनयौ वृष्णो श्वफल्कश्चित्रकस्तथा ॥३॥  
 श्वफल्कस्तु मुनिश्रेष्ठा धर्मात्मा यत्र वर्तते ।  
 नास्ति व्याधिभयं तत्र नावर्षस्तापमेव च ॥४॥  
 कदाचित् काशिराजस्य विषये मुनिसत्तमाः ।  
 श्रीणि वर्षाणि पूर्णानि नावपत् पाकशासनः ॥५॥  
 स तत्र धानयामास श्वफल्कं परमाचितम् ।  
 श्वफल्कपरिवर्त्तेन ववर्ष हरिवाहनः ॥६॥  
 श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामिविन्दत ।  
 गान्दिनी नाम गां सा च ददौ विप्राय नित्यशः ॥७॥

महामुनि श्री लोम हर्षण जी ने कहा—इस क्रोष्टु की गान्धारी और माद्री दो भार्याएँ हुई थी । गान्धारी ने महान् बलवान् को अनमित्र को जन्म दिया ॥१॥ माद्री ने युधाजित पुत्र को तथा अन्य देवमीदुप को जन्म ग्रहण कराया । उनका वश तीन भागों में था जो कि इन वृष्णियों के कुल की वृद्धि करने वाला था ॥२॥ माद्री के वृष्णि और अन्धक दो पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था । वृष्णि के भी श्वफल्क और चित्रक इन दो पुत्रों ने जन्म लिया ॥३॥ हे श्रेष्ठ मुनिगणों ! जहाँ पर परम धर्मात्मा श्वफल्क रहता था वहाँ पर किसी भी व्याधि का कोई भय नहीं होता था और न अनावृष्टि होती थी तथा ताप भी नहीं हुआ करता था ॥४॥ हे मुनिसत्तमों ! किसी समय में काशिराज के देश में पूरे तीन वर्ष तक इन्द्र देव ने वर्षा नहीं की थी ॥५॥ वहाँ पर उस राजा ने परमाचित श्वफल्क बुलवाया था । श्वफल्क के वहाँ पर आगमन से ही हरिवाहन ने वर्षा की थी ॥६॥ श्वफल्क ने काशिराज की पुत्री को अपनी भार्या बनाया था । वह नित्य प्रति गान्दिनी नाम वाली गौ को विप्र के लिये दान किया करती थी ॥७॥

दाता यज्वा च वीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः ।  
 अक्रूरः सुपुत्रे तस्माच्छ्ववफल्काद्भूरिदक्षिणः ॥८॥  
 उपमद्गुस्तथा मद्गुमदुरश्चारिमेजयः ।  
 आविक्षितस्तथाक्षेपः शत्रुघ्नश्चारिमर्दनः ॥९॥  
 धर्मधृग्यतिधर्मा च धर्मोक्षान्वधकरस्तथा ।  
 आवाहप्रतिवाही च सुन्दरी च वराङ्गना ॥१०॥  
 अक्रूरणोप्रसेनाया सुगात्र्या द्विजसत्तमाः ।  
 प्रसेनश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्चसौ ॥११॥  
 चित्रकस्याभवन् पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च ।  
 अश्वघ्रीवोऽश्ववाहुश्च स्वपाश्वंकगवेयणौ ॥१२॥  
 अरिष्टनेमिरश्वश्च सुधर्मा धर्मभृत्तथा ।  
 सुवाहुर्वह्नुवाहुश्च श्रविष्ठाश्ववरो स्त्रियौ ॥१३॥  
 आसिकन्या जनयामास दूर वै देवमीदुपम् ।  
 महिष्या जज्ञिरे दूरा भोज्याया पुरुषा दश ॥१४॥

उस रानी ने श्वपत्न के वीर्य से भूरिदक्षिणा देने वाला-दानशील-  
 यजन करने वाला-वीर-श्रुतवान् और अतिप्रियो का प्यारा अक्रूर समु-  
 त्पन्न किया था ॥८॥ हे द्विजगणो ! उस अक्रूर ने सुन्दर गान्धी वाली  
 उपसेना परनी के गर्भ से उपमद्गु-मद्गु-मदुर-अरिमेजय-अविक्षित-आक्षेप-  
 शत्रुघ्न-अरिमर्दन-धर्मधृक्-यतिधर्मा-धर्मोक्ष-अन्वध-आवाह-प्रतिवाह और  
 वराङ्गना सुन्दरी तथा देवी के समान वर्चस्व वाले प्रसेन और उपदेव को  
 जन्म दिया था ॥९-१०॥ चित्रक के भी कई एक पुत्र उत्पन्न हुए थे उनके  
 नाम पृथु-विपृथु-अश्वघ्रीव- अश्ववाहु-स्वपाश्वंक-गवेयण-अरिष्टनेमि-अश्व-  
 सुधर्मा धर्मभृत्-मुवाहु और वह्नुवाहु थे तथा श्रविष्ठा और धरण दो स्त्री  
 थी ॥१२-१३॥ अगिराणी में दूरदेवमीदुप को जन्म ग्रहण कराया था  
 तथा महिषी के गर्भ से दूरी को जन्म दिया था और भोज्या में दश  
 पुरुषों को समुत्पन्न किया ॥१४॥

वसुदेवो महाबाहुः पूठर्वमानकदुन्दुभिः ।

नक्षयस्य प्रसूतस्य दुन्दुम्याः प्राणदन् दिवि ॥१५॥

आनकानां च सह्यादः सुमहानभवद्विवि ।

पपात पुष्पवर्षश्च शूरस्य जनने महान् ॥१६

मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि ।

यस्यासीत्पुरुषाग्यस्य कान्तिश्चन्द्रमसो यथा ॥१७

देवभागस्ततो जज्ञे तथा देवश्रवाः पुनः ।

अनाधृष्टिः कनवको वत्सवानथ गृञ्जमः ॥१८

श्यामः शमीको गण्डूपः पञ्च चास्य वराङ्गनाः ।

पृथुकीर्त्तिः पृथा चैव श्रुतदेवा श्रुतश्रवा ॥१९

राजाधिदेवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः ।

श्रुतश्रवाया चैद्यस्तु शिशुपालाऽभवन्नृपः ॥२०

हिरण्यकशिपुर्योऽसौ दैत्यराजोऽभवत्पुरा ।

पृथुकीर्त्या तु सञ्जज्ञे तनयो वृद्धशर्मणः ॥२१

पूव मे महाबाहु आनक दुन्दुभि वसुदेव ने जन्म ग्रहण किया था जिसकी उत्पत्ति होने के समय मे दिवलोक मे दुन्दुभियो का वादन हुआ था ॥१५॥ तथा स्वर्ग मे आनको की महान् ध्वनि भी हुई थी । शूर के जन्म लेने के समय मे बड़ी भारी पुष्पो की वर्षा भी हुई थी ॥१६॥ सम्पूर्ण मनुष्य लोक मे भूमण्डल मे रूप-सावर्ण्य मे उसकी समानता रखने वाला कोई भी नही था जिस पुरुषो मे परम उत्तम की कान्ति चन्द्रमा के ही तुल्य थी ॥१७॥ फिर उससे देवभाग-देवश्रवा-अनाधृष्टि-कनवक-वत्सवान्-गृञ्जम-श्याम-शमीक-गण्डूप ने जन्म ग्रहण किया था और इसके पांच वराङ्गनाएँ थी । पृथुकीर्त्ति पृथा-श्रुतदेवा-श्रुतश्रवा और राजाधि देवी ये पांच वीर माताएँ थी । श्रुतश्रवा मे चैद्य शिशुपाल नृप हुआ था ॥१८-२०॥ जो पहिले जन्म मे दैत्यराज हिरण्यकशिपु हुआ था । पृथु की कीर्त्ति मे वृद्धशर्मा का पुत्र समुत्पन्न हुआ था ॥२१॥

करुपाधिपतिर्वीरा दन्तवक्रो महाबलः ।

पृथा दुहितर चक्रे कुन्तिस्ता पाण्डुरावहत् ॥२२

यस्या स धम्मविद्राजा धर्म्मो जज्ञे युधिष्ठिरः ।

भीमसेनस्तथा वातादिन्द्राच्चैव धनञ्जयः ॥२३

लोकेऽप्रतिरयो वीरः शत्रुतुल्यपराक्रमः ।

अनमित्रान्छिन्निर्जज्ञे कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनान् ॥२४॥

शैनेयः सत्यकस्तस्माद्युमुधानश्च सात्यकिः ।

उद्धवो देवभागस्य महाभागः सुतोऽभवत् ॥२५॥

पण्डितानां परं प्राहुर्देवश्च वसुमुत्तमम् ।

अश्मक्यं प्राप्तवान् पुत्रमनाधृष्टिर्यशस्विनम् ॥२६॥

निवृत्तशत्रुं शत्रुघ्नं श्रुतदेवा त्वजायत ।

श्रुतदेवात्मजास्ते तु नैपादिर्यः परिश्रुतः ॥२७॥

एकलव्यो मुनिश्रेष्ठा निपादः परिवर्द्धितः ।

वत्सवते त्वपुत्राय वसुदेव प्रतापवान् ।

अद्भिर्ददौ सुत वीर शौरिः कौशिकमौरसम् ॥२८॥

करुणाधिपति महान् बलवान् वीर दन्तवक्र उत्पन्न हुआ था तथा  
पृथा पुत्री कुन्ती ने जन्म लिया था जिसका पाण्डु के साथ विवाह हुआ  
था ॥२२॥ जिसके गर्भ से धर्म का बच्चा धर्म स्वरूप राजा युधिष्ठिर ने  
जन्म लिया था । वायुदेव से भीम और इन्द्रदेव से धनञ्जय (अर्जुन)  
ने जन्म ग्रहण किया था । यह लोक में अप्रतिरथ वीर था जो इन्द्र के ही  
समान पराक्रम वाला हुआ था । अनमित्र से जो सबसे छोटा वृष्णि  
नन्दन था शिनि समुत्पन्न हुआ था । उस शिनि से सत्यक शैनेय और  
युमुधान सात्यकि उत्पन्न हुआ था । देवभाग का महान् भाग वाला उद्धव  
सुत समुत्पन्न हुआ था ॥२३-२५॥ उसमें देव स्वामी को पण्डितों ने  
परम श्रेष्ठ कहा जाता था । अनाधृष्टि ने परम यशस्वी अश्मक्य को पुत्र  
के रूप में प्राप्त किया था ॥२६॥ श्रुतदेवा ने ऐसे शत्रुओं के नाशक  
शत्रुघ्न को जन्म दिया था जिसके समस्त शत्रु ही समाप्त हो गये थे । वे  
सय श्रुतदेव के आत्मज थे जिसमें नैपादि परम परिश्रुत था ॥२७॥ हे  
मुनि श्रेष्ठो ! एवं सत्य निपादों के द्वारा परिवर्द्धित किया गया था ।  
पुत्रहीन यशवान् को प्रतापवान् वसुदेव ने जलो से वीर सुत दिया था ।  
शौरि ने औरस कौशिक को दिया था ॥२८॥

गण्डूपाय ह्यपुत्राय विष्वक्सेनो ददौ सुतान् ।  
 चारुदेष्ण सुदेष्णश्च पञ्चालं कृतलक्षणम् ॥२६॥  
 असग्रामेण यो वीरो नावर्त्तित कदाचन ।  
 रौक्मिणेयो महाबाहुः कनीयान् द्विजसत्तमाः ॥२७॥  
 वायसानां सहस्राणि यं यान्तुं पृष्ठतोऽन्वयुः ।  
 चारुनद्योपभोक्ष्यामश्चारुदेष्णहतानिति ॥२८॥  
 तन्निजस्तन्निपालश्च सुतो कनवकस्य तो ।  
 वीरश्चाश्वहनुश्चैव वीरो तावथ गृञ्जिमौ ॥२९॥  
 श्यामपुत्रः शमीकस्तु शमीको राज्यमावहत् ।  
 जुगुप्समानो भोजत्वाद्राजसूयमवाप सः ॥३०॥  
 अजातशत्रुः शत्रूणां जज्ञे तस्य विनाशनः ।  
 वसुदेवसुतान् वीरान् कीर्त्तयिष्याम्यतः परम् ॥३१॥  
 वृष्णोस्त्रिविधमेवन्तु बहुशाखं महौजसम् ।  
 धारयन् विपुलं वश नानर्थैरिह युज्यते ॥३२॥

अपुत्र अर्थात् पुत्रहीन गण्डूय के लिये विष्वक्सेन ने पुत्रों को दिया था । चारुदेष्ण-सुदेष्ण-पञ्चाल कृत लक्षण उनके नाम थे । पर ऐसा वीर था कि बिना सग्राम के कभी भी आवर्त्तित नहीं हुआ था । हे द्विजो ! महान् बाहुओं वाला रौक्मिणेय कनीयान् सबसे छोटा था । ॥२६-३०॥ गमन करने वाले जिसके पीछे-पीछे सहस्रो वायस (कोए) गमन किया करते थे कि युद्ध में चारुदेष्ण के द्वारा निहतों को चारु नदी से उपमोक्ष करेंगे इसी प्रकार वायस पीछे-पीछे जाया करते थे ॥३१॥ कनवक के तान्निज और तन्निपाल दो सुत समुत्पन्न हुए थे । वीर और अश्व दनु ये दो गृञ्जिम धीर थे ॥३२॥ श्याम का पुत्र शमीक हुआ था और इस शमीक ने ही राज्य को बहन किया था । उसने जुगुप्समान होते हुए भोजत्व होने से राजसूय को प्राप्त किया था ॥३३॥ उसका पुत्र शत्रुओं का विनाश करने वाला अजात शत्रु हुआ था । इससे आगे हम वसुदेव के वीर सुतों का कीर्त्तन करेंगे ॥३४॥ वृष्णि का तीन प्रकार का बहुत सी

शाखाओ वाला महान् ओज से युक्त विपुल वंश को धारण करने वाला था जो यहाँ पर अन्यों से युक्त नहीं होता है ॥३५॥

माः पत्न्यो वसुदेवस्य चतुर्दश वराङ्गनाः ।  
 पौरवी रोहिणी नाम मतिरादिस्तथापरा ॥३६  
 वैशाखी च तथा भद्रा सुनाम्नी चैव पञ्चमी ।  
 सहदेवा शान्तिदेवा श्रीदेवी देवरक्षिता ॥३७  
 वृकदेव्युपदेवी च देवकी चैव सप्तमी ।  
 सुतनुवद्भवा चैव द्वे एते पारचारिके ॥३८  
 पौरवी रोहिणी नाम बाल्मिकस्यात्मजाभवत् ।  
 ज्येष्ठा पत्नी मुनिश्रेष्ठा दयितानकदुन्दुभेः ॥३९  
 लेभे ज्येष्ठ सुत राम शरण्य शठमेव च ।  
 दुर्दम दमन शुभ्र पिण्डारकमुष्मीनरम् ॥४०  
 चित्रा नाम कुमारी च रोहिणीतनया नव ।  
 चित्रा सुभद्रेति पुनर्विख्याता मुनिसत्तमाः ॥४१  
 वसुदेवाच्च देवक्या जज्ञे शौरिर्महायशः ।  
 रामाच्च निशठो जज्ञे रेवत्या दयितः सुतः ॥४२

वसुदेव की जो पत्नियाँ थी वे वराङ्गनाएँ थी और सख्या में चौदह थी । उनके नाम पौरवी-रोहिणी-मतिरादि-वैशाखी-सुनाम्नी भद्रा पंचमी थी । सहदेवा-शान्तिदेवा-श्रीदेवी-देवरक्षिता-वृकदेवी-उपदेवी और सातवी देवकी थी । सुतनु और बहवा ये दोनों परिचारिकायें थी ॥३६-३८॥ पौरवी रोहिणी नाम वाली जो वसुदेवजी की पत्नी थी यह बाल्मिक की आत्मजा थी । हे मुनिश्रेष्ठो ! यह आनकदुन्दुभि की परम प्रिया ज्येष्ठ पत्नी थी । इन्होंने सबसे बड़ा पुत्र बलराम प्राप्त किया था जो शरण्य था अर्थात् शरण में समागतों की रक्षा करने वाला था । शठ-दुर्दम-दमन-शुभ्र-पिण्डारक उन्नीनर नामक पुत्र प ॥३९-४०॥ और चित्रा नाम वाली कुमारी थी । रोहिणी की नौ तनयाएँ थी । हे मुनिश्रेष्ठो ! यह चित्रा सुभद्रा इम नाम से विख्यात हुई थी ॥४१॥ वसुदेव व धीर्य से

देवकी के गर्भ में महान् यश वाले शौरि ने जन्म ग्रहण किया था । रम्भसे रेवती में प्रिय पुत्र निशठ ने जन्म धारण किया था ॥४२॥

सुभद्रायां रथी पार्थादिभिमन्युरजायत ।

अक्र रात्काशिकन्यायां सत्यकेतुरजायत ॥४३

वसुदेवस्य भार्य्यासु महाभागासु सप्तसु ।

ये पुत्रा जज्ञिरे शूराः समस्तांस्तान्निबोधत ॥४४

भोजश्च विजयश्चैव शान्तिदेवासुताबुभौ ।

वृकदेवः सुनामायां गदश्चास्तां सुताबुभौ ॥४५

अगावहं महात्मानं वृकदेवी व्यजायत ।

कन्या त्रिगर्तराजस्य भार्य्या वै शिशिरायणोः ॥४६

जिज्ञासां पौरुषे चक्रे न चस्कन्देच पौरुषम् ।

कृष्णायससमप्ररया वर्षे द्वादशमे तथा ॥४७

मिथ्याभिशस्तो गार्ग्यस्तु मन्युनातिसमीरितः ।

घोषकन्यामुपादाय मंथुनायोपचक्रमे ॥४८

गोपाली चाप्सरास्तस्य गोपस्त्रीवेशधारिणी ।

धारयामास गार्ग्यस्य गर्भं दुर्द्धरमच्युतम् ॥४९

उस सुभद्रा के गर्भ में पार्थ अर्जुन के वीर्य से रथी भिममन्यु ने जन्म लिया था । अक्रूर से काशि की कन्या में सत्यकेतु समुत्पन्न हुआ था ॥४३॥ वसुदेवजी की महान् भाग वाली सात भार्याओं के गर्भोंसे जिन पुत्रों ने जन्म लिया था वे सभी बड़े शूर-वीर थे । अब आप लोग उनका भी ज्ञान प्राप्त करलो ॥४४॥ भोज और विजय ये दोनों शान्तिदेवा के आत्मज थे । वृकदेव और गद ये दोनों सुत सुनामा के गर्भ से समुत्पन्न हुए थे ॥४५॥ वृक देवी ने महात्मा अगावह को प्रसूत किया था । त्रिगर्त राज की जो कन्या थी वह शिशिरायणि की भार्या हुई थी ॥४६॥ इसने पौरुष में जिज्ञासा की थी और पौरुष को आस्कन्दित नहीं किया था । तथा धारहवें वर्ष में कृष्णायत (काले लोहे) के समान प्रख्य हो गई थी ॥४७॥ क्रोध से अति समीरित होकर गार्ग्य मिथ्याभिशस्त हो गया था । इसने एक घोष की कन्या को लाकर उसके साथ मंथुन का उरक्रम किया

था ॥४८॥ गोप के वेश को धारण करने वाली गोपाली नाम वाली  
अप्सरा ने उत्त मार्ग के अच्युत दुर्घर गर्भ को धारण किया था ॥४९॥

मानुष्या गर्गमाय्यायां नियोगाच्छूलपाणिनः ।

स कालयवनो नाम यज्ञे राजा महाबलः ॥५०॥

वृत्तपूर्वार्द्धकायस्तु सिंहसहननो युवा ।

अपुत्रस्य स राजास्तु ववृषेऽन्तःपुरे शिशुः ॥५१॥

यवनस्य मुनिश्रेष्ठा स कालयवनोऽभवत् ।

आयुष्यमानो नृपतिः पर्यपृच्छदद्विजोत्तम ॥५२॥

वृष्ण्यन्धककुल तस्य नारदोऽकथयद्विभुः ।

अक्षीहिष्या तु सैन्यस्य मधुरामभ्ययात्तदा ॥५३॥

दूत सम्प्रेषयामास वृष्ण्यन्धकनिवेशनम् ।

पतो वृष्ण्यन्धकाः कृष्ण पुरस्कृत्य महामतिम् ॥५४॥

मेता मन्त्रयामासुयवनस्य मयात्तदा ।

वृत्त्या विनिश्चय सव्यं पलायनमरोचयन् ॥५५॥

त्रिहाय मथुरा स्म्या मानयन्तः पिनाकिनम् ।

कुशस्थली द्वारक्ती निवेशयितुमीप्सवः ॥५६॥

इति वृष्णस्य जन्मद यः शुचिनिष्ठेन्द्रियः ।

पद्वंसु श्रावयेद्विद्वाननृणः स सुखी भवेत् ॥५७॥

मानुषी जो मर्ग की भार्या थी उसमें शूलपाणि के नियोग से वह  
महान् वसवान् राजा कालयवन नाम वाले ने जन्म ग्रहण किया था  
॥५०॥ अर्ध काया जिनकी वृत्त पूर्व की और सिंह के समान सहनन  
वासा यह युवा शिशु उस पुत्रहीन राजा के अन्तःपुर में वृद्धि को प्राप्त  
हो रहा था ॥५१॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! वह कालयवन यवन था हुआ था ।  
आयुष्यमान नृपति ने द्विजोत्तम से पूछा था ॥५२॥ विभु श्री नारदजी  
ने उसका वृष्ण्यन्धक कुल कहा था । उस समय में एत-अक्षीहिणी सेना  
के द्वारा मधुरापुरी पर अभियान किया था ॥५३॥ उसने वृष्ण्यन्धकों के  
निवेशन अर्थात् निवास स्थान पर एक दूत को प्रेषित किया था । इसके  
अनन्तर समस्त वृष्ण्यन्धक लोग उस समय में यवन के भय से महान्



सतिमान् भगवान् श्री कृष्ण को आगे करके एकत्रित हुए थे और सब परस्पर में मन्त्रणा करने में तत्पर हो गये थे । सब लोगो ने विशेष रूप से यही निश्चय किया था और वहाँ से कही अन्यत्र भाग जाना ही बचने के लिये पसन्द किया था ॥५५॥ उस परम रमणीक मथुरापुरी को त्याग कर पिनाका की मानता करते हुए कुशस्थली द्वारवती (द्वारकापुरी) के अन्दर जाकर निवेशित होने की इच्छा वाले हो गये थे ॥५६॥ जो पुरुष पवित्र होकर इस भगवान् कृष्ण के जन्म की कथा को नियेन्द्रिय होते हुए पर्वों के समय में श्रवण करता है वह विद्वान् ऋण से मुक्त और परम सुख सम्पन्न हो जाया करता है ॥५७॥

### १२—वृष्णिवंशवर्णन ।

क्रोष्टारथाभवत् पुत्रो वृजिनीवान्महायशः ।  
 वाजिनीवतमिच्छन्ति स्वाहि स्वाहाकृता वरम् ॥१॥  
 स्वाहिपुत्रोऽभवद्राजा उपद्रुगुर्वदतां वरः ।  
 महाक्तुमिरीजे यो विविधैर्भूरिदक्षिणैः ॥२॥  
 ततः प्रसूतिमिच्छन् वं उपद्रुगु.सोऽयमात्मजम् ।  
 जज्ञे चित्ररथस्तस्य पुत्रः कर्मभिरन्वितः ॥३॥  
 आसीच्चैत्ररथिर्वीरो यज्वा विपुलदक्षिणः ।  
 शशविन्दुः परं वृत्तं राजर्षीणामनुष्ठितः ॥४॥  
 पृथुश्रवाः पृथुयक्षा राजासीच्छाश विन्दवः ।  
 शसन्ति च पुराणज्ञाः पार्थश्रवसमन्तरम् ॥५॥  
 अन्तरस्य सुयज्ञस्तु सुयज्ञतनयोऽभवत् ।  
 उपतो यज्ञमखिल स्वधर्मे च कृतादरः ॥६॥  
 शिनेयुरभवत् पुत्र उपतः शत्रुतापनः ।  
 मरुत्वस्तस्य तनयो राजर्षिरभवन्नुपः ॥७॥

महामुनीन्द्र श्री लोमहर्षणजी ने कहा—इसके अनन्तर क्रोष्टु का पुत्र यथास्थी वृजिनीवान् उत्पन्न हुआ था । स्वाहाकृता स्वाहि को वाजिनी वृद्ध,

वर की इच्छा करते थे ॥१॥ बोलने वालों में परम श्रेष्ठ स्वादि का पुत्र उषदम्बु राजा हुआ था जिसने बहुत अधिक दक्षिणा से युक्त अनेक प्रकार के महान् क्रतुओं के द्वारा यजन किया था ॥२॥ इसके उपरान्त उस उषदम्बु ने सन्तति की इच्छा करते हुए अत्युत्तम आत्मज चैत्ररथ को जन्म दिया था । उस चैत्ररथ का पुत्र कर्मों से समुत्त चैत्ररथी वीर समुत्पन्न हुआ था जो यजन करने वाला था तथा बहुत अधिक दक्षिणा देने वाला हुआ था । इसके आगे राजपियों में अनुष्ठित दाशविन्दु हुआ था ॥३-४॥ अधिक मशाला पृथु श्रवा दाशविन्दु राजा था । जो पुराणों के ज्ञाता हैं वे अन्तर पार्थिव को कहा करते हैं ॥५॥ अन्तर का सुत सुयज्ञ हुआ था तथा इस सुयज्ञ का सुत उपत उत्पन्न हुआ था जिसने पूर्ण यज्ञ किया था और अपने धर्म में अत्यधिक आदर करने वाला हुआ था ॥६॥ उस उपत का सनय शिनेम्बु नाम वाला हुआ था जो अपने शत्रुओं को ताप देने वाला था । इसका आत्मज महत राजपि हुआ था जो वि नृप था ॥७॥

महतोऽलभत ज्येष्ठ सुतं कम्बलवर्हिपम् ।

चचार विपुल धर्मममर्षात् प्रेत्यभागपि ॥८॥

स सत् प्रसूतिमिच्छन् वै सुत कम्बलवर्हिपः ।

यभूव स्वमकवचः शतप्रसवतः सुतः ॥९॥

निहत्य स्वमकवचः शत कवचिना रणे ।

घन्विना निशितैर्वाणेरवाप श्रियमुत्तमाम् ॥१०॥

जज्ञे च स्वमकवचात् पराजित्परवीरहा ।

जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महावीर्याः परानिताः ॥११॥

स्वमेपुः पृथुस्वमश्च ज्यामघः पालितो हरिः ।

पालित च हरि चैव विदेहेभ्यः पिता ददौ ॥१२॥

स्वमेपुरमद्राजा पृथुस्वमस्य सश्रयात् ।

ताभ्या प्रप्राजितो राजा ज्यामघोऽवसदाश्रमे ॥१३॥

इस महत ने अपना ज्येष्ठ पुत्र कम्बलवर्हिप नाम वाला प्राप्त किया था । उसने प्रेत्यभाप होते हुए भी धर्म से बहुत अधिक धर्म था तथा-

धरण किया था ॥८॥ उन्ने कम्बल बाँहप के सुते सत्प्रसूति की इच्छा की थी तत्र सत्प्रसव ने रुक्म कवच देखा था ॥९॥ इस रुक्म कवच ने रणक्षेत्र में सौ कवचियों को निह्वन करके धन्विनी के निशित बाणों के द्वारा उत्तम धी की प्राप्ति की थी ॥१०॥ रुक्म कवच से शत्रुओं के वीरों का हनन करने वाले पराजित ने जन्म प्राप्त किया था । महाद् वीर्य वाले पराजित के पाँच पुत्रों ने जन्म धारण किया था ॥११॥ उनके शुभ नाम सुक्मेपु-पृथु रुक्म-ज्यामघ-भालित और हरि थे । पिता ने पालित और हरि को विदेहों के लिये दे दिया था ॥१२॥ पृथुरुक्म के संभ्रम से रुक्मेपु राजा हो गया था । उन दोनों के द्वारा प्रव्राजित राजा ज्यामघ आश्रम में निवास किया करता था ॥१३॥

प्रतान्तश्च तदा राजा ब्राह्मणैश्चैव बोधितः ।

जगाम घनुरादाय देशमन्यं ध्वजी रथी ॥१४॥

नर्मदाकुलमेकाकीमेलनां मृत्तिकावतीम् ।

ऋक्षवन्त गिरि जित्वा शुक्तिमत्यामुवास सः ॥१५॥

ज्यामवस्याभवद्भार्या शैव्या बलवती सती ।

अपुत्रोऽपि स राजा वै नान्या भार्यामविन्दत ॥१६॥

तस्मात्प्रीद्विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप सः ।

भार्यामुवाच सन्त्रस्तः स्नुपेति स जनेश्वरः ॥१७॥

एतच्छ्रुत्वा ब्रवीद्देवी कस्य देव स्नुपेति वै ।

अब्रवीत्तदुपश्रुत्य ज्यामघो राजसत्तमः ॥१८॥

यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्यापपादिता ॥१९॥

उग्रेण तपसा तस्याः कन्यायाः सा व्यजायत ।

पुत्रं विदर्भं सुभया शैव्या परिणता सती ॥२०॥

राजापुश्यातुविद्वासी स्नुषायां क्रयकंशिकी ।

पश्चाद्विदर्भोऽजनयच्छूरी रणविशारदो ॥२१॥

उम समय में राजा प्रतान्त था और ब्राह्मणों के द्वारा समझा दिया गया था । वह ध्वजी रथी अपना घनुर ग्रहण करके अन्य देश को चला गया था ॥१४॥ उस एककी ने नर्मदाकुल मेखला मृत्तिकावती और

ऋक्षवन्त गिरि की जीत कर फिर वह पुत्तिमती में निवास करता था ॥१५॥ उस ज्यामघ की भार्या बलवती सती शैव्या थी वह राजा पुत्रहीन थी था तोभी उसने दूसरी कोई भार्या नहीं बनाई थी ॥१६॥ उसकी युद्ध में विजय हुई थी और वही पर उसने एक कन्या को प्राप्त किया था । वह जनेश्वर उरते हुए अपनी भार्या से बोना था—यह स्नुषा है ॥१७॥ यह राजा का वचन ध्वज करके उस देवी ने कहा—हे देव ! यह किसकी स्नुषा है । यह ध्वज करके राजाभी में श्रेष्ठ ज्यामघ ने कहा ॥१८॥ राजा बोला—जो तेरा पुत्र समुत्पन्न होगा उसकी यह भार्या उपपादिन की गयी है ॥१९॥ महर्षि सोमहर्षणजी ने कहा—उस कन्या की उग्रतपश्चर्या से उस सुभगा सती परिणता शैव्या ने विदर्म पुत्र को प्रसूत किया था ॥२०॥ पीछे विदर्म ने उस राजपुत्री स्नुषा में रण-विद्या में विशारद-सूरवीर और परम विद्वान् वय और कंशिक को जन्म ग्रहण कराया था ॥२१॥

भीमो विदर्भस्य सुतः कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत् ।

कुन्तेष्टुष्टः सुतो जज्ञे रणष्टुष्टः प्रतापवान् ॥२२

ष्टुष्टस्य जज्ञिरे सूरालय परमधार्मिकाः ।

आवन्तश्च दशार्हश्च बली विषहरश्च सः ॥२३

दशार्हस्य सुतो व्योमा व्योम्नो जीमूत उच्यते ।

जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरयः स्मृतः ॥२४

अथ भीमरयस्यासीत् पुत्रो नवरथस्तथा ।

तस्य चासीद्दशरथः शकुनिस्तस्य चात्मजः ॥२५

तस्मात्कारम्भः कारम्भिर्देवरातोऽभवत्ततः ।

देवशत्रोऽभवत्तस्य वृद्धशत्रो महायशः ॥२६

देवगमसमो जज्ञे देवशत्रस्य नन्दनः ।

मधूना वशवृद्धाजा मधुर्मयुरवागपि ॥२७

मघोजंज्ञेऽप्य वंदम्यां पुरुद्वान्पुरुषोत्तमः ।

ऐश्वराकी चाभवद्भ्रात्र्या मघास्तस्या ध्वजायत ॥२८

सत्त्वान् सत्त्वगुणोपेतः सात्त्वतां कीर्तिवद्धेनः ।

दमा विसृष्टि विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मनः ।

युज्यते परमप्रीत्या प्रजावाश्च भवेत् सदा ॥२३॥

राजा भीम विदर्भ का पुत्र था और उसका आत्मज कुन्ति हुआ था । कुन्ति का सुत धृष्ट उत्पन्न हुआ जो रण में धृष्ट और प्रतापवान् था ॥२२॥ इस धृष्ट के वीर्य से तीन पुत्रों ने जन्म धारण किया था जो दूर और परमशक्ति हुए थे । उनके शुभ नाम आवन्त-दराहं और बलीविपहर थे थे ॥२३॥ दशार्ह का पुत्र व्योमा उत्पन्न हुआ था तथा व्योमा का सुत जीमूत कहा जाता है । जीमूत के यहाँ विवृति नाम वाला पुत्र प्रसूत हुआ था और उसका सुत भीमरथ कहा गया है ॥२४॥ इसके अनन्तर उस भीमरथ के नवरथ पुत्र ने जन्म लिया था । उसका आत्मज दशरथ हुआ था और इस दशरथ के वीर्य में शकुनि तनय ने जन्म लिया था ॥२५॥ उसके करम्म प्रसूत हुआ तथा करम्म से कारम्मि देवरात नृप हुआ था । उसके सुत देवक्षत्र हुआ था । उस देवक्षत्र का पुत्र महान् यशस्वी-देवगर्भ के समान वृद्धक्षत्र समुत्पन्न हुआ था । मधुर वाणी वाला मधु मधुओ का वशधर राजा हुआ था ॥२६-२७॥ इसके अनन्तर उस मधु से वंदभी के गर्भ से उत्तम पुरुष पुरुडान् प्रसूत हुआ था । उस मधु की भार्या ऐश्वकी हुई थी । मधु की उस पत्नी से सत्त्वगुणों से युक्त और सात्त्वता की कीर्ति की वृद्धि करने वाला सत्त्वान् समुत्पन्न हुआ था । महान् आत्मा वाले ज्यामघ की इस विशेष सृष्टि का ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य परम प्रीति से युक्त होता है और सदा प्रजा वाला हुआ करता है ॥२८-२९॥

सत्त्वतः सत्त्वसम्पन्नान् कौशल्या सुपुत्रे सुतान् ।

भागिन भजमान च दिव्य देवावृष नृपम् ॥३०॥

अन्वक च महाबाहु वृष्णि च यदुनन्दनम् ।

तेषां विसर्गाश्चित्वारो विस्तरेणोह कीर्तिताः ॥३१॥

भजमानस्य सृज्यो वाद्यकाथोपवाद्यका ।

आस्ता भार्ग्य तपोस्तस्माज्जज्ञिरेवहवः सुताः ॥३२॥

क्रिमिश्च क्रमणश्चैव घृष्टः शूरः पुरञ्जयः ।

एते बाह्यकसृञ्जय्या भजमानाद्विजज्ञिरे ॥३३॥

अयुताजित् सहस्राजिच्छता जित्वथ दासकः ।

उपवाह्यकसृञ्जय्या भजमानाद्विजज्ञिरे ॥३४॥

यज्वा देववृधो राजा चचार विपुल तपः ।

पुत्रः सत्त्वंगुणोपेतो मम स्यादिति निश्चितम् ॥३५॥

महर्षि श्री लोमहर्षण जी ने कहा—उस सत्त्व ने कौशल्या के गर्भ से सत्त्व से सुसम्पन्न पुत्रो को प्रसूत किया था । उनके शुभ नाम भागी-भजमान-दिव्य-देवा वृध नृप-अन्धव-महाबाहु-वृष्णि और यदुनन्दन थे । उनके विशेष सर्ग चार थे जिनका कि यहाँ पर मैंने विस्तार के साथ वर्णन कर दिया है ॥३०-३१॥ भजमान के सृञ्जय में बाह्यक और उप-बाह्यक हुए थे । तथा भार्येतप हुआ था और इससे बहुत से पुत्रो ने जन्म धारण किया था ॥३२॥ क्रिमि-क्रमण-घृष्ट-शूर-पुरञ्जय ये सब बाह्यक सृञ्जय में भजमान के वीर्य से समुत्पन्न हुए थे ॥३३॥ अयुताजित् सहस्राजित्-सताजित्-दासक ये सब उपवाह्यक सृञ्जयो में भजमान की सन्नि समुत्पन्न हुई थी ॥३४॥ राजा देववृध यजन करने वाला था जिसने बहुत तप किया था । उसके तपस्या का यही निश्चित उद्देश्य था कि मेरे समस्त सद्गुणों से सुसम्पन्न सुत समुत्पन्न होवे ॥३५॥

संयुज्यमानस्तपसा पर्णाशाया जल स्पृशन् ।

सदोपस्पृशतस्तस्य चकार प्रियमापगा ॥३६॥

चिन्तयाभिपरीता सा न जगामैव निश्चयम् ।

कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्या सा निम्नगोत्तमा ॥३७॥

नाध्यगच्छतु ता नारी यस्यामेव विधः सुतः ।

भवेत्तस्मात् स्वयं गत्वा भवाम्यस्य महानुगा ॥३८॥

अथ भूत्वा कुमारी सा विभ्रतो परम वज्रः ।

वरयामास नृपति मामियेष च स प्रभुः ॥३९॥

तस्यामाधत्त गर्भं स तेजस्विनमुदारधीः ।

अथ सा दशमे मासि मृषुवे गरिता करा ॥४०॥

पुत्रं सर्व्वगुणोपेतं वभ्रं देवावृधं द्विजाः ।  
अत्र वशे पुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् ॥४१॥  
गुणान् देवावृधस्यापि कीर्त्तयन्तो महात्मनः ।  
यथवाग्रे तथा दूरात्पश्यामस्तावदन्तिकात् ॥४२॥

तप से सयुज्यमान-पर्णाशा को जल का उपस्पर्शन करते हुए और सर्वदा उपस्पर्शन करने वाले उसका प्रिय आपगा ने किया था ॥३६॥ चिन्ता से अभिपरीता उसने कोई निश्चय नहीं किया था । नरपति के कल्याण होने से उसकी वह उत्तमा निम्नगा नारी उसका अधिगमन न करे जिसमें इस प्रकार का पुत्र होवे इससे मैं स्वय ही जाकर इसकी सहानुगामिनी हो जाऊँ ॥३७-३८॥ इसके अनन्तर वह स्वय कुमारी होकर परम सुन्दर शरीर को धारण करती हुई उसने उस राजा का वरण किया था और वह प्रभु भी उसी को चाहता था ॥३९॥ उसमें उस नृपति ने जो अत्यन्त उदार ब्रद्धि वाला था एक परम तेजस्वी गर्भ धारण कर दिया था । इसके उपरान्त दशवें मास में उस सरिद्धरा ने प्रसव किया था ॥४०॥ हे द्विजगण ! उससे समस्त सद्गुणों से युक्त वभ्र देवा वृध-पुत्र समुत्पन्न हुआ था । इस वश में पुराणों के ज्ञाता लोग यह परिश्रुत-ज्ञान किया करते हैं और महात्मा देव वृध के सद्गुणों का कीर्तन किया करते हैं कि जिस प्रकार से इसके आगे वैसे ही दूर से एवं समीप से भी हम इसको देखा करते हैं ॥४१-४२॥

वभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ।  
पट्टिश्च पट् च पुरुषाः सहस्राणि च सप्त च ॥४३॥  
एतेऽमृतत्वं प्राप्ता वै वभ्रोदवावृधादपि ।  
यज्वा दानपतिर्धीमान् ब्रह्मण्यः सुदृढायुधः ॥४४॥  
तस्यान्ववायः सुमहान्भोजा ये मार्त्तिकावताः ।  
अन्धकात्काश्यदुहिता चतुरोऽलभतात्मजान् ॥४५॥  
कुङ्कुरं भजमानं च ससकं वलवाहिपम् ।  
कुङ्कुरस्य सुतो वृष्टिवृष्टेस्तु तनयस्तथा ॥४६॥

कपोतरोमा तस्याथ तिलिग्स्तनयोऽभवत् ।

जज्ञे पुनर्व्वंसुस्तस्मादभिजित् पुनर्व्वंसोः ॥४७

तथा वै पुत्रमियुन बभूवाभिजितः किल ।

आहुकः आहुकश्चैव ख्यातो ख्यातिमता चरौ ॥४८

इमा चोदाहरन्त्यत्र गाथा प्रति समाहुकम् ।

द्वेतेन परिवारेण किशोरप्रतिमोमहान् ॥४९

वधू मनुष्यो में परम श्रेष्ठ है और देवावृध देवा के ही समान है शान हजार छयासठ पुत्र वधू देवा वृध से अमृतत्व को प्राप्त हो गये हैं । यह यज्ञ करने वाला-दानपति-धीमान् गुरुद्व आयुधो वाला और कारण में समागतो को गुरक्षा करने वाला था । इसका अन्वयाय (वश) शुभदान था जो नि मात्तिमावत भोज्य थे । काश्य को पुत्री ने अन्धक के वीर्य से चार पुत्रो को प्राप्ति की थी ॥४३-४५॥ उनके शुभ माम कुकुर-भजमान-ससत्र और यतमाहिष थे । कुकुर का पृथ वृष्टि और वृष्टि का आत्मत्र कपोतरोमा हुआ था तथा इसका गुप्त तिलिरि नाम वाले ने जन्म धारण किया था । फिर इससे पुनर्वंसु ने जन्म लिया था और पुनर्वंसु के वीर्य से अभिजित् समुत्पन्न हुआ था ॥४६-४७॥ उस अभिजित का एक पुत्र पुत्रो का हुआ था । वे दोनों परम प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले में आहुक-आहुक इन नामों से ही प्रख्यात हुए थे ॥४८॥ यहाँ पर उस आहुक के प्रति हम गाथा को उदाहृत करते हैं कि यह द्वेत परिवार से महान् किशोर प्रतिमा वाला था ॥४९॥

अशीतिवर्म्मणा युक्त आहुकः प्रथम प्रजेत् ।

नापुत्रवान्नाशतदो नाराहयशतापुषः ॥५०

नाशुद्धाग्न्ना नायज्वा यो भोजमभितो प्रजेत् ।

पूष्यस्या दिशि नागाना भोजस्य प्रययुः किल ॥५१

सोमात्सङ्गानुकर्षाणा ध्वजिना मयरूपिणाम् ।

रथानां मेघघोषाणा सहस्राणि दर्शय तु ॥५२

रौप्यकाञ्चनकदाणा सहस्राण्येवविशतिः ।

सायस्येय सहस्राणि उत्तरस्या तदा दिशि ॥५३



आभूमिपाला भोजास्तु सन्ति ज्याकिङ्किणीकिनः ।  
 आहुः किं चाप्यवन्तिम्यः स्वसारं ददुरन्धकाः ॥५४  
 आहुकस्य तु काश्यायां द्वौ पुत्रौ सम्भववतु ।  
 देवकस्याभवन् पुत्राश्चत्वारस्त्रिदशोपमाः ॥५५  
 देववानुपदेवश्च सदेवो देवरक्षितः ॥५६

अस्ती वर्म्म से युक्त आहुक हो सबसे प्रथम गमन करे । अपुत्रवान्-  
 अशतद असहस्र-शतायुष-अशुद्धकर्मा-अयज्वा कोई भी इनमे से नहीं है जो  
 भोज के समक्ष में गमन करे । पूर्व दिशा में भोज के नागों के प्रति गमन  
 किया था ॥५०-५१॥ सोम से सङ्गानुकर्षों के-ध्वजियो के-सवरूपियो के  
 और मेघों के समान घोष करने वाले रथों की सख्या दश सहस्र थी  
 ॥५२॥ रौप्य काश्चन कसों की सख्या इक्कीस सहस्र थी । उतने ही सहस्र  
 उत्तर दिशा में थे ॥५३॥ आभूमिपाल भोज ज्याकिङ्किणीकिन थे । और  
 आहु तथा अवन्तियो के लिये अन्धको ने अपनी स्वसा (बहिन) देदी थी  
 ॥५४॥ इस आहुक के काश्या मे दो पुत्र समुत्पन्न हुए थे । देवक के देवो  
 के समान चार पुत्रो ने जन्म लिया था । उनके शुभ नाम-देववान्-उपदेव-  
 सदेव और देवरक्षित थे ॥५५-५६॥

कुमार्य्यं सप्त चास्याय वसुदेवाय ता ददौ ।  
 देवकी शान्तिदेवा च सुदेवा देवरक्षिता ॥५७  
 वृकदेव्युपदेवी च सुनाम्नी चैव सप्तमी ।  
 नवोग्रसेनस्य सुतास्तेषा कसस्तु पूर्व्वजः ॥५८  
 न्यग्रोधश्च सुनामा च तथा कङ्कः सुभूषणः ।  
 राष्ट्रपालोऽय सुतनुरनावृष्टिस्तु पुष्टिमान् ॥५९  
 तेषा स्वसारः पञ्चासन् कसा कसवतो तथा ।  
 सुतनू राष्ट्रपाली च कङ्का चैव वराङ्गना ॥६०  
 उग्रसेनः सहापत्यो व्याख्यातः कुरुरोद्भवः ।  
 कुरुराणामिम वश धारयन्नमितीजसाम् ॥६१  
 आत्मनो विपुलं वश प्रजावानापनुयान्नरः ॥६२

इसके सात बन्ध्याएँ भी उत्पन्न हुई थी । उसने उन सातों कुमारियों को वसुदेवजी को समर्पित कर दिया था । उन कुमारियों के नाम देवकी शान्तिदेवा-सुदेवा-देवरक्षिता वृषदेवी-उपदेवी और सातवीं मुनाम्नी थी । राजा उग्रसेन के नी सुत हुए थे उन सबमें कस सबसे बड़ा था । ५७-५८॥ उनके नाम न्यग्रोध-मुनामः-कङ्क-मुभूषण-राष्ट्रपाल-सुतनु-अनावृष्टि और पृष्टिमान थे थे ॥५९॥ उनकी बहिनें भी पाँच थी-कसा-कसवती-सुतनु-राष्ट्रपाली और वर अङ्गो वाली कङ्का ये उनके नाम थे ॥६०॥ राजा उग्रसेन सन्नति के सहित बनला दिया गया है जो कि कुटुरोद्भव था । ये कुटुर अपरिमित भोज वाले थे । इनके वश की धारणा करने वाला मनुष्य अपने प्रजा वाले विपुल वश को प्राप्त किया करता है ॥६१ ६२॥

—\*—

### १३—सत्ताजित उपाख्यान वर्णन

भजमानस्य पुत्रोऽथ रथमुख्यो विदूरथः ।  
 राजाधिदेवः शूरस्तु विदूरथसुतोऽभवत् ॥१  
 राजाधिदेवस्य सुता जज्ञिरे वीर्यवत्तराः ।  
 दत्तातिदत्तौ यलिनी शोणाश्च श्वेतवाहनः ॥२  
 क्षमी च दण्डणम्मि च दन्तशत्रुश्च शत्रुजित् ।  
 श्रवणा च श्रविष्ठा च स्वसारी सम्प्रभूवतुः ॥३  
 क्षमिपुत्रः प्रतिक्षत्रः प्रतिक्षत्रस्व चात्मजः ।  
 स्वयम्भोजः स्वयम्भाजाद्दहदिकः सम्प्रभूव ह ॥  
 तस्य पुत्रा यभूवुहि सर्वे भोमराक्रमाः ।  
 धृतवर्माप्रजस्तेषां शतधन्वा तु मध्यमः ॥४  
 देवान्तश्च नरान्तश्च भिषग्वेतरणश्च यः ।  
 मुदान्तश्चातिदान्तश्च निराश्वः कामदम्भकः ॥५

देवस्तस्याभवत् पुत्रो विद्वान् कम्बलवहिपः ।

असमौजाः सुतस्तस्य नासमौजाश्च तावुभौ ॥७॥

श्री सोमहर्षण जी ने कहा—भजमान का पुत्र रथियो में परम प्रमुख विदूरथ समुत्पन्न हुआ था । राजाधिदेव शूर इस विदूरथ के वीर्य से समुत्पन्न हुआ था ॥१॥ इस राजाधिदेव के बहुत बलवीर्य वाले सुतो ने जन्म लिया था । परम बलवान् दत्त-अनिदत्त-शोणाश्व-श्वेत वाहन शमी-दण्ड शर्मा दन्तशनु-शत्रुजित् ये पुत्रों के नाम हैं तथा श्रवणा एव श्रविष्ठा ये दो वहिनें समुत्पन्न हुई थी ॥२-३॥ शमी के पुत्र का नाम प्रतिक्षत्र था और प्रतिक्षत्र का पुत्र स्वयम्भोज हुआ था । इस स्वयम्भोज के वीर्य में हृदिक सुत ने जन्म लिया था ॥४॥ हृदिक के सभी पुत्रों के बल पराक्रम बहुत ही भीषण था ऐसे ही सर्व सुत समुत्पन्न हुए थे । उन सब में कृतवर्मा ज्येष्ठ पुत्र था तथा शतघन्वा मध्यम था ॥५॥ अन्य पुत्रों के नाम देवान्त नरान्त-मिषक्-वैतरण-सुदान्त-अतिदान्त-निकाश्य और कामदम्भक थे ॥६॥ उस कम्बलवहि का पुत्र परम विद्वान् देव हुआ था । उसके पुत्र का नाम असमौजा था । वे दोनों असम ओज वाले थे ॥७॥

अजातपुत्राय सुतान् प्रददावसमौजसे ।

सुदृष्टश्च सुचारश्च कृष्ण इत्यन्धकाः स्मृताः

गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टुमाय्ये वभूवतुः ।

गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम् ॥८॥

माद्री युधाजित पुत्र ततो वं देवमोदुपम् ।

अनमित्रममित्राणा जेतारमपराजितम् ॥९॥

अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नतो द्वौ वभूवतुः ।

प्रसेनश्चाथ सत्राजिच्छत्रुसेनाजितावुभौ ॥१०॥

प्रसेनो द्वारवत्यां तु निवसन् ये महामणिम् ।

दिव्य स्यमन्तक नाम स सूर्यादुपलब्धवान् ॥११॥

तस्य सत्राजितः सूर्यः यथा प्राणसमोऽभवत् ।

स कदाचिद्दिशापाये रथेन रथिना वरः ॥१२॥

तोयकूलमप.प्रप्लुमुपम्यातुं ययौ रविम् ।

तस्योपतिष्ठतः सूर्यं विवस्वानग्रतः स्थितः ॥१४॥

यह असमौजा पुत्रहीन था इसको पुत्र दिये गये थे । इन पुत्रों के नाम सुदध्न-सुचारु और कृष्ण थे—ये सब अन्धक कहे गये हैं ॥८॥ गान्धारी और माद्री ये दोनों क्रोष्टु की भार्याएँ थी । गान्धारी ने महान् वसवान् अनमित्र को उत्पन्न किया था ॥९॥ माद्री ने युधाजित नाम वाले पुत्र को जन्म दिया था और इसके पश्चात् अनमित्र के मित्रों को जीतने वाला अपराजित देवमीदुष पुत्र को उत्पन्न किया था ॥१०॥ अनमित्र का सुत निघ्न उत्पन्न हुआ था । इस निघ्न के धीर्य से दो पुत्रों न जन्म ग्रहण किया था इनके नाम प्रसेन और सत्राजित् थे । ये दोनों ही शत्रुओं की सेना को जीतने वाले हुए थे ॥११॥ यह प्रसेन द्वारवती में निवास किया करता था और इसने परम दिव्य महामणि स्वमन्तक को सूर्य देव से प्राप्त किया था ॥१२॥ उस सत्राजित् का सूर्य प्राण के समान ही था । वह किसी समय में रथियों में परम श्रेष्ठ रथ के द्वारा निशा-काल के समाप्त होने पर तोय के कूल को जल का स्पर्श करने को उप-स्थान करने के लिये सूर्य देव के समीप में गया था । जब वह सूर्य देव का उपस्थान कर रहा था उस समय में विवस्यान् उसके आगे स्थित हो गये थे ॥१३-१४॥

विस्पष्टभूतिभगवास्तेजोमण्डलवान् विभुः ।

अथ राजा विवस्वन्तमुवाच स्थितमग्रतः ॥१५॥

यथैव ज्योम्नि पश्यामि सदा त्वा ज्योतिषा पते ।

तेजोमण्डलिन देव तथैव पुरतः स्थितम् ॥१६॥

वां विदोषोऽस्ति मे त्वत्तः सरयेनोपगतस्य वै ।

एतच्छ्रुत्वा तु भगवान्मणिरत्न स्वमन्तकम् ॥१७॥

स्वयण्टादवमुच्यथा एषान्ते न्यस्तवान् विभुः ।

ततो विग्रहयन्त त ददश नृपतिस्तदा ॥१८॥

प्रीतिमानथ त दृष्ट्वा मुहूर्त्तं कृतवान् वषाम् ।

तमभिप्रस्थित भूयो विवस्वन्त स सत्रजित् ॥१९॥

लोकान् भासयसे सर्वान् येन त्वं सततं प्रभो ।

तदेतन्मणिरत्न मे भगवन् दानुमहसि ॥२०॥

ततः स्यमन्तकमणिं दत्तवान् भास्करस्तदा ।

स तमावध्य नगरीं प्रविवेश महीपतिः ॥२१॥

वह भुवन भास्कर विभु भगवान् विस्पष्टमूर्ति वाले थे और तेजो मण्डल से युक्त थे । इसके अनन्तर उस राजा ने अपने आगे स्थित विव-  
स्वान् प्रभु से कहा था—हे ज्योतिषों के स्वामिन् ! मैं जिस प्रकार  
आपको सदा ही व्योम में देखा करता हूँ वैसे तेजो मण्डल वाले देव  
आपको इस समय में भी अपने आगे स्थित हुए की भी देख रहा हूँ ॥१५-  
१६॥ सद्यभाव से समुपगत आप से मुझ में क्या विशेषता है ? यह  
श्रवण करके भगवान् सूर्यदेव ने मणियों में सर्वोत्तम स्यमन्तक मणि को  
अपने कण्ठ से उतार कर विभु ने एकान्त में विन्यस्त कर दिया था ।  
उस समय में फिर राजा ने विग्रहवान् उनका दर्शन किया था ॥१७-१८॥  
परम प्रीति वाले उसने उनका दर्शन करके मुहूर्त भर तक कथा की थी ।  
उस सत्राजिन् ने अभिप्रस्थान करने वाले विवस्वान् देव से फिर निवेदन  
किया था—हे प्रभो ! जिसके द्वारा आप समस्त लोको को सदा भासित  
किया करते हैं हे भगवन् ! उस मणि रत्न को आप मुझे प्रदान कर  
देने के योग्य होते हैं ॥१९-२०॥ उसी समय भगवान् भास्कर ने उसको  
स्यमन्तक मणि प्रदान कर दी थी । उस मणि को कण्ठ में पहिन कर  
फिर राजा ने द्वारवती नगरी में प्रवेश किया था ॥२१॥

त जनाः पर्यधावन्तः सूर्योऽप्य गच्छतीति ह ।

स्वा पुरीं स विसिष्माय राजा त्वन्तःपुरं तथा ॥२२॥

त प्रसेनजित दिव्य मणिरत्नं स्यमन्तकम् ।

ददौ भ्रात्रे नरपतिः प्रेम्णा सत्राजिदुत्तमम् ॥२३॥

स मणिं स्यन्दते स्वम दृण्यन्धकनिवेशने ।

कालवर्षी च पर्जन्यो न च व्याधिभयं ह्यभूत् ॥२४॥

लिप्ता चक्रे प्रसेनस्य मणिरत्ने स्यमन्तके ।

गाविन्दो न च त लेभे भक्तोऽपि न जहार सः ॥२५॥

कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूपितः ।

स्यमन्तककृते सिंहाद्वयं प्राप वनेचरात् ॥२६॥

अथ सिंह प्रधावन्तमृक्षराजो महाबलः ।

निहत्य मणिरत्न तदादाय प्राविशद्गुहाम् ॥२७॥

ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्ण प्रसेनवधकारणात् ।

प्रार्थना ता मरणेषु दध्वा सर्व्व एव शशङ्किरे ॥२८॥

जिस समय में वह अपनी नगरी के मध्य से जा रहा था तो लोगो ने उसको देखकर यही समझा था कि यह सूर्यदेव ही गमन कर रहे हैं तथा लोग उसके इधर-उधर चारो ओर से दौड़ पड़े थे । उस राजा ने अपनी सब नगरी को विस्मित कर दिया और वहाँ पर भी सबको परम विस्मय में डाल दिया था । उस परम दिग्ग मणिरत्न स्यमन्तक को राजा ने अपने भाई प्रसेनजित को प्रेम से दे दिया था वह सत्राजित् के द्वारा दी हुई मणि स्यमन्तक वृष्णि और अन्धको के घर में निरय ही सुवर्ण का स्यन्दन किया करती थी और उस स्यमन्तक मणि का यह प्रभाव था कि पञ्चम्य सदा ठीक समय पर वर्षा निमा करता था तथा बभी भी किसी व्याधि का वहाँ पर भय नहीं था ॥२२-२४॥ उस मणिरत्न स्यमन्तक में जो कि प्रमेनजित् के पास था गोविन्द ने अपनी इच्छा की थी किन्तु उसे वे प्राप्त न कर सके थे और भक्त ने भी उसे नहीं दिया था ॥२५॥ किसी समय में वह प्रसेनजित् उस स्यमन्तक मणि से भूपित होकर मृगया ( शिकार ) के लिये चला गया था । उस स्यमन्तक के लिये एक वनेचर सिंह से वध को प्राप्त हो गया था ॥२६॥ इसके अनन्तर प्रसेनजित् को मार कर सिंह उस स्यमन्तक लेकर दौड़ रहा था तो महान् धलवान् मृक्षराज जामवन्त ने उस सिंह को गाल कर मार डाला था और उस मणिरत्न को लेकर वह आम्बान् अपनी गुफा प्रवेश कर गया था ॥२७॥ इसके अनन्तर मन्त वृष्णि-अन्धक गण प्रमेन के वध का कारण श्रीकृष्ण के शिष्य में दग्धा करने लग गये थे क्योंकि उन्होंने उस मणि से प्राप्त करने की पहिले प्रार्थना की थी ॥२८॥

स शङ्क्यमानो घर्ममतिमा अकारी तस्य कर्मणः ।

आहरिष्ये मणिमिति प्रतिज्ञाय वनं ययौ ॥२६

यत्र प्रसेनो मृगयां व्याचरत्तत्र चाप्यथ ।

प्रसेनस्य पद गृह्य पुरुषैराप्तकारिभिः ॥२७

ऋक्षवन्तं गिरिवर विन्ध्यं च गिरिमुत्तमम् ।

वन्वेपयन् परिथ्रान्तः स ददर्श महामनाः ॥२८

साश्वं हत प्रसेन तु नाविन्दत च तन्मणिम् ।

अथ सिंहः प्रसेनस्य शरीरस्याविदूरतः ॥२९

ऋक्षेण निहतो दृष्टः पदैर्ऋक्षस्तु सूचितः ।

पदैस्तैरन्वियायाथ गुहामृक्षस्य माधवः ॥३०

स हि ऋक्षविले वाणी शुश्राव प्रमदेरिताम् ।

धात्र्या कुमारमादाय सुत जाम्बवतो द्विजाः ॥

क्रीडयन्त्या च मणिना मा रोदीरित्यथेरिताम् ॥३१

वह भगवान् श्रीकृष्ण पर इस प्रकार से शङ्कित किये गये थे जिन्होंने उस कम को बिस्तुल नहीं किया था तब उन्होंने उसी समय में यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं उस मणि को कहीं से भी खोज कर ला दूंगा और फिर वे घर्ममति वन में चले गये थे ॥२६॥ जहाँ पर प्रसेनजित् ने मृगया की थी या मृगया के लिये विचरण किया था वहाँ पर प्रसेनजित् के चरणों के चिह्नों को आसकारी पुरुषों के द्वारा ग्रहण करके वे आगे बढ़ते गये थे और उस उत्तम ऋक्षराज से युक्त विन्ध्य पर्वत को खोजते हुए पूर्णतया परिथ्रान्त महामना श्रीकृष्ण ने देखा था ॥२८-३०॥ उन्होंने वहाँ पर अश्व के सहित मरे हुए प्रसेन को तो देखा था किन्तु उस स्पन्दक मणि को नहीं प्राप्त किया था । इसके पश्चात् मृत प्रसेन के शरीर के समीप में ही रीछ के द्वारा हनन किये हुए सिंह को भी देखा था क्योंकि चरणों के चिह्नों से वह रीछ सूचित हो रहा था । फिर माधव प्रभु उस रीछ के चरण चिह्नों के पीछे चलकर उस रीछ की गुफा पर पहुँच गये थे ॥३१-३३॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने उस रीछ के बिल में किसी प्रमदा के द्वारा कही हुई वाणी का श्रवण किया था । हे द्विज-

मणि ! वह वाणी एक घात्री ( घाय ) के द्वारा कही गयी थी जो कि जाम्बवान् के सुत को लेकर उसी मणि के द्वारा खिला रही थी और भित सोयी यह उससे कह रही थी ॥३४॥

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः ।

सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥३५॥

व्याक्तिस्तस्य शब्दस्य तूणमेव विले ययौ ।

प्रविश्य तत्र भगवांस्तद्वक्षविलमञ्जसा ॥३६॥

स्थापयित्वा विलद्वारे यद्वल्लान्गलिना सह ।

शान्गधन्वा विलस्थ तु जाम्बवन्त ददर्श सः ॥३७॥

युयुधे बाहुदेवस्तु विले जाम्बवता सह ।

वासुग्यामेव गोविन्दो दिवसानेकविंशतिम् ॥३८॥

प्रविष्टेऽथ विले कृष्णो बलदेवपुरःसराः ।

पुरी द्वारवतीमेत्य हत कृष्ण न्यवेदयन् ॥३९॥

वासुदेवोऽपि निजित्य जाम्बवन्त महाबलम् ।

लेभे जाम्बवतीं वन्यामृक्षराजस्य सम्मताम् ॥४०॥

मणि स्यमन्तक चैव जग्राहात्मविशुद्धये ।

अनुनीयक्षराज तु नियमौ च ततो विलात् ॥४१॥

उपायाद्द्वारका कृष्णः सविनीतैः पुरःसरैः ।

एव स मणिराहृत्य विशोऽध्यात्मानमच्युतः ॥४२॥

घात्री ने कहा—सिंह ने तो प्रसेन का यथ वर दिया था और उस सिंह को जाम्बवान् ने मार डाला है । अब हे कुमार ! मत रुदन करो । यह स्यमन्तक मणि अब तो तेरी ही है ॥३५॥ उसके शब्दों के स्पष्टतया अभिप्रेत हो जान में श्रीकृष्ण मुरन्त ही रीछ को गुफा में अन्दर घले गये थे । शीघ्र भगवान् ने उस रीछ के बिन को प्रवेश कर प्राप्त कर लिया था । इसके पूर्व उगने उस गुफा के द्वार पर सान्गली (श्री बलराम) के साथ यादवों को स्थापित करने छोड़ गये थे । शान्गधनुष के धारी श्रीकृष्ण ने विस के अन्दर स्थित जाम्बवान् रीछ को देखा था ॥३६-३७॥ उस विस में भगवान् वासुदेव जी ने उस रीछों के राजा जाम्बवान् के



साय युद्ध किया था । श्री गोविन्द ने इक्कीस दिन तक बाहुओं से ही युद्ध किया था ॥३८॥ श्री बलदेव जिनमें प्रमुख थे वे सब गुफा के द्वार पर स्थित यादव गण श्रीकृष्ण के बिल में प्रविष्ट हो जाने पर वापिस द्वारकापुरी में लौटकर आ गये थे और उन्होंने यह कह दिया था श्रीकृष्ण तो निहत हो गये हैं ॥ ६॥ उधर भगवान् वासुदेव ने भी महाबली जाम्बवान् को जीतकर ऋक्षराज की सम्भल जाम्बवती कन्या को प्राप्त कर लिया था ॥४०॥ अपनी विशुद्धि के लिये उस स्यमन्तक मणि को भी ग्रहण कर लिया था और रीछो के राजा का अनुनय करके फिर उस बिल से निकसकर आ गये थे ॥४१॥ फिर विनयी पुरोगामियों के साथ श्रीकृष्ण द्वारकापुरी में आकर प्राप्त हो गये थे । इस तरह भगवान् अच्युत ने उस मणि का आहरण करके अपने ऊपर सगे कलङ्ग का परिशोधन किया था ॥४२॥

ददौ सत्राजिते तं वै सब्वसात्त्वतससदि ।

एवं मिथ्याभिशस्तेन कृष्णेनामित्रघातिना ॥४३॥

आत्मा विशोधितः पापाद्वि नर्जित्य स्यमन्तकम् ।

सत्राजितो दश त्वासन् भाय्यास्तासां शतं सुताः ॥४४॥

रयातिमन्तस्त्रयस्तेषां भङ्गकारस्तु पूर्व्वजः ।

चीरो वातपतिश्चैव वसुमेघस्तथैव च ॥४५॥

कुमाय्यश्चापि तिस्रो वै दिक्षु ख्याता द्विजोत्तमाः ।

सत्यभामोत्तमा तासां व्रतिनी च दृढव्रता ॥४६॥

तथा प्रस्वापिनो चैव भार्याः कृष्णाय ता ददौ ।

सभार्यो भङ्गकारिस्तु नावेयश्च नरोत्तमौ ॥४७॥

जज्ञाते गुणसम्पन्नौ विश्रुतौ रूपसम्पदा ।

माद्र्याः पुत्रोऽयं जज्ञेऽयं वृष्णिपुत्रो युधाजितः ॥४८॥

जज्ञाते तनयौ दृष्टोः श्वफल्कश्चित्रकस्तथा ।

श्वफल्कः काशिराजस्य सुता भार्यामिविन्दत ॥४९॥

समस्त सात्त्वतो की समा में उस स्यमन्तक मणि को श्रीकृष्ण ने सत्राजित् को दे दिया था । इस प्रकार से अमित्रघाती और मिथ्या ही

कलङ्क समाये गये श्रीवृष्ण ने स्वयन्त को जीतकर अपनी आत्मा को विशोधित किया था । इस सत्राजित् के दस भार्याएँ थी और उन सबसे सौ पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥४३-४४॥ उन सब में तीन ख्यति प्राप्त कर लेने वाले हुए थे और मृङ्गकार उन सब में ज्येष्ठ था । दूसरे बीर वात-पति और वसुमेध थे ॥४५॥ हे द्विजोत्तमा ! उनके तीन कुमारियाँ भी उत्पन्न हुई थी जो दिशाओं में परम प्रसिद्ध थी । उनमें भी सत्यभामा अत्युत्तम-व्रतिनी और हृदन्न वाक्वी थी ॥४६॥ तथा प्रस्वापिनी थी । वे सब श्रीवृष्ण के लिये भार्याओं के रूप में समर्पित कर दी थी । समार्था मृङ्गकारि और नावेम ये दोनों नरों में उत्तम तथा गुणों से सुसम्पन्न समुत्पन्न हुए थे जो रूप की सम्पत्ति के कारण परम प्रसिद्ध थे । मादी का पुत्र वृष्णि पुत्र युष्ठाजित् ने जन्म ग्रहण किया था ॥४७-४८॥ वृष्णि के वीर्य से स्वपत्न्य और चित्रक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे । स्वपत्न्य ने कानिराज की सुता को अपनी भार्या बनाया था ॥४९॥

गान्दिनी नाम तस्याश्च गाः सदा प्रददौ पिता ।

तस्या जज्ञे महाबाहुः श्रुतवानतिथिप्रियः ॥५०॥

अक्रूरोऽय महाभागो जज्ञे विपुलदक्षिणः ।

उपमद्गुस्तया मदगुम्मुदरश्चारिमदनः ॥५१॥

आरिद्येपस्तयोपेक्षः शत्रुहा चारिमेजयः ।

धम्ममृञ्चापि धर्म्मा च गृध्रभोजान्धकस्तया ॥५२॥

आवाहप्रतिवाही च सुन्दरी च वराङ्गना ॥५३॥

विश्रुताश्वस्य महिषी कन्या धाम्य वसुन्धरा ॥५४॥

रूपयीवनसम्पन्ना मध्वमस्त्वमनोहरा ।

अग्र रेणोग्रमेनाया सुती वै धुलनन्दनी ॥५५॥

वसुर्देवश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववच्चंसौ ।

चित्रकस्याभवन् पुत्राः पृथुव्यपृथुरेव च ॥५६॥

उमका नाम गान्दिनी या और उमका पिता सदा गीतों का दान दिया करता था उस भार्या के गर्भ से महाबाहु-अतिथियों पर प्यार करने वाला श्रुतवान् समुत्पन्न हुआ था ॥५०॥ महान् भाग वाला और विपुल

दक्षिणा देने वाले अक्रूर ने जन्म ग्रहण किया था । उपमदगु-मदगु-मुदर-  
अरिमर्दन-अरिक्षेप-उपेक्ष-शत्रुहा-अरिमेजय-वर्मभृत्-धर्मा-गृध्रभोजान्धक-  
आवाह-प्रतिवाह और वराङ्गना सुन्दरी ने जन्म लिया था ॥५१-५३॥  
विश्रुताश्र की महिषी और इसकी कन्या वसुन्धरा थी ॥५४॥ यह रूप  
एव जीवन से युक्त तथा समस्त प्राणियों में मनोहर थी । अक्रूर ने उग्र-  
सेना भार्या में कुल के नन्दित करने वाले देवों के समान वर्चस्व वाले दो  
पुत्रों को समुत्पन्न किया था । चित्रक के पृथु और विपृथु पुत्र हुए थे  
॥५५-५६॥

अश्वघ्रोवोऽश्ववाहुश्च सुपाश्वकगवेपणौ ।  
अरिष्टनेमिश्च सुता धर्म्मो धर्म्मभृदेव च ॥५७॥  
सुवाहुर्वहुवाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणो द्विभौ ।  
इमा मिथ्याभिशस्ति यः कृष्णस्य समुदाहृतम् ॥५८॥  
वेद मिथ्याभिशपास्तं न स्पृशन्ति कदाचन ॥५९॥

अश्वघ्रोव-अश्ववाहु-सुपाश्वक-गवेपण-अरिष्टनेमि सुता-धर्मभृत् और  
धर्म सुवाहु-बहुवाहु तथा श्रविष्ठा और श्रवणो दो स्त्रियाँ समुत्पन्न हुए  
थे । इस मिथ्या अभिशस्ति को जो कोई मनुष्य ओकृष्ण के विषय में  
कही गयी थी जानता है उस पुरुष को कभी भी मिथ्याभिशाप स्पर्श  
नहीं किया करते हैं ॥५७-५९॥

—❀—

## १४—स्यमन्तक उपाख्यान वर्णन

यत्तु सत्राजिते कृष्णो मणिरत्नं स्यमन्तकम् ।  
सदावहारयद्बभ्रुर्मोजिन शतघन्वना ॥१॥  
सदा हि प्रार्थयामास सत्यभामामनिन्दिताम् ।  
अक्रूरोऽन्तरमन्विष्यन्मणिं चैव स्यमन्तकम् ॥२॥

सत्ताजितं ततो हत्वा शतधन्वा महाबलः ।  
 रात्रौ तं मणिमादाय ततोऽक्रूराय दत्तवान् ॥३॥  
 अक्रूरस्तु तदा विप्रा रत्नमादाय चोत्तमम् ।  
 समय कारयाञ्चके नावेद्योऽहं त्वयेत्युत ॥४॥  
 वयमभ्युत्प्रपत्स्यामः कृष्णेन त्वा प्रधर्षितम् ।  
 ममाद्य द्वारका सर्व्वा वसे तिष्ठत्यसंशयम् ॥५॥  
 हृते पितरि दुःस्वार्त्ता सत्यभामा मनस्विनी ।  
 प्रययौ रथमारुह्य नगर वारणावतम् ॥६॥  
 सत्यभामा तु तद्वृत्तं भोजस्य शतधन्वनः ।  
 भर्तुं निवेद्य दुस्वार्त्ता पारवस्थाश्रूण्यवर्त्तयत् ॥७॥

श्री लोमहर्षणजी ने कहा—श्री कृष्णभगवाद् ने जो स्यमन्तक मणिरत्न सत्ताजित् को दी थी उसको वध्र्भोज शतधन्वा ने आहूत कर लिया था ॥१॥ अक्रूर अन्तर का अन्वेपण करते हुए सदा अनिन्दित सत्यभामा की ओर स्यमन्तक मणि की प्रार्थना किया करते थे ॥२॥ इसके उपरान्त महाबली शतधन्वा ने सत्ताजित् का हनन करके रात्रि में ही उस मणि स्यमन्तक को लाकर अक्रूर को दे दी थी । और यह समझीता करा लिया था कि आप मेरा नाम किसी को भी न बतायें ॥३-४॥ हम इस बात को अभ्युत्पन्न करेंगे कि कृष्ण के द्वारा आपको प्रधर्षित किया गया है । आज सम्पूर्ण द्वारका निश्चय ही मेरे वश में स्थित है ॥५॥ मनस्विनी सत्यभामा अपने पिता के मृत हो जाने पर बहुत ही दुःख आर्त्त हो गयी थी । वह सत्यभामा रथ में समावृद्ध होकर वारणावत नगर की ओर चली गयी थी ॥६॥ सत्यभामा ने उस भोज शतधन्वा के वृत्त को भर्त्ता से निवेदन करके अत्यन्त दुःस्वार्त्ता होकर पास में स्थिति होती हुई अपने नेत्रों से अश्रुपात कर रही थी ॥७॥

पाण्डवाना च दग्धाना हरिः कृत्वोदकक्रियाम् ।  
 कुत्सार्ये चापि पाण्डूना न्ययोजयत् सात्यकिम् ॥८॥  
 ततस्त्वरितमागम्य द्वारका मधुसूदनः ।  
 पूर्व्वजं हलिनं श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥९॥

हृतः प्रसेनः सिंहेन सत्राजिच्छतघन्वना १  
 स्यमन्तकस्तु मदगामी तस्य प्रभुरहं विभो ॥१०॥  
 तदारोह रथं शीघ्रं भोजं हत्वा महारथम् १  
 स्यमन्तको महाबाहो अस्माकं स भविष्यति ॥११॥  
 ततः प्रवृत्ते युद्धे तुमुलं भोजकृष्णयोः १  
 शतघन्वा ततोऽक्रूरं सन्वतोदिशमैक्षत ॥१२॥  
 सरद्धौ सावुभौ तत्र दृष्ट्वा भोजजनार्दनौ १  
 राक्तोऽपि शापाद्धादिवयमक्रूरो नान्वपद्यत ॥१३॥  
 अपयाने ततो बुद्धिं भोजश्चक्रे भयादितः १  
 योजनानां शतं साग्रं हृदया प्रत्यपद्यतः ॥१४॥

श्री हरि ने क्षत्र हुए पाण्डवों को उदक क्रिया करके पाण्डुओं के धृत्यार्थ से सात्यकि को नियोजित कर दिया था ॥१०॥ इसके अनन्तर श्रीमधुसूदत शीघ्र ही द्वारकापुरी में समागत हो गये थे और श्रीमाधु श्रीकृष्ण ने अपने बड़े भाई हसधारी वरादेवजी से यह वचन कहा था ॥११॥ श्रीकृष्ण ने कहा—सिंह ने प्रसेन को मार डाला था और शतघन्वा ने सत्राजित् का हनन कर दिया है । हे प्रभो ! अब वह स्यमन्तक मणि मेरे पास आनी चाहिए क्योंकि मैं ही उस मणि का स्वामी हूँ ॥१०॥ अतएव हे महाबाहो ! अति शीघ्र भाग रथ पर समावृद्ध हो जाइये और उस महारथी भोज का हनन करके उस स्यमन्तक को लाए । वह स्यमन्तक मणि अभी हमारी हो आयगी ॥११॥ श्री लोमहर्षण मुनि ने कहा—इसके अनन्तर भोज और श्रीकृष्ण का महाद् घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया था । इसके पश्चात् शतघन्वा ने सभी दिशाओं में अक्रूर को देखा था ॥१२॥ वहाँ पर भोज और जनार्दन इन दोनों को संरक्षित देखकर शक्त होते हुए भी अक्रूर ने शाप से अपने हृदय की बात नहीं कही थी ॥१३॥ इसके पश्चात् भय से भीत होकर भोज ने वहाँ से अपयान करने का विचार किया था और उसको हृदया ने बेटे से योजन दूर पहुँचा दिया था ॥१४॥

विख्याता हृदया नाम शतयोजनगामिनी ।

भोजस्य बद्ध्वा विप्रा ययौ कृष्णमयोधयत् ॥१५॥

क्षीणा जवेन हृदयामध्वनः शतयोजने ।

दृष्ट्वा रयस्य स्वा वृद्धि शतघन्वानमर्हयत् ॥१६॥

ततस्तस्या हतायास्तु श्रमात् खेदाच्च नो द्विजाः ।

समुत्पेतुरय प्राणाः कृष्णो राममपाश्र्ववोत् ॥१७॥

तिष्ठेह त्व महाबाहो दृष्टदोषा हता मया ।

पद्म्या गत्वा हरिष्यामि मणिरत्नं स्पमन्तकम् ॥१८॥

पद्म्यामेव ततो गत्वां शतघन्वानमभ्युतः ।

मिथिलामभितो विप्रा जघान परमास्त्रवित् ॥१९॥

स्पमन्तकं च नापश्यद्वत्वा भोज महाबलम् ।

निवृत्त चाश्र्ववोत् कृष्ण मणि देहोति लाङ्गुली ॥२०॥

नास्तीति कृष्णश्चोवाच ततो रामो रुपान्वितः ।

धिकशब्दपूर्वमसकृत् प्रत्युवाच जनार्दनम् ॥२१॥

हृदया भोज की एक थोड़ी थी । हे विप्रो ! वह हृदया एक सौ योजन

तक गमन करने वाली प्रसिद्ध थी । वह दूर घसा गया और उसने

धीकृष्ण से युद्ध किया था ॥१५॥ जब सौ योजन मार्ग के चलने से वह

हृदया थोड़ी बेग से क्षीण हो गयी थी । ऐसी उसको क्षीण देखकर और

रूपने रय की वृद्धि को देखकर धीकृष्ण ने शतघन्वा को मर्दित किया

था ॥१६॥ हे द्विजो ! श्रम और खेद से निहित उसके प्राण नाकाय

में उत्पन्न हो गये थे । तब धीकृष्ण बलदेवजी से कहने लगे ॥१७॥

हे महाबाहुजो जाने ! आप यहाँ पर ही ठहरिये । दोष के देखे जाने

वाली यह घड़वा मैंने मार डाली है । अब पँरो से चलकर ही मैं उस

मणि रत्न स्पमन्तक का हरण कर लूँगा ॥१८॥ इसके अनन्तर

परम अस्त्रों के ज्ञाता अभ्युत ने विप्रगण हे ! पँरो से ही चलकर

मिथिला के समीप में उस शतघन्वा का हनन कर दिया था ॥१९॥

उस महान् बलवान भोज की मार कर भी उसके पास उस स्पमन्तक

मणि को नहीं देखा था । अब धीकृष्ण उसे मार कर वापिस सीटे हो

बलरामजी ने श्रीकृष्ण से कहा था—उस स्यमन्तक मणि को हमको दे दो ॥२०॥ श्रीकृष्ण ने बलदेवजी को यही उत्तर दिया था कि वह मणि तो उसके पास नहीं मिली है । तब तो बलदेवजी बहुत क्रोधित हो गये थे और वे बारम्बार धिक्कार है ऐसे शब्द श्री कृष्ण से उन्होंने कहे थे ॥२१॥

आतृत्वान्मर्पयाम्येव स्वस्ति तेऽस्तु ब्रजाम्यहम् ।  
 कृत्यन् मे द्वारकाया न त्वया न च वृष्णिभिः ॥२२  
 प्रविवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्दनः ।  
 सर्व्वकामैरुपहृतैर्मिथिलेनाभिपूजितः ॥२३  
 एतस्मिन्नेव काले तु बभ्रुर्मतिमतां वरः ।  
 नानारूपान् क्रतून् सर्व्वानाजहार निरगलान् ॥२४  
 दीक्षामयं स कवच रक्षार्थं प्रविवेश ह ।  
 स्यमन्तककृते प्राज्ञो गान्दीपुत्रो महायशः ॥२५  
 अथ रत्नानि चान्यानि धनानि विविधानि च ।  
 पष्टि वर्षाणि धर्म्ममात्मा यज्ञेष्वेव न्ययोजयत् ॥२६  
 अक्रूरयज्ञा इति ते ख्यातास्तस्य महात्मनः ।  
 बह्वृक्षदक्षिणाः सर्व्वे सर्व्वकामप्रदायिनः ॥२७  
 अथ दुय्योधनो राजा गत्वा स मिथिला प्रभुः ।  
 गदाशिक्षा ततो दिव्या बलदेवादवाप्तवान् ॥२८

मैं भाई होने के कारण से ही इस बात को सहन कर रहा हूँ, अच्छा तुम्हारा कल्याण हो, मैं तो अब यहाँ से जाता हूँ । मुझे अब द्वारकापुरी से, तुमसे और वृष्णियो से कुछ कार्य नहीं है ॥२२॥ इसके अनन्तर धरियो के मर्दन करने वाले बलरामजी ने मिथिला में प्रवेश किया था और वहाँ पर सम्पूर्ण अभीष्ट उपाहारों के द्वारा मिथिल ने उनका अभि-पूजन किया था ॥२३॥ इसी बीच में मतिमानो ने परमश्रेष्ठ बभ्रु ने समस्त अनेक रूपों वाले निरगल क्रतुओं को किया था ॥२४॥ उस परम प्राज्ञ महायशस्वी गान्दी पुत्र ने स्यमन्तक लिये दीक्षामय -कवच से रक्षार्थ प्रवेश किया था ॥२५॥ इसके अनन्तर अन्य रत्नों को और

अनेक घनों को साठ वर्षों पर्यन्त उस धम्मत्मा ने यज्ञों में ही नियोजित किया था ॥२॥ उस महात्मा के वे यज्ञ अक्रूर यज्ञ हैं ऐसे ही विद्वान् हुए थे । वे सभी यज्ञ बहुत अन्न और दक्षिणा वाले थे तथा सब काम-नाओं के प्रदान करने वाले भी थे ॥२७॥ इसने अनन्तर राजा दुर्योधन ने मिथिला में जाकर परम दिव्य गदा चलाने की शिक्षा श्रीवसुदेवजी से ग्रहण की थी ॥२८॥

सम्प्रसाद्य ततो रामो वृष्ण्यन्धकमहारथैः ।  
 आनीतो द्वारकामेव कृष्णेन च महात्मना ॥२९॥  
 अक्रूरश्चान्धकः सार्द्धं मायातः पुरुषपंथः ।  
 हत्वा सभ्राजितं सुप्तं सहवन्धुं महाबलः ॥३०॥  
 ज्ञातिभेदभयात्कृष्णस्तमुपेक्षितवास्तदा ।  
 अपयाते तदाक्रूरे नावपत्पाकशासनः ॥३१॥  
 अनावृष्ट्यो तदा राष्ट्रमभवद्बहुधा कृशम् ।  
 ततः प्रसादयामासुरक्रूरं कुकुरान्धकाः ॥३२॥  
 पुनर्द्वारिचतीं प्राप्ते तस्मिन् दानपती ततः ।  
 प्रववर्ष सहस्राक्षं कक्षे जलनिधेस्तदा ॥३३॥  
 कन्या च वासुदेवाय स्वसारं शीलसम्मताम् ।  
 अक्रूरः प्रददौ धीमान् प्रीत्यर्थं मुनिसत्तमाः ॥३४॥  
 अथ विज्ञाय योगेन वृष्णो बभ्रूगतं मणिम् ।  
 सभामध्यगतं प्राह तमक्रूरं जनार्दन ॥३५॥

इसके पश्चात् वृष्णि और अन्धक महारथियों के द्वारा तथा महात्मा श्रीकृष्ण के द्वारा भली-भाँति प्रसन्न करके श्रीवलराम को पुनः द्वारका-पुरी में ले आया गया था ॥२९॥ पुरुषों में श्रेष्ठ अक्रूर अन्धकों के साथ आये थे और यह महान् बलवान् सोते हुए सहवन्धु सभ्राजित् को हनन करके ही समागत हुए थे । उस समय में ज्ञाति के भेद के भय से श्रीकृष्ण ने उसकी उपेक्षा कर दी थी । उस अक्रूर के उस समय में अपयात हो जाने पर पाक शासन (इन्द्र देव) ने वर्षा नहीं की थी ॥३०-३१॥ उस समय में अनावृष्टियाँ हुईं और सम्पूर्ण राष्ट्र बहुधा कृश हो गया था ।



तब तो कुकुरान्धकों ने अक्रूर को प्रसन्न किया था ॥३२॥ उस दानपति के पुनः द्वारका में प्राप्त होने पर इन्द्रदेव ने वर्षा की थी और उस समय में जल निधि के कक्ष में वर्षा हुई थी ॥३३॥ हे मुनि सत्तमो ! उस बुद्धिमान अक्रूर ने प्रीति के लिये क्षील से सम्मत अपनी बहिन को वासुदेव के लिये समर्पित की थी ॥३४॥ इसके उपरान्त श्रीकृष्ण न योग के द्वारा वभ्रु के पास रहने वाली मणि का ज्ञान प्राप्त करके सभा के मध्य में स्थित होकर जनार्दन ने उस अक्रूर से कहा था ॥३५॥

यत्तद्रत्नं मणिवरं तव हस्तगतं विभो ।

तत्प्रयच्छ च मानाहं मयि मानाय्यकं कृथाः ॥३६॥

पष्टिवर्षगते काले यो रोपोऽभून्ममानघ ।

स संखडोऽसकृत् प्राप्तस्ततः कालात्ययो महान् ॥३७॥

स ततः कृष्णवचनात् सर्व्वसात्वतसंसदि ।

प्रददौ तं मणिं वभ्रुरक्लेशेन महामतिः ॥३८॥

ततस्तमार्जवात् प्राप्तं वभ्रोहंस्तादरिन्दमः ।

ददौ हृष्टमनाः कृष्णस्तं मणिं वभ्रवे पुनः ॥३९॥

स कृष्णहस्तात् सम्प्राप्तं मणिरत्नं स्यमन्तकम् ।

आवध्य गान्दिनीपुत्रो विरराजाणुमानिव ॥४०॥

श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा—हे प्रभो ! जो मणियों में परम श्रेष्ठ रत्नवर है वह तुम्हारे हस्तगत है । हे मनाहं ! उसको आप दे दीजिए और मेरे प्रति अनार्य कृत्य मत करिए ॥ ३६॥ हे अनघ ! साठ वर्ष के काल के व्यतीत होने पर जो रोप मुझे हुआ था वह नारम्बार सखट हो गया है और सबसे बढूत काल का अत्यय हो चुका है ॥३७॥ इसके पश्चात् समस्त सात्वतो की सभा में श्रीकृष्ण के इस वचनो से महान् मतिमान वभ्रु ने बिना ही किसी क्लेश के उस मणि को दे दिया था ॥३८॥ इसके अनन्तर अरियो के दमन करने वाले श्रीकृष्ण ने सरलता के साथ उस वभ्रु के हाथ से प्राप्त हुई उस मणि को श्रीकृष्ण ने परम प्रसन्न मन वाले होकर पुनः वभ्रु को प्रदान कर दी थी । उस

गान्दिनी पुत्र ने श्रीकृष्ण के हाथ से सम्प्राप्त हुई उस मणि स्वयन्तक को बाँधकर वह अशुमान की तरह सुशोभित हो गया था ॥३६-४०॥

### १५—भूभुव.स्वरादिलोकवर्णन

कथित भवता सर्व्वमस्माक सकल तथा ।  
 भुवर्लोकादिकांलाकान् श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥१॥  
 तथैव ग्रहसस्थान प्रमाणानि यथा तथा ।  
 समाचक्ष्व महाभाग यथावल्लोमहर्षण ॥२॥  
 रविचन्द्रमसोयविन्मयूखैरवमास्यते ।  
 ससमुद्रसरिच्छैला तावती पृथिवी स्मृता ॥३॥  
 यावत्प्रमाणा पृथिवी विस्तारपरिमण्डला ।  
 नभस्तावत्प्रमाण हि विस्तारपरिमण्डलम् ॥४॥  
 भूमेर्योजनलक्षे तु सौर विप्रास्तु मण्डलम् ।  
 लक्षे दिवाकराच्चापि मण्डल शशिन स्थितम् ॥५॥  
 पूर्व्वे शतसहस्रे तु योजनाना निशाकरात् ।  
 नक्षत्रमण्डल कृत्स्नमुपरिष्ठात् प्रकाशते ॥६॥  
 द्विलक्षे चोत्तरे विप्रा बुधो नक्षत्रमण्डलात् ।  
 तावत् प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशना स्थितः ॥७॥

मुनिगण ने कहा—हे श्री सोमहर्षण जी ! आपने हमारे सामने सभी कुछ सम्पूर्ण वर्णित करके घटा दिया है । अब हम लोग भुवर्लोकादिक समस्त लोकों को श्रवण करने की इच्छा रखते हैं । उसी भाँति ग्रहों का सस्थान तथा उनके प्रमाण जो भी जिस भाँति हैं हे महाभाग ! आप इस समय से ठीक २ वर्णन कीजिए ॥१-२॥ श्री सोमहर्षण जी ने कहा—सूर्य और चन्द्रमा की किरणों से जितना भाग अवभासित हुआ करता है जिसमें समुद्र-मयंत और मर्दियाँ भी हैं उसनी ही

यह पृथिवी कही गयी है ॥३॥ विस्तार के परिमण्डल वाली जितने प्रमाण से युक्त यह पृथिवी है नभ भी उतने प्रमाण से संयुक्त विस्तार परिमण्डल वाला होता है ॥४॥ हे विप्रगण ! भूमि के एक लक्ष योजन में सौर मण्डल है । उस दिखाकर से भी लक्ष योजन में चन्द्र का मण्डल स्थित होता है ॥५॥ निशाकर से एक सौ सहस्र योजनों के पूर्व में ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल प्रकाशित हुआ करता है ॥६॥ हे विप्रो ! इस नक्षत्र मण्डल से दो लक्ष योजन उत्तर में बुध है । इस बुध के उतने ही प्रमाण भाग में शुक्र स्थित रहा करता है ॥७॥

अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तत्प्रमाणे व्यवस्थितः ।

लक्षद्वयेन भोमस्य स्थितो देवपुरोहितः ॥८॥

सौरिवृहस्पतेरुद्ध्वं द्विलक्षे समवस्थितः ।

सप्तपिमण्डल तस्माल्लक्षमेक द्विजोत्तमाः ॥९॥

ऋषिम्यस्तु सहस्राणां शतादूद्ध्वं व्यवस्थितः ।

मेढीभतः समस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य वै ध्रुवः ॥१०॥

त्रं लोक्यमेतत् कथित सक्षेपेण द्विजोत्तमाः ।

इज्याफलस्य भूरेषा इज्या चात्र प्रतिष्ठिता ॥११॥

ध्रुवादूध्वं महर्लोको यत्र ते कल्पवासिनः ।

एकयोजनकोटी तु महर्लोको विधीयते ॥१२॥

द्वे कोट्यौ तु जनो लोको यत्र ते ब्रह्मणः सुताः ।

सनन्दनाद्याः कथिता विप्राश्चामलचेतसः ॥१३॥

चतुर्गुणोत्तर चोद्ध्वं जनलोकात्तपः स्मृतम् ।

वैराजा यत्र ते देवाः स्थिता देहविवर्जिताः ॥१४॥

अङ्गारक ( मङ्गल ) भी उतने ही प्रमाण की शुक्र की दूरी पर व्यवस्थित रहा करता है । भोम के दो लाख योजन की दूरी पर देवो के पुरोहित ( वृहस्पति ) स्थित रहा करते हैं ॥८॥ सौरि अर्थात् सूर्यदेव के पुत्र शनि वृहस्पति से भी ऊपर दो लाख योजन की दूरी पर अवस्थित रहा करता है । हे द्विजोत्तमो ! सप्तपियो का मण्डल उस शनि से एक लक्ष योजन के फासले पर रहा करता है । जो ऋषियो के एक सौ सहस्र

योजन ऊपर के भाग में व्यवस्थित है । इस सम्पूर्ण ज्योतिष्मत्क का भेडी-भूत ध्रुव होता है ॥६-१०॥ हे द्विजगण ! यह त्रैलोक्य का वर्णन मैंने अत्यन्त ही संक्षेप से कर दिया है । यह भू इज्या पल की है और यहाँ पर इज्या ही प्रतिष्ठित है ॥११॥ इस ध्रुव से ऊपर महर्लोक है जहाँ पर वे कल्प के निवास करने वाले रहा करते हैं । एक करोड़ योजन का विस्तार महर्लोक का बहा जाता है ॥१२॥ दो करोड़ योजन का विस्तार धाना जनलोक होता है जहाँ पर वे ब्रह्माजी के पुत्र निवास किया करते हैं । हे विप्रो ! वे अमलचित्त वाले सनन्दन आदि बहे गये हैं ॥१३॥ चौगुने प्रमाण के विस्तार वाला ऊपर के भाग में इस जनलोक से तपोलोक बहा गया है जहाँ पर वे वैराज देव स्थित रहा करते हैं जो देह से रहित होते हैं ॥१४॥

पङ्गुणेन तपोलोकात् सत्यलोको विराजते ।

अपुनर्मारुत यत्र सिद्धादिमुनिसेवितम् ॥१५॥

पादगम्य तु यत् किञ्चिद्वस्त्वस्ति पृथिवीमयम् ।

स भूर्लोकः समाख्यातो विस्तारोऽस्य मयोदितः ॥१६॥

भूमिसूर्यान्तर यत्तु सिद्धादिमुनिसेवितम् ।

भुवर्लोकस्तु सोऽप्युक्तो द्वितीयो मुनिसत्तमाः ॥१७॥

ध्रुवसूर्यान्तर यत्तु नियुतानि चतुर्दश ।

स्वर्लोकः सोऽपि कथितो लोकसंस्थानचिन्तकैः ॥१८॥

त्रैलोक्यमेतत् कृतकं विप्रैश्च परिपठ्यते ।

जनस्तपस्तथा सत्यमिति चाकृतकं त्रयम् ॥१९॥

कृतकाकृतको मन्वे महर्लोक इति स्मृतः ।

शून्यो भवति कल्पान्ते योऽन्त न च विनश्यति ॥२०॥

एते सप्त महालोका मया वः कथिता द्विजाः ।

पातालानि च सप्तैव ब्रह्माण्डस्यैव विस्तरः ॥२१॥

तपोलोक का जितना विस्तार बताया गया है उससे छैगुना प्रमाण वाला तपोलोक से आगे ऊपर सत्यलोक है जहाँ अपुनर्मारुत है और जो सिद्ध मुनि आदि के द्वारा सेवित होता है ॥१५॥ जो कुछ भी पंखों से

गमन करने के योग्य वस्तु है वह सब पृथिवी मय होती है । वही भूलोक कहा गया है और इसका विस्तार मीने बता दिया है ॥१६॥ इस भूमि और सूर्य का जो अन्तर है वह सिद्धों और मुनियों के द्वारा सेवित होता है । हे मुनिश्रेष्ठो ! वह दूसरा भी भुवर्लोक कहा गया है ॥१७॥ ध्रुव और सूर्य का जो अन्तर है वह षोडश निम्न होता है । लोकों के संस्थानों के चिन्तन करने वालों ने ब्रह्म को स्वर्लोक भी कहा है ॥१८॥ यह पूर्ण त्रैलोक्य जिसमें भू-भुव और मह ये आते हैं कृतक विप्रों के द्वारा पड़ा जाया करता है । जन तप और ये तीनों लोक अकृतक बताये गये हैं ॥१९॥ कृतक और अकृतक के मध्य में जो लोक है वह महर्लोक है जो कल्प के अन्त में शून्य हो जाता है उसका अन्त नहीं है और न वह विनष्ट ही होता है ॥२०॥ हे द्विजो ! ये सात महालोक मीने बता दिये हैं । इसी प्रकार से नीचे में पाताल लोक भी सात ही हुआ करते हैं उनके नाम अनल-वितल-सुतल-तलाउल-रसानल-महातल और पाताल ये ब्रह्माण्ड का विस्तार है ॥२१॥

एतदण्डकटाहेन तिर्य्यगूद्ध्वमधस्तथा ।

कपित्थस्य यथा बीज सर्व्वतो वै समावृतम् ॥२२

दशोत्तरेण पथसा द्विजाश्चाण्डञ्च तद्वृतम् ।

स चाम्बुपरिवारोऽसी वह्निना वेष्टितो वहिः ॥२३

वह्निस्तु वायुना वायुविप्रास्तु नभसावृतः ।

आकाशोऽपि मुनिश्रेष्ठा महता परिवेष्टितः ॥२४

दशोत्तराण्यशेषाणि विप्राश्चैतानि सप्त वै ।

महान्तञ्च समावृत्य प्रधान समवस्थितम् ॥२५

अनन्तस्य न तस्यान्तः सस्यान चापि विद्यते ।

तदनन्तमसस्यात् प्रमाणेनापि वै यतः ॥२६

हेतुभूतमशेषस्य प्रकृतिः सा परा द्विजाः ।

अन्नानान्तु सहस्राणां सहस्राण्ययुतानि च ॥२७

ईदृशानां तथा तत्र कोटिकोटिशतानि च ।

दारुण्यग्निर्यथा तैल तिले तद्वत् पुमानिह ॥२८

यह सम्पूर्ण अण्डकटाह के द्वारा तिरछा-ऊपर नीचे जिस प्रकार से कपित्थ का बीज होता है उसी भाँति सब ओर से समावृत्त होता है ॥२२॥ हे द्विजगण ! यह दशोत्तर पय से आण्ड आवृत्त होता है । यह अम्बु परिवार वाला होता है और वह्नि से वेष्टित हुआ करता है ॥२३॥ वह वह्नि वायु से आवृत्त होता है तथा हे द्विजगण ! वह वायु नभ से समावृत्त है । हे मुनिगण ! वह नभ भी महत् से आवृत्त होता है अर्थात् महत् तत्त्व उसके सब ओर परिवेष्टित होकर रहता है ॥२४॥ इन समस्त दशोत्तर हे विप्रो ! ये सात हैं उन सबको और महातत्त्व को समावृत्त करके प्रधान समवस्थित रहा करता है ॥२५॥ यह अनन्त है और उसकी कोई सप्या भी नहीं है । क्योंकि वह प्रमाण से भी अनन्त और असंख्यात है । यह सम्पूर्ण का हेतुभूत है हे द्विजो ! वह परा प्रकृति है । जिनका अन्त होता है उन अन्तो के सहस्रो और सहस्रो अयुत होते हैं ॥२६-२७॥ इस तरह रहने वाले वहाँ संकड़ो करोड़ो के भी करोड़ हैं । जिस तरह से काष्ठ में अग्नि और तिलो में तैल रहा करता है ठीक उसी भाँति यहाँ पर पुमान् रहते हैं ॥२८॥

प्रधानेऽवस्थितो व्यापी चेतनात्मनिवेदनः ।  
 प्रधानञ्च पुमाश्चैव सर्व्वभूतानुभूतया ॥२९॥  
 विष्णुशक्त्या द्विजश्रेष्ठा घृतो सथ्रयधम्मिणौ ।  
 तयोः सैव पृथग्भावे कारण सथ्रयस्य च ॥३०॥  
 क्षोभकारणभूता च सगकाले द्विजोत्तमा ।  
 यथा शैत्य जले वातो विभक्ति कणिकागतम् ॥३१॥  
 जगच्छक्तिस्तथा विष्णोः प्रधानपुरुषात्मकम् ।  
 यथा च पादपो मूलस्कन्धशाखादिसयुक्तः ॥३२॥  
 आद्यबीजात् प्रभवति बीजान्यन्यानि च ततः ।  
 प्रभवन्ति ततस्तेभ्यो भवन्त्यन्ये परे द्रुमाः ॥३३॥  
 तेऽपि तल्लक्षणद्रव्यकारणानुगता द्विजाः ।  
 एवमव्याकृतात् पूर्व्वं जायन्ते महदादयः ॥३४॥

विशेषान्तास्ततस्तेम्यः सम्भवन्ति सुरादयः ।

तेम्यश्च पुत्रास्तेषां तु पुत्राणां परमे सुताः ॥३५॥

यह प्रधान में अवस्थित-व्यापक और चेतनात्म निवेदन वासा है । यह प्रधान और पुमान् समस्त भूतो के द्वारा अनुभव की गयी भगवान् विष्णु की शक्ति से हे द्विजश्रेष्ठो ! सश्रय धर्मवाले धारण किये गये हैं । उन दोनों के पृथग्भाव में वही सश्रय का कारण होती है ॥२६-३०॥ हे द्विजगण ! और सर्ग के समय में क्षीम का कारण भूत होती है । जिस तरह से जल में शीतलता होती है और वात कणिका जल को धारण किया करता है ठीक उसी प्रकार से भगवान् विष्णु की प्रधान और पुरुष के स्वरूप वाली इस जगत् की शक्ति हुआ करती है । जिस प्रकार से वृक्ष मूल-शाखा आदि से संयुक्त हुआ करता है ॥३१-३२॥ यह वृक्ष आदि में होने वाले बीज से ही उत्पन्न हुआ करता है और इसके पश्चात् इसमें आगे बढ़ा हो जाने पर वैसे ही अन्य बीज भी हो जाया करते हैं और फिर उन्हीं बीजों से आगे चलकर दूसरे अन्य द्रुमभी समुत्पन्न हो जाया करते हैं ॥३३॥ हे द्विजो ! और वेरी उसी सक्षण वाले द्रव्य के कारण के अनुगत होते हैं । इसी भाँति अन्यादृत से पूर्व में महदादि समुत्पन्न हुआ करते हैं ॥३४॥ ये सब विशेष के अन्त वाले हैं अर्थात् विशेष इनमें अन्तिम होता है उनमें ही सब सुर आदि समुत्पन्न हुआ करते हैं फिर उनके पुत्र उत्पन्न होते हैं और उन पुत्रों के भी परम पुत्र-पौत्रादि हुआ करते हैं ॥३५॥

बीजाद्बृक्षप्रराहेण यथा नापचयस्तरोः ।

भूतानां भूतसर्गेण नैवास्त्यपचयस्तथा ॥३६॥

सन्निधानाद्यथाकाशकालाद्याः कारणं तरोः ।

तथैवापारिणामेन विश्वस्य भगवान् हरिः ॥३७॥

ग्रीहिवीजे यथा मूलं नाल पत्राङ्कुरौ तथा ।

काण्डकोपास्तथा पुष्प क्षीरं तद्वच्च तण्डुलः ॥३८॥

तुषाः कणाश्च सन्तो वं यान्त्यायिर्माविमात्मनः ।

प्ररोहहेतुसामग्र्यमासाद्य मुनिसत्तमाः ॥३९॥

तथा कर्मस्वनेकेषु देवाद्यास्तनवः स्थिताः ।  
 विष्णुर्षक्तिः समासाद्य प्ररोहसुपमान्ति वै ॥४०॥  
 स च विष्णुः पर ब्रह्म यतः सर्व्वमिदं जगत् ।  
 जमच्च यो यत्र चेदं यस्मिन्विलयमेष्यति ॥४१॥  
 तद्ब्रह्म परम धाम सदसत् परम पदम् ।  
 यस्य सर्व्वमभेदेन जगदेतच्चराचरम् ॥४२॥  
 स एव मूलप्रकृतिर्व्यक्तरूपी जगच्च सः ।  
 तस्मिन्नेव लयं सर्व्वं याति तत्र च तिष्ठति ॥४३॥  
 कर्त्ता क्रियाणां स च इज्यते क्रतुः,  
 स एष तत् कर्मफलं यस्य यत् ।  
 युगादि यस्माच्च भवेदशेषतो-  
 हरेर्न किञ्चिद्व्यतिरिक्तमस्ति तत् ॥४४॥

जिस प्रकार से बीज से जब वृक्ष का प्ररोह होता है तो तरु का  
 अपचय नहीं होता है उस प्रकार से भूतो के भूतो का संग होने से अप-  
 चय नहीं हुआ करता है ॥३६॥ जिस प्रकार से सन्निधान से तरु के  
 प्रकाश वासादि कारण होते हैं ठीक उसी भाँति विश्व के अपरिणाम के  
 होने से भगवान् श्री हरि कारण होते हैं ॥३७॥ जिस तरह से बीहड़ के  
 बीज में उसका मूल-नाल-पत्र-अकुर-वाण्ड-कोप-पुष्प-शीर आदि होते  
 हैं उसी भाँति तच्छुभ होता है ॥३८॥ तुष और कण होते हुए अपने  
 आपका आविर्भाव किया करते हैं । हे मुनिगण ! जिस समय बीज को  
 सम्पूर्ण प्ररोह होने की सामग्री प्राप्त होती है सभी ऐसा होना है अर्थात्  
 शनः शनः सभी का प्रादुर्भाव हो जाता करता है ॥३९॥ उसी प्रकार से  
 अनेक कर्मों में देवादि के तनु स्थित होते हैं । जिस समय में भगवान्  
 विष्णु की शक्ति उनको प्राप्त हो जाती है सभी ये प्ररोह को प्राप्त हो  
 जाया करते हैं ॥४०॥ वे भगवान् श्री विष्णु ही परब्रह्म हैं जिनसे यह  
 सम्पूर्ण जगत् हुआ करता है । और यह जगत् और सम्पूर्ण विश्व जिसमें  
 आकर विलय को प्राप्त हो जाया करता है । सात्पर्य यह है कि उसी  
 भगवान् विष्णु से इस जगत् की उत्पत्ति होती है और उसी में इसका



विलय भी हो जाया करता है ॥४१॥ वही ब्रह्म परम धाम है और सत्  
तथा असत् परम पद होता है । यह सम्पूर्ण चराचर जगत् जिसके अंश  
से ही विद्यमान होता है ॥४२॥ वह ही मूल प्रकृति है और वही व्यक्त  
रूप वाला यह जगत् है । उसी में यह सम्पूर्ण लय को प्राप्त हो जाया  
करता है तथा उसी में स्थित रहा करता है । तात्पर्य यह है कि यह  
सम्पूर्ण जगत् उसी परमब्रह्म भगवान् विष्णु का ही स्वरूप है ॥४३॥  
समस्त क्रियाओं का वही कर्त्ता है—और वही क्रतु स्वरूप है जिसका  
यजन किया जाया करता है—वही उस कर्म का फल होता है जिससे ये  
सब युगादि हुमा करते हैं । श्री हरि भगवान् से व्यतिरिक्त अन्य कुछ  
भी नहीं है यह सभी कुछ उसी का स्वरूप होता है ॥४४॥



### १६—ध्रुवसंस्थिति निरूपण ।

तारामयं भगवतः शिशुमाराकृतिः प्रभोः ॥१॥  
दिवि रूपं हरेर्यन्तु तस्य पुच्छे स्थितो ध्रुवः ।  
तैप भ्रमन् भ्रामयति चन्द्रादित्यादिकान् ग्रहान् ।  
भ्रमन्तमनु त यान्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ॥२॥  
सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहैः सह ।  
वातानीकमयैर्वन्धैर्ध्रुवे बद्धानि तानि वै ॥३॥  
शिशुमाराकृतिं प्रोक्तं यद्रूपं ज्योतिषां दिवि ।  
नारायणः परं धाम तस्याधारः स्वयं हृदि ॥४॥  
उत्तानपादतनयस्तमाराध्य प्रजापतिम् ।  
स ताराशिशुमारस्य ध्रुवः पुच्छे व्यवस्थितः ॥५॥  
आधारः शिशुमारस्य सत्त्वाध्यक्षो जनादर्दनः ।  
ध्रुवस्य शिशुमारश्च ध्रुवे भानुर्व्यवस्थितः ॥६॥

तदाधार जगच्चैवं सदेवात्तुरमानुषम् ।

येन विप्रा विधानेन तन्मे शृणुत साम्प्रतम् ॥७॥

श्रीसोम हर्षण जी ने कहा—उन्ही प्रभु भगवान की यह तारामय शिशुमार आकृति है ॥१॥ दिवसोक में यह उसी श्री हरि का रूप होता है और उसके पुच्छ में ध्रुव की स्थिति है । वही स्वयं भ्रमण करता हुआ चन्द्र तथा आदित्य आदि समस्त ग्रहों को भ्रमण कराया करता है । भ्रमण करते हुए उसी के पीछे चन्द्र की भांति ये सब नक्षत्र ममन किया करते हैं ॥२॥ सूर्य-चन्द्र-तारामय सब ग्रहों के साथ वातानीक मय बन्धों के द्वारा ध्रुव में बद्ध होते हैं ॥३॥ दिविलोक में ज्योतियों का जो स्वरूप है वह शिशुमार की आकृति कहा गया है । भगवान् नारामय परम धाम है और उसका आधार स्वयं हृदय में होता है ॥४॥ राजा उत्तानपाद का जो पुत्र ध्रुव था उसने उसी प्रजापति की आराधना की थी और वह ध्रुवसारा शिशुमार के पुच्छ में व्यवस्थित रहता है ॥५॥ इस शिशुमार का आधार सबका स्वामी भगवान् जनार्दन होते हैं । यह शिशुमार ध्रुव का तथा उस ध्रुव में मानु व्यवस्थित होता है ॥६॥ उसका आधार यह जगत् है जिसमें देव-अनुर और मानव सभी विद्यमान हैं । हे विप्रमण ! जिस विधान से इन सबकी स्थिति होती उसका अब आप सोच सब सुनसे ध्यान करिए ॥७॥

विवस्वानष्टमिमसिंघ्रं सत्यापो रसात्मिकाः ।

वर्षत्येषु ततश्चाभ्रमद्वादमखिल जगत् ॥८॥

विवस्वानशुभिस्तीक्ष्णैरादाय जगतो जलम् ।

सोम पुष्यत्येन्दुश्च वायुनाद्रीमयेदिवि ॥९॥

जलं विक्षिप्यतेऽभ्रेषु धूमाग्न्यनिलमूर्तिषु ।

न भ्रस्यन्ति यतस्तेभ्यो जलान्यभ्राणि तान् यतः ॥१०॥

अत्रस्याः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः ।

संस्कार कालजनित विप्राश्चासाद्य निर्ममताः ॥११॥

सरित्समुद्रा भोमास्तु यथापः प्राणिसम्मवाः ।

चतुष्प्रकारा भगवानादन्ते सविता द्विजाः ॥११॥

आकाशगङ्गासलिल तथाहृत्य गभस्त्रिमान् ।

अनभगतमेघोव्यो सद्यः क्षिपति रश्मिभिः ॥१२॥

तस्य सस्पर्शनिवृत्तपापपङ्क्तौ द्विजोत्तमाः ।

न याति नरकं मर्त्यो दिव्य स्नानं हि तत्स्मृतम् ॥१३॥

महर्षिवत्सवन् (सूर्य) अठ मासो मे जो रसात्मक जल है उसको असन किया करता है फिर यही इन पर जल को वृष्टि द्वारा अन्न की वर्षा किया करता है और उसी अन्न से यह सम्पूर्ण जगत् निर्मित हुआ करता है ॥८॥ विवस्थान अपनी परम तीक्ष्ण किरणों के द्वारा जगत् के जल को ग्रहण करा लिया करता है । यह सोम को पुष्ट किया करता है और वह इन्दुवायुनाड़ी मय दिक्लोक में रहता है ॥९॥ सूक्ष्म-अग्नि और अनिल-मूर्ति वाले येश्वरों से जलों के द्वारा विक्षिप्यमाण किया जाता है जिस कारण से उनसे छत्र जलों को नहीं गिराया करते हैं ॥१०॥ इनमें वर्तमान रहने वाले जल जब वायु के द्वारा समुदीरित होते हैं क्षभी नीचे गिरा करते हैं । हे विप्रगणो ! कालजनित सस्कार को प्राप्त करके ये निर्मल हो जाते हैं ॥११॥ हे द्विजगणो ! भगवन् सविता चार प्रकार के जलों का आदान दिया करते हैं—सरिता-समुद्र-भूमि पर होने वाले और प्राणियों से समुत्पन्न जल हैं ॥१२॥ गभस्त्रिमान (सूर्य) उसी माँति आकाश गङ्गा के जल का आहरण करके उस अनभगत के ही तुरन्त अपनी रश्मियों के द्वारा पृथ्वी पर क्षिप्त कर दिया करते हैं ॥१३॥ हे द्विजोत्तमो ! उसके भली-भाँति स्पर्श होने से जिसके पापों का कीच धुल गया है वह मनुष्य फिर नरको में क्षभी भी गमन नहीं करता करता है क्योंकि वह परम दिव्य स्नान बताया जाता है ॥१४॥

दृष्टसूर्यं हि तद्वारि पतत्यभ्रं विना दिवः ।

आकाशगङ्गासलिलतद्गोभिः क्षिप्यते रवेः ॥१५॥

कृत्तिकादिषु श्लक्ष्णेषु विषमेष्वम्बु यद्दिदिवः ।

दृष्ट्वार्कं पतितं ज्ञेयं तद्गङ्गां दिग्गजोद्धृतम् ॥१६॥

युग्मर्क्षेषु तु यत्तोय पतत्यर्कोद्धृतं दिवः ।  
 तत्सूर्य्यरश्मिभिः सद्यः समादाय निरम्यते ॥१७॥  
 उभयं पुण्यमत्यर्थं नृणां पापहरं द्विजाः ।  
 आकाशगङ्गासलिलं दिव्यं स्नानं द्विजोत्तमाः ॥१८॥  
 यत्तु मेघैः समुत्सृष्टं वारि तत् प्राणिना द्विजाः ।  
 पुष्पात्योषधयः सर्वा जीवनायामृतं हि नत् ॥१९॥  
 तेन वृद्धिं परां नीतः सकलश्रीषधीगणः ।  
 साधकः फलपाकान्तः प्रजानान्तु प्रजायते ॥२०॥  
 तेन यज्ञान् यथाप्रोक्तान्मानवाः शास्त्रवक्षुषः ।  
 कुर्वन्तेऽहरहर्ष्वयं देवानाप्यायन्ति ते ॥२१॥

जिसने सूर्य का दर्शन न प्राप्त किया है वह जल बिना ही मेघों के  
 दिवसोक से गिरा करता है । वह आकाश गङ्गा का जल है जो रवि  
 की किरणों के द्वारा प्रक्षिप्त हुआ करता है ॥१७॥ कृत्तिका आदि  
 नक्षत्रों में विषमों में जो जलदिव से थक को देसकर पतित होता है  
 उसको दिग्गजों के द्वारा उद्धृत गाङ्गाजल ही समझना चाहिए ॥१८॥  
 युग्म नक्षत्रों में जो जल दिवसोक से सूर्य के द्वारा उद्धृत नीचे गिरा  
 करता है वह सूर्य की किरणों के द्वारा तुरन्त ही ग्रहण कर निरस्त हो  
 जाया करता है ॥१७॥ हे द्विजो ! यह दोनों प्रकार का जल मनुष्यों  
 के लिये परम पुण्यमय होता है । और पापों का हरण करने वाला हुआ  
 करता है । हे द्विजो ! आकाश गङ्गा का जो जल होता है वह परम  
 दिव्य स्नान बताया गया है । इस जल का बहुत बड़ा महत्व है ॥१८॥  
 हे द्विजगण ! जो मेघों के द्वारा जल छोड़ा जाया करता है वह प्राणियों  
 की सब औषधियों का पोषण किया करता है और वह जीवन के लिये अमृत  
 हुआ करता है ॥१९॥ इससे सम्पूर्ण औषधियों का समुदाय परमाधिक  
 वृद्धि को प्राप्त हो गया या तथा प्रजाजनों का फल पाकान्त साधक हो  
 जाता है ॥२०॥ उससे शास्त्रों के वक्षुओं वाले अर्थात् शास्त्रों के द्वारा  
 अपना कर्त्तव्य मार्ग निर्णय करने वाले मनुष्य आये दिन यथा-कथित

यज्ञों को किया करते हैं और वे-देवों को आध्यापित करते रहते हैं ॥२१॥

एवं यज्ञाश्च वेदाश्च वर्णाश्च द्विजपूर्वकाः ।  
सर्व्वदेवनिष्कायाश्च पशुभूतगणाश्च ये ॥२२॥  
चृष्ट्या धृतमिदं सर्व्वं जगत्स्यावरजङ्गमम् ।  
सापि निष्पाद्यते वृष्टिः सवित्रा मुनिसत्तमाः ॥२३॥  
आधारभूतः सवितुर्ध्रुवो मुनिबरोत्तमाः ।  
ध्रुवस्य शिशुमारोऽसौ सोऽपि नारायणाश्रयः ॥२४॥  
हृदि नारायणस्तस्य शिशुमारस्य सस्थितः ।  
विभर्त्ता सर्व्वभूतानामादिभूतः सनातनः ॥२५॥  
एवं मया मुनिश्रेष्ठा ब्रह्माण्डं समुदाहृतम् ।  
भूतमुद्रादिभिर्युक्तं किमन्यच्छ्रोतुञ्छ्रिय ॥२६॥

इस प्रकार से यज्ञ-वेद-द्विज जिनमें प्रमुख हैं ऐसे वर्णों तथा सब देवों के निवास और पशुभूतगण वृष्टि के ही द्वारा यह सम्पूर्ण स्यावर-जङ्गम जगत धारण किया गया है । हे मुनिश्रेष्ठो ! वह वृष्टि भी सविता के ही निष्पादित की जाया करती है ॥२२॥२३॥ हे मुनिबरोत्तमो ! उस वृष्टि के कर्त्ता सविता का आधारभूत ध्रुव है । ध्रुव ध्रुव का आधार यह शिशुमारचक्र होता है और वह शिशुमार भगवान् नारायण का आश्रित है ॥२४॥ उस शिशुमार के हृदय में नारायण संस्थित रहते हैं । वे भगवान् नारायण समस्त भूतों के विशेष भरण करने वाले आदिभूत एवं सनातन हैं ॥२५॥ इस प्रकार से हे मुनिगणो ! मैंने भूमि और समुद्र आदि से युक्त यह पूर्ण ब्रह्माण्ड वर्णित कर दिया है अब आप लोग यह बताओ कि अन्त क्या मुझसे श्रवण करना चाहते हैं ? ॥२६॥

## १७—सर्वतीर्थमाहात्म्यवर्णन ।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुष्यान्यायतनानि च ।  
 वक्तुमर्हसि धर्मज्ञ श्रोतुं नो यत्तते मनः ॥६॥  
 यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्च व सुसयतम् ।  
 विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥७॥  
 मनो विशुद्धं पुरुषस्य तीर्थं,  
 वाचा तथा चेन्द्रियनिग्रहश्च ।  
 एतानि तीर्थानि शरीरजानि,  
 स्वर्गस्य मार्गं प्रतिबोधयन्ति ॥८॥  
 चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुध्यति ।  
 शतशोऽपि जलेधातुं सुराभाण्डमिवाशुचि ॥९॥  
 न तीर्थानि न दानानि न व्रतानि न चाश्रमाः ।  
 दृष्टाशयं दण्डरुचिं पुनन्ति व्युत्थितेन्द्रियम् ॥१०॥  
 इन्द्रियाणि वशे कृत्वा यत्र यत्र वसेन्नरः ।  
 तत्र तत्र कुरुक्षेत्रं प्रयागं पुष्करं तथा ॥११॥  
 तस्मान्बहूणुष्व वक्ष्यामि तीर्थान्यायतनानि च ।  
 सक्षेपेण मुनिश्रेष्ठाः पृथिव्या यानि कानि वै ॥१२॥

मुनिगण ने कहा—हे धर्म के शास्त्रा । इस भूमण्डल में जो भी तीर्थ  
 तथा परम पुण्यभय स्थल हैं उनका अब आप वर्णन करने के योग्य है  
 क्योंकि हमारा मन उनके श्रवण करने का बहुत इच्छुक है ॥१॥ श्री  
 सोमहर्षण मुनि ने कहा—सभी तीर्थ फल देने वाले होते हैं—इसमें कुछभी  
 सन्देह नहीं है किन्तु जिस मनुष्य के हाथ-पैर और मन सुसयत हुआ  
 करते हैं तथा जिसमें विद्या-तप और कीर्त्ति विद्यमान होते हैं वही  
 मनुष्य तीर्थों के फल का उपभोग किया करता है । तीर्थों के फल  
 पाने के लिये सुसयत होने की परमावश्यकता है ॥२॥ पुरुष का विशुद्ध  
 मन ही एक महान तीर्थ है । मनुष्य की वाचा का निग्रह और सब

इन्द्रियो का निग्रह रखना ये भी मानव के शरीर में ही रहने वाले तीर्थ होते हैं तथा ये स्वर्ग के मार्ग को बतला देने वाले होते हैं ॥३॥ अन्दर शरीर में रहने वाला विस्र ही यदि दुष्ट है अर्थात् अनेक दोषों से युक्त है तो वह तीर्थों के स्नान करने से कभी भी शुद्ध नहीं हुआ करता है । जिस तरह से सैकड़ों बार जल से धोया हुआ भी सुरा का पात्र अशुचि ही रहा करता है और कभी भी शुद्ध एवं पवित्र नहीं हो सकता है वैसे ही दोष युक्त मन वाला मनुष्य तीर्थों के स्नान से कभी पवित्र नहीं होता है ॥४॥ जिस पुरुष की दूषित भावनाएँ होती हैं जो दण्ड में रुचि रखता है तथा जिसकी इन्द्रियाँ अविजित होती हैं उस मनुष्य को तीर्थ-दान-व्रत और आश्रम कभी भी विशुद्ध नहीं कर सकते हैं । अपनी इन्द्रियों को घरा में करके मनुष्य जहाँ २ पर भी निवास किया करता है वहाँ २ पर ही कुक्षेत्र प्रयाग और पुष्कर हो जाया करता है । शुद्धि के लिये अपनी इन्द्रियों का हनन करना परमावश्यक होता है ॥५-६॥ हे श्रेष्ठ मुनिगणो ! इसलिये क्योंकि आप लोग तीर्थों के शुभ नाम जानना चाहते हैं मैं तीर्थों तथा पुण्य स्थलों को संक्षेप के साथ बतलाऊँगा । आप लोग ध्वषण करिये जो भी इस पृथिवी पर विद्यमान हैं ॥७॥

विस्तरेण न शक्यन्ते वक्तुं वर्षशतैरपि ।

प्रथम पुष्कर तीर्थ नैमिषारण्यमेव च ॥८॥

प्रयागञ्च प्रवक्ष्यामि धर्म्मरिण्य द्विजोत्तमाः ।

धेनुक चम्पकारण्यं सैन्धवारण्यमेव च ॥९॥

पुण्यञ्च मगधारण्यं दण्डकारण्यमेव च ।

गया प्रभास श्रीतीर्थं दिव्यं कनखलं तथा ॥१०॥

भृगुतुङ्गं हिरण्याक्ष भीमारण्यं कुशस्थलीम् ।

लोहाकुलं सकेदारं मन्दरारण्यमेव च ॥११॥

महाबल कोटितीर्थं सर्वपापहरं तथा ।

रूपतीर्थं शूकरव चक्रतीर्थं महाफलम् ॥१२॥

योगतीर्थं सोमतीर्थं तीर्थं साहोटकं तथा ।

तीर्थं कोकामुखं पुण्यं बदरीशैलमेव च ॥१३॥

सोमतीर्थं तुङ्गवूटं तीर्थं स्वन्दाश्रमं तथा ।

कोटितीर्थं अग्निपद तीर्थं पञ्चशिखं तथा ॥१४॥

यदि कोई भी विस्तार के साथ तीर्थों के और शुद्ध आयतनों को बतलाने का प्रयत्न करे तो सैकड़ों वर्षों में भी उनको नहीं बतला सकता है । सर्व प्रथम पुष्कर तीर्थ है—तथा नैमिषारण्य है ॥१॥ हे द्विजोत्तम ! प्रयागराज को बतलाता हूँ । धर्मारण्य तीर्थ है । घेनुक-धम्मवारण्य है तथा सैन्यवारण्य तीर्थ है ॥६॥ परम पुण्यमय में तीर्थ मगधारण्य और दण्डकारण्य तीर्थ हैं । गया प्रभास श्रीतीर्थ तथा दिव्य कनखल तीर्थ हैं ॥१०॥ भृगुतुङ्ग-हिरण्याक्ष-भीमारण्य-कुशस्थली-लोहाबुल-सवेदार- और मन्दारारण्य तीर्थ हैं ॥ १॥ महाबल-कोटितीर्थ तथा सर्वपापहर तीर्थ हैं । रूपतीर्थ-भूकरव और महा फलचक्र तीर्थ हैं ॥१२॥ योगतीर्थ-सोम तीर्थ तथा साहोटक तीर्थ है, परम पुण्य कोकमुख तथा बदरीशैल तीर्थ हैं ॥१३॥ सोमतीर्थ-तुङ्गवूट तथा स्वन्दाश्रमतीर्थ है । कोटितीर्थ-अग्निपदतीर्थ और पञ्चशिख तीर्थ हैं ॥१४॥

धर्मोद्भव कोटितीर्थं तीर्थं बाधप्रमोचनम् ।

गङ्गाद्वार पञ्चवूट मध्यकेसरमेव च ॥१५॥

चक्रप्रभ मतङ्गश्च क्रुशदत्तश्च विश्रुतम् ।

दष्टाकुण्ड विष्णुतीर्थं सार्वकामिकमेव च ॥१६॥

तीर्थं मत्स्यतिलश्चैव बदरी सुप्रभं तथा ।

ब्रह्मकुण्ड बल्लिकुण्ड तीर्थं सत्यपदं तथा ॥१७॥

चतुःस्रोतश्चतुःशृङ्ग शैल द्वादशधारकम् ।

मानस स्थूलशृङ्गश्च स्थूलदण्डं तथोर्व्वशी ॥१८॥

लोकपाल मनुवर सोमाह्व शैलमेव च ।

सदाप्रभ मेरुकुण्ड तीर्थं सोमाभिषेचनम् ॥१९॥

महास्रोत फोटरक पञ्चधार त्रिधारकम् ।

सप्तधारैकधारञ्च तीर्थं चामरकण्टकम् ॥२०॥



शालग्रामं चक्रतीर्थं कोटिद्रुममनुत्तमम् ।

विल्वप्रभं देवहृदं तीर्थं विष्णुहृदं तथा ॥२१॥

धर्मोद्भव-कोटितीर्थं और बाघ प्रमोचन नाम वाला एक तीर्थ है । गङ्गाद्वार-पञ्चवूट और मध्य वेशर तीर्थ है ॥१५॥ चक्रप्रभ-मतङ्ग-कुशदत्त परम विद्युत् तीर्थ होता है । दद्याकुण्ड विष्णुतीर्थ और सार्वकामिक तीर्थ है ॥१६॥ मत्स्यतिल तीर्थ है और बदरी सुप्रभ तीर्थ है । ब्रह्मकुण्ड वह्निकुण्ड तथा सत्यपद तीर्थ है ॥१७॥ चतुःस्रोत-चतुष्टङ्ग तथा द्वादश और धारक तीर्थ है । मानस-स्थूलशृङ्ग-स्थूलदण्ड और उर्वशी तीर्थ है ॥१८॥ लोकपाल-मनुवर-सोमाह्वशैल-सदाप्रभ-मेरुकुण्ड और सोमाम्रियेन तीर्थ हैं ॥१९॥ महास्रोत-कोटरक-पञ्चधार त्रिधारं-सप्तधार-एकधार और अमर कण्टक तीर्थ हैं ॥२०॥ शालग्राम-चक्रतीर्थ-सर्वोत्तम कोटिद्रुगु-विल्व प्रभ तथा विष्णुहृद नाम वाले तीर्थ हैं ॥२१॥

शङ्खप्रभं देवकुण्ड तीर्थं वज्रायुधं तथा ।

अग्निप्रपञ्च पुष्पाग देवप्रभमनुत्तमम् ॥२२॥

विद्याधर सगान्धर्व्यं श्रीतीर्थं ब्रह्मणो हृदम् ।

सातीर्थं लोकपालाख्य मणिपूरगिरिं तथा ॥ ३

तीर्थं पञ्चहृदञ्चैव पुण्यं पिण्डारकं तथा ।

मलय गोप्रभावञ्च गोवरं वटमूलकम् ॥२४॥

स्नानदण्ड प्रयागञ्च गुह्यं विष्णुपदं तथा ।

कन्याश्रम वायुकुण्ड जम्बूमार्गं तथोत्तमम् ॥२५॥

गभस्तितीर्थञ्च तथा ययातिपतनं शुचि ।

कोटितीर्थं भद्रवटं महाकालवनं तथा ॥२६॥

नर्मदातीर्थमपरं तीर्थं वज्रं तथावुदम् ।

पिङ्गुतीर्थं सवासिष्ठं तीर्थं च पृथुसङ्गमम् ॥२७॥

तीर्थं दौर्वर्षिकं नाम तथा पिस्सरकं शुभम् ।

अपितीर्थं ब्रह्मतुङ्गं वसुतीर्थं कुमारिकम् ॥२८॥

शङ्खप्रभ-देवकुण्ड-वज्रायुध-अग्निप्रभ-पुष्पाग-सर्वोत्तम देवप्रभ-विद्याधर

सगान्धर्व्यं श्री तीर्थ-ब्रह्महृद-सप्ततीर्थ-लोकपालाख्य-मणिपूरगिरि-पञ्चहृद

तीर्थं तथा पुष्प और निन्दारक तीर्थ हैं । मलय-गोवर्माव-गोवर-वटवृक्षक-  
स्नानदण्ड-प्रदान-गृह्य तथा दिप्पुषद-कन्दार्थन वायुदण्ड तथा सर्वोत्तम  
जन्ममायं तीर्थं है ॥२२-२५॥ गनन्ति तीर्थं-यद्यद्विषयतः शुचि कोटितीर्थं  
मद्रन्त तथा महाकालवन तीर्थं है ॥२६॥ ऊपर नर्मदा तीर्थं-तीर्थं-वज्र-  
कबुन्द-निङ्गतीर्थं तदात्तिष्ठ और पृथु सङ्गमतीर्थं है ॥२७॥ दीर्घातिशय  
नामक एक तीर्थं है तथा मुन निन्दारक तीर्थं है । ऋषितीर्थं-ब्रह्मवृक्ष-वन  
तीर्थं और कुमारिक तीर्थं है ॥२८॥

शत्रुतीर्थं पञ्चनदं रेणुकातीर्थनिव च ।

पैतामहश्च विमल रुद्रपाद तथोत्तमम् ॥२९॥

मणिमत्तश्च कामाक्ष्य कृष्णतीर्थं कुशाविनम् ।

यजन याजनश्चैव तथैव ब्रह्मबालुकम् ॥३०॥

पुष्पन्याम पुण्डरीक मणिपूर तथोत्तरम् ।

दीर्घसत्र हयगद तीर्थं चानशन तथा ॥३१॥

गङ्गोद्भेदं शिवोद्भेदं नर्मदोद्भेदमेव च ।

वस्त्रापद दास्वत छायारोहणमेव च ॥३२॥

सिद्धेश्वर मिश्रवत कालिकाश्रममेव च ।

वटावट भद्रवट कौशाम्बी च दिवाकरन् ॥३३॥

द्वीप सारस्वतश्चैव विजय कामद तथा ।

रुद्रकोटि सुमनस तीर्थं सद्रावनानितम् ॥३४॥

स्यमन्तपञ्चक तीर्थं ब्रह्मतीर्थं नुदशनम् ।

सतत पृथिवीसर्व्व पारिप्लवपृष्ठदकौ ॥३५॥

शत्रुतीर्थं-पञ्चनद रेणुकातीर्थं पैतामह-विमल तथा उत्तम रुद्रपाद-  
मणिमत्त-कामाक्ष्य-कृष्णतीर्थं-कुशाविन-यजन-या न तथा ब्रह्मबालुक तीर्थं  
है ॥२९-३०॥ पुष्पन्याम पुण्डरीक-मणिपूर-तीर्थं-नत्र हयगद तीर्थं और  
अनशन नाम वाचा तीर्थं है ॥३१॥ गङ्गोद्भेद-शिवोद्भेद-नर्मदोद्भेद-  
वस्त्रापद-दास्वत-छायारोहण-सिद्धेश्वर मिश्रवत-कालिकाश्रम-वटावर-  
भद्रवट-कौशाम्बी और दिवाकर ये सभी तीर्थ हैं ॥३२-३३॥ द्वीप-सारस्वत-  
विजय-कामद रुद्रकोटि सुमनस और सद्रावनानित नामक तीर्थ हैं ॥३४॥

स्यमन्त पञ्चकतीर्थं-ब्रह्मतीर्थं-सुदर्शन-सतत पृथिवी सर्वं तथा परिप्लव  
एवं पृथूदक तीर्थं है ॥३५॥

दशाश्वमेधिकं तीर्थं सर्पिजं विषयान्तिकम् ।

कोटितीर्थं पञ्चनदं वाराहं यक्षिणीहृदम् ॥३६

पुण्डरीक सोमतीर्थं मुञ्जवाटं तथोत्तमम् ।

वदरीवनमासीनं रत्नमूलकमेव च ॥३७

लोकद्वारं पञ्चतीर्थं कपिलातीर्थमेव च ।

सूर्य्यंतीर्थं शङ्खिनी च गवा भवनमेव च ॥३८

तीर्थंश्च यक्षराजस्य ब्रह्मावत्तं सुतीर्थकम् ।

कामेश्वर मातृतीर्थं तीर्थं शीतवनं तथा ॥३९

स्नानलोमापहृत्त्वं च मासससरकं तथा ।

दशाश्वमेध केदारं ब्रह्मादुम्बरमेव च ॥४०

सप्तपिकुण्डञ्च तथा तीर्थं देव्याः सुजम्बुकम् ।

ईहास्पद कोटिकूटं किन्दान किञ्चप तथा ॥४१

कारण्डव चावेध्यञ्च त्रिविष्टपमथापरम् ।

पाणिखात मिथकञ्च मधुवटमनोजवौ ॥४२

दशाश्वमेधिक तीर्थं, सर्पिज-विषयान्तिक कोटितीर्थं, पञ्चनद-  
यक्षिणीहृद-पुण्डरीक-सोमतीर्थ उत्तम मञ्जुवाट-वदरीवन-रत्नमूलक-  
लोकद्वार-पञ्चतीर्थ-कपिलातीर्थं सूर्य्यंतीर्थ-शङ्खिनी-और गवां भवन तीर्थं  
हैं ॥३६-३८॥ यक्षराज का तीर्थ-ब्रह्मावत्तं-सुतीर्थं-कामेश्वर-मातृतीर्थं-  
शीतवन-स्नानलोमापहृ-मासससरक-दशाश्वमेध-केदार-ब्रह्मादुम्बर तीर्थं हैं  
॥३९-४०॥ सप्तपिकुण्ड नाम वाला तीर्थं तथा देवी का सुजम्बुकतीर्थं-  
ईहास्पद तीर्थं-कोटिकूट-किन्दान-किञ्चप तीर्थं हैं ॥४१॥ कारण्डव-अवेध्य  
तथा अपर त्रिविष्टप तीर्थं-पाणिखात-मिथक-मधुवट तथा मनोजव तीर्थ  
हैं ॥४२॥

कौशिकी देवतीर्थञ्च तीर्थंश्च ऋणमोचनम् ।

दिध्यञ्च दृगधूमास्य तीर्थं विष्णुपदं तथा ॥४३

अमराणां हृदं पुण्यं कोटितीर्थं तथापरम् ।  
 श्रीकुञ्जं शालितोर्थाञ्च नैमिशेयञ्च विष्णुतम् ॥४४॥  
 ब्रह्मस्थानं सोमतीर्थं कन्यातीर्थं तथैव च ।  
 ब्रह्मतीर्थं मनस्तीर्थं तीर्थं वै कारुपावनम् ॥४५॥  
 सौगन्धिकवनञ्चैव मणितीर्थं सरस्वती ।  
 ईशानतीर्थं प्रवरं पावनं पाञ्चयज्ञिकम् ॥४६॥  
 त्रिशूलधारं माहेन्द्रं देवस्थानं कृतालयम् ।  
 शाकम्भरीं देवतीर्थं सुवर्णाक्षं कलिं हृदम् ॥४७॥  
 क्षीरस्रवं विरूपाक्षं भृगुतीर्थं कुशोद्भवम् ।  
 ब्रह्मतीर्थं ब्रह्मयोनिं नीलपर्वतमेव च ॥४८॥  
 कुजाम्रकं भद्रवटं वसिष्ठपदमेव च ।  
 स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं कालिकाश्रममेव च ॥४९॥

कोटिकी-देवतीर्थं-ऋणमोचनं तीर्थं-दिव्य-भृगु धूमाख्यं तीर्थं-विष्णुपद  
 तीर्थं है ॥४४॥ अमरो का अर्थात् देवो का पुण्यं हृद-तथा अपर कोटि  
 तीर्थं श्रीकुञ्ज-शालितोर्थं और परमं प्रतिष्ठ नैमिषेय तीर्थं है ॥४४॥  
 ब्रह्मस्थान-सोमतीर्थं-कन्या तीर्थं-ब्रह्मतीर्थं मनस्तीर्थं-कारुपावन तीर्थं-  
 सौगन्धिक वन नाम बाता मणि तीर्थं, सरस्वती-ईशान तीर्थं प्रवर एवं  
 पावन पाञ्चयज्ञिक तीर्थं है ॥४५-४६॥ त्रिशूल धार-माहेन्द्र-देवस्थान-  
 कृतालय-शाकम्भरी-देव तीर्थं-सुवर्णाक्ष-कलि-हृद-क्षीरस्रवं-विरूपाक्ष-भृगु  
 तीर्थं-कुशोद्भव-ब्रह्म तीर्थं-ब्रह्मयोनि-नीलपर्वत तीर्थं है ॥४७-४८॥ कुजाम्रक  
 भद्रवट-वसिष्ठपद-स्वर्गद्वार-प्रजाद्वार और कालिकाश्रम तीर्थं हैं ॥४९॥

रद्रावत्तं सुगन्धाश्रमं कपिलावनमेव च ।  
 भद्रकर्णं हृदञ्चैव शङ्कुकर्णं हृदं तथा ॥५०॥  
 सप्तसारस्वतञ्चैव तीर्थं मोशनसं तथा ।  
 कपालमोचनञ्चैव अघकीर्णञ्च काम्यकम् ॥५१॥  
 चतुःसामुद्रिकञ्चैव शक्तिकञ्च सहस्रिकम् ।  
 रेशुकं पञ्चवटकं विमोचनमथोजसम् ॥५२॥

स्थाणुतीर्थं कुरोस्तीर्थं स्वर्गद्वारं कुशव्वजम् ।

विश्वेश्वरं माणवकं कूपं नारायणाश्रयम् ॥५३॥

गङ्गाहृदं वटञ्चैव वदरीपाटनं तथा ।

इन्द्रमार्गमेकरात्रं क्षीरकावासमेव च ॥५४॥

सोमतीर्थं दधीचञ्च श्रुततीर्थञ्च भो द्विजाः ।

कोटितीर्थं स्थलीञ्चैव भद्रकालीहृदं तथा ॥५५॥

अरुन्धतीवनञ्चैव ब्रह्मावत्तं तथोत्तमम् ।

अश्ववेदी कुब्जावनं यमुनाप्रभवं तथा ॥५६॥

रुद्रावत्तं-सुगन्धाश्व-कपिलावन-भद्रकर्णहृद-शकुकर्णहृद-सप्त सारस्वत तीर्थ-प्रोशनस-कपाल मोचन अवकीर्ण-काम्यक तीर्थं है ॥५०-५१॥ चतुः सामुद्रिक तीर्थ-शक्ति-सहस्रिक-रेणक-पञ्चवटक-विमोचन-औजस तीर्थं है ॥५२॥ स्थाणु तीर्थ-कुरोस्तीर्थ-स्वर्गद्वार-कुशव्वज विश्वेश्वर-माणवक-कूप नारायणाश्रय तीर्थं है ॥५३॥ गङ्गाहृद-वट वदरीपाटन इन्द्रमार्ग-एकरात्र और क्षीरकावास तीर्थं है ॥५४॥ सोमतीर्थ-दधीच-श्रुततीर्थ-— हे द्विजगण ! कोटितीर्थ-स्थली तथा भद्रकाली हृद तीर्थं है ॥५५॥ अरुन्धती वन-ब्रह्मावत्तं उत्तम तीर्थं अश्ववेदी-कुब्जावन तथा यमुनाप्रभ तीर्थं है ॥५६॥

वीरं प्रमोक्षं सिन्धूत्यमृपिकुल्या सकृत्तिकम् ।

उर्वीसक्रमणञ्चैव मायाविद्योद्भवं तथा ॥५७॥

महाश्रमो वैतसिकारूपः सुन्दरिकाश्रमम् ।

बाहुतीर्थं चारुनदी वितलाशोकमेव च ॥५८॥

तीर्थं पञ्चनदञ्चैव मार्कण्डेयस्य धीमतः ।

सोमतीर्थं सितोदञ्च तीर्थं मत्स्योदरी तथा ॥५९॥

सूर्य्यप्रभं सूर्य्यतीर्थं मशोकवनमेव च ।

अरुणास्पदं कामदञ्च शुक्रतीर्थं सवालुकम् ॥६०॥

पिशाचमोचनञ्चैव सुभद्राहृदमेव च ।

कुण्डं विमलदण्डस्य तीर्थं चण्डेश्वरस्य च ॥६१॥

ज्येष्ठस्यानह्रदञ्चैव पुण्यं ब्रह्मसरं तथा ।

जैगीषव्यगुहा चैव हरिकेशवनं तथा ॥६२॥

अजामुखसरञ्चैव घण्टाकर्णह्रदं तथा ।

पुण्डरीकह्रदञ्चैव वापी कर्कोटकस्य च ॥६३॥

धीर-प्रमोक्ष-सिन्धूत्य-ऋषिबुल्या- सकृत्तिक-उर्वी सक्रमण मायाविद्यो-  
द्भव, महाश्वम-धैतासिकारूप-मुन्दरिकाश्वम-बाहु तीर्थ-घाहनदी तथा  
विमलाशोक तीर्थ है ॥५७-५८॥ पञ्चनद तीर्थ-धीमान् माकण्डेय का  
तीर्थ-सोमतीय-सितोद तथा मत्स्योदरी तीर्थ है ॥५९॥ सूर्यप्रभ-  
सूर्यतीर्थ अशोक वन-अरुणास्पद-कामद-शुक्रतीर्थ-सालुक तीर्थ है ॥६०॥  
पिशाच मोचन-सुमद्रह्रद-कुण्ड-विमलदण्ड तीर्थ-घण्डेश्वर का तीर्थ है  
॥६१॥ ज्येष्ठस्यान ह्रद-पुण्य ब्रह्मसर-जैगीषव्य गुहा तथा हरिकेश वन  
तीर्थ है ॥६२॥ अजामुखसर-घण्टाकर्णह्रद-पुण्डरीकह्रद-वापी-कर्कोटक  
तीर्थ है ॥६३॥

सुवर्णास्योदपानञ्च श्वेततीर्थं ह्रदं तथा ।

कुण्ड घर्घरिकायाश्च श्यामाकूपञ्च चन्द्रिका ॥६४॥

श्मशानस्तम्भकूपञ्च विनायकह्रदं तथा ।

कूप सिन्धूदभवञ्चैव पुण्यं ब्रह्मसरं तथा ॥६५॥

रुद्रावास तथा तीर्थं नागतीर्थं पुलोमकम् ।

भक्तह्रद क्षीरसरः प्रेताघार कुमारकम् ॥६६॥

ब्रह्मावर्त्त कुशावर्त्तं दधिकर्णोदपानकम् ।

शृङ्गातीर्थं महातीर्थं तीर्थं श्रेष्ठा महानदी ॥६७॥

दिव्यं ब्रह्मसरं पुण्यं गयाशीर्षक्षिप्तं वटम् ।

दक्षिणं चोत्तरञ्चैव गोमयं रूपशोतिकम् ॥६८॥

कपिलाह्रदं गृध्रवटं सावित्रीह्रदमेव च ।

प्रभासनं सीतवनं योनिदारञ्च धेनुकम् ॥६९॥

घन्यकं कोकिलाख्यञ्च मतङ्गह्रदमेव च ।

पतृकूपं रुद्रतीर्थं शक्रतीर्थं सुमालिनम् ॥७०॥

सुवर्णास्योदयान-श्वेततीर्थहृद, धर्षेरिका का कुण्ड-श्यामाकूप-  
चन्द्रिका—रमज्ञानस्तम्भ कूप—तथा विनायक हृद—सिन्धू-द्रव  
कूपपुण्य ब्रह्मसर तीर्थ हैं ॥६४-६५॥ रद्रावास-नागतीर्थ पुलोमक-  
भक्तहृद-क्षीरसर-प्रेताधार-कुमारक-ब्रह्मावर्त-कुशावर्त-दधिकर्णोदयानक-  
शृङ्गतीर्थ-महातीर्थ-तीर्थयेष्ठा-महानदी ये सब भी तीर्थ हैं ॥६६-६७॥  
दिव्य ब्रह्मसर-पुण्य गयाशीर्षाश्रय वट-दक्षिण और उत्तर-गोमय-रूपशीतिक  
तीर्थ हैं ॥६८॥ कपिलाहृद-गृध्रवट-सावित्रीहृद-प्रभासन सीतवन-योनिदार  
धेनुक-धन्यक-कोकिलाज्य-यउङ्गहृद-पवृकूप-छदतीर्थ-शक्रतीर्थ और सुमा-  
लिन तीर्थ हैं ॥६९-७०॥

ब्रह्मस्थानं सप्तकुण्डं मणिरत्नहृदं तथा ।  
कौशिक्यं भरत चं व तीर्थं ज्येष्ठालिका तथा ॥७१॥  
वश्वेश्वरं कल्पसरः कन्यासंवेद्यमेव च ।  
निश्च्रीवाप्रभवश्च व वसिष्ठाश्रममेव च ॥७२॥  
देवकूटं च कूपं च वसिष्ठाश्रममेव च ।  
वीराश्रमं ब्रह्मसरो ब्रह्मवीरावकापिली ॥७३॥  
कुमारधारा श्रीधारा गौरीशिखरमेव च ।  
शुनः कुण्डोऽथ तीर्थं च नन्दितीर्थं तथैव च ॥७४॥  
कुमारवास श्रीवासमोर्वीशीतीर्थमेव च ।  
कुम्भकणहृदञ्चैव कौशिकीहृदमेव च ॥७५॥  
धर्मतीर्थं कामतीर्थं तीमुद्दालकं तथा ।  
सन्ध्यातीर्थं कामतीर्थं कपिलं लोहितार्णवम् ॥७६॥  
शोणोद्भवं वशगुल्ममृषभं कलतीर्थकम् ।  
पुण्यावतीहृद तीर्थं तीर्थं बदरिकाश्रमम् ॥७७॥

ब्रह्मस्थान-सप्तकुण्ड-मणिरत्नहृद-कौशिक्य-भरत तीर्थ-ज्येष्ठालिका-  
वश्वेश्वर-कल्पसर-कन्या संवेद्य-निश्च्रीवाप्रभव-वसिष्ठाश्रम-ये सभी तीर्थ हैं ।  
वीराश्रम-देवकूट-कूप ब्रह्मसर-ब्रह्मवीरा वकापली-कुमारधारा-श्रीधारा-  
गौरीशिखर-शुनः कुण्डतीर्थ तथा नन्दितीर्थ हैं ॥७१-७४॥ कुमारवास,  
श्रीवास, ओर्वीशी तीर्थ, कुम्भकणहृद, कौशिकीहृद धर्मतीर्थ, कामतीर्थ,

चहालक तीर्थ, सन्ध्या तीर्थ, कार तोय, कपिल, लोहिताणं व तीर्थ हैं ॥७५-७६॥ सोणोद्भव, वसगुल्म, ऋषभ, कसतीर्थ, पुष्यावतीहृद तीर्थ और बदरिकाश्रम तीर्थ हैं ॥७७॥

रामतीर्थं पितृवनं विरजातीर्थमेव च ।

मार्कण्डेयवनञ्च कृष्णतीर्थं तथा वटम् ॥७८॥

रोहिणीवृषप्रवरमिन्द्रद्युम्नसरञ्च यत् ।

सानुगत्तं समाहेन्द्रं श्रीतीर्थं श्रीनदं तथा ॥७९॥

इषुतीर्थं वार्षभञ्च कावेरीहृदमेव च ।

कन्यातीर्थञ्च गोकर्णं गायत्रीस्थानमेव च ॥८०॥

बदरीहृदमन्यञ्च मध्यस्थान विकर्णकम् ।

जातीहृद देवकूप कुशप्रवणमेव च ॥८१॥

सर्वदेवव्रतञ्च कन्याश्रमहृदं तथा ।

तथान्यद्वालखिल्यानां सपूर्वाणां तथापरम् ॥८२॥

तथान्यच्च महर्षीणामखण्डितहृदं तथा ।

तीर्थेष्वेतेषु विधिवत् सम्यक् श्रद्धासमन्वितः ॥८३॥

स्नानं करोति यो मर्त्यः सोपवासो जितेन्द्रियः ।

देवानूपोन्मनुष्याश्च पितॄन् सन्तर्प्य च कमात् ॥८४॥

अभ्यर्च्य देवतास्तत्र स्थित्वा च रजनीत्रयम् ।

पृथक् पृथक् फल तेषु प्रतितीर्थेषु भो द्विजाः ॥८५॥

प्राप्नोति ह्यमेघस्य नरो नास्त्यत्र सशयः ।

यस्त्विद शृणुयान्नित्यं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥

पठेच्च श्रावयेद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥८६॥

बहुत से तीर्थ हैं जिनमे प्रमुख तीर्थ रामतीर्थ, पितृवन, विरजातीर्थ, मार्कण्डेय वनतीर्थ, कृष्णतीर्थ, वट, रोहिणी वृष, प्रवर, इन्द्रद्युम्नसर, सानुगत्तं, समाहेन्द्र श्रीतीर्थ तथा श्रीनद तीर्थ हैं ॥७८-७९॥ इषुतीर्थ, वार्षभ, कावेरीहृद, कन्यातीर्थ, गोकर्ण, गायत्री स्थान, अन्य बदरीहृद, मध्य स्थान, विकर्णक, जातीहृद, देवकूप, कुशप्रवण, सर्वदेवव्रत, कन्याश्रमहृद, वालखिल्यो का अन्यहृद तथा अपर सपूर्वों का हृद तीर्थ



है ॥८०-८२॥ अन्य महर्षियों का अखण्डित हृद तीर्थ होता है । ये बहुत से जो तीर्थों के नाम बताये गये हैं इस समस्त तीर्थों में भली भाँति श्रद्धा से युक्त होकर विधि के साथ जो कोई स्नान किया करता है और उपवास के साथ तथा अपनी सब इन्द्रियों को जीतकर जो स्नान करता है और देवों को, ऋषियों को एवं मनुष्यों को और पितृगणों को क्रम से भली भाँति तृप्त करके वहाँ तीर्थ पर ही देवगण की अर्चना करे और तीन रात्रि तक वही पर अपनी स्थिति करनी चाहिए । हे द्विजगणो ! इन प्रत्येक तीर्थ का पुण्य २ फल हुआ करता है ॥८३-८५॥ मनुष्य अवश्यमेव यज्ञ का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । जो पुरुष इसको नित्य सुनता है जो कि उत्तम तीर्थों का माहात्म्य बताया गया है इसका पाठ करे या श्रवण करावे वह सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥८६॥

### १८—स्वयम्भूवर्हापिसंवादवर्णन

पृथिव्यामुत्तमां भूमिं धर्मकामार्थमोक्षदाम् ।  
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं ब्रूहि नो वदतांवर ॥१॥  
इमं प्रदत्तं मम गुरुं प्रच्छुम्मुनयः पुरा ।  
तमहं सम्प्रक्षयामि यत्पृच्छध्वं द्विजोत्तमाः ॥२॥  
स्वाश्रमे सुमहापुण्ये नानापुष्पोपशोभिते ।  
नानाद्रुमलताकीर्णे नानामृगगणैर्युते ॥३॥  
पुन्नागैः कर्णिकारैश्च सरलैर्देवदारुभिः ।  
शालैस्तालैस्तमालैश्च पनसैरधस्तादिरैः ॥४॥  
पाटलाशोकवकुलैः करवीरैः सचम्पकैः ।  
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैर्नानापुष्पोपशोभितैः ॥५॥

कुरुक्षेत्रे रामासीनं व्यासं मतिमतां वरम् ।  
 महामारतकर्त्तारं सर्व्वशास्त्रविशारदम् ॥६॥  
 अध्यात्मनिष्ठं सर्व्वज्ञं सर्व्वभूतहिते रतम् ।  
 पुराणागमवक्तारं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥७॥  
 पराशरं सुतं शान्तं पद्मपत्रायतेक्षणम् ।  
 द्रष्टुमर्ह्याययुः प्रीत्या मुनयः सशितव्रताः ॥८॥

मुनिगण ने कहा—हे मुनिवर ! आपसी बोलने वाली मे परमश्रेष्ठ हैं । अब आप कृपा करके यह बतलाइये कि इस पृथ्वी में सबसे उत्तम भूमि कौनसी है जो धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष इन चारों के देने वाली हो और इन समस्त तीर्थों में जो अभी आपने बहुत से बतलाए हैं सर्वोत्तम तीर्थ कौनसा है ॥१॥ श्री लोमहर्षणजी ने कहा—हे मुनिगण ! पहले समय में जो इस समय मुझसे आपने पूछा है इसी प्रश्न को मुनिगो ने मेरे गुरुजी से पूछा था । हे द्विओत्तमो ! जो आप मुझसे पूछते हो उसे मैं आपको बतलाता हूँ ॥२॥ सुमहान् पुष्पमय अपने आश्रम में गुरुदेव विराजमान थे । यह आश्रम अनेक पुष्पो से उपशोभित था और नाना प्रकार के वृक्षों तथा लताओं से घिरा हुआ था । इस आश्रम में बहुत प्रकार के पशुगण रहा करते थे ॥३॥ पुनाग-कर्णिकार-सरस-देव-दारु-शाय-तालतमाल-पनस-अर्घखदिर - पाटल-अशोक-वकुल - करवीर-चम्पक- ये वृक्ष तथा अन्य भी बहुत तरह के वृक्षों से एवं अनेक पुष्पो से यह आश्रम शोभायमान था । यह आश्रम कुरुक्षेत्र में था वहाँ पर मतिमानों में श्रेष्ठ-महाभारत महान् ग्रन्थ के रचयिता-समस्त शास्त्रों के महामनीषी-अध्यात्मनिष्ठ-सर्वज्ञ और सब प्राणियों के हित करने में रति रखने वाले पुराणों एवं आगमों के वक्ता वेदों और वेदों के अङ्ग के पाठगामी पराशर मुनि के पुत्र-परम शान्त मूर्ति तथा पद्म के तुल्य सुन्दर एवं आयत नेत्रों वाले व्यासजी उस अपने आश्रम में जिस समय में विद्यमान थे उसी समय में साशत व्रत वाले मुनिगण प्रीति से व्यासदेवजी के दर्शन करने के लिये वहाँ पर समागत हुए थे ॥४-८॥

कश्यपो जमदग्निश्च भरद्वाजोऽय गोतमः ।  
 वसिष्ठो जैमिनिर्घोम्यो मार्कण्डेयोऽय वाल्मिकिः ॥९  
 विश्वामित्रः शतानन्दो वात्स्यो गार्ग्योऽय आसुरिः ।  
 सुमन्तुर्भागवो नाम कण्वो मेघातिथिर्गुरुः ॥१०  
 माण्डव्यश्च्यवनो धूम्रो ह्यसितो देवलस्तथा ।  
 भौद्गल्यस्तृणयज्ञश्च पिप्पलादोऽकृतव्रणः ॥११  
 सम्बर्तः कौशिको रैम्यो मैत्रेयो हरितस्तथा ।  
 क्षाण्डिल्यश्च विभाण्डश्च दुर्वासा लोकशस्तथा ॥१२  
 नारदः पर्वतश्चैव वैशम्पायनगालवौ ।  
 भास्करिः पूरणः सूतः पुलस्त्यः कपिलस्तथा ॥१३  
 उलूकः पुलहो वायुर्देवस्थानश्चतुर्भुजः ।  
 सनत्कुमारः पलश्च कृष्णः कृष्णानुभोतिकः ॥१४

जो मुनिपग व्यासजी से मिलने के लिये वहाँ पर समागत हुए थे उनमें कश्यप-जमदग्नि-भरद्वाज-गोतम-वसिष्ठ-जैमिनि-घोम्य-मार्कण्डेय-वाल्मीकि-विश्वामित्र शतानन्द-वात्स्य-गार्ग्य-आसुरि-सुमन्तु-भागव-कण्व-मेघातिथि और गुरु थे ॥९-१०॥ माण्डव्य-च्यवन-धूम्र-असित-देवल-भौद्गल्य-तृणयज्ञ-पिप्पलाद-अकृतव्रण-सम्बर्तक-कौशिक-रैम्य-मैत्रेय-हरित-क्षाण्डिल्य-विभाण्ड-दुर्वासा-लोमश थे ॥११-१२॥ नारद-पर्वत-वैशम्पायन-गालव-भास्करि-पूरण-सूत-पुलस्त्य-कपिल-उलूक-पुलह-वायु-देवस्थान-चतुर्भुज-सनत्कुमार-पल-कृष्णानुभोतिक थे ॥१३-१४॥

एतैर्मुनिवरैश्चान्त्रैर्वृतः सत्यवतीसुतः ।  
 रराज स मुनिः श्रीमान् नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥१५  
 तातागतान्मुनीन् सर्वान् पूजयामास वेदवित् ।  
 तेऽपि तं प्रतिपूज्येव कथा चक्रुः परस्परम् ॥१६  
 कथान्ते ते मुनिश्चेष्टाः कृष्णं सत्यवतीसुतम् ।  
 पप्रच्छुः सशय सर्वे तपोवननिवासिनः ॥१७  
 मुने वेदांश्च शास्त्राणि पुराणागमभारतम् ।  
 भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वं जानासि बाह्मयम् ॥१८

कष्टेऽस्मिन् दुःखबहुले निःकारे भवनागरे ।

रागग्राहाकुले रोद्रे विषयोदकनप्तवे ॥१६

इन्द्रियावर्त्तकलिले दृष्टो मिथतसङ्कुले ।

मोहपद्माविले दुर्गे लोभगम्भीरदुस्तरे ॥२०

निमज्जज्जगदालोक्य निरालम्बमचेतनम् ।

पृच्छामस्त्वां महाभागं ब्रूहि नो मुनिसत्तम ? ॥२१

इन उपर्युक्त सब मुनिगण और इनके अतिरिक्त अन्य भी मुनिवरों से सत्यवती के पुत्र व्यासजी समावृत्त थे । और वे श्रीमान् मुनीन्द्र श्री-व्यासजी उन समस्त मुनिगणों के मध्य में नक्षत्रों से समावृत्त चन्द्र की समान मुशोभित हो रहे थे ॥१५॥ उन वेदों के विद्वान् व्यासदेवजी ने उन समस्त समागत हुए मुनिगणों की पूजा की थी और उन सबने भी व्यासजी की प्रति पूजा करके वे सब परस्पर में कथा-वार्त्ता कर रहे थे ॥१६॥ कथा के समाप्त हो जाने पर उन सबने जो मृनिषो में परम धेष्ठ थे सत्यवती के पुत्र श्री कृष्ण द्वैपायनजी से तयोवन में निवास करने आलो ने अपने मन के सत्य के विषय में पूछा था—मुनिगण ने कहा— हे मुनिवर ! आप तो सब वेदों को, शास्त्रों को, पुराणों को, आगमन को, भारत को तथा भूत-भव्य और भविष्य सम्पूर्ण वाङ्मय को भली-भाँति जानते हैं ॥१७—१८॥ यह भवसागर अर्थात् ससार रूपी समुद्र निःकार है और इसमें बहुत से दुःख भरे हुए हैं । यह राग रूपी ग्राही से ममाकुल है तथा परम भयानक एवं विषय रूपी जल से सप्रव वासा है ॥ १९॥ इन्द्रियाँ ही इस ससार सागर में महान् आवर्त्त हैं उन भँवरों से यह बलित है और संकटों ही भाँति की लहरें इसमें दिखाई दे रही हैं जिनसे यह घिरा हुआ है—इसमें मोह रूपी नीच गरा हुआ और सोम की गम्भीरता से महान् दुस्तर है ऐसे इस दुर्ग में निमग्न हुए बिना किसी सहारे के अचेतन यह जगत् हो रहा है । हे मुनि श्रेष्ठ ! हम आपसे पूछना चाहते हैं । आप कृपा कर हमको बतलाइये ॥२०—२१॥

श्रेयः किमत्र ससारे भैरवे लोभहर्षणो ।

उपदेशप्रदानेन लोकानुद्धर्तुमर्हसि ॥२२

दुर्लभं परम क्षेत्रं कर्तुं महसि मोक्षदम् ।  
 पृथिव्यां कर्मभूमिञ्च श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥२३॥  
 कृत्वा किल नरः सम्यक् कर्म भूमौ यथोदितम् ।  
 प्राप्नोति परमां सिद्धिं नरकञ्च विकर्मतः ॥२४॥  
 मोक्षक्षेत्रे तथा मोक्षं प्राप्नोति पुरुषः सुधीः ।  
 तस्माद् ब्रूहि महाप्राज्ञं यत्पृष्टोऽसि द्विजोत्तम ? ॥२५॥  
 श्रुत्वा तु वचनं तेषां मुनीना भावितात्मनाम् ।  
 व्यासः प्रोवाच भगवान्भूतभव्यभविष्यवित् ॥२६॥

इस महान् भैरव एव लोम हर्षण सत्तार मे क्या कल्याण का मार्ग  
 हो सकता है ? आप अपने उपदेश को देकर उसके द्वारा सब लोकों का  
 उद्धार करने के योग्य होते हैं ॥२३॥ आप परम दुर्लभ मोक्ष प्रदान  
 करने वाले क्षेत्र को बताने के योग्य हैं । हम सब लोग इस पृथिवी में  
 कर्मभूमि का श्रवण करना चाहते हैं ॥२३॥ इस भूमि में मनुष्य  
 यथोदित कर्म को करके भली-भाँति परम सिद्धि को प्राप्त कर लिया  
 करता है तथा विकर्म करके नरको को प्राप्त करता है ॥२४॥ सुधी  
 पुरुष मोक्ष के क्षेत्र में मोक्ष को प्राप्त कर लिया करता है । इस कारण  
 से हे महाप्राज्ञ द्विजोत्तम ! आपसे जो पूछा गया है वही बताने की कृपा  
 करिए ॥२५॥ उन भावित आत्मा वाले मुनिगणों के इस वचन का  
 श्रवण करके भूत-भव्य और भविष्य के पूर्ण ज्ञाता श्री व्यासदेवजी  
 भगवान् ने कहा था ॥२६॥

शृणुध्व मुनयः सर्व्वे वक्ष्यामि यदि पृच्छथ ।  
 यः सवादोऽभवत् पूर्व्वमृषीणां ब्रह्मणा सह ॥२७॥  
 मेरुपृष्ठे तु विस्तीर्णे नानारत्नविभूषिते ।  
 नानाद्रुमलताकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते ॥२८॥  
 नानापक्षिरुते रम्ये नानाप्रसवनाकुले ।  
 नानासत्त्वसमाकीर्णे नानाश्चर्य्यसमन्विते ॥२९॥  
 नानावर्णशिलाकीर्णे नानाधातुविभूषिते ।  
 नानामुनिजनाकीर्णे नानाश्रमसमन्विते ॥३०॥

तत्रासीनं जगन्नाथं जगद्योनिं चतुर्मुखम् ।

जगत्पतिं जगद्वन्द्यं जगदाधारमीश्वरम् ॥३१॥

देवदानवगन्धर्वैर्यक्षविद्याधरोरगैः ।

मुनिसिद्धाप्सरोभिश्च वृत्तमन्यैर्दिवालयैः ॥३२॥

श्री व्यासदेवजी ने कहा—हे मुनिगणो ! यदि आप सब लोग मुझसे ऐसा पूछ रहे हैं तो अब आप सब सुनिए—मैं आप लोगों को बतलाता हूँ । पुरातन समय में पहिले श्री ब्रह्मा के साथ ऋषियों का जो सम्वाद हुआ था ॥२७॥ नाना भाँति के रत्नों से भूषित परम विस्तीर्ण-अनेक द्रुमो-लताओ से सज्जीर्ण और नाना भाँति के पुष्पों से युक्त मेरु पर्वत के ऊपर ही यह सम्वाद हुआ था ॥२८॥ इस मेरुगिर का पृष्ठ भाग ऐसा था जहाँ पर बहुत प्रकार के पक्षियों की ध्वनि हो रही थी और यह अनेक वस्तुओं के समुत्पन्न होने से पूर्णतया घिरा हुआ परम सुन्दर था । बहुत से जीव इसमें निवास किया करते थे तथा अनेक अद्भुत आश्चर्यजनक पदार्थों से यह युक्त था ॥२९॥ इस मेरु पर्वत पर अनेक वनों वाली शिलाएँ थी और बहुत सी धातुओं से यह परिपूर्ण था । वहाँ पर अनेक मुनिगण रहा करते थे और बहुत से आश्रम बने हुए थे ॥३०॥ उस पर्वत पर इस सम्पूर्ण जगत् के स्वामी, जगत् के निर्माता, जगत् के पति, जगत् के वन्दनीय, जगत् के आधार और ईश्वर, चतुर्मुख ब्रह्माजी विराजमान थे ॥३१॥ उन ब्रह्माजी के चारों ओर देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर, उरग बैठे हुए थे । उस समय में मुनि, सिद्ध, अप्सराएँ और दिवलोक वासी अन्य लोगो से वे घिरे हुए थे ॥३२॥

केचित् स्तुवन्ति तं देव केचिद्गायन्ति चाग्रतः ।

केचिद्वाद्यानि वाद्यन्ते केचिन्नृत्यन्ति चापरे ॥३३॥

एव प्रमुदिते काले सर्वभूतसमागमे ।

नानाकुसुमगन्धाद्यैर्दक्षिणानिलसेविते ॥३४॥

भृग्व्याद्यास्त तदा देवं प्रणिपत्य पितामहम् ।

इममर्थं मृषिवराः पप्रच्छुः पितरं द्विजाः ॥३५॥

भगवन्श्रोतुमिच्छामः कर्मभूमिं महीतले ।  
वक्तुमर्हसि देवेश मोक्षक्षेत्रञ्च दुर्लभम् ॥ ६  
तेषां वचनमाकर्ण्य प्राह ब्रह्मा सुरेश्वरः ।  
पप्रच्छुस्ते यथा प्रश्नं तत्सर्व्वं मुनिसत्तमाः ॥३७

कुछ लोग तो उनकी स्तुति कर रहे थे और उनमें से कुछ लोग उन देव के आगे गान कर रहे थे । कुछ विदिष बाघों का वादन कर रहे थे तथा दूसरे कुछ लोग नृत्य कर रहे थे ॥३३॥ वह समय इस प्रकार से बहुत ही प्रमोद से युक्त था और सभी प्राणियों का वहाँ पर समागम हो गया था । बहुत तरह के पुष्पो की गन्ध वहाँ पर भरी हुई थी तथा दक्षिण की वायु चल रही थी ॥३४॥ भृगु आदि ऋषि प्रवरों ने हे द्विजगणो ! उस समय में उन देव पितामह को प्रणाम करके पितृ देव से इस अर्थ के विषय में पूछा था ॥३५॥ ऋषिगण ने कहा था—हे भगवन् ! इस महीतल में हम लोग कर्मभूमि का व्यवस्थापन करना चाहते हैं । हे देवेश्वर ! आप परम दुर्लभ जो मोक्ष का क्षेत्र हो उसे भी बतलाने के योग्य हैं ॥३६॥ श्री व्यासजी ने कहा—उन सब मुनियों के वचन को सुन कर सुरेश्वर ब्रह्माजी ने कहा—जैसा कि उन सब मुनिश्रेष्ठों ने उनसे पूछा था उसी के विषय में उन्होंने कहा ॥३७॥

—\*—

१८—भारतवर्षवर्णन ।

शृणुष्वं मुनयः सर्व्वे यद्वो वक्ष्यामि साम्प्रतम् ।  
पुराणं वेदसम्बद्धं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥१  
पृथिव्यां भारतं वर्षं कर्मभूमिरुदाहृता ।  
कर्मणः फलभूमिश्च स्वर्गं च नरकं तथा ॥२॥  
तस्मिन् वर्षे नरः पापं कृत्वा घर्मं च भो द्विजाः ।  
अवश्यं फलमाप्नोति अशुभस्य शुभस्य च ॥३॥

ब्राह्मणाद्याः स्वकं वर्म्म कृत्वा सम्यक्सुसयताः ।

प्राप्नुवन्ति परा सिद्धिं तस्मिन् वर्षे न सशयः ॥४॥

धर्म्मचार्यच कामं च मोक्षश्च द्विजसत्तमाः ।

प्राप्नोति पुरुषः सर्व्वं तस्मिन् वर्षे सुसयतः ॥५॥

इन्द्राद्याश्च सुरा सर्व्वे तस्मिन् वर्षे द्विजोत्तमाः ।

कृत्वा सुशोभन कर्म्मं देवत्व प्रतिपेदिरे ॥६॥

अन्येऽपि लेभिरे मोक्ष पुरुषाः सयतेन्द्रियाः ।

तस्मिन् वर्षे बुधाः शान्ता वीतरागा विमत्सराः ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिगण ! अब आप समाहित मन वाले होकर सुनिए । मैं इस समय मे आप सबको वेदों से सम्बद्ध और भुक्ति तथा मुक्ति दोनों के प्रदान करने वाले परम शुभ पुराण को बतलाता हूँ ॥१॥ इस पृथिवी पर भारत वर्ष को ही कर्म्मों के करने की भूमि बताया गया है । यह कर्म्मों के करने की भूमि है और फल प्राप्त करने की भी भूमि है तथा स्वर्ग एव नरकों के प्राप्त करने की भी यही भूमि है ॥२॥ हे द्विजगणो ! उस भारत वर्ष में मनुष्य पाप कर्म्म करके तथा धर्म वा कर्म्म करके अवश्य ही फल प्राप्त किया करता है चाहे वह कोई शुभ कर्म्म करे तो उसका अच्छा फल उसे अवश्य मिलता है और चाहे वह अधुभ कर्म्म करे तो उसका भी वह फल प्राप्त किया करता है ॥३॥ ब्राह्मण आदि लोग यहाँ पर भली भाँति सुसयत होकर अपना शास्त्र-विहित कर्म्म करके परम सिद्धि को प्राप्त किया करते हैं—इसमें तनिक भी सशय नहीं है ॥४॥ हे द्विजसत्तमो ! उस भारत वर्ष में पुरुष धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी की प्राप्ति सुसयत होकर किया करता है ॥५॥ हे द्विजोत्तमो ! इन्द्र आदि सभी देवगण इस भारत वर्ष में परम शोभन कर्म्म करके ही देवपद का प्राप्त हो गये हैं ॥६॥ सयत इन्द्रिय वाले अन्य पुरुषों ने भी मोक्ष की प्राप्ति की थी । उस भारत वर्ष में जो बुध हैं—शान्त हैं—वीत राग और बिना मात्सर्य वाले हैं वे सब स्वर्गवासी हो गये हैं ॥७॥



ये चापि स्वर्गे तिष्ठन्ति विमानेन गतज्वराः ।  
 तेऽपि कृत्वा शत कर्म तस्मिन् वर्षे दिव गताः ॥८॥  
 निवासं भारते वर्षे आकाङ्क्षन्ति सदा सुराः ।  
 स्वर्गपिवर्गफलदे तत्पश्यामः कदा वयम् ॥९॥  
 यदेतद्भवता प्रोक्तं कर्म नान्यत्र पुण्यदम् ।  
 पापाय वा सुरश्रेष्ठ वज्रंयित्वा च भारतम् ॥१०॥  
 ततः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यमं तच्च गम्यते ।  
 न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमी कर्म विधीयते ॥११॥  
 तस्ताद्विस्तरतो ब्रह्मन्नस्माकं भारतं वद ।  
 यदि तेऽस्ति दयास्मासु यथावस्थिरेव च ॥१२॥  
 तस्माद्वर्षमिदं नाथ ये वास्मिन् वर्षपर्वताः ।  
 भेदाश्च तस्य वर्षस्य ब्रूहि सर्वनिशेषतः ॥१३॥

जो लोग भी इस समय स्वर्ग में स्थित हैं और विमान के द्वारा गतज्वर होकर गमन किया करते हैं वे भी सब उसी भारत वर्ष में सैकड़ों शुभ कर्मों को करके ही दिवलोक में प्राप्त हुए हैं ॥८॥ सदा सुरगण भी इस भारत वर्ष में निवास करने की अभिलाषा किया करते हैं क्योंकि सुरत्व पद भी शुभ कर्मों के फलों के अनुसार अवधि युक्त होता है । पुण्य के क्षीण हो जाने पर अर्थात् उसका फल भोग लेने पर ये सभी पुनः इस कर्म भूमि में जाकर शुभ कर्म करना चाहते हैं । वे यही सोचा करते हैं कि प्वर्ग और अवर्ग के फल प्रदान करने वाले भारत वर्ष में हम कब पहुँच कर शुभ कर्मों के करने का अवसर देखेंगे ॥९॥ मुनियों ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! आपने जो यह बतलाया कि भारत वर्ष के अतिरिक्त अन्यत्र कोई भी पुण्य-फल देने वाला कर्म नहीं हो सकता है अथवा पाप कर्म भी यही पर लोगो से बन पड़ता है जिसका बुरा फल नरनादि का गमन वे प्राप्त करते हैं । शुभाशुभ कर्म की भूमि भारतवर्ष को छोड़कर अन्य नहीं है ॥१०॥ वही से स्वर्ग मोक्ष तथा मध्यम फल प्राप्त किया जाता है । इसके अतिरिक्त मनुष्यों की कर्म करने की भूमि अन्य कोई भी नहीं है ॥११॥ हे ब्रह्मन् ! जब ऐसा ही

अटल नियम है तो आप इस विषय में अवधि भारत वर्ष के सम्बन्ध में हम लोगों को विस्तार पूर्वक बताइये । यदि आपकी हम सब लोगों पर कृपा है तो यथा स्थिति वर्णन कीजिए ॥१२॥ इस कारण से हे नाथ ! इस भारत वर्ष में जो भी वर्ष पर्वत हैं और उस भारत वर्ष के जो भी भेद है उन सबका पूर्ण रूप से आप वर्णन करके बताइये ॥१३॥

शृणुष्व भारत वर्ष नवभेदेन भो द्विजाः ।

समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते समाश्च परस्परम् ॥१४॥

इन्द्रद्वीपः कशेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान् ।

नागद्वीपस्तथा सौम्या गान्धर्वो वारुणस्तथा ॥१५॥

अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।

योजनाना सहस्रं वै द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः ॥१६॥

पूर्वो किराता यस्यासन् पश्चिमे यवनास्तथा ।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्ते स्थिता द्विजाः ॥१७॥

इज्यायुद्धवणिज्याद्यैः कर्मभिः कृतपावजाः ।

तेषां सव्यवहारश्च त्रिभिः कर्मभिरिष्यते ॥१८॥

स्वर्गापवर्गहेतोश्च पुण्य पापश्च वै तथा ।

महेन्द्रो मलयः सह्याः शुक्तिमानृक्षपर्वतः ॥१९॥

विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैवात्र कुलाचलाः ।

तेषां सहस्रशश्चान्ये भूधरा ये समीपगाः ॥२०॥

विस्तारोच्छ्रियिणो रम्या विपुलाश्चित्रसानवः ।

कोलाहलः स वैभ्राजो मन्दरो ददुर्दुराचलः ॥२१॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा था—हे द्विजगणो ! इस भारत वर्ष के विषय में आप श्रवण कीजिए—यह नौ भेदों वाला है । वे नौ भेद रूप हैं तथा समुद्रान्तरित है—ऐसा जान लेना चाहिए ॥१४॥ इन्द्रद्वीप, कशेरु, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व तथा वारुण द्वीप हैं । यह उन नौ में नवमद्वीप है जो सागर से संवृत ( घिरा हुआ ) है । यह द्वीप दक्षिण-उत्तर दिशा में रहने वाला एक सहस्र योजन वाला है ॥१५-१६॥ इसके पूर्व दिग्भाग में किरात लोग निवास किया करते हैं तथा

इसके पश्चिम में यवन लोग रहते हैं । हे द्विजगण ! इसके मध्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र निवास किया करते हैं ॥१५॥ ये चारों वर्णों वाले लोग क्रम से इज्यायुद्ध और वाणिज्य आदि कर्मों से पावन होते हैं और उनका संव्यवहार भी तीनों प्रकार के कर्मों से अभीष्ट हुआ करता है ॥१८॥ यही कर्म स्वर्ग तथा अपवर्ग ( मोक्ष ) का हेतु होता है और कर्मों के द्वारा ही यहाँ पर पुण्य एवं पाप हुआ करता है । महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान्, ऋक्ष पर्वत हैं ॥१९॥ विन्ध्य पारिपात्र—ये सात यहाँ पर कुल पर्वत कहे जाते हैं । इन सात कुल पर्वतों के समीप में ही स्थित अन्य भी हजारों पर्वत हैं ॥२०॥ ये सब विस्तार वाले और ऊँचाई वाले परम रम्य, विपुल तथा विचित्र शिखरों वाले हैं । कोलाहल, वैभ्राज, मन्दर, ददुराचल पर्वत हैं ॥२१॥

वातन्वयो वैद्युतश्च मैनाकः सुरसस्तथा ।

तुङ्गप्रस्थो नागगिरिर्गोधनः पाण्डराचलः ॥२२॥

पुष्पगिरिर्वैजयन्ती रंवतोऽवर्तुद एव च ।

ऋष्यमूकः स गौमन्थः कृतशैलः कृताचलः ॥२३॥

श्रीपार्वतश्चकोरश्च शतशोऽन्ये च पर्वताः ।

तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाद्याश्चैत्र भागशः ॥२४॥

तैः पीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठास्ता बुध्यध्वं, द्विजोत्तमाः ।

गङ्गा सरस्वती सिन्धुश्चन्द्रभागा तथापरा ॥२५॥

यमुना शतद्रुविपाशा वितस्तीरावती कूटुः ।

गोमती घृतपापा च बाहुदा च दृपद्वती ॥२६॥

विपाशा दैविका चञ्जुनिष्ठीवा गण्डकी तथा ।

कौशिकी घापगा चैव हिमवत्पादनिःसृताः ॥२७॥

देवस्मृतिर्देववती वातघ्नी सिन्धुरेव च ।

वेण्या तु चन्दना चैव सदानीरा मही तथा ॥२८॥

वातन्धय, वैद्युत, मैनाक, सुरस, तुङ्ग प्रस्थ, नाग गिरि, गोवर्धन, पाण्डराचल, पुष्पगिरि, वैजयन्ती, रंवत, अवर्तुद, ( आवू ) ऋष्यमूक, गोमन्थ, कृतशैल, कृताचल, श्री पार्वत, चकोर ये तथा अन्य भी संकड़ों

पर्वत भारत वर्ष में विद्यमान हैं । उन सबसे मिले हुए जनपद भी है जहाँ भागो में स्नेच्छ आदि लोग निवास किया करते हैं ॥२२-२४॥ उन के द्वारा बहुत सी श्रेष्ठ नदियों का पान किया जाता है । हे द्विजोत्तमो ! उनका भी ज्ञान आप लोग प्राप्त कर लें । वे सरिताएँ—गङ्गा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा, हैं ॥२५॥ यमुना, शतद्र, विपाशा, वितस्ति, इगवती, कुहू, गोमती, घृतमाया, बहुदा, इषद्वती, विपाशा, देविका, घग्नु, निष्ठीवा, गण्डकी, कौशिकी—ये सभी सरिताएँ हिमालय के पार्श्व से निकली हुई हैं ॥२६-२७॥ देव स्मृति, देववती, चातपनी, सिन्धु, वेण्या चन्दना सदा-नीरा तथा मही नदियाँ हैं ॥२८॥

चर्मण्वती वृषी वैव विदिशा वेदवत्यपि ।

सिप्रा ह्यवन्ती च तथा पारियात्रानुगाः स्मृताः ॥२९॥

शोणा महानदी चैव नर्मदा सुरसा क्रिया ।

मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथापरा ॥३०॥

चित्रोत्पला वेप्रवपी करमोदा पिशाचिका ।

तथान्यातिलवुश्रोणी विपासा शैवला नदी ॥३१॥

सधेरुजा शुक्तिमती शकुनी त्रिदिवा क्रमुः ।

ऋक्षपादप्रसूता च तथान्या वेगवाहिनी ॥३२॥

सिप्रा पयोष्णी निर्विन्ध्या तापी चैव सरिद्वरा ।

वेणा वंतरणी चैव सिनीवाली कुमुद्वती ॥३३॥

तोया चैव महागौरी दुर्गा चान्तःशिला तथा ।

विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ॥३४॥

गोदावरी भीमरथी कृष्णावेणा तथापरा ।

तुङ्गमद्रा सुप्रयोगा तथान्या पापनाशिनी ॥३५॥

चर्मण्वती, वृषी, विदिशा, वेदवती, सिप्रा, अवन्ती, पारियात्रानुगा, शोणा, महानदी, नर्मदा, सुरसा, क्रिया, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा नदियाँ हैं ॥२९-३॥ चित्रोत्पला, वेप्रवपी, करमोदा, पिशाचिका, अति-सधु श्रोणी, विपासा, शैवला नदी, सधेरुजा, शुक्तिमती, शकुनी, त्रिदिवा, क्रमु, ऋक्षपाद, प्रसूता और वेगवाहिनी नदी हैं ॥ १-३२॥ सिप्रा,

पयोष्णी, निर्विन्ध्या, सरिद्वारा तापी, वेप्य, वैतरणी, सिनी वाली, कुमुदजी, जोया, महागोरी, दुर्गा, अन्तःशिला, विन्ध्यपाद प्रसूता ने नदियाँ हैं जो परम शुभ और पुण्य जल वाली हैं ॥३३-३४॥ गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा वेणा, आपगा हैं, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा तथा अम्बापाप नाशिनी नदी हैं ॥३५॥

सह्यपादविनिष्क्रान्ता इत्येताः सरितां वराः ।  
 कृतमाला ताम्रपर्णी पुण्यजा प्रत्यलावती ॥३६  
 मलयाद्रिसमुद्भूताः पुण्याः शीतजलास्त्वमाः ।  
 पितृसोमपिकुल्या च वञ्जुला त्रिदिवा च या ॥३७  
 लाङ्गुलिनी वंशकरा महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः ।  
 सुविकाला कुमारी च मनुगा मन्दगामिनी ॥३८  
 क्षयापलासिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः ।  
 सर्वाः पुण्याः सरस्वत्यः सर्वा गङ्गाः समुद्रगाः ॥३९  
 विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वाः पापहराः स्मृताः ।  
 अन्याः सहस्रशः प्रोक्ताः क्षुद्रनद्यो द्विजोत्तमाः ॥४०  
 प्रावृट्कालवहाः सन्ति सदाकालवहाश्च याः ।  
 मत्स्या मुकुटकुल्याश्च कुन्तला काशिकोशलाः ॥४१  
 अन्धकाश्च कलिङ्गाश्च शमकाश्च वृकैः सह ।  
 मध्यदेशा जनपदाः प्रायशोऽमी प्रकीर्तिताः ॥४२

ये सब सरिताएँ सहायक के पादों से निकलने वाली तथा परम श्रेष्ठ हैं । कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुण्यजा, प्रत्यलावती ये सब नदियाँ शीतल जल वाली-पुण्यमयी और मलयामगिरि से समुत्पन्न होने वाली हैं । पितृसोमपिकुल्या, वञ्जुला, त्रिदिवा, लाङ्गुलिनी, वंशकरा ये सब सरिताएँ महेन्द्र उर्वत से उद्भव प्राप्त करने वाली हैं । सुविकाला, कुमारी, मनुगा और मन्दगामिनी नहीं हैं ॥३६-३८॥ क्षयापलासिनी ये सब नदियाँ शुक्तिम पर्वत से उद्भूत होने वाली हैं । सभी सरस्वती नदियाँ पुण्यमयी हैं और सब गङ्गाएँ समुद्र गामिनी हैं ॥३९॥ ये सभी विश्व की माताएँ हैं तथा सब पापों के हरण करने वाली हैं ऐसा कह

गया है । हे द्विजोत्तमो ! उन उपर्युक्त नदियों के अतिरिक्त सहस्रो शुद्र नदियाँ बनाई गयी हैं ॥४०॥ कुछ सरिताएँ तो ऐसी हैं जो वर्षा के समय में ही बहने करने वाली होती हैं और कुछ सदा काल में बहने वाली हैं । मत्स्या, मुपुटकुल्या, कुन्तला, भाशिकोशला, अन्धुका, कलिङ्गा और शमशानुको के साथ मध्यदेश के जो जनपद हैं प्रायः ये वहाँ पर कही गयी हैं ॥४१-४२॥

सह्यस्य चोत्तरे यस्तु यत्र गोदावरी नदी ।

पृथिव्यामपि कृत्स्नाया स प्रदेशो मनोरमः ॥४३॥

गोवर्द्धनपुरं रम्य भागवस्य महात्मनः ।

वाहीका वाटधानाश्च सुतीराः कालतोयदाः ॥ ४॥

अपरास्ताश्च शूद्राश्च ब्राह्मिकाश्च सकेरलाः ।

गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः ॥४५॥

शतद्रुहाः कलिङ्गाश्च पारदा हारमूपिकाः ।

माठराश्चैव कनकाः कैकेया दम्भमालिकाः ॥४६॥

क्षत्रियोपमदेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ।

काम्बोजाश्चैव विप्रेन्द्रा यव्वराश्च सलीकिकाः ॥४७॥

वीराश्चैव तुषाराश्च पट्टलवाधायता नराः ।

आत्रेयाश्च भरद्वाजाः पुष्कलाश्च दशेरकाः ॥४८॥

लम्पकाः शुनः शोकाश्च कुलिका जाङ्गलं सह ।

औषध्यश्चलचन्द्रा च किरातानाञ्च जातयः ॥४९॥

सह्य आदि के उत्तर भाग में जहाँ पर गोदावरी नदी है वह प्रदेश इस सम्पूर्ण पृथ्वी में परम मनोरम है ॥४३॥ महारमा भागव का गोवर्द्धनपुर बहुत ही रम्य है । वाही का, वाटघामा, सुतीरा, कालतोयदा और ऊपरवे शूद्र हैं । और सकेरल, ब्राह्मिका, गान्धारा, यवना, सिन्धु, सौवीर, मद्रक, शतद्रुहा, कलिङ्गा, पारदा, हारभूपिक, माठार, कैकेय, कनक, दम्भमालिक ये क्षत्रियोपम देश हैं । तथा वैश्य एव शूद्रकुल हैं । हे विप्रेन्द्रो ! काम्बोज, यव्वर, सलीकिक, वीर, तुषार और नर पट्टलवाधायन हैं । आत्रेय, भरद्वाज, पुष्कल, दशेरक, लम्पक, शुन शोक,

कुलिक जाङ्गलों के सहित, औपध्य, धलचन्द्र ये किरातो की जातिर्मा हैं ॥४४-४६॥

तोमरा हंसमार्गश्च काश्मीराः करुणास्तथा ।  
 शूलिकाः कुहकाश्चैव मागधाश्च तथैव च ॥५०॥  
 एते देशा उदीच्यास्तु प्राच्यान् देशान्निबोधत ।  
 अन्धा वामङ्कुरावाश्च बल्लकाश्च मखान्तकाः ॥५१॥  
 तथापरेऽङ्गा वङ्गाश्च मलदा मालवर्तिकाः ।  
 भद्रतुङ्गाः प्रतिजया भाय्याङ्गाश्चापमर्द्काः ॥५२॥  
 प्राग्यज्योतिषाश्च मद्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः ।  
 मल्ला मगधका नन्दाः प्राच्या जनपदास्तथा ॥५३॥  
 तथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः ।  
 पूर्णाश्च केरलाश्चैव गोलाङ्गूलास्तथैव च ॥५४॥  
 ऋषिका मुषिकाश्चैव कुमारा रामठाः शकाः ।  
 महाराष्ट्रा माहिषका कलिङ्गाश्चैव सर्व्वशः ॥५५॥  
 आभीराः सह वैशिक्या अटव्या सरवाश्च ये ।  
 पुलिन्दाश्चैव मौलेया वैदर्भा दन्तकैः सह ॥५६॥

तोमर, हंसमार्ग, काश्मीर, करुण, शूलिक, कुहक, मागध ये सब देश उदीच्य हैं अर्थात् उत्तर दिशा में होने वाले हैं । अब जो देश प्राच्य अर्थात् पूर्व दिशा में हैं उनको भी समझलो—अन्ध, वामङ्कुराक, बल्लक, मखान्तक तथा अङ्ग, वङ्ग, मलद, मालवर्तिक, भद्रतुङ्ग, प्रतिजय, भाय्याङ्ग, अपमर्द्क, प्राग्यज्योतिष, मद्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, मल्ल, मगधक और नन्द ये प्राच्यजन पद हैं ॥५०-५३॥ तथा दूसरे जनपद दक्षिणापथगामी हैं । पूर्ण, केरल, गोलाङ्गूल, ऋषिक, मुषिक, कुमार, रामठ, शक, महाराष्ट्र, माहिषिक, कलिङ्ग, वैशिकी के सहित आभीर, अटव्य, सरव, पुलिन्द, मौलेय और दन्तको के सहित वैदर्भ ये सब दक्षिण दिशा के भाग में जनपद हैं ॥५४-५६॥

पौलिका मौलिकाश्चैव अश्मका भोजवद्धन्ताः ।

कौलिकाः कुन्तलाश्चैव दम्भका नीलकालकाः ॥५७

दक्षिणात्यास्त्वमी देशा अपरान्तान्निबोधत ।

धूर्पारकाः कालिघना लोलास्तालकटैः सह ॥५८

इत्येते ह्यपरान्ताश्च शृणुध्व विन्ध्यवासिनः ।

मलजाः कर्कशाश्चैव मेलकाश्चोलकैः सहः ॥५९

उत्तमार्गा दशार्णाश्च भोजाः किष्किन्ध्यकैः सह ।

तोपलाः कोशलाश्चैव त्रैपुरा वैदिशास्तथा ॥६०

तुम्बुरास्तु चराश्चैव यवनाः पवनैः सह ।

अभया रुण्डिकेराश्च चच्चरा होत्रघत्तयः ॥६१

एते जनपदा सर्वे तत्र विन्ध्यनिवासिनः ।

अतो देशान् प्रवक्ष्यामि गङ्ग्वन्ताश्रयिणश्च ये ॥६२

नीहारास्तुपमार्गाश्च कुरवस्तङ्गणाः खसाः ।

कर्णप्रावरणाश्चैव ऊर्णा दर्घाः सकुन्तकाः ॥६३

चित्रमार्गा मालवाश्च किरातास्तोमरैः सह ।

कृतत्रेतादिकश्चात्र चतुर्गुणकृतो विधिः ॥६४

पौलिक, मौलिक, अश्मक, भोजवद्धन्त, कौलिक, कुन्तल, दम्भक, नीलकालक ये सब दक्षिणात्य देश हैं । अब अपरान्तो को समझ लो । धूर्पारक, कालिघन, तालकटो के सहित लोल—ये सब अपरान्त देश हैं । अब विन्ध्य वासियो का श्रवण कीजिए । मलज, कर्कश, मेलक, चोलक, उत्तमार्ग, दशार्ण, भोज, किष्किन्ध्यक, तोपल, कोशल, त्रैपुर, वैदिश, तुम्बुर, चर, यवन, पवन, अभय, रुण्डिकेर, चच्चर, होत्रघत्ति—ये सब जनपद वहाँ पर विन्ध्य के निवास करने वाले हैं । अब यहाँ से आगे जो पर्वतो का आश्रय करने वाले हैं उन देशों को बतलाते हैं ॥५७-६२॥ नीहार, तुपमार्ग, कुरव, तङ्गण, खस, कर्णप्रावरण, ऊर्ण, दर्घ, सकुन्तक, चित्रमार्ग, मालव, किरात, तोमर, महा परकृत त्रेता आदि चतुर्गुण कृत विधि है ॥६३-६४॥



एवं तु भारतं वर्षं नवसंस्थानसंस्थितम् ।  
 दक्षिणे परतो यस्य पूर्वे चैव महोदधिः ॥६५॥  
 हिमवानुत्तरेणास्य कामुकस्य यथा गुणः ।  
 तदेतद्भारतं वर्षं सर्व्वबीजं द्विजोत्तमाः ॥६६॥  
 ब्रह्मत्वममरेशत्वं देवत्वं मरुतां तथा ।  
 मृगयक्षाप्सरयोनिं तद्वत् सर्पसरीसृपाः ॥६७॥  
 स्थावराणाञ्च सर्व्वेषामितो विप्राः शुभाशुभैः ।  
 प्रयान्ति कर्मभूविप्रा नान्या लोकेषु विद्यते ॥६८॥  
 देवानामपि भो विप्राः सदैवैष मनोरथः ।  
 अपि मानुष्यमाप्स्यामो देवत्वात् प्रत्युताः क्षिती ॥६९॥  
 मनुष्यः कुरुते यत्तु तन्न शक्य सुरासुरैः ।  
 तत्कर्मनिगदप्रस्तस्तत्कर्मक्षपणोन्मुखं ॥७०॥

इस प्रकार से यह भारत वर्ष नौ संस्थानों में संस्थित है जिसके परे दक्षिण में और पूर्व में महोदधि है ॥६५॥ इस भारत वर्ष के उत्तर में हिमालय पर्वत है और घनुष के गुण के समान है । हे द्विजोत्तमो ! यह यह भारत वर्ष सर्व्वबीज है ॥६६॥ यहाँ पर ब्रह्मत्व है, अमरेशत्व, देवत्व तथा मरुत हैं । मृगयक्ष और अप्सराओं की योनि है और उसी भाँति सर्प और सृप हैं ॥६७॥ हे विप्रगण ! यहाँ पर सब स्थावरो का शुभाशुभ कर्मों के द्वारा इस कर्मभू को प्रयाण करते हैं । ऐसी कर्म भूमि लोकों में अन्य कोई भी नहीं है ॥६८॥ हे विप्रो ! देवताओं का भी सर्व्वदा यही मनोरथ रहा करता है कि हम लोग भी इस देवत्व से मनुष्यत्व को क्षिति में उलटा प्राप्त करें ॥६९॥ मनुष्य यहाँ कर्म-क्षेत्र में जो कुछ किया करता है उस कर्म को सुर एवं असुर कोई भी नहीं कर सकता है । ये सुरासुर सब अपने कर्मों के निगद (बन्धन) से ग्रस्त हैं और उस कर्म के क्षपण करने के लिये उन्मुख हुआ करते हैं ॥७०॥

न भारतसमं वर्षं पृथिव्यामस्ति भो द्विजाः ।  
 यत्र विप्रादयो वर्णाः प्राप्नुवन्त्यभिवाञ्छितम् ॥७१॥

धन्यास्ते भारते वर्षे जायन्ते ये नरोत्तमाः ।  
 धर्मार्थिकाममोक्षाणा प्राप्नुवन्ति महाफलम् ॥७२॥  
 प्राप्यते यत्र तपसः फल परमदुर्लभम् ।  
 सर्व्वदानफलश्चैव सर्व्वयज्ञफल तथा ॥७३॥  
 तीर्थयात्राफलश्चैव गुरुसेवाफल तथा ।  
 देवताराधनफल स्वाध्यायस्य फलं द्विजाः ॥७४॥  
 यत्र देवाः सदा हृष्टा जन्म वाञ्छन्ति शोभनम् ।  
 नानाव्रतफलश्चैव नानाशास्त्रफलं तथा ॥७५॥  
 अहिंसादिफल सम्यक्फलं सर्व्वार्तिवाञ्छितम् ।  
 ब्रह्मचर्य्यफलश्चैव गार्हस्थ्येन च यत्फलम् ॥७६॥  
 यत् फल वनवासेन सन्यासेन च यत्फलम् ।  
 इष्टापूर्त्तफलश्चैव तथान्यच्छुभकर्मणाम् ॥७७॥

हे द्विजगणो ! इस भारत वर्ष के समान इस पृथिवी में कोई भी  
 वर्ष नहीं है जहाँ पर विप्र आदि सब वर्णों वाले मनुष्य अपने अभिवाञ्छित  
 मनोरथों की प्राप्ति किया करते हैं ॥७१॥ जो श्रेष्ठ मनुष्य इस भारत  
 वर्ष में समुत्पन्न होते हैं वे परम धन्य अर्थात् महान् भाग्यशाली हैं । ये  
 लोग यहाँ पर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन पुरुषार्थों का महान् फल  
 प्राप्त किया करते हैं ॥७२॥ जहाँ पर तपश्चर्या का परम दुर्लभ फल प्राप्त  
 किया करते हैं । सब प्रकार के दानों का फल और सभी तरह के यज्ञों  
 के फल प्राप्त करते हैं ॥७३॥ तीर्थों की यात्रा का फल गुरुदेव के चरणों  
 की सेवा का फल—देवों के समाराधना करने का फल तथा स्वाध्याय का  
 फल प्राप्त किया करते हैं ॥७४॥ जहाँ पर देवगण सदा प्रसन्न रहा करते  
 हैं और वे परम शोभन जन्म प्राप्त करने की इच्छा किया करते हैं ।  
 यहाँ भारत वर्ष में अनेक व्रतों के पुण्य का फल और नाना प्रकार के  
 शास्त्रों का फल प्राप्त करते हैं ॥७५॥ अहिंसा आदि का पुण्य फल और  
 सर्व्वार्तिवाञ्छित सम्यक् फल ब्रह्मचर्य के व्रत का फल तथा गार्हस्थ्य  
 आश्रम का जो पुण्य फल होता है वह सभी यहाँ पर प्राप्त हो जाता है ।  
 जो पुण्य फल वन में निवास करने से होता है तथा संन्यास करने से जो

भी फल प्राप्त होता है तथा इष्टापूर्त फल होता है और अन्य शुभ कर्मों का जो फल होता है वह सभी यहाँ पर प्राप्त हो जाया करता है ॥७६-७७॥

प्राप्यते भारते वर्षे न चान्यत्र द्विजोत्तमाः ।

कः शक्नोति गुणान् वक्तुं भारतस्याखिलान्द्विजाः ॥७८॥

एव सम्यङ्गया प्रोक्तं भारतं वर्षमुत्तमम् ।

सर्वपापहरं पुण्य घन्यं बुद्धिविवर्द्धनम् ॥७९॥

य इदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वा नियतेन्द्रियः ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥८०॥

हे द्विजोत्तमो ! 'यह भारत वर्ष ही एक स्थल है जिसमें सभी पुण्य फल प्राप्त किये जाया करते हैं और वे अन्य कहीं पर भी नहीं प्राप्त होते हैं । हे द्विजो ! इस भारत के समस्त गुणों को कहने में कौन समर्थ हो सकता है अर्थात् किसी में भी ऐसी शक्ति नहीं है जो भारत वर्ष के सब गुणों का वर्णन कर सके ॥७८॥ इस प्रकार से मैंने यह बतला दिया है यह भारत वर्ष बहुत ही उत्तम है । यह समस्त पापों के हरण करने वाला पुण्य, घन्य और बुद्धि का विशेष वर्धन करने वाला है ॥७९॥ इस भारत वर्ष की महिमा का जो कोई थवण करता है या इसका पाठ करता है और नियत इन्द्रियो वाला रहता है वह सब पापों से विमुक्त होकर सीधा विष्णुलोक को चला जाया करता है ॥८०॥

—:❀:—

२० — कोणादित्यमाहात्म्यवर्णन ।

तत्रास्ते भारते वर्षे दक्षिणोदधिसस्थितः ।

ओण्ड्रदेश इति ख्यातः स्वर्गमोक्षप्रदायकः ॥१॥

समुद्रादुत्तरं तावद्यावद्विरजमण्डलम् ।

देशोऽसौ पुण्यशीलानां गुणैः सर्व्वगलङ्कृतः ॥२॥

तत्र देशे प्रसूता ये ब्राह्मणाः सयतेन्द्रियाः ।  
 तपःस्वाध्यायनिरता वन्द्याः पूज्याश्च ते सदा ॥३॥  
 श्राद्धे दाने विवाहे च यज्ञे वाचाय्यकर्मणि ।  
 प्रशस्ताः सर्वकार्येषु तत्र देशोद्भवा द्विजाः ॥४॥  
 पट्कर्मनिरतास्तत्र ब्राह्मणा वेदपारगाः ।  
 इतिहासविदश्चैव पुराणार्थविशारदाः ॥५॥  
 सर्वशास्त्रार्थकुशला यज्वानो वीतमत्सराः ।  
 अग्निहोत्ररताः केचित् केचित् स्मार्त्ताग्निमतपराः ॥६॥  
 पुत्रदारधनैर्युक्ता दातारः सत्यवादिनः ।  
 निवसन्नुत्कले पुण्ये यज्ञोत्सवविभूषिते ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—वहाँ पर भारत वर्ष में दक्षिण सागर में स्थित “ओण्ड्र देश”—इस नाम से विख्यात है जो कि स्वर्ग और मोक्ष दोनों के प्रदान करने वाला है ॥१॥ समुद्र से उत्तर में उतना भाग जितना कि विरजमङ्गल है वह सब गुणों से अलङ्कृत पुण्य शीखों का देश है ॥२॥ उस देश में जो सयतेन्द्रियो वाले ब्राह्मण समुत्पन्न हुए हैं वे तपस्या और स्वाध्याय में निरत रहने वाले हैं और वे सदा ही वन्दना करने के योग्य तथा सदा पूज्य हैं । उस देश में समुत्पन्न होने वाले विप्र श्राद्ध-दान विवाह-यज्ञ तथा आचार्य के कर्म में और सब ही कार्यों में प्रशस्त होते हैं ॥३-४॥ वहाँ पर वेदों के पारगामी विद्वान् ब्राह्मण पट्कर्मों में निरत रहने वाले हैं तथा वे इतिहास के ज्ञाता और पुराणों के अर्थ के जानने वाले हैं ॥५॥ ये ब्राह्मण सभी शास्त्रों के अर्थों में कुशल हैं—यजन करने वाले हैं तथा मात्सर्य दोष से रहित होते हैं । इनमें कुछ तो अग्निहोत्र करने में रति रखते हैं और कुछ स्मार्त्त ( स्मृतियों द्वारा उपदिष्ट ) अग्नि में तत्पर रहा करते हैं ॥६॥ वहाँ पर निवास करने वाले ब्राह्मण पुत्र-धन और दारा से युक्त होते हैं—दान देने वाले और सत्यवादी होते हैं जो लोग इस पुण्यमय और यज्ञोत्सवों से भूषित इस उत्कल देश में निवास किया करते हैं ॥७॥

इतरेऽपि त्रयो वर्णाः क्षत्रियाद्याः सुसंयताः ।  
 स्वधर्मनिरताः शान्तास्तत्र तिष्ठन्ति धार्मिकाः ॥८॥  
 कोणादित्य इति ख्यातस्तस्मिन् देशे व्यवस्थितः ।  
 य दृष्ट्वा भास्करं मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९॥  
 श्रोतुमिच्छाम तद्ब्रूहि क्षेत्रं सूर्यस्य साम्प्रतम् ।  
 तस्मिन् देशे सुरश्रेष्ठ यज्ञास्ते स दिवाकरः ॥१०॥  
 लवणस्योदधेस्तीरे पवित्रे सुमनोहरे ।  
 सर्वत्र चालुकाकीर्णं देशे सर्वगुणान्विते ॥११॥  
 चम्पकाशोकवकुलैः करवीरैः सपाटलैः ।  
 पुष्पागैः कर्णिकारैश्च वकुलैर्नागकेसरैः ॥१२॥  
 तगरैर्धववाणैश्च अतिमुक्तैः सकुब्जकैः ।  
 मालतीकुन्दपुष्पैश्च तथान्यैर्मल्लिकादिभिः ॥१३॥  
 केतकीवनखण्डैश्च सर्वैस्तूकुसुमोज्ज्वलैः ।  
 कदम्बैर्लंकुचैः शालैः पनमदैर्वदारुभिः ॥१४॥

विप्रो से अतिरिक्त अन्य भी तीनों वर्ण क्षत्रिय आदि सुसंयत होते हैं और ये सभी अपने २ धर्मों में निरत रहने वाले शान्त और धार्मिक वहाँ पर रहा करते हैं ॥८॥ उस देश में व्यवस्थित "कोणादित्य"—इस नाम से विख्यात भगवान् सूर्यदेव हैं जिन भुवनभास्कर का दर्शन करके मनुष्य सभी प्रकार के पापों से विमुक्त हो जाया करता है ॥९॥ मुनिगण ने कहा—हे सूरों में परम श्रेष्ठ ! जिस भाग में यह दिवाकर भगवान् विराजमान हैं और इस समय में जो सूर्य का क्षेत्र उस देश में विद्यमान है उसके विषय में हम लोग श्रवण करने की अभिलाषा रखते हैं । कृपा करके हे भगवन् ! अब आप उसका वर्णन कीजिए ॥१०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस देश में जो धारी समुद्र है, उसके उत्तर दिशा के भाग में परम पवित्र सुमनोहर और सभी गुणों से समुत एक भाग है जो सर्वत्र चालुका से घिरा हुआ है तथा चम्पक, अशोक, वकुल, करवीर, पाटल, पुष्पाग, कर्णिकार, नागकेसर, नगर, धववाण, अतिमुक्त, कुब्जक, मालती, कुन्द तथा अन्य मल्लिका आदि से और केतकी के वनखंडों से एवं सभी

श्रुतुओं के पुष्पो से युक्त उज्ज्वल, बदम्ब, लकुच, शाल, पवस और देवदारु के वृक्षों से घिरा हुआ है ॥११-१४॥

सरलं मुचुकुन्दैश्च चन्दनैश्च सितेतरैः ।

अश्वत्थैः सप्तपर्णैश्च आम्रैः राज्ञातकैस्तथा ॥१५॥

तालैः पूगफलैश्चैव नारिकेलैः कपित्थकैः ।

अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः सर्व्वतः समनङ्कृतम् ॥१६॥

क्षेत्रं तत्र रवेः पुण्यमास्ते जगति विश्रुतम् ।

समस्ताद्योजनं साग्रा भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१७॥

आस्ते तत्र स्वयं देवः सहस्राशु दिवाकरः ।

कोणादित्य इति ख्यातो भूक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥१८॥

माघे मासि सिते पक्षे सप्तम्या संयतेन्द्रियः ।

कृतोपवासो यत्रैतत् स्नात्वा तु मकरालये ॥१९॥

कृतशौचो विशुद्धात्मा स्मरन् देवं दिवाकरम् ।

सागरे विधिवत् स्नात्वा शब्दं व्यन्ते समाहितः ॥२०॥

देवानृषीन्मनुष्याश्च पितॄन् सन्तर्प्य च द्विजाः ।

उत्तोष्य वाससी घौते परिधाय सुनिर्मले ॥२१॥

वहाँ पर साल मुचुकुन्द के वृक्ष हैं तथा वह स्थल चन्दन, सितेतर चन्दन, अश्वत्थ एवं अनेक प्रकार के वृक्ष—सप्तपर्ण, आम्र, आम्रातक, ताल, पूगफल, नारियल, कपित्थक आदि नाना प्रकार के द्रुमों से समलङ्कृत है ॥१५-१६॥ वहाँ पर ही जगत् में प्रख्यात रविदेव का परम पुण्यभय क्षेत्र विद्यमान है । वह चारों ओर डेढ़ योजन विस्तार वाला क्षेत्र है जो भोग और मोक्ष दोनों के प्रदान करने वाला है ॥१७॥ वहाँ पर स्वयं देव सहस्रांशु दिवाकर साक्षात् विराजमान रहते हैं । जिनका शुभ नाम “कोणादित्य” यह प्रसिद्ध है और जो भुक्ति-भुक्ति के प्रदाता हैं ॥१८॥ माघ मास के शुक्ल पक्ष में सप्तमी तिथि के दिन में मनुष्य सप्त इन्द्रिय वाला होकर उपवास करके वहाँ आवे और मकरानय में स्नान करे ॥ १९॥ शौच करके विशुद्ध आत्मा वाला होकर दिवाकर देव का स्मरण करे और रात्रि के अन्त में समाहित होकर सागर में विधि

के साथ स्नान करे ॥२०॥ हे द्विजगणो ! फिर उस मनुष्य को वहाँ पर देव श्रृषि तथा मनुष्यों का भली भाँति तर्पण करना चाहिए । फिर पहिले पहिने हुए वस्त्रो को उतार कर निर्मल धुले हुए दूसरे शुद्ध वस्त्र धारण कर लेने चाहिए ॥२१॥

आचम्य प्रयतो भूत्वा तीरे तस्य महोदधे ।

उपविश्योदये काले प्राङ्मुखः सवितुस्तदा ॥२२

विलिख्य पद्म मेघावी रक्तचन्दनवारिणा ।

अष्टपत्रं केसराढ्यं वत्तुलं चोद्धर्कणिकम् ॥२३

तिलतण्डुलतोयञ्च रक्तचन्दनसयुतम् ।

रक्तपुष्पं सदर्मञ्च प्रक्षिपेत्ताम्रभाजने ॥२४

ताम्राभावेऽकंपत्रस्य पुटं कृत्वा तिलादिकम् ।

पिषाय तन्मुनिश्रेष्ठाः पात्र पात्रेण विन्यसेत् ॥२५

करन्यासाङ्गं वन्यास कृत्वाङ्गं हृदयादिभिः ।

आत्मानं भास्कर धात्वा सम्यक् श्रद्धासमन्वितः ॥२६

मध्ये चाग्निदले धीमान्न श्रुते श्वासने दले ।

कामारिगोचरे चैव पुनर्मध्ये च पूजयेत् ॥२७

प्रभूत विमल सारमाराध्य परम सुखम् ।

सम्पूज्य पद्ममावाह्य गगनात्तत्र भास्करम् ॥२८

इसके अनन्तर आचमन करे और प्रयत्न होकर उस समुद्र के तट पर उपविष्ट हो जावे । उस उदय के समय में उस समय में सूर्य देव की ओर पूर्व दिशा में मुख करके स्थित हो जाना चाहिए ॥२२॥ यहाँ पर मेघावी भक्त को चाहिए कि रक्त चन्दन को घिसकर उससे एक पत्र का विलेखन करे । यह पत्र अष्टदल वाला केसरो से युक्त-वत्तुल और ऊर्ध्वकर्णिका वाला पत्र बनाना चाहिए ॥२३॥ तिल-तण्डुल-रक्तचन्दन से युक्त तोय-रक्त पुष्प-दर्भ इनको एक ताम्र के पात्र में प्रक्षिप्त करना चाहिए ॥२४॥ यदि ताम्र का पात्र न हो तो आक के पत्तों के दोनों से तिल आदिक पदार्थों को उनमें रखे और हे मुनिगणो ! पात्र के द्वारा पात्र को विन्यस्त करना चाहिए ॥२५॥ उदय आदि अङ्गों से करन्यास तथा

अङ्गन्यास करे और आत्मा को भास्कर का ध्यान करके भली भाँति श्रद्धा से समन्वित होना चाहिए । २६॥ धीमान् को मध्य अग्निदल में नैऋत दासन दल में और कामारि गोचर में तथा पुनः मध्य में पूजन करना चाहिए ॥२७॥ प्रभूत विमल सार आराधना कर, परम सुख का सम्पूजन करके वहाँ पर गगन से भगवान् भास्कर का आवाहन करना चाहिए ॥२८॥

कर्णिकोपरि सस्थाप्य ततो मुद्रा प्रदर्शयेत् ।

कृत्वा स्नानादिकं सर्व्वं ध्यात्वा तं सुसमाहितम् । २९

सितपद्मोपरि रवि तेजोविश्वे व्यवस्थितम् ।

पिङ्गाक्ष द्विभुज रक्त पद्मपद्मार्णवाम्बरम् ॥३०

सर्व्वलक्षणसयुक्तं सर्व्वभरणभूषितम् ।

सुरूप वरद शान्त प्रभामण्डलमण्डितम् ॥३१

उद्यन्त भास्करं दृष्ट्वा सान्द्रसिन्दूरसन्निभम् ।

ततस्तत्पात्रमादाय जानुभ्यां धरणी गतम् ॥३२

कृत्वा शिरसि तत्पात्रमेकचित्तस्तु वाग्यतः ।

व्यक्षरेण तु मन्त्रेण सूर्यावाध्यां निवेदयेत् ॥३३

अदीक्षितस्तु तस्यैव नाम्नवाध्यां प्रयच्छति ।

श्रद्धया भावयुक्तेन भक्तिग्राह्यो रविर्यतः ॥३४

अग्निनिष्कृतिवाग्वीशमध्यपूर्व्वदिदिक्षु च ।

हृच्छिरश्च शिखावर्मनेत्राण्यस्त्रञ्च पूजयेत् ॥३५

उस लिखित पत्र की कर्णिका पर सस्थापित करके इसके उपरान्त मुद्रा को प्रदर्शित करे । स्नानादिक सब क्रिया करके सुसमाहित होकर उनका ध्यान करे ॥२९॥ तेजो विश्व सित पद्म के ऊपर में व्यवस्थित रवि का ध्यान करना चाहिए । पिङ्गल वर्ण के नेत्रों वाले, दो भुजाओं से युक्त-रक्त वर्ण वाले, पद्म दल के समान अरुण अम्बर से समुत, श्री रविदेव सब सुलक्षणों से समन्वित है और समस्त आभरणों से सुशोभित है । सुन्दर रूप वाले-वरदान प्रदान करने वाले-परम शान्तस्वरूप से युक्त और प्रभामण्डल से मण्डित हैं ॥२०-३१॥ घने सिन्दूर के सदृश



उगते हुए सूर्यदेव का दर्शन करे । इसके अनन्तर उस पात्र को लेकर जानुओं से पृथ्वी पर स्थित होकर उस पात्र को शिर पर रख करके चित्त को एकाग्र करे और मीनी रहे इसके अनन्तर व्यक्षर मन्त्र से सूर्यदेव के लिये अर्घ्य देवे ॥३२-३३॥ जो अदीक्षित होवे तो उसके नाम से ही अर्घ्य देता है । क्योंकि श्रद्धा के द्वारा भाव से मुक्त मनुष्य से ही रश्मिदेव भक्ति से ग्रहण करने के योग्य हैं ॥३४॥ अग्नि, निष्कृति, वायु, ईशान, मध्यपूर्वादि दिशाओं में हृदय, शिर, शिखा, वरुण, नेत्र और अस्त्र का पूजन करना चाहिए ॥३५॥

दत्तार्घ्यं गन्धधूपञ्च दीप नैवेद्यमेव च ।

जप्त्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा मुद्रां वद्ध्वा विसर्जयेत् ॥३६॥

ये वाध्यं सम्प्रयच्छन्ति सूर्याय नियतेन्द्रियाः ।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वंश्याः स्त्रियः शूद्राश्च सयताः ॥३७॥

भक्तिभावेन सतत विशद्वेनान्तरात्मना ।

ते भुक्त्वाभिमतान् कामान् प्राप्नुवन्ति परां गतिम् ॥३८॥

त्रैलोक्यदीपक देव भास्करं गगनेरतम् ।

ये सश्रयन्ति मनुजास्ते स्युः सुखस्य भाजनम् ॥३९॥

यावन्न दीयते चार्घ्यं भास्कराय यथोदितम् ।

तावन्न पूजयेद्विष्णु शङ्कर वा सुरेश्वरम् ॥४०॥

तस्मात् प्रयत्नमास्थाय दद्यादर्घ्यं दिने दिने ।

आदित्याय शुचिभूत्वा पुष्पगन्धमनोरमैः ॥४१॥

एव ददाति यश्चार्घ्यं सप्तम्या सुसमाहितः ।

आदित्याय शचिः स्नातः स लभेदीप्सित फलम् ॥४२॥

अर्घ्य देकर गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य सब समर्पित करके तथा जप-स्तवन और नमस्कार करके और मुद्रा बाँध कर विसर्जन करे ॥३६॥ जो लोग नियत इन्द्रिय वाले भगवान् सूर्य को अर्घ्य दिया करते हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र समेत होकर सर्वदा भक्ति की भावना से तथा विगुह्य अन्तरत्मा से सूर्यदेव को अर्घ्य देते हैं वे अभिमत पदार्थों

के दीपक देव भास्कर को जो गगनरत रहते हैं जो लोग इनका सत्रय ग्रहण करते हैं । वे मनुष्य सदा सुख के पात्र हुआ करते हैं ॥३८॥ जिस समय तक भगवान् भास्कर देव के नित्य जैसा बनाया गया है वैसा अर्घ्य नहीं दिया जाता है तब तक भगवान् विष्णु देव अथवा शङ्कर एवं सुरेश्वर का पूजन नहीं करना चाहिए ॥४०॥ अतएव प्रवल प्रमत्त में समास्थित होकर प्राये दिन सूर्य देव को अर्घ्य देना ही चाहिए । भगवान् आदित्य के लिये मनोरम और मुगन्धित पुष्पों के साथ पवित्र होकर अर्घ्य देना चाहिए ॥४१॥ इस प्रकार से सप्तमी तिथि के दिन परम समाहित होकर स्नान करके और पवित्र होकर भगवान् आदित्य के लिये जो मनुष्य अर्घ्य दिया करता है वह अपना अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है ॥४२॥

रोगाद्विमुच्यते रोगी वित्तार्थो लभते धनम् ।

विद्या प्राप्नोति विद्यार्थी सुतार्थी पुत्रवान् भवेत् ॥४३॥

य य काममभिध्यायन् सूर्य्यायार्घ्यं प्रयच्छति ।

तस्य तस्य फल सम्यक् प्राप्नोति पुरुषः सुधीः ॥४४॥

स्नात्वा च सागरे दत्त्वा सूर्य्यायार्घ्यं प्रणाम्य च ।

नरो वा यदि वा नारा सर्व्वकामफल लभेत् ॥४५॥

ततः सूर्यालयं गच्छेत् पुष्पमादाय वाग्पतः ।

प्रविश्य पूजयेद्भानुं कृत्वा तु त्रिः प्रदक्षिणम् ॥४६॥

पूजयेत् परया भक्त्या कोणाकं भुनक्तमाः ।

गन्धं पुष्पंस्तथा दीपंघूर्णैर्वेद्यकैरपि ॥४७॥

दण्डवत् प्रणिपातैश्च जयशब्दैस्तथा स्तवं ।

एव सम्पूज्य त देव सहस्राशुं जगत्पनिम् ॥४८॥

दशानामश्वमेधानां फल प्राप्नोति मानवः ।

सर्व्वपापविनिम्मुक्तो युवा दिव्यवपुर्नरः ॥४९॥

भगवान् आदित्य देव को अर्घ्य देने से रोग से युक्त मनुष्य रोग से विमुक्त हो जाया करता है और धन की प्राप्ति की इच्छा रखता है उसको धन प्राप्त हो जाया करता है । विद्या के चाहने वाला विद्या प्राप्त

कर लेता है और जो पुत्र की अभिलाषा रखता है वह पुत्रवान् हो जाता है ॥४२॥ जिस-जिस कामना का हृदय में ध्यान रखकर सूर्य देव को अर्घ्य दिया जाता है सुधी पुरुष उसी कामना का फल प्राप्त कर लिया करता है ॥४४॥ सागर में स्नान करके सूर्य देव को अर्घ्य देकर जो उनको प्रणाम किया करता है वह नर हो अथवा नारी हो सम्पूर्ण कामनाओं का फल प्राप्त करलेता है ॥४५॥ इसके पश्चात् सूर्य देव के आलय पर जावे और हृदय में पुष्प लेकर मने अत रखते हुए वहाँ प्रवेश करना चाहिए । वहाँ भानु देव का अर्चन कर तीन प्रदक्षिणा करे ॥४६॥ हे मुनिगणो ! परमाधिक भक्ति की भावना से कोणार्क देव का पूजन करना चाहिए । अर्चन में पुष्प, गन्ध, दीप धूप, नैवेद्य उपचार लेकर ही पूजा करे तथा अन्न में दण्डवत प्रणाम करके ज्य सन्धो की ध्वनि के साथ स्तवन करे । इस तरह से सहस्राद्यु देव का जो उस जगत् के पति हैं भली-भाँति पूजन करे । इस पूजन के करने से मनुष्य दशअश्व मेघों को पुष्प फल प्राप्त कर लेता है । युवा मनुष्य दिव्य शरीर धारी होकर सभी पापों से विमुक्त हो जाता है ॥४७-४८॥

सप्तावरान् सप्त परान् वशानुद्धृत्य भो द्विजाः ।  
विमानेनार्कवर्णेन कामगेन सुवर्चसा ॥५०॥  
उपगीयमानो गन्धर्व्वे सूर्य्यलोक स गच्छति ।  
भुक्त्वा तत्र वरान् भोगान् यावदाभूतसंप्लवम् ॥५१॥  
पुण्यक्षयादिहायातः प्रवरे योगिनां कुले ।  
चतुर्व्वेदो भवेद्विप्रः स्वधम्मनिरतः शुचिः ॥५२॥  
योग विवस्वतः प्राप्य ततो मोक्षनवाप्नुयात् ।  
चैत्रे मासि सिते पक्षे यात्रां दमनभञ्जिकाम् ॥५३॥  
यः करोति नरस्तत्र पूर्व्वोक्तं स फल लभेत् ।  
शयनोत्थापने भानोः सकान्त्या विपुवायने ॥५४॥  
वारे रवेस्तिथौ चैव पर्व्वकालेऽथा द्विजाः ।  
ये तत्र यात्रा कुर्व्वन्ति श्रद्धया सयतेन्द्रियाः ॥५५॥

विमानेनाकंवर्णेण सूर्य्यलोकं व्रजन्ति ते ।

आस्ते तत्र महादेवस्तीरे नदनदीपतेः ॥५६॥

रामेश्वर इति ख्यातः सर्व्वकामफलप्रदः ।

ये त पश्यन्ति कामारि स्नात्वा सम्यङ्महोदधौ ॥५७॥

हे द्वित्रो ! सूर्य्य देव का पूजक प्राणी अपने पहिली और पिछली सात-सात पीढ़ियों को उद्धृत करके सूर्य्य के समान वर्ण वाले तथा इच्छा-नुसार गमन करने वाले विमान के द्वारा जो कि सुन्दर ध्वंस वाला है और जिसकी प्रशंसा का गान गन्धर्व किया करते हैं वह सीधा सूर्य्यलोक को गमन किया करता है । वहा पर वह परम श्रेष्ठ भोगो का जब तक भूत-समूह (महाप्रलय) होता है उपभोग किया करता है ॥५०-५१॥ जब इसके पुण्यो का क्षय हो जाता है तो फिर वह वहाँ से यहाँ पर योगियों के कुल में आकर जन्म ग्रहण किया करता है । वह विप्र चारो वेदो का ज्ञाता स्वयम् में निरत और शुचि होता है ॥५२॥ विष्वक्त्वा का योग प्राप्त करके फिर मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर लेता है । चैत्रमास के शुक्लपक्ष में जो मानव दमन भञ्जिका की यात्रा करता है वह मनुष्य पहिले बताये हुए पुण्य-फल का लाभ किया करता है विषुव अयन में सङ्क्रान्ति में भानु देव के शमन तथा उत्थापन के अवसर में—रविवार के दिन में अथवा हे द्विजगणो ! किसी भी पर्व के काल में जो लोग थडा से सयत इन्द्रियो वाले होकर वहाँ पर यात्रा किया करते हैं वे सूर्य के समान वर्ण वाले विमान के द्वारा सूर्यलोक में गमन किया करते हैं । वहाँ पर नदो और नदियों के स्वामी सागर के तट-पर श्री महादेवजी विराजमान हैं । जो “रामेश्वर”—इस नाम से विख्यात हैं और सर्व कामनाओ के फलो को प्रदान करने वाले हैं । जो लोग उन कामारि प्रभु का दर्शन किया करते हैं और उस महोदधि में भस्मी-भाति स्नान किया करते हैं ॥५३-५७॥

गन्धेः पुष्पंस्तथा धूपं दीपनं चैद्यवैष्णवं ।

प्रणिपातंस्तथा स्तोत्रं गीतं चार्घ्यं मनोहरं ॥५८॥

राजसूयफलं सम्यग्वाजिमेघफलं तथा ।

प्राप्नुवन्ति महात्मानः ससिद्धिं परमां तथा ॥५६

कामगेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना ।

उपगीयमाना गन्धर्व्वैः शिवलोकं व्रजन्ति ते ॥५७

आभूतसंप्लवं यावद्भुक्त्वा भोगान्मनोरमान् ।

पुण्यक्षयादिहागत्य चातुर्व्वेदा भवन्ति ते ॥५८

शाङ्करं योगमास्थाय ततो मोक्षं व्रजन्ति ते ।

यस्तत्र सवितुः क्षेत्रे प्राणांस्त्यजति मानवः ॥५९

स सूर्य्यलोकमास्थाय देववन्मोदते दिवि ।

पुनर्मानुपतां प्राप्य राजा भवति धार्मिकः ॥६०

योगं रवेः समासाद्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ।

एवं मया मुनिश्रेष्ठाः प्रोक्तं क्षेत्रं सुदुर्लभम्

कोणार्कस्योदधेस्तोरे भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥६१

वहाँ पर शिवार्चन जो लोग गन्ध, पुष्प, हूप, दीप और श्रेष्ठ नैवेद्यों के द्वारा करते हैं वे राजसूय यज्ञ तथा अश्वमेध यज्ञ करके समान पुण्य-फल प्राप्त किया करने हैं । जो वहाँ पर शिव को प्रणिपात करके स्तोत्रों के द्वारा तथा गीत एवं वाद्यों के द्वारा सुन्दर उनका स्तवन करते हैं । वे महान् आत्माओं वाले पुष्प भी परम सिद्धि की प्राप्ति किया करते हैं ॥५८-५९॥ स्वेच्छानुकूल गमन करने वाले किङ्किणी जालों की मालाओं से युक्त विमान के द्वारा गन्धर्व्वों के द्वारा गीयमान होने हुए वे लोग शिवलोक को जाया करते हैं ॥६०॥ जब तक सब भूतों का सङ्गव होता है तब तक वहाँ पर परमोत्तम भोगों का उपभोग करके पुण्य के क्षीण होने पर यहाँ जन्म लेकर चारों वेदों के शास्त्र विप्र होते हैं ॥६१॥ शाङ्कर योग में समास्थित होकर फिर वे मोक्ष को प्राप्त किया करते हैं । जो वहाँ पर सूर्य देव के क्षेत्र में मनुष्य अपने प्राणों का परित्याग किया करता है वह सूर्यलोक में स्थित होकर दिवलोक में देवों की तरह आनन्द प्राप्त किया करता है । फिर मनुष्य जीवन का साम करके परम धार्मिक राजा हुआ करता है ॥६२-६३॥ रवि-देव के

योग को प्राप्त करके फिर वह मोक्ष को प्राप्त किया करता है। हे मुनि-  
श्रेष्ठो ! इस प्रकार से मैं आप सब लोगों के सामने यह परम दुर्लभ  
क्षेत्र का वर्णन कर दिया है जो कोणाकं उदधि के तट-पर 'मुक्ति और  
मुक्ति दोनों के फलों को प्रदान करने वाला है ॥६४॥

—\*—

## २१—सूर्यपूजाप्रकरण

श्रुतोऽस्माभिः सुरश्रेष्ठ भवता यदुदाहृतम् ।  
भास्करस्य पर क्षेत्रं मुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१॥  
न तृप्तिमधिगच्छामः शृण्वन्तः सुखदा कथाम् ।  
तत्र वक्त्रोद्भवां पुण्यामादित्यस्याघनाशिनाम् ॥२॥  
अतः पर सुरश्रेष्ठ ब्रूहि नो वदतावर ।  
देवपूजाफलं यच्च यच्च दानफलं प्रभो ॥३॥  
प्रणिपाते नमस्कारे तथा चैव प्रदक्षिणे ।  
दीपधूपप्रदाने च समाज्जनविधौ च यत् ॥४॥  
उपवासे च यत् पुण्यं यत् पुण्यं नक्तभोजने ।  
अर्घ्यश्च कीदृशः प्रोक्तः कुत्र वा संप्रदीयते ॥५॥  
कथञ्च क्रियते भक्तिः कथं देवः प्रसीदति ।  
एतत् सर्वं सुरश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥६॥

मुनिगण ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! आपने जो भास्कर देव का परमो-  
त्तम क्षेत्र का वर्णन किया है जो कि भोगों और मोक्ष दोनों के प्रदान  
करने वाला है हम लोगों ने श्रवण कर लिया है ॥१॥ किन्तु ऐसी सुख  
देने वाली कथा को सुनते हुए भी हम लोग तृप्ति को प्राप्त नहीं हो रहे हैं  
जो कि आपके मुखारविन्द के द्वारा कही गयी है और परम पुण्यमयी  
सथा आदित्य देव की कथा अघों का विनाश करने वाली है ॥२॥ हे  
सुरो मे परमश्रेष्ठ ! इससे भी आगे जो देव की पूजा का फल है और  
जो-जो धन देने का पुण्य फल होता है उसे भी आप वर्णित कीजिए ।

आप तो वक्ताओ मे परमाधिक श्रेष्ठ वक्ता हैं ॥३॥ सूर्य देव के प्रणिपात करने में नमस्कार में तथा उनकी परिक्रमा करने मे घूप दीप समर्पित करने में और वहाँ पर समाजंन करने मे उपवास में तथा रात्रि के भोजन मे जो भी पुण्य होता है उसे बतलाइये । अर्घ्य किम प्रकार का होता है और वह कहाँ पर दिया जाता है । भगवान् सूर्यदेव की भक्ति किस तरह मे की जाती है तथा देव किस प्रकार से परम प्रमन्न हुआ करते हैं ? हे सुरश्रेष्ठ ! यह सभी हम लोग श्रवण करना चाहते हैं ॥४-६॥

अर्घ्य पूजादिक सर्व्व भास्करस्य द्विजोत्तमाः ।

भक्ति श्रद्धां समाधिञ्च कथ्यमानं निबोधत ॥७

मनसा भावना भक्तिरिष्टा श्रद्धा च कीर्त्यन्ते ।

ध्यानं समाधिरित्युक्तं शृणुध्व सुसमाहिताः ॥८

तत्कथा श्रावयेद् यस्तु तद्भक्तान् पूजयीत वा ।

अग्निशुश्रूपकश्चैव स वै भक्तः सनातनः ॥९

तच्चित्तस्तन्मनाश्चैव देवपूजारतः सदा ।

तत्कर्मकृद्भवेद् यस्तु वै भक्तः सनातनः ॥१०

देवार्थे क्रियमाणानि यः कर्म्मण्यनुमन्यते ।

कीर्त्तनाद्वापरो विप्राः स वै भक्ततरो नरः ॥११

नाम्यसूयेत तद्भक्तान् ननिन्द्याच्चान्यदेवताम् ।

आदित्यव्रतचारो च स वै भक्ततरो नरः ॥१२

गच्छंस्तिष्ठन् स्पृष्ट्विधनुन्मिषन्निमिषन्नपि ।

यः स्मरेद्भास्करं नित्यं स वै भक्ततरो नरः ॥१३

एवविद्या त्वय भक्तिः सदा कार्य्या विजानता ।

भक्त्या समाधिना चैव स्तवेन मनसा तथा ॥१४

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! अर्घ्य और अर्चना आदि सब तथा सूर्य की श्रद्धा और समाधि मेरे द्वारा कही जा रही है उसको अब आप भी भाँति समझ लीजिए ॥७॥ मन द्वारा जो भावना की जाती है वही अभीष्ट भक्ति होती है और मही श्रद्धा कही जाया करती है । जो ध्यान किया जाता है वही समाधि है—ऐसा कहा गया है । अब आप

लोग पूर्णतया सावधान होकर श्रवण नीजिए ॥८॥ उनकी कथा को जो भक्तों को श्रवण कराता है तथा उन भक्तों का अर्चन किया करता है एव अग्निदेव भी जो शुश्रूषा किया करता है वही परम सनातन भक्त होता है ॥९॥ जो अपने इष्टदेव में ही अपना चित्त लगाये रहता है—अह-निश्च उन्हीं में मन को रमाता है—जो देव की पूजा में रति रखता है और सदा इष्टदेव के कर्मों में करने में ससम्न रहता है वही सनातन भक्त कहा जाया करता है ॥१०॥ देव के निये किये हुए कर्मों को जो अनुमोदित किया करता है हे विप्रगण ! जो उन कर्मों का ही कीर्तन करता है वह मनुष्य ही अधिक भक्त हुआ करता है ॥११॥ इष्टदेव के भक्तों की कभी भी अभ्यसूया न करे तथा किसी भी अन्य देवता की निन्दा नहीं करनी चाहिए । जो ऐसा भक्त आदित्यदेव के व्रत का समाचरण करने वाला हो वह मनुष्य अधिक भक्त होता है ॥१२॥ जो गमन करता हुआ स्थित रहकर-शयन करते हुए-सूषते हुए और उन्मेष एव निमेष करते हुए भी निरम्य हो भगवान् भास्कर देव का स्मरण किया करता है वह विशेष भक्त मनुष्य हुआ करता है ॥१३॥ इस प्रकार की यह भक्ति होती है और इस भक्ति को जानवान् पुरुष के द्वारा सदा ही करनी चाहिए । ऐसी भक्ति से-समाधि से तथा मानसिक सब से ही सूर्य देव की उपासना करनी चाहिए ॥१४॥

क्रियते नियमा यस्तु दानं विप्राय दीयते ।

प्रतिगृह्णन्ति तं देवा मनुष्याः पितरस्तथा ॥१५॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यद्भवत्या समुपाहृतम् ।

प्रतिगृह्णन्ति तद्देवो नास्ति क्वान् वर्जयन्ति च ॥१६॥

भावशुद्धिः प्रयोक्तव्या नियमाचारसमुता ।

भावशुद्ध्या क्रियते यत्तत् सर्वं सफलं भवेत् ॥१७॥

स्तुतिजप्योपहारेण पूजयापि विवस्वतः ।

उपवासेन भक्त्या च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१८॥

प्रणिधाय शिरो भूम्या नमस्कारं करोति यः ।

तत्क्षणात् सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥१९॥



भक्तियुक्तो नरो योऽसौ रवेः कुर्यात् प्रदक्षिणाम् ।  
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥२०॥  
सूर्यं मनसि यः कृत्वा कुर्याद्व्योमप्रदक्षिणाम् ।  
प्रदक्षिणीकृतास्तेन सर्वे देवा भवन्ति हि ॥२१॥

जो यह सब नियम का पालन किया जाता है और जो विप्र के लिये दान दिया जाया करता है उसको देवगण-पितृगण और मनुष्य सभी ग्रहण किया करते हैं ॥१५॥ जो हादिक भक्ति के साथ पत्र-पुष्प-फल और जल भी समर्पित किये जाते हैं उसको देव ग्रहण किया करते हैं किन्तु जो नास्तिक होते हैं अर्थात् देवों की सत्ता को ही नहीं मानते हैं उनको वर्जित कर दिया करते हैं ॥१६॥ नियमों तथा आचारों से समन्वित जो हादिक भाव की शुद्धि है उसी का प्रयोग करना चाहिए भाव-शुद्धि के द्वारा जिस कर्म को भी किया जाता है वह सभी सफल हुआ करता है । सबसे मुख्य हृदय की भावना की शुद्धि ही होती है ॥१७॥ भगवान् विवस्वान् की पूजा-स्तुति-जय-उपहार और उपवास के द्वारा जो कि भक्ति की भावना से किये जाते हैं मनुष्य सभी पापों से विमुक्त हो जाया करता है ॥१८॥ जो अपने मस्तक को भूमि में टेक कर सूर्य देव को नमस्कार करता है वह उसी क्षण में समस्त पापों से छुटकारा पा जाया करता है—इसमें कुछ भी शंका नहीं है ॥१९॥ जो भक्ति से युक्त मनुष्य सूर्य की प्रदक्षिणा करता है उसने मानों सातों द्वीपों वाली सम्पूर्ण वसुन्धरा की ही परिक्रमा करली है अर्थात् उसे समस्त भूमि की प्रदक्षिणा का पुण्य-फल प्राप्त हो जाया करता है ॥२०॥ मन में सूर्य देव का ध्यान करके जो व्योम में प्रदक्षिणा किया करता है उसने सभी देव-ताओं की प्रदक्षिणा करने का फल प्राप्त कर लिया है ॥२१॥

एकाहरो नरो भूत्वा पृथ्वां योऽर्चयते रविम् ।  
नियमव्रतचारो च भवेद्भक्तिसमन्वितः ॥२२॥  
सप्तम्यां वा महाभागाः सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।  
अहोरात्रोपवासेन पूजयेद् यस्तु मास्करम् ॥२३॥

सप्तम्यामथवा पष्ठ्यां स याति परमां गतिम् ।  
 कृष्णपक्षस्य सप्तम्यां सोपवासो जितेन्द्रियः ॥२४॥  
 सर्व्वरत्नोपहारेण पूजयेद् यस्तु भास्करम् ।  
 पद्मप्रभेण यानेन सूर्य्यलोक स गच्छति ॥२५॥  
 शुक्लपक्षस्य सप्तम्यामुपवासपरो नरः ।  
 सर्व्वशुल्कोपहारेण पूजयेद् यस्तु भास्करम् ॥२६॥  
 सर्व्वपापविनिम्मुक्तः सूर्य्यलोक स गच्छति ।  
 अर्कसम्पुटसयुक्तमुदक प्रसृत पिबेत् ॥२७॥  
 क्रमवृद्ध्या चतुर्व्विंशमेकैक क्षपयेत् पुनः ।  
 द्वाभ्यां सवत्सरान्यान्तु सनातनियमो भवेत् ॥२८॥

एक बार ही आहार करके जो मनुष्य पृथ्वी तिथि में रवि देव की अर्चना किया करता है तथा नियमों में समास्थित होकर ब्रह्मचर्य धारण करता है एवं भक्तिभाव से मुक्त होता है अथवा सप्तमी तिथि में ऐसा करता है हे महाभागो ! वह मनुष्य अश्वमेध यज्ञ के यजन करने का पुण्य फल प्राप्त कर लिया करता है । जो एक अहोरात्र के उपवास को करके भास्कर देव की पूजा किया करता है । पृथ्वी या सप्तमी किसी भी तिथि में करे तो वह मनुष्य परमोत्तम गति को प्राप्त किया करता है । मास की कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि में जितेन्द्रिय होकर जो उपवास करता है और सब रत्नों के उपहार के द्वारा सूर्य देव का अर्चन किया करता है वह पक्ष के समान प्रभा वाले यान के द्वारा अन्त में सीधा सूर्यलोक में गमन किया करता है ॥२२-२५॥ मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी में मनुष्य उपवास परायण होकर सम्पूर्ण शुक्ल वर्ष के उपहारों से जो भगवान् भास्कर देव का पूजन करता है वह सब पापों से विमुक्त होकर सूर्यलोक को गमन किया करता है । अर्क सम्पुट से सयुक्त उदक का प्रसृत पान करे तथा क्रम वृद्धि से चौबीस को एक-एक करके पुनः क्षीण करता जावे । इस प्रकार से दो वर्षों में समाप्त नियम वाला होता है ॥२६-२८॥

सर्वकामप्रदा ह्येषा प्रशस्ता ह्यर्कसप्तमी ।

शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां यदादित्यदिनं भवेत् ॥२६॥

सप्तमी विजया नाम तत्र दत्तं महत् फलम् ।

स्नानं दानं तपः होम उपवासस्तथैव च ॥२७॥

सर्वं विजयसप्तम्या महापातकनाशनम् ।

ये चादित्यदिने प्राप्ते श्राद्धं कुर्वन्ति मानवाः ॥२८॥

यजन्ति च महाश्वेतं ते लभन्ते यथेप्सितम् ।

येषां घर्म्याः क्रियाः सर्वाः सदैवोद्दिश्य भास्करम् ॥२९॥

न कुले जायते तेषां दरिद्रो व्यावितोऽपि वा ।

श्वेतया रक्तया वापि पीतमृत्तिकयापि वा ॥३०॥

उपलेपनकर्त्ता तु चिन्तितं लभते फलम् ।

चित्रभानुं विचित्रैस्तु कुसुमैश्च सुगन्धिभिः ॥३१॥

पूजयेत् सोपवासो यः स कामानीप्सितांल्लभेत् ।

घृतेन दीपं प्रज्वालय तिलतैलेन वा पुनः ॥३२॥

आदित्यं पूजयेद्यस्तु चक्षुषा न स हीयते ।

दीपदाता नरो नित्यं ज्ञानदीपेन दीप्यते ॥३३॥

यह अर्क सप्तमी सब कामनाओं को प्रदान करने वाली होती है और परम प्रशस्त मानी गयी है । शुक्ल पक्ष की सप्तमी में जब आदित्य का दिन होवे ॥२६॥ वह विजया नाम वाली सप्तमी कही जाती है । उसमें दिये हुए दान का महान् फल हुआ करता है । चाहे उस दिन में स्नान किया जावे कुछ भी शुभ एवं सत्कर्म किया जावे सब विषय सप्तमी में महान् पातकों का नाश करने वाला होता है । जो मनुष्य आदित्य के दिन में प्राप्त होने पर श्राद्ध किया करते हैं और महाश्वेत का यजन किया करते हैं वे जो भी कुछ चाहते हैं उसे ही प्राप्त कर लिया करते हैं । जिनकी समस्त क्रियाएँ धर्म युक्त होती हैं और सदा भगवान् भास्कर देव का उद्देश्य ग्रहण करके ही की जाया करती हैं उनके कुल में कोई भी दरिद्र अथवा व्याधिग्रस्त समुत्पन्न नहीं हुआ करता है । श्वेत-रक्त अथवा पीत मृत्तिना से जो उपलेपन करने वाला होता है वह

चिन्तित फल को प्राप्त किया करता है । जो चित्रमानु का विचित्र, सुगन्ध से युक्त कुसुमों के द्वारा उपवास करके पूजन किया करता है वह अपनी अभीप्सित कामनाओं की प्राप्ति किया करता है । घृत से दीपक को जलाकर अथवा तिल तैल से दीपक जलाकर जो भगवान् आदित्य देव की नित्य अर्चना किया करता है वह कभी भी अधु से क्षीण नहीं होता है । दीपदाता मनुष्य नित्य ही ज्ञान दीप से दीप्त रहता है ॥३०-३६॥

तिलाः पवित्र तैल वा तिलगोदानमुत्तमम् ।

अग्निकार्ये च दीपे च महापातकनाशनम् ॥३७॥

दीप ददाति यो नित्य देवतायनेषु च ।

चतुष्पथेषु रथ्यासु रूपवान् सुभगो भवेत् ॥ ८

हविभिः प्रथमः कल्पो द्वितीयश्चोपधीरसः ।

धसामेदोस्थिनिर्यासिनं तु देयं कथञ्चन ॥३८॥

भवेद्दूर्ध्वगतिद्वीपो न कदाचिदधोगतिः ।

दाता दीप्यति चाप्येव न तिर्यग्गतिमाप्नुयात् ॥३९॥

ज्वलमान सदा दीप न हरेन्नापि नाशयेत् ।

दीपहर्त्तानरो बन्ध नाश क्रोध तमो ग्रजेत् ॥४०॥

दीपदाता स्वर्गलोके दीपमालेव राजते ।

यः समालमते नित्य कुङ्कुमागुरुचन्दनैः ॥४१॥

तिल परम पवित्र है अथवा तिलों का तैल और तिलों का गोदान भी परमोत्तम होता है । अग्नि कार्य में और दीप में यह महापातकों का विनाश करने वाला होता है ॥३७॥ जो पुरुष नित्य प्रति देवों के आयतनों में दीपक जलाया करता है—चतुष्पथों ( चौराहों ) में—रथ्याओं में ( गलियों में ) दीपक जलाता है वह परम रूप वाला और सुभग हुआ करता है ॥ ८॥ हवियों से प्रथम कल्प है और दूसरा कल्प अधीपधियों के रसों से होता है । धमा-मेद-अस्थि और निर्यासों से कभी भी नहीं देना चाहिए ॥ ६॥ दीप हमेशा ऊर्ध्व गति वाला ही होना चाहिए । इस प्रकार से दीपों का दाता दीप्त होता है और कभी भी तिर्यग् गति

को प्राप्त नहीं किया करता है ॥४०॥ जलजे हुए दीपक को सदा हरण न करे और न उसका नाश ही करे । दीपक का हरण करने वाला पुरुष धन्वन-नाश-क्रोध और तम को प्राप्त किया करता है ॥४१॥ दीपो का दान करने वाला पुरुष स्वर्ग लोक में दीप माला के ही समान राजिव होता है । जो मनुष्य नित्य ही कुंकुम-अगुरु और चन्दन के द्वारा समासेपन किया करता है वह धनी होता है ॥४२॥

सम्पद्यते नरः प्रेत्य घनेन यशसा श्रिया ।

रक्तचन्दनसमिश्रं रक्तपुष्पैः शुचिर्नरः ॥४३॥

उदयेऽर्घ्यं सदा दत्त्वा सिद्धिं सवत्सराल्लभेत् ।

उदयात् परिवर्त्तेत यावदस्तमने स्थितः ॥४४॥

जपद्भभिमुखः किञ्चिन्मन्त्रं स्तोत्रमथापि वा ।

आदित्यव्रतमेतत्तु महापातकनाशनम् ॥४५॥

अर्घ्येण सहितश्चैव सर्व्वं साङ्गं प्रदीपयेत् ।

उदये श्रद्धया युक्तं सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥४६॥

सुवर्णधेन्वनडुहवसुधावस्त्रसयुतम् ।

अर्घ्यप्रदाता लभते सप्तजन्मानुग फलम् ॥४७॥

अग्नौ तोयेऽन्तरिक्षे च शुचौ भूम्या तथैव च ।

प्रतिमाया तथा पिण्ड्यां देयमर्घ्यं प्रयत्नतः ॥४८॥

नापसव्यं न सव्यश्च दद्यादभिमुखः सदा ।

सधृतं गुग्गुलुं वापि रवेर्भक्तिसमन्वितः ॥४९॥

ऐसा पुरुष प्राणान्त होने पर घन एव यश से और श्री से सम्पन्न हुआ करता है । जो मनुष्य पवित्र होकर रक्त चन्दन से संयुक्त रक्त वर्ण के पुष्पों से सदा उदय काल में अर्घ्य दिया करता है वह पुरुष एक वर्ष में सिद्धि को प्राप्त हो जाता है । जो उदय काल से आरम्भ करके जब तक अस्तकाल हो, स्थित रहता है और सूर्य के अभिमुख होकर किसी मन्त्र का जाप या किसी स्तोत्र का पाठ किया करता है । यह परमोत्तम आदित्य व्रत है जो महापातकों का नाश करने वाला होता है ॥४३-४५॥ अर्घ्य के सहित सब साङ्ग प्रदान करना चाहिए । उदय काल में

धृष्टा से युक्त होकर ऐसा करने से सभी पापों से छुटकारा पा जाया करता है ॥४६॥ सुवर्ण-धेनु-अनङ्गवान्-अमुघा और यस्त से युक्त अर्घ्य के देने वाला पुण्य सात जन्मानुग फल को प्राप्त करता है ॥४७॥ अग्नि में, जल में, अन्तरिक्ष में तथा पवित्र भूमि में, प्रतिमा में और विण्डी में प्रयत्न पूर्वक अर्घ्य देना चाहिए ॥४८॥ अर्घ्य कभी भी दाहिनी तथा बायी ओर न देवे और सदा ही अभिमुख होकर ही अर्घ्य देना चाहिए । घृत के साथ गुग्गुलु को भी देवे और भक्ति से युक्त होकर ही सूर्य को अर्घ्य देना चाहिए ॥४९॥

तत्क्षणात् सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।

श्रीवास चतुरस्रश्च देवदारुं तथैव च ॥५०॥

कर्पूर-अगुरु-धूपानि दत्त्वा च स्वर्गगामिनः ।

अयने तूत्तरे सूर्यमथवा दक्षिणायने ॥५१॥

पूजयित्वा विशेषेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

विषुवेऽप्युपरागेषु षडशीतिमुखेषु च ॥५२॥

पूजयित्वा विशेषेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

एव वेलासु सर्वासु सर्वकालश्च मानवः ॥५३॥

भवत्या पूजयते योऽर्कं सोऽर्कलोके महीयते ।

कृसरैः पायसैः पूपैः फलमूलधृतोदनैः ॥५४॥

घृति कृत्वा तु सूर्याय सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।

धृतेन तर्पणं कृत्वा सर्वसिद्धो भवेन्नरः ॥५५॥

क्षीरेण तर्पणं कृत्वा मनस्तापेन युज्यते ।

दध्ना तु तर्पणं कृत्वा कार्यसिद्धिं लभेन्नरः ॥५६॥

भगवान् सूर्यदेव को अर्घ्य देने वाला मनुष्य उसी क्षण में तुरन्त सभी पापों से मुक्त हो जाया करता है-इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । श्री वास-चतुरस्र देवदारु-कर्पूर-अगुरु-धूप देकर मनुष्य स्वर्गगामी हो जाया करते हैं । उत्तरायन में अथवा दक्षिणायन में सूर्यदेव का पूजन करके विशेष रूप से मनुष्य समस्त पापों से छुटकारा प्राप्त कर लिया करता है । विषु वे-उपराग ( ग्रहण ) में और षडशीति मुखों में विशेष

रूप से पूजन करके मानव सभी पापों से प्रमुक्त हो जाता है । इस प्रकार से सब बेलाओं में और सर्वकाल में मनुष्य भक्ति की भावना से जो भी सूर्य का अर्चन करता है वह सूर्यलोक में पहुँच कर प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है । कृसर-पायस-पूजा-फल-मूल-घृत और ओदन आदि के द्वारा सूर्यदेव के लिये बलि देकर मनुष्य सभी मनोरथों की प्राप्ति किया करता है । घृत के द्वारा तर्पण करके मनुष्य सर्वसिद्ध हो जाता है ॥५० ५५॥ क्षीर के द्वारा तर्पण करके मनुष्य मानसिक तार्पा से कभी युक्त नहीं होता है । दधि से सूर्यदेव का तर्पण करके मनुष्य कार्य की सिद्धि का लाभ प्राप्त कर लेता है ॥५६॥

स्नानाथमाहरेद् यस्तु जल भानोः समाहितः ।  
तीर्थेषु शुचितापन्नः स याति परमा गतिम् ॥५७  
छत्रं ध्वज वितान वा पताका चामराणि च ।  
श्रद्धया भानवे दत्त्वा गतिमिष्टामवाप्नुयात् ॥५८  
यद्यदद्रव्यं नरो भक्त्या आदित्याय प्रयच्छति ।  
तत्तस्य शतसाहस्रमुत्पादयति भास्करः ॥५९  
मानस वाचिक वापि कायज यच्च दुष्कृतम् ।  
सर्वं सूर्यप्रसादेन तदशेष व्यपोहति ॥६०  
एकाहेनापि यद्भानोः पूजायाः प्राप्यते फलम् ।  
यथोक्तदक्षिणैव प्रै नं तत् क्रतुशतैरपि ॥६१

जो पुरुष भावधान होकर भानुदेव के स्नान के लिये जल का आहरण किया करता है वह तीर्थों में शुचिता को प्राप्त होने वाला परम गति को प्राप्त किया करता है ॥५७॥ छत्र-ध्वजा-वितान-पताका-चमर इन वस्तुओं को परमाधिक श्रद्धा से जो भानुदेव को समर्पित करता है वह अपनी अभीष्ट गति को प्राप्त कर लिया करता है ॥५८॥ मनुष्य जिस-जिस द्रव्य को भक्तिभाव के साथ आदित्य देव के लिये अर्पित करता है उस उस वस्तु को शतगुना एवं सहस्र गुना भगवान् भास्कर उत्पन्न कर दिया करते हैं ॥५९॥ मानस-वाचिक और कायज जो भी कुछ दुष्कृत होता है वह सभी सूर्यदेव के प्रसाद से पूर्णतया विनष्ट हो

जाया करता है ॥६०॥ एकाह भानुदेव की पूजा का जो पुण्य-फल प्राप्त किया जाता है वह यथोक्त दक्षिणा वाले विप्रों के द्वारा सैकड़ों ऋतुओं से भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है ॥६॥

-:❀:-

## २२ — आदित्यमाहात्म्यवर्णन (१)

अहो देवस्य माहात्म्यं श्रुतमेव जगत्पते ।  
 भास्करस्य सुरश्रेष्ठ वदतस्तेषु दुर्लभम् ॥१॥  
 भूयः प्रब्रूहि देवेश यत् पृच्छामो जगत्पते ।  
 श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन् परं कौतूहलं हि नः ॥२॥  
 गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽयं भिक्षुकः ।  
 य इच्छेन्मोक्षमास्य तुं देवता का यजेत राः ॥३॥  
 कुतो ह्यस्याक्षयः स्वर्गं कुतो निःश्रेयसं परम् ।  
 स्वर्गतश्चैव किं कुर्यादियेन च च्यवते पुनः ॥४॥  
 देवानां चात्र को देवः पितॄणाञ्चैव कः पिता ।  
 यस्मात् परतरं नास्ति तन्मे ब्रूहि सुरेश्वर ॥५॥  
 कुतः सृष्टमिदं विश्वं सर्वं स्यावरजङ्गमम् ।  
 प्रलये च कथम्येति तद्भवान् जकृतमर्हति ॥६॥  
 उद्यन्तेवैष कुरुते जगद्वित्तिमिरं करैः ।  
 नातः परतरो देवः कश्चिदन्यो द्विजोत्तमाः ॥७॥

मुनिगण ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! जगत् के पति भास्कर देव का माहात्म्य हम लोगों ने आप के मुख से श्रवण किया है जोकि बहुत ही दुर्लभ है । हे जगत् के स्वामिन् ! हे देवेश ! आपसे हम लोग पुनः कुछ पूछना चाहते हैं । आप कृपा कर वह वदताइये । हे ब्रह्मन् ! हमको इस बात के जानने के लिये हृदय में बड़ा कौतूहल हो रहा है ॥१-२॥



गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी इनमें जो मोक्ष चाहता है वह किस देव का यजन करे ? ॥३॥ इस प्राणी का अक्षय स्वर्ग कैसे होता है और परमनिश्चेष्ट्यस कैसे हुआ करता है । यदि यह स्वर्ग मे भी पुण्यों के प्रभाव से पहुंच जावे तो वहाँ पर भी उसे क्या करना चाहिये जिससे पुनः उसका च्यवन वहाँ से न होवे ॥४॥ यहाँ पर देवों का भी देव कौन है और पितृगणों का भी पिता कौन है ? हे सुरेश्वर ! हमको उसे बतलाइये जिससे कोई बड़ा नहीं है ॥५॥ यह सम्पूर्ण जगत् जिसमे जड़ और चेतन सभी है कैसे सृजन किया गया है और जिस समय में महाप्रलय होता है तो यह सम्पूर्ण विश्व किसमे चला जाया करता है— यह सब हमको बतलाने की कृपा कीजिए ॥६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा— हे द्विजोत्तमो ! यह भगवान् भास्कर उदय होते ही इस समस्त जगत् को अन्यकार से रहित कर दिया करता है ? इससे बड़ा अन्य कोई भी देवता नहीं है अर्थात् यह सूर्म्य देव ही परात्पर देव हैं ॥७॥

अनादिनिघ्नो ह्येप पुरुषः शाश्वतोऽव्ययः ।

तापयत्येप श्रील्लोकान् भवनुरश्मिभिरुत्पणः ॥८॥

सर्व्वदेवमयो ह्येप तपता तपनो वरः ।

सर्व्वस्य जगतो नाथः सर्व्वसाक्षी जगत्पतिः ॥९॥

सक्षिपत्येप भूतानि तथा वितृजते पुनः ।

एष भाति तपत्येप वर्षत्येप गभस्तिभिः ॥१०॥

एष धाता विधाता च भूतादिभूतभावनः ।

न ह्येप क्षयमायाति नित्यमक्षयमण्डलः ॥११॥

पितृणां च पिता ह्येप देवतानां हि देवता ।

ध्रुवस्थानं स्मृत ह्येतदयस्मान्न च्यवते पुनः ॥१२॥

सर्गकाले जगत् कृत्स्नमादित्यात् सम्प्रसूयते ।

प्रलये च तमम्येति भास्करं दीप्ततेजसम् ॥१३॥

योगिनश्चाप्यसंख्यातास्त्यक्त्वा गृहकलेवरम् ।

वायुर्भूत्वा विशन्त्यस्मिस्तेजोराशौ दिवाकरे ॥१४॥

यह देव आदि और अन्त से रहित है और यह पुरुष शाश्वत एवं  
अमर्य है । अपनी रश्मियों से अत्यन्त उल्वण होकर यही देव तीनों लोको  
को सतप्त किया करता है ॥८॥ यह सर्वदेवमय और तपन करने वालो  
मे परमश्रेष्ठ है । यही इस सम्पूर्ण जगत् का नाथ है और इस जगत् का  
पति एवं सर्व-साक्षी है ॥९॥ यही समस्त भूतो को सक्षिप्त किया करता  
है तथा पुन उनका सृजन भी करता है । यही प्रकाशित होता है, तपता  
है और अपनी किरणों के द्वारा वर्षा किया करता है ॥१०॥ यही घाता  
है विधाता है-यही भूतो का आदि और समस्त भूतो पर कृपा करके  
पालन करने वाला है । इसका कभी भी क्षय नहीं होता है और इसका  
मण्डल निर्य हो क्षय रहित होता है ॥११॥ यही पितृगणों का भी पिता  
है तथा सब देवों का भी देवता है । इसका स्थान ध्रुव कहा गया है ।  
यहां से पुन ज्यवन नहीं हुआ करता है ॥१२॥ जब सर्ग का समय होता  
है तो यह सम्पूर्ण जगत् आदित्य से ही प्रसूत हुआ करता है । जिस समय  
मे प्रलय होता है इसी दीप्ततेज वाले भास्कर देव मे यह सम्पूर्ण विश्व  
लीन हो जाया करता है ॥१३॥ असह्य योगीजन भी गृह कलेवर का  
त्याग करके वायु स्वरूप होकर इसी तेजो राशि दिवाकर देव मे प्रवेश  
कर जाया करते हैं ॥१४॥

अस्य रश्मिसहस्राणि शाखा इव विहङ्गमाः ।  
वसन्त्याश्रित्य मुनयः ससिद्धा दैवतैः सह ॥ ५  
गृहस्था जनकाद्याश्च राजानो योगधम्मिनः ।  
वालखित्यातयश्चैव ऋषयो ब्रह्मवादिनः ॥१६  
धानप्रस्थाश्च ये चान्ये व्यासाद्या भिक्षवस्तथा ।  
योगमास्थाय सर्व्वे ते प्रविष्टाः सूर्य्यमण्डलम् ॥१७  
शुको व्याससुतः श्रीमान् योगधर्ममवाप्य सः ।  
आदित्यकिरणान् गत्वा ह्यपुतर्भावमास्थितः ॥१८  
शब्दमात्रश्रुतिमुखा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।  
प्रत्यक्षोऽथ परो देवः सूर्य्यस्तिमिरनाशनः ॥१९॥

तस्मादन्यस्य भक्तिर्हि न कार्या शुभमिच्छता ।

यस्माद्दृष्टेरगम्यास्ते देवा विष्णुपुरोगमाः ॥२०॥

अतो भवदिभः सततमभ्यर्च्यो भगवान् रविः ।

स हि माता पिता चैव कृत्स्नस्य जगतो गुरुः ॥२१॥

इस देव की सहस्रों रश्मियाँ होती हैं । जैने पक्षीगण द्रुम की शाखाओं में आश्रय लेकर वाम किया करते हैं वैसे ही मुनिगण देवों के सहित-ससिद्ध-जनक आदि गृहस्थ-योग के धर्म वाले राजा लोग ब्रह्म्यादी वाल खित्यादि ऋषिगण-वानप्रस्थ-अन्य व्यासादि संन्यासी वे सभी योग में समास्थित होकर सूर्यमण्डल में प्रविष्ट हुआ करते हैं और आश्रय लेते हैं ॥१५-१७॥ व्यास देवजी के पुत्र श्रीमान् शुक्रदेव योग धर्म को प्रान करके आदित्य की किरणों में पहुँच कर अपुनर्भाव को प्राप्त हो गये हैं ॥१८॥ ब्रह्मा-विष्णु और शिव आदि देवगण केवल शब्द से ही बहे जाने वाले हैं और श्रुति ही इनका मुख है अर्थात् इनकी वाणी श्रुति को ही कहा जाता है । यह सूर्य देव तो प्रत्यक्ष पर देव है जोकि अन्धकार का विनाश करने वाले हैं ॥१९॥ इसलिये जो कोई अपना शुभ चाहता है उसको सूर्य को छोड़कर अन्य किसी भी देवता में भक्ति नहीं करनी चाहिए क्योंकि वे सब अन्य विष्णु आदि देवगण दृष्टि में अगम्य होते हैं अर्थात् प्रत्यक्ष दिखलाई नहीं दिया करते हैं । इसलिये आप सब को निरन्तर भगवान् रविदेव का अभ्यर्चन करना चाहिए । वह रविदेव इस सम्पूर्ण जगत् के माता-पिता और गुरु हैं ॥२०-२१॥

अनाद्यो लोकनाथोऽसौ रश्मिमाली जगत्पतिः ।

मित्रत्वे च स्थितो यस्मात्तपस्तेपे द्विजोत्तमाः ॥२२॥

अनादिनिधनो ब्रह्मा नित्यश्चाक्षय एव च ।

सृष्ट्वा ससागरान् द्वीपान् भुवनानि चतुर्दशः ॥२३॥

लोकानां स हितार्थाय स्थितचन्द्रसरित्तटे ।

सृष्ट्वा प्रजापतीन् सर्वान्सृष्ट्वा च विविधाः प्रजाः ॥२४॥

ततः शतसहस्राणुरव्यक्तञ्च पुनः स्वयम् ।

कृत्वा द्वादशधात्मानमादित्यमुपपद्यते ॥२५॥

इन्द्र धाताथ पर्जन्यस्त्वष्टा पूषार्घ्यमा भगः ।  
 विवस्वान् विष्णुरशश्च वरुणो मित्र एव च ॥२६॥  
 आभिर्द्वादशभिस्तेन सूर्येण परमात्मना ।  
 कृत्स्नं जगदिदं व्याप्तं मूर्तिभिश्च द्विजोत्तमा ॥२७॥  
 तस्य या प्रथमा मूर्तिरादित्यस्येन्द्रसजिता ।  
 स्थिता सा देवराजत्वे देवानां रिपुनाशिनी ॥२८॥

हे द्विजोत्तमो ! यह सूर्यदेव अनाद्य हैं-लोको के नाथ हैं-रश्मिमाली तथा जगत् के पति हैं । क्योंकि यह मित्रत्व में स्थित हैं और तप किया करते हैं ॥२२॥ ब्रह्माजी भी आदि-अन्त से रहित नित्य और अक्षय हैं ये सागर और द्वीपों के सहित इन चौदह लोकों की सृष्टि करके वही लोकों के हित के लिये सरित्तट पर चन्द्र होकर स्थित हो गये हैं । समस्त प्रजा पतियों का और अनेक प्रकार की प्रजाओं का सृजन करके इसके अनन्तर पुनः वह स्वयं ही अव्यक्त शत सहस्रांशु होकर अपने आपके स्वरूप को बारह रूपों में करके आदित्य के रूप में उत्पन्न हुआ करते हैं ॥२३-२५॥ ये बारह नाम ये हैं-इन्द्र-धाता-पर्जन्य-स्त्वष्टा-पूषा-अर्घ्यमा-भग-विवस्वान्-विष्णु अश-वरुण-मित्र इन द्वादश नामों से परमात्मा सूर्य के द्वारा बारह मूर्तियों से हे द्विजोत्तमो ! यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो रहा है ॥२६-२७॥ उस आदित्य देव की जो सब मूर्ति है वही इन्द्र सभा धात्री है और वह देवों के राजा के पद पर स्थित है जो देवों के शत्रुओं का विनाश करने वाली है ॥२८॥

द्वितीया तस्य या मूर्तिर्नाम्ना धातेति कीर्त्तिता ।  
 स्थिता प्रजापतित्वेन विविधाः सृजते प्रजाः ॥२९॥  
 तृतीयार्कस्य या मूर्तिः पर्जन्य इति विश्रुता ।  
 मेघेष्वेव स्थिता सा तु वर्षते च गमस्तिभिः ॥३०॥  
 चतुर्थी तस्य या मूर्तिर्नाम्ना त्वष्टेति विश्रुता ।  
 स्थिता वनस्पती सा तु औषधीषु च रावतः ॥३१॥  
 पञ्चमी तस्य या मूर्तिर्नाम्ना पूषेति विश्रुता ।  
 अग्रे व्यवस्थिता सा तु प्रजा पुष्पाति नित्यशः ॥३२॥

मूर्तिः पृथ्वी रवेर्या व अर्यमा इति विश्रुता ।  
 वायोः ससरणा सा तु देवेष्वेव समाश्रिता ॥३३॥  
 भानोर्या सप्तमी मूर्तिर्नाम्ना भगेति विश्रुता ।  
 भूतिष्ववस्थिता सा तु शरीरेषु च देहिनाम् ॥३४॥  
 मूर्तिर्या त्वष्टमी तस्य विवस्वानिति विश्रुता ।  
 अग्नौ प्रतिष्ठिता सा तु पचत्यन्नं शरीरिणाम् ॥३५॥

दूसरी जो आदित्य देव की मूर्ति है वह धाता इस शुभ नाम से कही गयी है जोकि प्रजापति के पद पर स्थित होती है और विविध भाँति की प्रजाओं का सृजन किया करती है ॥३६॥ इन अर्कदेव की चौतीसरी मूर्ति है वह "पर्जन्य"—इस शुभ नाम से प्रख्यात है । वही मूर्ति मेघों में भी स्थित है जो किरणों के द्वारा जल को वर्षा किया करती है ॥३७॥ चौथी जो सूर्य की मूर्ति है वह "त्वष्टा"—इस नाम से विश्रुत है । यह मूर्ति समस्त वनस्पतियों में और औषधियों में स्थित है और सभी ओर व्याप्त रहती है ॥३८॥ पाँचवी इसकी मूर्ति "पूषा"—इस नाम से प्रसिद्ध है और यह मूर्ति अन्न में व्यवस्थित रहा करती है जो नित्य ही समस्त प्रजा का पोषण किया करती है ॥३९॥ छठवी जो सूर्यदेव की मूर्ति है वह "अर्यमा"—इस शुभ नाम से विख्यात है । वह वायु के ससरण करने वाली है और देवों में ही समाश्रित रहा करती है ॥४०॥ भानुदेव की जो सातवी मूर्ति है वह "भग"—इस नाम से विश्रुत है । वह भूतों में और सब देहियों में देहों में अवस्थित रहा करती है ॥४१॥ आठवीं जो उसकी मूर्ति है वह विवस्वान् इस नाम से प्रख्यात है और वह अग्नि में प्रतिष्ठित रहा करती है जोकि शरीर धारियों के अन्न का पाचन किया करती है ॥४२॥

नवमी चित्रभानोर्या मूर्तिर्विष्णुश्च नामतः ।  
 प्रादुर्भवति सा नित्यं देवानामरिमुदनी ॥४३॥  
 दशमी तस्य या मूर्तिरशुभानिति विश्रुता ।  
 वायौ प्रतिष्ठिता सा तु प्रह्लादयति वं प्रजाः ॥४४॥

मूर्तिस्त्वेकादशी भानोर्नाम्ना वरुणसञ्जिता ।  
 जलेष्ववस्थिता सा तु प्रजां पुष्पाति नित्यशः ॥३८॥  
 मूर्तिर्या द्वादशी भानोर्नाम्ना मित्रति सञ्जिता ।  
 लोकानां सा हितार्थाय स्थिता चन्द्रसरित्ते ॥३९॥  
 वायुभक्षस्तपस्तेपे स्थित्वा मैत्रेण चक्षुषा ।  
 अनुगृह्णन् सदा भक्तान् वरुणविधेस्तु सः ॥४०॥  
 एव सा जगता मूर्तिहिताय विहिता पुरा ।  
 तत्र मित्रः स्थितो यस्मात्तस्मान्मित्रं परं स्मृतम् ॥४१॥  
 आभिर्द्वादशभिस्तेन सवित्रा परमात्मना ।  
 कृत्स्नं जगदिदं व्याप्तं मूर्तिभिश्च द्विजोत्तमाः ॥४२॥

नवमी जो सूर्यदेव की मूर्ति है वह विष्णु के नाम से प्रसिद्ध है । वह  
 देवों के भरियो का निनाश करने वाली नित्य ही प्रादुर्भूत हुआ करती  
 है ॥३६॥ दशमी मूर्ति 'अशुमान्' नाम से विद्युत है । यह वायु में  
 प्रतिष्ठित रहा करती है और समस्त प्रजा का आह्वादन किया करती  
 है ॥३७॥ भानुदेव की ग्यारहवीं मूर्ति वरुण सञ्जित नाम की होती है । यह  
 जलो में ही अवस्थित रहा करती है और नित्य ही प्रजा को पोषित  
 किया करता है ॥३८॥ बारहवीं भानुदेव की मूर्ति "मित्र" इस सञ्जित  
 वाली होती है वह लोकों के हित सम्पादन करने के लिये चन्द्र सरित्  
 के तट पर स्थित रहती है ॥३९॥ मैत्रेयसे स्थित होकर वायु का  
 भक्षण करने वाली तपस्या किया करती है । यह अनेक वरदानों के द्वारा  
 अपने भक्तों पर सदा अनुग्रह किया करती है ॥४०॥ इस प्रकार से १४  
 लोकों के हित के लिये पहिले बारह मूर्तियों में यह देव स्थित हुए हैं ।  
 इनमें जो मित्ररूप से स्थित है अतएव यह परम मित्र अर्थात् हिन्दू सम्पा-  
 दक कहे गये हैं ॥४१॥ हे द्विजो ! इन उपर्युक्त बारह नामों से परमात्मा  
 सविता ने अपनी मूर्तियों के द्वारा इस सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर सकता  
 है ॥४२॥

तस्माद्ध्येयो नमस्यश्च द्वादशस्थासु मूर्तिषु ।

भक्तिमद्भिरननित्य तद्गतेनान्तरात्मना ॥४३॥

इत्येवं द्वादशादित्यान्ममस्कृत्वा तु मानवः ।

नित्यं श्रुत्वा पठित्वा च सूर्यलोके महोयते ॥४४॥

यदि तावदयं सूर्यश्चादिदेवः सनातनः ।

ततः कस्मात्तपस्तेपे वरेप्सुः प्राकृतो यथा ॥४५॥

एतद्वः सप्रवक्ष्यामि परं गुह्यं विभावसोः ।

पृष्टं मित्रेण यत् पूर्वं नारदाय महात्मने ॥४६॥

प्राङ्मयोक्तास्तु युष्मभ्यं रवेर्द्वादश मूर्तयः ।

मित्रश्च वरुणश्चोभो तासां तपसि सस्थितौ ॥४७॥

अवभक्षो वरुणस्तासां तस्थौ पश्चिमसागरे ।

मित्रो मित्रवने चास्मिन् वायुभक्षोऽभवत्तदा ॥४८॥

अथ मेरुगिरेः शृङ्गात् प्रच्युतो गन्धमादनात् ।

नारदस्तु महायोगी सर्वालोकाश्चरन् वशी ॥४९॥

इस कारण से इन द्वादश मूर्तियों में स्थित सूर्यदेव ध्यान करने के योग्य और नमस्कार करने के योग्य होते हैं । जो भक्तिमान् है उनको तद्गत अन्तरात्मा के द्वारा नित्य ही सूर्यदेव की उपासना करनी चाहिए ॥४३॥ इस प्रकार से मनुष्य को इन द्वादश आदित्यों को नित्य ही नमस्कार करना चाहिए । नित्य इनका श्रवण या पठन करके मनुष्य अन्त में सूर्यलोक में पहुँचकर प्रतिष्ठित होता है ॥४४॥ मुनिगण ने कहा—हे भगवन् । यदि यह सूर्यदेव सबसे आदिदेव है और सनातन है तो फिर यह एक वरदान की इच्छा वाले प्राकृत मनुष्य की तरह तपस्या क्यों किया करते हैं ॥४५॥ यह हम विभावसु का परम गोपनीय हाल बतलायेंगे । यही बात पहिले महात्मा नारदजी के लिये मित्र ने पूछी थी ॥४६॥ मैंने पहिले आपको रविदेव की द्वादश मूर्तियाँ बतलाई थी । उनमें से मित्र और वरुण ये दोनों तपस्त्रयी में सस्थित हैं ॥४७॥ उन मूर्तियों में से जल का भक्षण करने वाला वरुण पश्चिम सागर में स्थित हो गया है । उस समय में वायु का भक्षण करने वाला मित्र इस मित्र-वन में रहता था ॥४८॥ इसके अनन्तर मेरु शृङ्ग से गन्धमादन से

प्रश्रुत महायोगी नारद वशी नमन्त तौकी न निचरण करते हुए वही पर जानने थे ॥४६॥

लाजगानाथ तत्रैव यत्र निनोऽचरत्ततः ।

त दृष्ट्वा तु तपस्यन्त यस्य कोतूहलं ह्यनूत् ॥४७॥

योऽक्षयश्चाव्ययश्चैव व्यक्ताव्यक्तं समातनः ।

धृतमेकात्मक येन त्रैलोक्यं सुमहात्मना ॥४८॥

यः पिता सर्वदेवानां पराणामपि यः परः ।

लयजद्देवताः कास्तु पितृन् वा जानसी यजेत् ॥४९॥

इति सञ्चिन्त्य मनसा त देव नारदोऽब्रवीत् ।

वेदेषु च पुराणेषु साङ्गोपाङ्गेषु गीयते ।

त्वमज शश्वतो धाता त्व निधानमनुत्तमम् ॥५०॥

भूत भव्य भवश्चैव त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।

चत्वारश्चश्रमा देव गृहस्थाद्यास्तथैव हि ॥५१॥

यजन्ति त्वामहरहस्तदा नृत्तित्व समाश्रितम् ।

पिता माता च सर्वस्य देवत त्व हि शश्वतम् ॥५२॥

यजते पितरं च त्व देव वापि न विदमहे ॥५३॥

यह योगी नारदजी वही पर समागत हुए थे वही पर नित्र तपश्चर्चा कर रहा था । उनकी उस प्रकार से उन करते हुए देखकर इनके हृदय में बड़ा भारी कोतूहल हो गया था ॥४७॥ जो सदा रहित है—जो अव्यय और व्यक्त्याव्यक्त समातन है और जिस सुमहात्मा एव ने इस एकात्मक त्रैलोक्य को धारण कर रक्खा है ॥४८॥ जो समस्त देवों का पिता है और जो परों से भी पर है वह किन देवों का यजन करता है तथा किन नितरों का यजन किया करना है । देवपि ने अपने मन में इन तरह से चिन्तन करके उन देव से कहा था—श्री नारदजी ने कहा—वह जो वेदों में और साङ्गोपाङ्ग पुराणों में गान किया जाता है वह आज अज-शश्वत-धाता और उत्तम निधान हैं ॥४९-५३॥ भूतभव्य और अन्य सभी भुक्त आन में प्रतिष्ठित है । हे देव ! चारों आसन जो गृहस्थ आदि होते हैं वे सभी नृत्तित्व को प्राप्त होने वाले आनका ही उनदिन यजन किए,



करते हैं । आप सभी के माता-पिता और शाश्वत देवता हैं । फिर आप किस पितर का यजन किया करते है अथवा किस देव का अभ्यर्चन करते हैं यह हम नहीं जान पाये हैं ॥५४-५६॥

अवाच्यमेतद्वक्तव्य परं गुह्यं सनातनम् ।

त्वयि भक्तिमति ब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि यथातथम् ॥५७

यत्तत् सूक्ष्मविज्ञेयमव्यक्तमचलं ध्रुवम् ।

इन्द्रियैरिन्द्रियायैश्च सर्व्वभूतैर्विवर्ज्जितम् ॥५८

स ह्यन्तरात्मा भूतानां क्षेत्रज्ञश्चैव कथ्यते ।

त्रिगुणाद्यतिरिक्तोऽसौ पुरुषश्चैव कल्पितः ॥५९

हिरण्यगर्भो भगवान् सैव बुद्धिरिति स्मृतः ।

महानिति च योगेषु प्रधानमिति कथ्यते ॥६०

सांख्यश्च कथ्यते योगे नामभिवंद्युघात्मकः ।

स च तिरूपो विश्वात्मा सर्वोऽक्षर इति स्मृतः ॥६१

धृतमेकात्मकं तेन त्रैलोक्यमिदमात्मना ।

अशरीरः शरीरेषु सर्व्वेषु निवसत्यसौ ॥६२

वसन्नपि शरीरेषु न स लिप्येत कर्मभिः ।

ममान्तरात्मा तव च ये चान्ये देहसंस्थिताः ॥६३

मित्र ने कहा—यद्यपि यह बात कहने के योग्य नहीं है क्योंकि यह विषय परमाधिक गोपनीय है और सनातन है तथापि हे ब्रह्मन् ! आप परम भक्तिमान् हैं इसी कारण से मैं इस विषय को आपके सामने ठीक २ कहूँगा ॥५७॥ जो अत्यन्त सूक्ष्म है—अविज्ञेय, अव्यक्त, अचल और ध्रुव है तथा जो इन्द्रियो, इन्द्रियायों और सर्व्व भूतो से विवर्जित हैं वह भूतों का अन्तरात्मा क्षेत्रज्ञ कहा जाया करता है । यह त्रिगुण से व्यतिरिक्त पुरुष ही कल्पित है । यह हिरण्यगर्भ भगवान् है और वह ही बुद्धि यह कहा गया है । यही भोगो में महान् और प्रधान कहा जाया करता है । ॥५८-६०॥ बहुधात्मक अर्थात् अनेको स्वरूपो वाला यह नामो से योग में सांख्य कहा जाता है । और वह तीन रूपो वाला विश्वात्मा सर्व्व तथा अक्षर यह कहा गया है ॥६१॥ यह एकात्मक त्रैलोक्य उस आत्मा के

द्वारा धारण किया गया है । यह बिना शरीर वाला सब शरीरों में निवास किया करता है ॥६२॥ शरीरों में निवास करता हुआ भी वह कर्मों से लिप्त नहीं हुआ करता है । यह मेरा अन्तरात्मा तथा आपका अन्तरात्मा है और जो अन्य देसों में सत्स्थित है ॥६३॥

सर्व्वेषां साक्षिभूतोऽसौ न ग्राह्यं केनचित् क्वचित् ।  
 सगुणो निर्गुणो विश्वो ज्ञानगम्यो ह्यसौ स्मृतः ॥६४॥  
 सर्व्वतः पाणिपादान्तः सर्व्वतोऽक्षिशिरोमुखः ।  
 सर्व्वतः श्रुतिमाल्लोके सर्व्वमावृत्य तिष्ठति ॥६५॥  
 विश्वमूर्द्धा विश्वभुजो विश्वपादाक्षिनासिकः ।  
 एकश्चरति वै क्षेत्रे स्वंरचारो यथामुग्रम् ॥६६॥  
 क्षेत्राणीह शरीराणि तेषाञ्चैव यथामुखम् ।  
 तानि वेत्ति स योगात्मा ततः क्षेत्रञ्च उच्यते ॥६७॥  
 अव्यक्ते च पुरे क्षेत्रे पुरुषस्तेन चोच्यते ।  
 विश्व बहुविध ज्ञेय स च सर्व्वत्र उच्यते ॥६८॥  
 तस्मात् स बहुरूपत्वाद्विश्वरूप इति स्मृतः ।  
 तस्यकस्य महत्त्व हि स चंकः पुरुषः स्मृतः ॥६९॥  
 महापुरुषशब्द हि विभक्त्येकः सनातन ।  
 स तु विधिक्रियायुक्तः सृजत्यात्मानमात्मना ॥७०॥

यह सबका साक्षिभूत है और कहीं पर भी किसी के द्वारा ग्रहण करने के योग्य नहीं है । यह सगुण, निर्गुण, विश्व तथा ज्ञान के ही द्वारा गम्य अर्थात् जानने के योग्य होता है ऐसा कहा गया है ॥६४॥ यह सभी ओर हाथों तथा चरणों वाला है और सभी ओर नेत्र एवं मुख वाला तथा शिर वाला है । लोक सर्वत्र श्रुतिमान् है और सबको आवृत करके स्थित रहता है ॥६५॥ यह विश्व के मूर्द्धा वाला, विश्व की भुजाओं वाला और विश्व की पदअक्षि (नेत्र) और नासिका वाला है । यह एक ही क्षेत्र में चरण किया करता है तथा सुख पूर्वक स्वच्छन्द सञ्चरण करने वाला है ॥६६॥ ये सब शरीर ही इसके क्षेत्र हैं और उनमें ही सुख पूर्वक यह निवास किया करता है । वह योगात्मा उनको जानता है ।

अतएव ये शरीर क्षेत्र कहे जाते हैं ॥६७॥ यह अव्यक्त पुर में शयन किया करता है । इसीसे वह पुरुष कहा जाया करता है । यह विश्व बहुत प्रकार का जानना चाहिए और वह सर्वत्र कहा जाता है ॥६८॥ इसी कारण से उसके बहुत रूप होने से वह विश्वरूप कहा गया है । उस एक का ही महत्त्व है और वह एक ही पुरुष कहा गया है । वह एक सनातन ही महापुरुष शब्द को धारण किया करता है । वह विधि और क्रिया के अधीन है तथा आत्मा से ही आत्मा का सृजन किया करता है ॥६९-७०॥

शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा ।

कोटिशश्च करोत्येष प्रत्यगात्मानमात्मना ॥७१॥

आकाशात् पतितं तोयं याति स्वाद्वन्तरं यथा ।

भूमे रसविशेषेण तथा गुणरसात्तु सः ॥७२॥

एक एव यथा वायुर्देहेष्वेव हि पञ्चधा ।

एकत्वञ्च पृथक्त्वञ्च तथा तस्य न सश्रयः ॥७३॥

स्थानान्तरविशेषाच्च यथाग्निर्लभते पराम् ।

सज्ञां तथा मुने सोऽयं ब्रह्मादिषु तथाप्नुयात् ॥७४॥

यथा दीपसहस्राणि दीप एकः प्रसूयते ।

तथा रूपसहस्राणि स एकः सम्प्रसूयते ॥७५॥

यदा स बुद्ध्यत्यात्मानं तदा भवति केवलः ।

एकत्वप्रलये चास्य बहुत्वञ्च प्रवर्तते ॥७६॥

नित्यं हि नास्ति जगति भूत स्यावरजङ्गमम् ।

अक्षयश्चाप्रमेयश्च सर्व्वगश्च स उच्यते ॥७७॥

सो प्रकार से—सहस्र प्रकार से तथा शत सहस्र प्रकार से और करोड़ प्रकार से यह आत्मा से ही आत्मा को प्रत्यक्ष किया करता है ॥७१॥ आकाश से मिरा हुआ जल जिस प्रकार से भिन्न स्वाद वाला हो जाता करता है और भूमि के रस विशेष से ही ऐसा होता है वैसे ही गुणों के रस से वह हो जाता करता है ॥७२॥ जिस तरह से वायु एक ही होता है किन्तु देहों में पाँच प्रकार का प्राण—श्वानादि भेदों वाला हो जाता है

उसी भाँति उसका भी एकत्व और पृथक्त्व होता है । उसका संधय नहीं है ॥७३॥ जिस तरह से स्नानान्तरो की विशेषता से परासना को प्राप्त किया करता है । हे मुनिवर ! यह भी ब्रह्म आदि सजाओ की प्राप्ति किया करता है ॥७४॥ जिस तरह से एक ही दीपक सहस्रो दीप को जला कर प्रसूत कर दिया करता है उसी प्रकार से यह ही सहस्रो रूपों को सम्प्रसूत किया करता है ॥७५॥ अब वह आत्मा का ज्ञान प्राप्त करता है उसी समय में वह केवल होता है । इसके एकत्व के प्रलय हो जाने पर ही बहुत्व की प्रकृति हो जाया करती है ॥७६॥ इस जगत् में स्यावर-जङ्गम भूत नित्य नहीं है और वह असय-अप्रमेय- और सर्वत्र गमन करने वाला कहा जाता है ॥७७॥

तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तमाः ।

अव्यक्तमावस्था या सा प्रकृतिरुच्यते ॥७८॥

ता योनि ब्रह्मणो विद्धि योऽसौ सदसदात्मकः ।

लोके च पूज्यते योऽसौ दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥७९॥

नास्ति तस्मात् परो ह्यन्यं पिता देवोऽपि वा द्विजाः ।

आत्मना स तु विज्ञेयस्ततस्त पूजयाम्यहम् ॥८०॥

स्वर्गेष्वपि हि ये केचित नमस्यन्ति देहिनः ।

तेन गच्छन्ति देवर्षे तेनोद्दिष्टफला गतिम् ॥८१॥

त देवाः स्वाश्रमस्याश्च नानामूर्तिसमाश्रिताः ।

भक्त्या सम्पूजयन्त्याद्यं गतिञ्चैषा ददाति सः ॥८२॥

स हि सर्वगतश्चैव निर्गुणश्चैव कथ्यते ।

एव मत्वा यथाज्ञान पूजयामि दिवाकरम् ॥८३॥

ये च तद्भाविता लोक एकतत्त्व समाश्रिताः ॥

एतदप्यधिक तेषां यदेक प्रविशन्त्युत ॥८४॥

हे द्विजोत्तमो ! उससे ही तीन गुणों वाला अव्यक्त समुद्रस्त होता है । अव्यक्त और व्यक्त भाव में स्थित जो है वह प्रकृति कहा जाया करती है ॥७८॥ ब्रह्म की योनि उसको ही समझना चाहें। यह वह सद् और असद् स्वरूप वाला है । वही यह लोक में दैव तथा पितृ कर्म

में पूजा जाया करता है ॥७६॥ हे द्विजो ! उससे पर अन्य कोई भी नहीं है । यही पिता तथा देव एव परात्पर है । वह आत्मा के द्वारा ही जानने के योग्य है; इसी कारण से मैं उसका अभ्यर्चन किया करता हूँ ॥७७॥ स्वर्गों में भी जो कोई देहधारी हैं वे उसको नमन किया करते हैं । हे देवर्षे ! इसी से उसके द्वारा उद्दिष्ट फल वाली गति को वे गमन किया करते हैं ॥७८॥ उसकी देवगण—अपने आश्रमों में स्थित रहने वाले तथा नाना मूर्तियों में समाश्रित आश्र की पूजा भक्ति से किया करते हैं और वह इन सबको सद्गति प्रदान किया करता है ॥७९॥ वह सबमें रहने वाला भी है और निर्गुण ही कहा जाया करता है । इस प्रकार से मानकर ज्ञान के अनुसार दिवाकर का पूजन किया करता हूँ ॥८०॥ जो लोक में एक तत्त्व में समाश्रित उसकी भावना से भावित हैं । उनका यह भी अधिक है कि वे एक में प्रवेश किया करते हैं ॥८१॥

इति गुह्यसमुद्देशस्तव नारद कीर्तितः ।

अस्मद्भक्त्यापि देवपि त्वयापि परमं स्मृतम् ॥८२॥

सुरैर्वा मुनिभिर्वापि पुराणैर्वन्द स्मृतम् ।

सर्वे च परमात्मनं पूजयन्ति दिवाकरम् ॥८३॥

एवमेतत् पुराख्यात नारदाय तु भानुना ।

मयापि च समाख्याता कथा भानोद्विजोत्तमा ॥८४॥

इदमाख्यानमाख्येयं मयाख्यात द्विजोत्तमाः ।

न ह्यनादित्यभक्ताय इदं देयं कदाचन ॥८५॥

यच्च तच्छ्रावयेन्नित्यं यच्चैव शृणुयान्नरः ।

स सहस्राक्षिप देव प्रविशेन्नाश्र सशयः ॥८६॥

मुच्येतात्तस्तथा रोगाच्छ्रुत्वेमामादितः कयाम् ।

जिज्ञासुलभते ज्ञान गतिमिष्टा तथैव च ॥८७॥

क्षणैर्न लभतेऽध्वानमिदं यः पठते मुने ।

यो यं कामयते कामं स तं प्राप्तनोत्यसशयम् ॥८८॥

तस्माद्भवद्भिः सततं स्मर्त्तव्यो भगवान् रविः ।

स च धाता विधाता च सर्वस्य जगत्तः प्रभुः ॥८९॥

हे नारद ! यह परम गोपनीय समुद्देश है जो अब आपको मैंने बतला दिया है । हे देवों ! हमारी भक्ति से भी आपने बहुत उत्तम किया है ॥८५॥ सुरों के द्वारा-मुनियों के द्वारा और पुराणों के द्वारा यह वरद कहा गया है । सब परमात्मा दिवाकर का पूजन किया करते हैं ॥८६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—यह पुराने समय में भानुदेव ने देवर्षि नारदजी को कहा था और द्विजगणों ! मैंने भी भानुदेव की कथा का वर्णन किया है ॥८७॥ हे द्विजगणों ! यह जो आध्यान मैंने आप को बतलाया है इसका कभी भूल कर भी जो आदित्यदेव का भक्त न हो उसे नहीं देना चाहिए ॥८८॥ इस उत्तम आदित्याख्यान की बहुत बड़ी महिमा है जो इसको नित्य-प्रति श्रवण कराया करता है और जो नित्य-प्रति श्रवण किया करता है वह मनुष्य सहस्राब्धिदेव में प्रवेश किया करता है—इसने लेश मात्र भी सशय नहीं है ॥८९॥ इस कथा को आदि से जो मनुष्य श्रवण किया करता है वह यदि आर्त्त होता है तो उसकी रोग से मुक्ति हो जाया करती है । यदि वह ज्ञान के प्राप्त करने का इच्छुक होता है तो वह उस ज्ञान को प्राप्त किया करता है तथा वह अभीष्ट गति को भी प्राप्त कर लेता है ॥९०॥ हे मुने ! जो इस आख्यान का पाठ किया करता है वह एक क्षण मात्र में ही मार्ग को लब्ध कर लेता है । निष्कर्षार्थ यह है कि इसका पढ़ने वाला पुरुष जो भी जिस कामना को किया करता है वह उसको निःसशय प्राप्त कर लिया करता है ॥९१॥ इसलिये आप लोगो को निरन्तर भगवान् रविदेव का स्मरण करना चाहिए । वह प्रभु इस सम्पूर्ण जगत् का धाता तथा विधाता है ॥९२॥

०२॥ १ ॥ १ ॥

। १०० १०० १ १०० १०० १०० १००

१३॥ १०० १०० १०० १०० १०० १०० १००

। १०० १०० १०० १०० १०० १०० १००

१३ १०० १०० १०० १०० १०० १०० १००

## २३—आदित्यमाहात्म्यवर्णन (२)

आदित्यमूलमखिल भ्रूलोक्य मुनिसत्तमाः ।  
 भवत्यस्माज्जगत् सर्व्व सदेवासुरमानुषम् ॥१॥  
 रुद्रोपेन्द्रमहेन्द्राणां विप्रेन्द्र त्रिदिवीकसाम् ।  
 महाद्युतिमताश्च व तेजोऽय साव्वलौकिकम् ॥२॥  
 सव्वर्त्तमा सव्वलोकेशो देवदेवः प्रजापतिः ।  
 सूर्य्य एव त्रिलोकस्य मूल परमदेवतम् ॥३॥  
 अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।  
 आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥४॥  
 सूर्यात् प्रसूयते सर्व्वं तत्र चैव प्रलीयते ।  
 भावाभावौ हि लोकानामादित्याग्नि-सृता पुरा ॥५॥  
 एतत्तु ध्यानिना ध्यान मोक्षश्चाप्येष मोक्षिणाम् ।  
 तत्र गच्छन्ति निर्व्वर्ण जायन्तेऽस्मात् पुनः पुनः ॥६॥  
 क्षणा मुहूर्त्ता दिवसा निशा पक्षाश्च नित्यशः ।  
 मासाः सम्वत्सराश्चैव ऋतवश्च युगानि च ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनियेष्ठ ! यह समस्त भ्रूलोक्य आदित्य देव के ही मूल बाला है । इसी से यह सम्पूर्ण देव-असुर और मनुष्यो से युक्त जगत् समुत्पन्न हुआ करता है ॥१॥ रुद्रदेव-उपेन्द्र-महेन्द्र विप्रेन्द्र तथा देवो का और महती युति वालो का यही साव्वलौकिक तेज होता है ॥२॥ यह सबकी आत्मा है—सत्र लोको का ईश है—देवो का भी देव और प्रजापति है । यह सूर्यदेव ही तीनों लोकों का मूल एव परम देवत है । ॥३॥ अग्नि में अर्पित की हुई आहुति भली भाँति आदित्य देव को पहुँचा करती है । इस आदित्य देव से ही वर्षा हुआ करती है और वृष्टि से अन्न की समुत्पत्ति हुआ करती है तथा उस अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है ॥४॥ इन सूर्यदेव से ही समस्त पदार्थों का उत्पन्न हुआ करता है तथा अन्न चन्दी में सबका निम्न भी हो जाता है । महिषे-साव-और-अमावस्य में दोनों

जो लोको के हैं वे आदित्य देव से ही निःसृत हुए थे अर्थात् लोको की उत्पत्ति और विनाश दोनों के कारण आदित्य ही हैं अन्य नहीं हैं ॥५॥ यही ध्यान करने वालो का ध्यान है और यही मोक्ष प्राप्त करने वालो का मोक्ष है । वही पर लोग निर्वाण को जाया करते हैं और इन्ही देव से पुनः पुनः जन्म ग्रहण किया करते हैं ॥६॥ क्षण-मृहर्त्त-दिवस-रात्रि-रक्ष नित्यही-मास-सम्यत्सर-ऋतुएँ और युग ये सभी आदित्य देव से ही हुआ करते हैं ॥७॥

अथादित्यादृते ह्येषा कालसरया न विद्यते ।

कालदृते न नियमो नाग्नौ विहरणक्रिया ॥८॥

ऋतुनामविभागश्च ततः पुष्पफल कुतः ।

कृतो वं शम्यनिष्पत्तिस्तृणोपधिगणः कुतः ॥९॥

अभावो व्यवहाराणा जन्तूना दिवि चेह च ।

जगत्प्रभावादिशते भास्कराद्वारितस्करात् ॥१०॥

नावृष्ट्या तपते सूर्यो नावृष्ट्या परिशुष्यति ।

नावृष्ट्या परिधिं धत्ते वारिणा दीप्यते रविः ॥११॥

घसन्ते कपिलः सूर्यो ग्रीष्मे काञ्चनसन्निभः ।

श्वेतो वर्षासु वर्णन पाण्डुः शरदि भास्करः ॥१२॥

हेमन्ते ताम्रवर्णभिः शिशिरे लोहितो रविः ।

इति वर्णाः समाख्याताः सूर्यस्य ऋतुसम्भवाः ॥ ३

ऋतुस्वभाववर्णैश्च सूर्यः क्षेमसुभिर्लक्ष्यते ।

अथादित्यस्य नामानि सामान्यानि द्विजोत्तमाः ॥१४॥

बिना आदित्य देव के इन उक्त समयो की सख्या ही नहीं हो सकती है । काल की सख्या और अवसर के बिना न कोई नियम ही होता है और न अग्नि में विहरण क्रिया हो होती है ॥८॥ जब ऋतुओ का ही कोई विभाग नहीं होगा तो पुष्प और फल भी कैसे समुत्पन्न होंगे । ऋतु-विभाग न होने पर रास्य की निष्पत्ति भी सम्भव नहीं हो सकती है और तृण तथा औषधियो की भी उत्पत्ति भी नहीं हो सकती है ॥९॥ काल-विभाग के अभाव में समस्त व्यवहारो का भी जो कि जीवो का इस



सोक में तथा दिवलोरु में होते हैं अभाव हो जायगा । तस्करो के धारण करने वाले भास्कर देव से यह जगत् प्रभाव से प्रवेश किया करता है ॥१॥ वृष्टि के न होने से सूर्य नहीं सपता है और अवृष्टि से परिणुष्क भी नहीं होता है । अवृष्टि से परिधि को धारण नहीं किया करता है । जल से ही रविदेव दीप्त हुआ करते हैं ॥११॥ वसन्त ऋतु में सूर्य कपिल वर्ण वाले होते हैं—ग्रीष्म काल में सुवर्ण के सदृश वर्ण वाले हुआ करते हैं । वर्षा ऋतु में श्वेत वर्ण से युक्त तथा शरत्काल में भास्कर पाण्डु वर्ण वाले हुआ करते हैं ॥१२॥ हेमन्त ऋतु में ताम्रवर्ण की आभा वाले होते हैं और शिशिर में रवि लोहित वर्ण वाले हुआ करते हैं । ये वर्ण सूर्यदेव के मित्र २ ऋतुओं में हुआ करते हैं ॥१३॥ ऋतुओं के स्वभाव के अनुसार जो वर्ण होते हैं उन्हीं के द्वारा सूर्यदेव क्षेम और सुमिक्ष के करने वाले हुआ करते हैं । इसके अनन्तर हे द्विजगण ! आदित्य के सामान्य नामों को बतलाया जाता है ॥१४॥

द्वादशैव पृथक्त्वेन तानि वक्ष्याम्यशेषतः ।

आदित्यः सविता सूर्यो मिहिरोऽर्कः प्रभाकरः ॥१५॥

मार्त्तिण्डो भास्करो भानुश्चित्रमानुर्दिवाकरः ।

रविर्द्वादशमिस्तेषां ज्ञेयः सामान्यनामभिः ॥१६॥

विष्णुर्धाता भगः पूषा मित्रेन्द्रो वरुणोऽर्यमा ।

विवस्वानंशुमास्त्वष्टा पर्जन्यो द्वादशः स्मृतः ॥१७॥

इत्येते द्वादशादित्याः पृथक्त्वेन व्यवस्थिताः ।

उत्तिष्ठन्ति सदा ह्येते मासर्द्वादशभिः क्रमात् । १८

विष्णुस्तपति चैत्रे तु वंशाखे चार्घ्यमा तथा ।

विवस्वान् ज्यैष्ठमासे तु आपादे चाशुमान् स्मृतः ॥१९॥

पञ्जन्यः श्रावणे मासि वरुणः प्रीष्ठसप्तके ।

इन्द्र आश्वयुजे मासि घाता तपति कार्तिके ॥२०॥

मार्गशीर्षे तथा मित्रः पौषे पूषा दिवाकरः ।

माघे भगस्तु विज्ञयस्त्वष्टा तपति फाल्गुने ॥२१॥

ये द्वादश ही नाम हैं किन्तु उनको पृथक् २ पूर्णतया कहते हैं—  
 आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रभाकर, मार्तण्ड, भास्कर, भानु,  
 चित्रभानु, दिवाकर—इन द्वादश नामों से रवि देव का ज्ञान किया जाता  
 है जो कि सूर्य के सामान्य नाम है ॥१५-१६॥ विष्णु, धाता, भग, पूषा,  
 मित्र, इन्द्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, अशुमान्, त्वष्टा और पर्जन्य ये भी  
 अन्य द्वादश सूर्यदेव के नाम हैं तिनसे सूर्य को कहा गया है ॥१७॥ ये  
 द्वादश आदित्य पृथक् रूप से व्यवस्थित किये गये हैं । ये सदा क्रम से  
 बारह नामों से बारह मासों में उदित हुआ करते हैं ॥१८॥ चैत्र मास  
 में विष्णु तपा करते हैं वैशाख में अर्यमा नामधारी सूर्य तपते हैं । ज्येष्ठ  
 मास में विवस्वान् और आषाढ मास में अशुमान् तपा दिया करते हैं  
 ॥१९॥ श्रावण मास में पर्जन्य और भाद्रपद में वरुण नाम वाले सूर्य  
 तपा करते हैं । आश्विन मास में इन्द्र तथा कार्तिक में धाता नामक  
 सूर्य तपते हैं ॥२०॥ मार्गशीर्ष में मित्र-पूषा मास में पूषा दिवाकर  
 तपते हैं । माघ मास में जो सूर्य तपा दिया करते हैं वह भग नाम वाले  
 होते हैं और फाल्गुन में त्वष्टा नामक सूर्य लोको को तपा दिया करते  
 हैं ॥२१॥

शतद्द्वादशभिर्विष्णु रश्मिभिर्दीप्यते सदा ।

दीप्यते गौसहस्रेण शतैश्च त्रिभिरय्यमा ॥२२॥

द्विःसप्तकं विवस्वास्तु अशुमान् पञ्चभिस्त्रिभिः ।

विवस्वानिव पर्जन्या वरुणश्चाय्यमा तथा ॥२३॥

मित्रद्भृगवास्त्वाष्टा सहस्रेण शतेन च ।

इन्द्रस्तु द्विगुणं पङ्क्तिर्धातिकादशभिः शतैः ॥२४॥

सहस्रेण तु मित्रो व पूषा तु नवभिः शतैः ।

उत्तरापक्रमेऽर्कस्य वदन्ते रश्मयस्तथा ॥२५॥

दक्षिणोपक्रमे भूयो हसन्ते सूर्यरश्मयः ।

एष रश्मिसहस्रन्तु सूर्यलोकादनुग्रहम् ॥२६॥

एष नाम्ना चतुर्विंशदेक एषा प्रकीर्तितः ।

विस्तरेण सहस्रन्तु पुनरन्यत् प्रकीर्तितम् ॥ ७

विष्णु नामधारी सूर्यदेव सदा बारह सौ किरणों के द्वारा ताप दिया करते हैं । एक हजार तीन सौ रश्मियों से अर्यमा दीप्त हुआ करते हैं ॥२२॥ विवस्वान् चौदह सौ रश्मियों के द्वारा ताप देते हैं और अशुमान् पन्द्रह सौ किरणों के द्वारा तपा करते हैं । विवस्वान् की ही भांति पर्जन्य-वरुण-अर्यमा तपा करते हैं । मित्र की ही भांति त्वष्टा शत सहस्र किरणों से दीप्त होते हैं और धाता ग्यारह सौ किरणों के द्वारा ताप दिया करते हैं ॥२३-२४॥ मित्र नाम वाले सूर्यदेव एक सहस्र रश्मियों के द्वारा तपा पूषा नौ सौ किरणों से दीप्त हुआ करते हैं । उत्तर उपक्रम में सूर्य की रश्मियाँ बढ़ा करनी हैं ॥ ५॥ फिर दक्षिणोपक्रम में अर्थात् दक्षिणायन में सूर्य की किरणें ह्रास को प्राप्त हुआ करनी हैं । इस प्रकार से सहस्र रश्मियाँ सूर्यलोक से अनुग्रह दिया करनी हैं ॥२६॥ इस रीति से यह एक ही सूर्यदेव चौतीस नामों के द्वारा कहे गये हैं । विस्तार से फिर इनके एक सहस्र नाम भी कहे गये हैं जो कि अन्य हैं ॥२७॥

ये तन्नामसहस्रेण स्तुवन्त्येक प्रजापते ।

तेषा भवति किं पुण्य गतिश्च परमेश्वर ॥२८॥

शृणुष्व मुनिशाद्द्वंलाः सारभूत सनातनम् ।

अल नामसहस्रेण पठन्नेव स्तव शुभम् ॥२९॥

यानि नामानि गुह्यानि पवित्राणि शुभानि च ।

तानि वः कीर्त्तयिष्यामि शृणुष्व भास्करस्य वै ॥३०॥

विकर्त्तनो विवस्वाश्च मार्त्तण्डो भास्करो रविः ।

लोकप्रकाशकः श्रीमांलोकचक्षुर्महेश्वरः ॥३१॥

लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्त्ता हर्त्ता तमिस्रहा ।

तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्ववाहनः ॥३२॥

गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सव्यदेवनमस्कृतः ।

एकविंशतिरित्येष स्तव इष्टः सदा रवेः ॥३३॥

धारीरारोग्यदश्चैव धनवृद्धियशस्कृतः ।

स्तवराज इति स्यात्स्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥३४॥

य एतेन द्विजश्रेष्ठा द्विसन्ध्येऽस्तमनोदये ।

स्तौति सूर्यं शुचिभूत्वा सर्वपापः प्रमुच्यते ॥३५॥

मुनिगण ने कहा—हे प्रजापते ! जो लोग सूर्य के एक सहस्र नामों के द्वारा उनका स्तवन किया करते हैं हे परमेश्वर ! उन स्तोताओं का क्या पुण्य-फल हुआ करता है और उनकी क्या गति होती है ? ॥३५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिशार्दूलो ! अब आप लोग सनातन सार-भूत का श्रवण कीजिए । इस प्रकार के शुभ स्तव का पाठ करते हुए ही परम कल्याण होता है फिर एक सहस्र नामों के द्वारा स्तवन करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है ॥३६॥ जो शुभ नाम परम गोपनीय हैं और पवित्र हैं उन भास्कर भगवान् के नाम हैं उनका ही मैं आप लोगों के सामने वर्णन करता हूँ । आप लोग उनका श्रवण करिए ॥३७॥ वे परम शुभ नाम ये हैं—विकर्तन, विवस्वान्, मार्तण्ड, भास्कर, रवि, लोक, प्रकाशक, श्रीमान्, लोचनशु, महेश्वर, लोकाक्षी, त्रिलोकेश, कर्मा, हर्ता, समिपहा, तपन, तापन, शुचि, और सप्ताश्व माहन ॥३८-३९॥ गभस्ति हस्त, ब्रह्मा, सर्वदेवनमस्कृत—यह इक्कीस नामों का स्तव है जो रविदेव को सदा दृष्ट होता है ॥४०॥ यह स्तव शरीर के आरोग्य को प्रदान करने वाला और धन वृद्धि तथा यश को देने वाला है । इसको स्तव राज तीनों लोकों में कहा जाता है और यह इसी नाम से प्रसिद्ध भी है ॥४१॥ हे श्रेष्ठ द्विजगणो ! इस स्तव के द्वारा दोनों सन्ध्याओं के समय में अर्धाङ्ग उदय काल और अस्त मन वेला में पवित्र होकर सूर्यदेव की स्तुति किया करता है वह सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ४२॥

मानस वाचिक वापि देहज कर्मज तथा ।

एकजप्येन तत्सर्वं नश्यत्यर्कस्य सन्निधौ ॥४३॥

एकजप्यश्च होमश्च सन्ध्योपासनमेव च ।

धूपमन्त्रार्घ्यमन्त्रश्च बलिमन्त्रस्तथैव च ॥४४॥

अन्नप्रदाने स्नाने चःप्रथिपाते प्रदक्षिणे ।

पूजितोऽयं महामन्त्रः सर्वपापहरः शुभः ॥४५॥

तस्मादभ्युप्यं प्रयत्नेन स्तवेनानेन वं द्विजाः ।

स्तुवीध्व वरदं देवं सर्वकामफलप्रदम् ॥३६

चाहे कंमा भी पाप हो मानम हो, वाचिक हो, देहज हो या कर्मज हो इस स्तव के एक ही बार जाप करने से जो कि सूर्य की सन्निधि में स्थित होकर किया जावे तो वे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं ॥३६॥ एक बार इसका जप-होम-सन्ध्यावासन-धूप मन्त्र-अर्घ्य मन्त्र तथा वलि मन्त्र अन्न के प्रदान में, स्नान, प्रणिपात करने में और परिक्रमा करने में पूजित किया हुआ यह महामन्त्र परम शुभ होता है और सब पापों का हरण करने वाला है ॥३७-३८॥ हे द्विजगणो ! इस कारण से आप लोग प्रयत्न के साथ इस स्तव के द्वारा समस्त कामनाओं के फल की प्रदान करने वाले वरद सूर्यदेव की स्तुति किया करो ॥३६॥

### २४—पञ्चतीर्थविधिवर्णन

अतः परं प्रवक्ष्यामि पञ्चतीर्थविधिं द्विजाः ।

यत्फलं स्नानदानेन देवताप्रेक्षणेन च ॥१

मार्कण्डेयहृद गत्वानरश्चोदङ्मुखः शुचिः ।

निमज्जेत्तत्र वाराहीनिम मन्त्रमुदीरयेत् ॥२

ससारसागरे मग्न पापग्रस्तमचेतनम् ।

ग्राहि मां भगनेद्यच्च त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते ॥३

नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहराय च ।

स्नानं करोमि देवेश मम नश्यतु पातकम् ॥४

नाभिमात्रे जले स्नात्वा विधिवद्देवतां श्रुषीन् ।

तिलोदकेन मतिमान्पितृश्रान्याश्च तर्पयेत् ॥५

स्नात्वा तथैव चाऽऽचम्य ततो गच्छेच्चिवालयेम् ।

प्रविश्य देवतागारं कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम् ॥६

मूलमन्त्रेण मार्कण्डेयस्य चेश्वरम् ।

अघोरेण च भो विप्राः प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजो ! इससे आगे हम अब पञ्चतीर्थ की विधि का वर्णन करते हैं—जो फल स्नान-दान और देवता के दर्शन से होता है वह सब बताया जाता है ॥१॥ मार्कण्डेय हृद मे जाकर मनुष्य को पवित्र होकर उत्तर की ओर मुख वाला होकर उस हृद मे निमज्जन करना चाहिए और तीन बार इस अधोवर्णित मन्त्र का उच्चारण करे ॥२॥ हे त्रिपुरामुर के नाशक ! हे भग के नेत्रों का हनन करने वाले ! इस ससार रूप सागर मे मन-पापों से ग्रसित और ज्ञान से शून्य मेरी रक्षा करो । आपकी सेवा मे मेरा नमस्कार है ॥३॥ भगवान् शान्त स्वरूप और सब पापों के हरण करने वाले शिव के लिये मेरा नमस्कार है । हे देवेश्वर ! मैं यहाँ स्नान करता हूँ—मेरा पातक नष्ट हो जावें ॥४॥ नाभिमान्न जल मे स्नान करके विधि के साथ मतिमान् पुरुष को तिलोदक के द्वारा देवता ऋषि और अन्य पितृगणों का सर्पण करना चाहिए ॥५॥ स्नान करके तथा आचमन करके फिर शिवालय मे गमन करना चाहिए । उस देवता के स्थान मे प्रवेश करके यहाँ पर उनकी लीन प्रदक्षिणा करे ॥६॥ मार्कण्डेय के ईश्वर का मूल मन्त्र से भलीभाँति पूजन करे और हे विप्रगण ! अधोर मन्त्र के द्वारा प्रणाम करके शिव को प्रसन्न करना चाहिए ॥७॥

त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु वमस्ते शशिभूषण ।

ग्राहि मा त्व विरूपाक्ष महादेव नमोऽस्तु ते ॥८॥

मार्कण्डेय हृदे त्वेव स्नात्वा दृष्ट्वा च शकरम् ।

दशानामश्वमेधाना फल प्राप्नोति मानवः ॥९॥

पापं सर्वविनिमुक्तः शिवलोक स गच्छति ।

तत्र भुक्त्वा यरान्भोगान्यावदाभूतसप्लवम् ॥१०॥

दहनोक समासाद्य भवेद्विप्रो बहुश्रुतः ।

शकरं योगमासाद्य ततोमोक्षमवाप्नुयात् ॥११॥

कल्पवृक्ष ततो गत्वा कृत्वा त त्रिः प्रदक्षिणम् ।

पूजयेत्परया भक्त्या मन्त्रेणानेन त वटम् ॥१२॥

ओं नमो व्यक्तरूपाय महाप्रलयकारिणे ।

महद्रसोपविष्टाय न्यग्रोधाय नमोऽस्तु ते ॥१३॥

अमरस्त्व सदा कल्पे हरेश्चाऽऽयतनं वट ।

न्यग्रोव हर मे पाप कल्पवृक्ष नमोऽस्तु ते ॥१४॥

हे त्रिलोचन ! हे शशि के भूषण वाले ! आपको नमस्कार है—आपकी सेवा में प्रणाम है ! हे विरूपाक्ष ! हे महादेव ! आप मेरी रक्षा कीजिए । आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥२॥ इस प्रकार से मार्कण्डेय हृद में स्नान करके तथा भगवान् शङ्कर का दर्शन करके मनुष्य दश अवशमेघ यज्ञो ४ करने का पुण्य-फल प्राप्त कर लिया करता है ॥६॥ वह मानव सब पापों से निर्मुक्त होकर सीधा शिवलोक में गमन किया करता है । वहाँ पर परम श्रेष्ठ भोगों का उपभोग जब तक समस्त भूतों का सत्त्व होता है किया करता है ॥१०॥ फिर पुण्य के क्षीण हो जाने पर इस लोक में जन्म ग्रहण करके वह बहुश्रुत विप्र होता है और यहाँ पर शङ्कर योग को प्राप्त करके फिर मोक्ष को प्राप्ति किया करता है ॥११॥ इसके उपरान्त कल्प वृक्ष के समीप में जावे और उसकी तीन बार परिक्रमा करे । फिर पराभक्ति से निम्न कथित मन्त्र के द्वारा उस वट का अभ्यर्चन करना चाहिए ॥१२॥ महा प्रलय के करने वाले व्यक्त रूपधारी महद्रस से उपाविष्ट न्यग्रोध के लिये नमस्कार है ॥१॥ आप तो सदा कल्प में भी अमर हैं । हे वट ! आप तो श्री हरि का आश्रित हैं । हे, न्यग्रोध ! आप मेरे पाप का हरण करो । हे कल्पवृक्ष ! आपके लिये मेरा प्रणाम है ॥१४॥

भक्त्या प्रदक्षिण कृत्वा नत्वा कल्पवट नरः ।

सहसा मुच्यते पापाज्जीर्णत्वच इवोरगः ॥१५॥

छाया तस्य समाक्रम्य कल्पवृक्षस्य भो द्विजाः ।

ब्रह्महत्या नरो जह्यात्पापेष्वन्येषु का कथा ॥१६॥

दृष्ट्वा कृष्णाङ्गसभूतं ब्रह्मतेजोभयं परम् ।

न्यग्रोधाकृतिक विष्णुं प्रणिपत्य च भो द्विजाः ॥१७॥

राजसूयाश्वमेधाम्यां फलं प्राप्नोति चाधिकम् ।  
 तथा स्ववशमुद्धत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥१८॥  
 वैनतेय नमस्कृत्य कृष्णस्य पुरतः स्थितम् ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तस्ततो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥१९॥  
 दृष्ट्वा वटं वैनतेय यः पश्येत्पुरपोत्तमम् ।  
 सकर्षणं सुभद्रा च स याति परमा गतिम् ॥२०॥  
 प्रविश्याऽऽयतनं विष्णोः कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम् ।  
 सकर्षणं स्वमन्त्रेण भक्त्याऽऽपूज्यप्रसादयेत् ॥२१॥

भक्तिभाव से प्रदक्षिणा करके तथा कल्प वट को नमस्कार करके मनुष्य सहसा पाप से छुटकारा पा जाया करता है जैसे जीर्ण स्वचा वाला सर्प अपनी कंचुली को तुरन्त ही छोड़ दिया करता है ॥१५॥ हे द्विजो ! उस मत्स्यवृक्ष की छाया में स्थित होकर मनुष्य ब्रह्म हत्या के पाप से भी मुक्त हो जाया करता है फिर छोटे-मोटे अन्य पापों को तो बात ही क्या है ॥१६॥ हे द्विजो ! श्रीकृष्ण के अङ्ग से समुत्पन्न ब्रह्म तेज से परिपूर्ण न्यग्रोध की आकृति वाले परम विष्णु को प्रणाम करके मनुष्य राजसूय और अश्व इन दोनों यज्ञों के करने का पुण्य-फल प्राप्त कर लिया करता है और उससे भी अधिक फल प्राप्त कर लेता है । अपने वश वा उद्धार करके वह ध्वन्त में विष्णु लोक को गमन कर जाता है ॥१७-१८॥ भगवान् श्रीकृष्ण के आगे स्थित रहने वाले वैनतेय ( गरुड ) को प्रणाम करके सब पापों से छुटकारा पाकर फिर विष्णु के पुर को गमन करता है ॥१९॥ वट और वैनतेय का दर्शन करके जो पुरुषोत्तम प्रभु-सङ्कर्षण तथा सुभद्रा का दर्शन किया करता है वह परम गति को प्राप्त होजाता है ॥२०॥ भगवान् विष्णु के मन्दिर में प्रवेश करके उनकी तीन प्रदक्षिणा करे फिर सकर्षण प्रभु को उनके मन्त्र के द्वारा भक्ति से अर्चना करके उनको प्रसन्न करना चाहिए ॥२१॥

नमस्ते हलधृग्राम नमस्ते मुशलायुध ।

नमस्ते रेवतीकान्त नमस्ते भक्तवत्सल ॥२२॥



नमस्ते वलिनां श्रेष्ठ नमस्ते धरणीधर ।  
 प्रलम्बारे नमस्तेऽस्तु ग्राहि मां कृष्णपूर्वज ॥२३॥  
 एव प्रसाद्य चानन्तमजेय त्रिदशार्चितम् ।  
 कैलासशिखराकारं चन्द्रात्कान्ततराननम् ॥२४॥  
 नीलवस्त्रधरं देवं फणाविकटमस्तकम् ।  
 महाबलं हलधरं कुण्डलंकविभूषितम् ॥२५॥  
 रोहिणेयं नरो भक्त्या तभेदभिमतं फलम्  
 सर्वपार्ष्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२६॥  
 आभूतसप्लवं यावद्भुक्त्वा तत्र सुख नरः ।  
 पुण्यक्षयादिहाऽऽगत्य प्रवरे योगिनां कुले ॥२७॥  
 ब्राह्मणप्रवरो भूत्वा सर्वशास्त्रार्थपारगः ।  
 ज्ञान तत्र समासाद्य मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम् ॥२८॥

सङ्कल्पेण भगवान् का मन्त्र यह है—हे बलधारियो में परम श्रेष्ठ ! हे हल के धारण करने वाले ! हे राम ! हे मुसल का आयुध रखने वाले ! हे रेवती के स्वामिन् ! हे भक्तों पर कृपा करने वाले ! आपकी सेवा में मेरा नमस्कार है और पुनः नमस्कार है । हे धरणी को धारण करने वाले ! आपको वारम्बार नमस्कार है । हे प्रलम्ब के दमन करने वाले ! हे कृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता ! आपको मेरा नमस्कार है । आप मेरी रक्षा कीजिए ॥२२-२३॥ उन अनन्तर-अजेय-देवों के द्वारा पूजित कैलास के शिखा के आकार वाले और चन्द्र से भी अधिक सुन्दर मुसल वाले—नीले वर्ण के वस्त्र को धारण करने वाले—फल के समान विकट मस्तक वाले—महान् बलधारी—कुण्डली से भूषित—रोहिणेय भगवान् हलधर को इस प्रकार से-भक्तिभाव से प्रसन्न करके मनुष्य अपना अभिमत फल प्राप्त किया करता है और सब पापों से विमुक्त होकर अन्त में वह विष्णुलोक में समन विद्या करता है ॥२४-२६॥ महा प्रलय के समय तक वहाँ पर वह मनुष्य सुखोपभोग करता है । फिर पुण्यो का क्षय होने पर यहाँ पर योगियों के कुल में जो बहुत ही श्रेष्ठ होता है उसमें जन्म लेता है और परम श्रेष्ठ सव शास्त्रों का प्रारगामी ब्राह्मण होता है । उस जन्म में

परम ज्ञान की प्राप्ति करके वह परम दुर्लभ गति प्राप्त कर लेता है ॥२७-२८॥

एवमभ्यर्च्य हलिन ततः कृष्ण विचक्षणः ।  
 द्वादशाक्षरमन्त्रेण पूजयेत्सुसमाहितः ॥२९॥  
 द्विषट्कवर्णमन्त्रेण भक्त्या ये पुरुषोत्तमम् ।  
 पूजयन्ति सदा धीरास्ते मोक्ष प्राप्नुवन्ति वै ॥३०॥  
 न ता गतिं सुरा यान्ति योगिनो नैव सोपमाः ।  
 या गतिं यान्ति भो विप्रा द्वादशाक्षरतत्पराः ॥३१॥  
 तस्मात्तेनैव मन्त्रेण भक्त्या कृष्ण जगद्गुरुम् ।  
 संपूज्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥३२॥  
 जय कृष्ण जगन्नाथ जय मर्यादनाशन ।  
 जय चाणूरवेशिष्ठ जय वसन्तिपूदन ॥३३॥  
 जय पद्मपलाशाक्ष जय चक्रगदाधर ।  
 जय नीलाम्बुदध्याम जय सर्वसुखप्रद ॥३४॥  
 जय देव जगत्पूज्य जय ससारनाशन ।  
 जय लोकपते नाथ जय वाञ्छाफलप्रद ॥३५॥

इस प्रकार से हलधर का अर्चन करके फिर विचक्षण पुरुष को द्वादशाक्षर (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) मन्त्र से सुसमाहित होकर कृष्ण का पूजन करना चाहिए ॥२९॥ जो द्वादशाक्षर मन्त्र से भक्तिभाव के साथ पुरुषोत्तम प्रभु का पूजन किया करते हैं वे धीर पुरुष निश्चय ही मोक्ष को प्राप्त किया करते हैं ॥३०॥ जिस परमोत्तम गति को द्वादशाक्षर मन्त्र में परायण भक्त लोग प्राप्त किया करते हैं हे विप्रो ! उस गति को सुरगण-योगीजन और महान् से भी महान् लोग भी प्राप्त नहीं किया करते हैं ॥३१॥ अतएव उसी द्वादशाक्षर मन्त्र के द्वारा जगत् के गुरु श्री कृष्ण का गन्ध-पुष्पादि से भली भाँति पूजन करके तथा प्राणिपात करके उनको प्रसन्न करना चाहिए ॥३२॥ फिर अधो लिखित पद्यों द्वारा प्रार्थना करे—हे जगन्नाथ ! हे कृष्ण ! आपकी जय हो । हे सब व्यथों का विनाश करने वाले ! आपकी जय हो । हे चाणूर और केशी के

हृन्त करने वाले ! हे कंस के मारने वाले ! आपकी जय हो ॥३३॥ हे पद्म-पलाश के समान नेत्रों वाले ! हे चक्र तथा गदा के धारण करने वाले ! आपकी जय हो । हे नीलमेघ के सदृश वर्ण वाले ! आपतो सभी को सुख प्रदान करने वाले हैं, आपकी सदा जय हो । हे जगत् के पूज्य ! आपही इस ससार के विनाश करने वाले हैं और आप सबकी इच्छाओं के फल प्रदान करने वाले महा पुरुष हैं । हे लोकों के स्वामिन् ! हे नाथ ! आपकी सर्वदा जय हो ॥३४-३५॥

ससारसागरे धारे निःसारे दुःखफेनिले ।

क्रोधप्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसप्लवे ॥३६

नानारोगोमिकलिले मोहावतंसुदुस्तरे ।

निमग्नोऽहं सुरश्रेष्ठ त्राहि मां पुरुषोत्तम ॥३७

एव प्रसाद्य देवेश वरद भक्तवत्सलम् ।

सर्वपापहरं देव सर्वकामफलप्रदम् ॥३८

पीनासं द्विभुजं कृष्णं पद्मपत्रायतेक्षणम् ।

महोरस्कं महाबाहुं पीतवस्त्रं शुभाननम् ॥३९

शङ्खचक्रगदापाणिं मुकुटाङ्गदभूषणम् ।

सर्वलक्षणसंयुक्तं वनमालाविभूषितम् ॥४०

दृष्ट्वा नरोऽञ्जलिं कृत्वा दण्डवत्प्रणिपत्य च ।

अश्वमेधसहस्राणां फलं प्राप्नोति वै द्विजाः ॥४१

यत्फलं सर्वतीर्थेषु स्नाने दाने प्रकीर्तितम् ।

नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४२

हे सुरो मे परम श्रेष्ठ ! यह संसार रूरी सागर परम घोर और सारशून्य है तथा अनेक दुःख ही इसमें फेनों के समान भरे हुए हैं । यह ससार सागर क्रोध रूपी आहो से परिपूर्ण है—महान् रौद्ररूप वाला और विषयों के जल से भरा पूरा है । अनेक रोगों की तरङ्गों से कलिल और मोहरूपी भँवरों से परम दुस्तर है । ऐसे इस ससाररूपी सागर में मैं निमग्न हो रहा हूँ । हे पुरुषोत्तम ! आप मेरी रक्षा कीजिए ॥३६-३७॥ इस तरह से देवेश्वर भगवान् वरदान देने वाले श्री कृष्ण को प्रसन्न करे

जोकि अपने मर्त्यों पर परम कृपा करने वाले हैं—सब पापों के हरने वाले और सब मनोरथों के फल प्रदान करने वाले हैं ॥३८॥ परिपुष्ट स्कन्धों वाले, दो भुजाओं से युक्त, पद्मपत्रों के समान आयत नेत्रों वाले, महान् यशस्व्य वाले, बड़ी भुजाओं से संयुक्त, पीतवर्ण के वस्त्र धारी, परम शुभ मुख वाले, शङ्ख-चक्र-गदा-आयुधों को हाथों में धारण करने वाले, मुकुट एवं अङ्गुष्ठों में भूषित, व वनमाला धारी तथा सभी सुलसणों से युक्त श्री कृष्ण का दर्शन करके मनुष्य दण्ड की भाँति भूमि में पड़कर उनको जो मनुष्य प्रणाम किया करता है हे द्विजगण ! वह सहस्रो अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त किया करता है ॥३९-४१॥ जो पुण्य फल सभी तीर्थों में जाकर स्नान तथा दान करने से प्राप्त होना बताया गया है उस सम्पूर्ण पुण्य फल को मनुष्य केवल श्री कृष्ण का दर्शन कर तथा उनको प्रणाम करके ही प्राप्त कर लिया करता है ॥४२॥

यत्फलं सर्वरत्नाद्यं रिष्टे बहुसुवर्णके ।

वरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४३॥

यत्फलं सर्ववेदेषु सर्ववेदेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ।

तत्फलं समवाप्नोति नरः कृष्णं प्रणम्य च ॥४४॥

यत्फलं सर्वदानेन यमेन नियमेन च ।

नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४५॥

तपोभिविविधैरुग्रैर्यत्फलं समुदाहृतम् ।

नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४६॥

यत्फलं ब्रह्मचर्येण सम्यक्कीर्णेन तत्कृतम् ।

नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४७॥

यत्फलं च गृहस्थस्य यथोक्ताचारवर्तिनः ।

नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४८॥

यत्फलं वनवासेन वानप्रस्थस्य कीर्तितम् ।

नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४९॥

जो पुण्यफल समस्त रत्नादि से युक्त वहुत से सुवर्ण के दान करने पर मिला करता है उसी फल को मनुष्य श्री कृष्ण भगवान् का दर्शन

प्राप्त करके तथा प्रणाम करके ही प्राप्त कर लिया करता है ॥४३॥ जो फल समस्त वेदों में बताया गया है और जो सभी यज्ञों के यजन करने से प्राप्त हुआ करता है उसी फल को मनुष्य श्री कृष्ण को प्रणिपात करके ही प्राप्त कर लिया करता है ॥४४॥ जो पुष्प फल सब प्रकार के दानों के करने से, यमों और नियमों के परिपालन से प्राप्त होता है वह सभी फल श्री कृष्ण के दर्शन तथा प्रणाम करके भक्त मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥४५॥ जो फल अनेक प्रकार के तपों के द्वारा प्राप्त होना बताया गया है मनुष्य उसी सम्पूर्ण फल को श्री कृष्ण का दर्शन करके और उसको भक्तिभाव से प्रणाम करके ही प्राप्त कर लिया करता है । ॥४६॥ जो फल भली-भाँति ब्रह्मचर्य व्रत के परिपालन से होता है उसको केवल श्री कृष्ण भगवान् का धरण दर्शन करके तथा दण्डवत्-प्रणाम करके मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥४७॥ शास्त्र में बताये हुए आचार के अनुसार रहने वाले गृहस्थाश्रमी को जो फल मिला करता है उसी फल को श्री कृष्ण के दर्शन और उनको प्रणाम करने से मनुष्य पा लिया करता है ॥४८॥ वानप्रस्थाश्रमी को जो फल वन में ही नियास करने से मिलता है उसको मनुष्य श्री कृष्ण भगवान् का दर्शन तथा प्रणाम करके प्राप्त कर लिया करता है । श्री कृष्ण के दर्शन और प्रणाम करने का महान् उत्तम फल होता है ॥४९॥

सन्यासेन यथोक्तेन यत्फलं समुदाहृतम् ।

नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥५०॥

किं चात्र बहुनाक्तेन माहात्म्ये तस्य भो द्विजाः ।

दृष्ट्वा कृष्णं नरो भक्त्या मोक्षं प्राप्नोति दुर्लभम् ॥५१॥

पार्थविमुक्तः शुद्धात्मा कल्पकोटिसमुद्भवैः ।

श्रिया परमया युक्तः सर्वैः समुदितो गुणैः ॥५२॥

सर्वकामसमृद्धेन विमानेन सुवचसा ।

त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य नरो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥५३॥

तत्र कल्पशतं यावद्भुक्त्वा भोगान्मनोरमान् ।

गन्धर्वान्पितरसैः सार्धं यथा विष्णुश्चतुर्भुजः ॥५४॥

व्युतस्तस्मादिहाऽऽयातो विप्राणा प्रवरे कुले ।

सर्वज्ञः सर्ववेदी च जायते गतमत्सरः ॥१५॥

स्वधर्मनिरतः शान्तो दाता भूतहिते रतः ।

आसाद्य वैष्णव ज्ञानं ततो मुक्तिमवाप्नुयात् ॥१६॥

यथा विधि संन्यास ग्रहण करने में जो पल बताया गया है उसी पल को भक्त मनुष्य श्री कृष्ण के दर्शन तथा प्रणाम से प्राप्त कर लिया करता है उसे संन्यास की आवश्यकता ही नहीं होती है । ॥१०॥ हे द्विजगणो ! भगवान् श्री कृष्ण के दर्शन तथा प्रणिपान करने के महात्म्य का अत्यधिक वर्णन करने की क्या आवश्यकता है । सत्तार में रहकर परम दुर्लभ जो मोक्ष है उसको भी श्री कृष्ण का भक्त भक्ति के द्वारा उनका दर्शन कर तथा उनको प्रणाम करके आसानी से ही प्राप्त कर लेता है ॥११॥ श्री कृष्ण का भक्त मनुष्य करोड़ों कल्यों में संचित किये हुए पापों से विमुक्त होकर विनुड आत्मा होकर परमात्मिक श्री में समन्वित हो जाता है तथा सभी सद्गुणों से भी समुद्भि हो जाया करता है ॥१२॥ सब कामों से समृद्ध तथा सुवर्चस वाले शिमान के द्वारा अपने तीन कुलों का उद्धार करके सीवा विष्णुपुर को गमन विचार करता है ॥१३॥ वहाँ पर भी कल्प पर्यन्त परम सुन्दर भोगों का उपभोग करके चार भुजाओं वाले विष्णु के समान स्वरूप वाला गन्धर्वों तथा अप्सराओं के साथ आनन्द लाभ लिया करता है ॥१४॥ वहाँ से जब व्युत होता है तो यहाँ पर वह किसी विप्रों के पद्म श्रेष्ठ कुल में जन्म ग्रहण करता है और वह सर्वज्ञ, सर्ववेदी तथा मात्सर्य में रहित होता है ॥१५॥ वह यहाँ पर अपने धर्म में निरत रहने वाला, परमशान्त, दानशील, प्रायियों के हित में रति रखने वाला होता है । यहाँ पर वैष्णव ज्ञान का लाभ प्राप्त कर फिर मोक्ष को प्राप्त किया करता है । इस तरह से श्री कृष्ण के भक्त को भुक्ति और मुक्ति दोनों ही प्राप्त हो जाती हैं ॥१६॥

ततः संपूज्य मन्त्रेण सुभद्रा भक्तवत्सलाम् ।

प्रमादयेत्ततो विप्राः प्रणिपत्य वृताञ्जलिः ॥१७॥

नमस्ते सर्वंगे देवि नमस्ते शुभसौख्यदे ।  
 त्राहि मां पद्मपत्राक्षि कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥५८॥  
 एवं प्रसाद्य त्वां देवीं जगद्धात्रीं जगद्धिताम् ।  
 बलदेवस्य भगिनी सुभद्रां वरदा शिवाम् ॥५९॥  
 कामगेन विमानेन नरो विष्णुपुरं व्रजेत् ।  
 आभूतसप्लव यावत्कीडित्वा तत्र देववत् ॥६०॥  
 इह मानुषतां प्राप्तो ब्राह्मणो वेदविद्भवेत् ।  
 प्राप्य योगं हरेस्तत्र मोक्षं च लभते ध्रुवम् ॥६१॥

इसके उपरान्त मन्त्र के द्वारा भक्तों पर प्यार करने वाली सुभद्रा का अर्चन करके हे विप्रो ! प्रणिपात करके कृताञ्जलि होकर सुभद्रादेवी को प्रसन्न करना चाहिए ॥५८॥ हे सर्वत्र गमन करने वाली देवि ! आपको नमस्कार है । हे शुभ और सौख्य का प्रदान करने वाली ! आपकी सेवा में मेरा प्रणाम है । हे पद्म दल के समान सुन्दर नेत्रों वाली ! हे कात्यायनि ! आप मेरा परिचाय करिए तथा मेरा आपकी सेवा में प्रणाम है ॥५९॥ इस प्रकार से जगत् की धात्री तथा जगत् के हित करने वाली श्री बलदेवजी की भगिनी वरदा एवं शिवा सुभद्राजी को प्रणम करके अन्त में वह मनुष्य इच्छानुमूल गमन करने वाले विमान के द्वारा विष्णुपुर का गमन किया करता है । वहाँ पर देवों के सामने महा प्रलय होने के समय तक आनन्द का उपभोग करके पुनः पुण्य का उपभोगों द्वारा क्षय हो जाने पर यहाँ मनुष्य जन्म प्राप्त करता है तथा वेदज्ञ ब्राह्मण होता है । वहाँ हरि का योग प्राप्त करके निश्चित रूप से मोक्ष प्राप्त किया करता है ॥५८-६१॥

—\*—

## २५—नरसिंहमाहात्म्यवर्णन

एवं दृष्ट्वा बलं कृष्णं सुभद्रां प्रणिपत्य च ।  
 धर्मं चार्थं च काम मोक्षं च लभते ध्रुवम् ॥१॥

निष्क्रम्य देवतागारात्कृतकृत्यो भवेन्नरः ।  
 प्रणम्याऽऽयतन पश्चाद्ब्रजेत्तत्र समाहितः ॥२॥  
 इन्द्रनीलमयो विष्णुर्यत्राऽऽस्ते वालुकावृतः ।  
 अन्तर्धानगतं नत्वा ततो विष्णुपुरं ब्रजेत् ॥३॥  
 सर्वदेवमयो योऽसौ हतवानसुरोत्तमम् ।  
 स आस्ते तत्र भो विप्राः सिंहार्धकृतविग्रहः ॥४॥  
 भक्त्या दृष्ट्वा तु त देव प्रणम्य नरकेसरीम् ।  
 मुच्यते पातकर्मण्यः समस्तं न त्रि सशयः ॥५॥  
 नरसिंहस्य ये भक्ता भवन्ति भुवि मानवाः ।  
 न तेषां दुष्कृत किञ्चित्फल स्याद्यद्यदीप्सितम् ॥६॥  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नरसिंह समाश्रयेत् ।  
 धर्मार्थिकाममोक्षाणां फलं यस्मात्प्रयच्छति ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से बलराम-श्रीकृष्ण और सुमित्रा को प्रणाम करके मनुष्य धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष को निश्चित रूप से प्राप्त कर लिया करता है ॥१॥ देवमन्दिर से निकल कर मनुष्य कृत-कृत्य होजाता है । फिर उस देवायतन को प्रणाम करके सावधान होकर गमन करना चाहिए ॥२॥ जहाँ पर इन्द्रनीलमय भगवान् विष्णु वालुका से समावृत्त हैं उन अन्तर्धान को प्राप्त हुए विष्णु को नमन करके मनुष्य विष्णुपुर को गमन करता है ॥३॥ हे विप्रो ! सर्वदेवों से परिपूर्ण जिसने असुरोत्तम का हनन किया था वही आधे सिंह का शरीर धारण करने वाले भगवान् नृसिंह वहाँ पर विद्यमान हैं ॥४॥ भक्तिभाव से उन देव का दर्शन करके और नरकेसरी भगवान् को प्रणाम करे । मनुष्य उसी समय में सब पातकों से मुक्त हो जाता है ॥५॥ इसमें लेश मात्र भी सशय नहीं है ॥५॥ उस भूमण्डल में जो मानव भगवान् नरसिंह के भक्त होते हैं उनको कोई भी दुष्कृत शेष नहीं रहा करता है और जो भी अधीप्सित फल होता है वह प्राप्त होजाया करता है ॥६॥ इस लिये सब प्रकार के प्रयत्नों के द्वारा भगवान् नरसिंह देव का समाश्रय ग्रहण करना चाहिए



जिनसे धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का फल प्राप्त हो जाया करता ॥७॥

माहात्म्यं नरसिंहस्य सुखदं भुवि दुर्लभम् ।  
 यथा कथयसे देव तेन नो विस्मयो महान् ॥८॥  
 प्रभाव तस्य देवस्य विस्तरेण जगत्पते ।  
 श्रोतुमिच्छामहे ब्रूहि परं कौतूहलं हि नः ॥९॥  
 यथा प्रसीदेद्देवोऽसौ नरसिंहो महाबलः ।  
 भक्तानामुपकाराय ब्रूहि देव नमोऽस्तु ते ॥१०॥  
 प्रसादान्नरसिंहस्य या भवन्त्यत्र सिद्धयः ।  
 ब्रूहि ताः कुरु चास्माकं प्रसादं प्रपितामह ॥११॥  
 शृणुष्व तस्य भो विप्रा प्रभाव गदतो मम ।  
 अजितस्याप्रमेयस्य भुक्तिमुक्तिप्रदस्य च ॥१२॥  
 कः शक्नोति गुणान्वक्तुं समस्तास्तस्य भो द्विजाः ।  
 सिंहाय कृतदेहस्य प्रवक्ष्यामि समामतः ॥१३॥  
 याः काश्चित्सिद्धयश्चात्र श्रूयन्ते दंभमानुषाः ।  
 प्रसादात्तस्य ता सर्वा सिद्ध्यन्ति नात्र संशयः ॥१४॥

मुनिगण ने कहा—हे देव ! इस भूमण्डल में परम दुर्लभ और सुख देने वाला भगवान् नरसिंह का माहात्म्य है जैसा कि आप वर्णन कर रहे हैं । इससे हमको महान् विस्मय हो रहा है ॥८॥ हे जगत् के स्वामिन् ! उन देव का प्रभाव हम लोग विस्तार पूर्वक श्रवण करने की अभिलाशा करते हैं । आप कृपया हमको बतलाइये । हमारे मन में इसका बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है ॥९॥ जिस विधि से यह महान् बलवान् देव नरसिंह प्रसन्न हो जायें उसी विधान को आप भक्तों के उपकार के लिये बतलाइये । हे देव ! आपकी सेवा में हमारा बारम्बार प्रणाम है ॥१०॥ नरसिंह भगवान् के प्रसाद से यहाँ पर जो सिद्धियाँ होती हैं उन सबको भी आप बतलाइये । हमारे ऊपर प्रसन्नता कीजिए हे पितामह ! आप परम कृपानु हैं ॥११॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे निप्रगणो ! अब मैं बतलाता हूँ आप कृपा करके उन देव नरसिंह का जो प्रभाव होता है

उसका श्रवण करिए । यह देव अजित हैं ॥ अत्रेय हैं और भुक्ति तथा मुक्ति दोनों के प्रदान करने वाले हैं ॥ १२ ॥ हे द्वित्रो ! कौन ऐसा शक्तिशाली पुरुष है जो उनके समस्त गुण-गणों का वर्णन कर सके । अर्थात् ऐसी शक्ति वाला कोई भी नहीं है । अतएव आवे गिह का शरीर धारण करने वाले उन नरगिह देव के गुणों को हम अतीव मत्सेप में घट्टाते हैं ॥ १३ ॥ देव और मानव जो भी कोई सिद्धियों के विषय में यहाँ पर श्रवण किया करते हैं अर्थात् जितनी भी कुल सिद्धियाँ हैं उन नरगिहदेव के प्रसाद से वे सभी सिद्ध होनाया करती हैं—दशमे सनिक भी सद्य नही है ॥ १४ ॥

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले दिक्षु तोये पुरे नगे ।

प्रसादात्तस्य देवस्य भवत्यध्याहृता गतिः ॥ १५

अमाध्य तस्य देवस्य नाम्स्त्यत्र मचराचरे ।

नरसिंहस्य भो विप्राः सदा भक्तानुकम्पिनः ॥ १६

विधान तस्य वक्ष्यामि भक्तानामुपकारकम् ।

येन प्रगीदेर्ष्वामो सिद्धार्थकृतविग्रहः ॥ १७

शृणुष्व मुनिशार्ङ्गलाः कल्परामनातनम् ।

नरसिंहस्य तत्त्व च यन्न ज्ञान मुरामुरं ॥ १८

शाक्याश्रवकमूर्त्यस्तु फलविण्या कसक्नुकं ।

पयोभक्षेण विप्रेन्द्रा यन्मयैरमाधकोत्तमः ॥ १९

कोशवीपीनवासाश्च ध्यानयुवतो जितेन्द्रिय ।

अरण्ये विजने देशे पर्यतो मिन्धुसगमे ॥ २०

ऊपरे सिद्धक्षेत्रे च नरसिंहाश्रमे तथा ।

प्रतिष्ठाप्य स्वयं वाऽपि पूजां श्रुत्वा विधानतः ॥ २१

उन नरगिह देव के प्रसाद से स्वर्ग में, मर्त्यलोक में, पाताल में, सभी दिशा-विदिशाओं में, जन में, पुर में, पर्यंत में, मनुष्य की गति अध्याहृत होनाया करती है अर्थात् वह सभी जगह गमन कर लिया करता है और उसकी कहीं पर भी दगावट नहीं हुआ करती है ॥ १४ ॥ हम चराचर में उस देव को कुछ भी अवाप्य नहीं है । भगवान् नरगिह

हे विप्रो ! सर्वदा अपने भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले हैं ॥१६॥ भक्तों का उपकार करने वाले उन देव का विधान मैं बतलाऊंगा जिसके द्वारा आधे सिंह का विग्रह धारण करने वाले नरसिंह प्रभु अत्रि प्रसन्न होजाया करते हैं ॥१७॥ हे मुनिशार्दूलो ! आप लोग सनातन कल्प राज का श्रवण कीजिए । वह नरसिंह प्रभु का तत्त्व है जिसको कि सुरों तथा असुरों में किसी ने भी जाना है ॥१८॥ शाक यावक-मूल-फल-पिप्पलाक-सतुआ और यय के भक्षण के द्वारा हे विप्रेन्द्रो ! उत्तम साधना करने वाले को वर्त्तन करना चाहिए ॥१९॥ कोश और कोपीन का वस्त्र धारण करे-सदा ध्यान में युक्त रहे और इन्द्रियों को जीतकर रखे । चाहे अरण्य में या किसी वियावान देश में-पर्वत पर या दो सरिताओं के सङ्गम के स्थल में-ऊपर में अथवा किसी सिद्ध क्षेत्र में तथा नरसिंह के आश्रम में अपने आपकी स्थिति करे और वहाँ प्रतिष्ठापित करके विधि-विधान से अभ्यर्चन करना चाहिए ॥२०-२१॥

द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य उपोष्य मुनिपु गवाः ।

जपेल्लक्षाणि वं विशन्मनसा सयतोन्द्रयः ॥२२

उपपातकयुक्तश्च महापातकसयुतः ।

मुक्तो भवेत्ततो विप्राः साधको नात्र संशयः ॥२३

कृत्वा प्रदक्षिणं तत्र नरसिंहं प्रपूजयेत् ।

पुण्यगन्धादिभिर्धूपैः प्रणम्य शिरसा प्रभुम् ॥२४

कर्पूरचन्दनाक्तानि जातीपुष्पाणि मस्तके ।

प्रदद्यान् नरसिंहस्य ततः सिद्धिः प्रजायते ॥२५

भगवान्सर्वकार्येषु न क्वचित्प्रतिहन्यते ।

तेजः सौढुं न शक्ताः सुब्रह्मरुद्रादयः सुराः ॥२६

किं पुनर्दानवा लोके सिद्धगन्धर्वमानुषाः ।

विद्याधरा यक्षगणाः सकिनरमहोरगाः ॥२७

मन्त्रयानासुरान्हन्तुं जपन्त्येकेऽन्यसाधकाः ।

ते सर्वे प्रलयं यान्ति दृष्ट्वाऽऽनित्याग्निवर्चसः ॥२८

हे मुनिपुङ्गवो ! मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन उपवास करें और सयत्त इन्द्रियो वाला मन से बीस लक्ष जाप करे ॥२२॥ उप पातको से युक्त और महापातको से युक्त मनुष्य जो साधना करने वाला है वह मुक्त होजाया करता है-इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२३॥ वहाँ पर प्रदक्षिणा करके नरसिंह भगवान् का पूजन करना चाहिए । पुष्प-गन्ध-धूप आदि से अर्चन करके प्रभु के आगे मस्तक भूमि में टेककर प्रणाम करना चाहिए ॥२४॥ इसके अनन्तर भगवान् नरसिंह के मस्तक में क्षूर्पूर और चन्दन से अक्त जाती पुष्पों का अर्पित करे-ऐसा करने से सिद्धि हो जाया करती है ॥२५॥ नरसिंह भगवान् समस्त कार्यों में कहीं पर भी हन्यमान नहीं होते हैं । उनका इतना प्रबल सेज होता है कि उसको ब्रह्मा और रुद्र आदि कोई भी मुर सहन करने में समर्थ नहीं हुआ करते हैं ॥२६॥ फिर लोक में दानवों की तो धान ही क्या है । सिद्ध-गन्धर्व-मनुष्य-विद्याधर-यक्षगण-किन्नर-महोरग तथा अन्य साधक जिन असुरों का हनन करने के लिये नरसिंह देव के मन्त्र का जप किया करते हैं । इस अग्नि के समान ध्वंस वालों को देख कर ही वे सब प्रलय को प्राप्त होजाया करते हैं ॥२७-२८॥

सकृज्जप्तं तु कवचं रक्षेत्सर्वमुपद्रवम् ।

द्विर्जप्तं कवचं दिव्यं रक्षते देवदानवात् ॥२९॥

गन्धर्वा. किन्नरा यक्षा विद्याधरमहोरगाः ।

भूता. पिशाचा रक्षासि ये चान्ये परिपन्थिनः ॥३०॥

त्रिर्जप्तं कवचं दिव्यमभेद्यं च सुरासरैः ।

द्वादशाम्यन्तरे चैव योजनानां द्विजोत्तमाः ॥३१॥

रक्षते भगवान्देवो नरसिंहो महाबलः ।

ततो गत्वा विलङ्घारमुषोप्य रजनीनयम् ॥३२॥

पलाशकाष्ठैः प्रज्वाल्य भगवन्त हुताशनम् ।

पलाशसमिधस्तत्र जुहुयात्त्रिमघुप्लुता ॥३३॥

द्वे शते द्विजशादूँला षष्ट्कारेण साधकः ।

सतो विवरद्वारं तु प्रवटं जायते क्षणात् ॥३४॥

ततो विशेत् नृशङ्खं कवची विवरं बुधः ।

गच्छतः संकटं तस्य तमोमोहश्च नश्यति ॥३५॥

एक बार भी इनके कवच का जप सब उपद्रवों से रक्षा किया करता है । यदि दो बार इनके कवच का जाप किया जावे जोकि परम दिव्य है देव और दानवों से रक्षा किया करता है ॥३६॥ गन्धर्व, किन्नर यक्ष, विद्याधर, महोरग, भूत, पिशाच, राक्षस और जो अन्य भी परिपन्थी होते हैं इनसे सुरक्षा पाने के लिये तीन बार इस दिव्य कवच का जाप करे जोकि सुरासुरों के द्वारा अभेद्य है । हे द्विजोत्तमो ! द्वादश योजनो के अन्दर उसकी महान् बलवान् भगवान् नरसिंहदेव रक्षा किया करते हैं । इसके पश्चात् वहाँ से किसी विल के द्वार पर जाकर तीन रात्रि पर्यन्त उपवास करना चाहिए ॥३७-३९॥ षाक के काष्ठों से भगवान् हुलासन को प्रज्वलित करके त्रिमधु से पुत्र करके उस अग्नि में पलाश की समिधाओं की आहुनियाँ देनी चाहिए ॥३३॥ हे द्विजशार्ङ्गलो ! साधक को वपट्कार से दोसी आहुतिर्माँ देनी चाहिए । इसके पश्चात् तमो क्षण में विवर का द्वार प्रकट हो जाता है ॥३४॥ इसके अनन्तर कवच वाला बुध नृशङ्ख होकर उस विवर में प्रवेश करे । गमन करने वाले उसका सब सङ्कट और तमोमोह नष्ट हो जाया करता है ॥३५॥

यजमार्गः सुविस्तीर्णो दृश्यते भ्रमराजि(श्वि)तः ।

करसिंहं स्मरंस्तत्र पाताल विशते द्विजाः ॥ ६

गत्वा तत्र जपेत्तत्त्व नरसिंहाख्यमव्ययम् ।

ततः स्त्रीणा सहस्राणि वीणावादनकर्मणाम् ॥३७॥

निर्गच्छन्ति पुरो विप्राः स्वागतं ता वदन्ति च ।

प्रवेशयन्ति ता हस्ते गृहीत्वा साधकेश्वरम् ॥३८॥

ततो रसायनं दिव्य पाययन्ति द्विजोत्तमाः ।

पीतमात्रे दिव्यदेहो जायते सुमहाबलः ॥३९॥

क्रीडते सह कन्याभिर्यावदाभूतसप्लवम् ।

मिथ्यदेहो वासुदेवे लीयते नाल सशयः ॥४०॥

यदा न रोचते वासस्तस्मान्निर्गच्छते पुनः ।

पट्टं शलं च खड्गं च रोचनां च मणिं तथा ॥४१॥

रत्नं रसायनं चैव पादुकाञ्छनमेव च ।

कृष्णाजिनं मुनिश्रेष्ठा गुटिका च मनोहराम् ॥४२॥

कमण्डलुं चाक्षमूर्तं यष्टिं सञ्जीवनो तथा ।

सिद्धविद्यां च शास्त्राणि गृहीत्वा साधकेश्वरः ॥४३॥

उत्तमों भ्रमरो ने अश्वितु गज मार्ग अत्यन्त सुविस्तीर्ण दिखलाई दिया करता है । हे द्विजो ! वहाँ पर भगवान् नरसिंह का स्मरण करता हुआ पाताल में प्रवेश किया करता है ॥३६॥ वहाँ जाकर अव्यय नरसिंह नामक तत्व का ज्ञान करना चाहिए । इसके उपरान्त घीणा के वादन करने वालों को सहस्रो स्त्रियाँ आने निकलती हैं और हे त्रिशो ! वे स्वागत कहा करती हैं । वे स्त्रियाँ उस साधक का स्वागत करती हुई उसको हाथ से पकड़ कर अन्दर प्रवेश कराया करती हैं ॥३७-३८॥ ३ द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर वे उत्त सायना करने वाले पुत्र को परम दिव्य रसायन का पान करती हैं । उसके पान करते ही वह साधक दिव्यदेह वाला महान् चलवान होता है ॥३९॥ वहाँ पर वह जब तक भूतो का सङ्ग्रह होता है जब तक बन्धाओं के साथ ब्रीडा किया करता है । फिर निव्रदेह वाला यह वासुदेव में लीन हो जाता है—इसमें कुछ भी चरय नहीं है ॥४०॥ जब इसको वहाँ पर निवास पसन्द नहीं होता है तो यह वहाँ से पुन निकल कर चला जाता है । पट्ट-शूल खड्ग-रोचना-मणि-रत्न-रसायन-पादुकाञ्जन-कृष्णाजिन और हे मुनिश्रेष्ठो ! मनोहरगुटिका, कमण्डलु, अक्षमूर्त, यष्टि, सञ्जीवनी, सिद्धविद्या और शास्त्रों को यह साधकेश्वर सबको ग्रहण कर लेता है ॥४१-४३॥

ज्वलद्बह्निस्कृलिङ्गोमिवेष्टित निशिख हृदि ।

सकृन्त्यस्त दहेत्सर्वं वृजिनं जन्मकोटिजम् ॥४४॥

विषे न्यस्त विषं हन्यात्कुष्ठं हन्यात्तनौ स्थितम् ।

स्वदेहे भ्रूणहत्यादि कृत्वा दिव्येन शुध्यति ॥४५॥

महाप्रह्वगृहीतेषु ज्वलमानं विचिन्तयेत् ।

हृदन्ते वै ततः शीघ्रं नश्येयुर्दाहणा ग्रहाः ॥ ६

वालानां कण्ठके वद्धं रक्षा भवति नित्यशः ।

गण्डपिण्डकलूतानां नाशनं कुरते ध्रुवम् ॥ ७

व्याधिजाते समिद्धिभश्च घृतक्षीरेण होमयेत् ।

त्रिसंध्यं मासमेकं तु सर्वरोगान्विनाशयेत् ॥ ८

असाध्यं तु न पश्यामि त्रैलोक्ये सचराचरे ।

यां या कामयते सिद्धिं तां तां प्राप्नोति स ध्रुवम् ॥ ९

जलती हुई वह्नि के स्फुलिङ्गों की ऊर्मियों से वेष्टित त्रिशिख को हृदय में एक बार विन्यस्त करके करोड़ों जन्मों में समुत्पन्न सम्पूर्ण पापों को दग्ध कर देना चाहिए ॥४४॥ विष में न्यस्त विष का हनन कर देवे और क्षीर में स्थित कुष्ठ का हनन कर देना चाहिए । अपने देह में भ्रूण हत्यादि करके दिव्यतेज से शुद्ध होता है ॥४५॥ महाप्रह्वो ने गृहीतो में ज्वलमान का विचिन्तन करना चाहिए । इसके अनन्तर हृदन्त में शीघ्र ही दाहणग्रह नष्ट हो जाते हैं ॥४६॥ छोटे बालको के कण्ठ में वद्ध होकर नित्य ही रक्षा होती है । गण्ड-पिण्डक और लूतायों का विनाश निश्चित रूप से कर देता है ॥४७॥ व्याधि के समुत्पन्न होने पर घृत और क्षीर के द्वारा समिद्धियों से होम करना चाहिए । एक मास पर्यन्त तीनों सन्ध्याओं के समय में करने से समस्त रोगों का विनाश कर देता है ॥४८॥ इस चराचर त्रैलोक्य में कुछ भी ऐसा मैं नहीं देखता हूँ जो साध्य न हो । जिस-जिस सिद्धि की कामना किया करता है उन्ही-उन्ही सिद्धि की प्राप्ति निश्चित रूप से मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥४९॥

अष्टोत्तरशतं त्वेके पूजित्वा मृगाधिपम् ।

मृत्तिकाः सप्त बल्मीके श्मशाने च चतुष्पथे ॥ ५०

रक्तचन्दनसमिश्रा गवां क्षीरेण लोढयेत् ।

सिंहस्य प्रतिमां कृत्वा प्रमाणेन पण्डगुलाम् ॥ ५१

लिम्पेत्तथा भूर्जपत्रे रोचनया समालिखेत् ।  
 नरसिंहस्य कण्ठे तु वद्ध्वा चैव हि मन्त्रवित् ॥५२॥  
 जपेत्सख्याविहीन तु पूजयित्वा जलाशये ।  
 यावत्सप्ताहमात्र तु जपेत्सयमितेन्द्रियः ॥५३॥  
 जलाकीर्णा मूहूर्तेन जायते सर्वमेदिनी ।  
 अथवा शुष्कवृक्षाग्रे नरसिंहं तु पूजयेत् ॥५४॥  
 जप्त्वा चाष्टशत तत्त्व वर्षन्त विनिवारयेत् ।  
 तमेव पिच्छके वद्ध्वा भ्रामयेत्साधकोत्तमः ॥५५॥  
 महावातो मूहूर्तेन आगच्छेन्नात्र सशयः ।  
 पुनश्च धारयेत्क्षिप्रं सप्तस(ज)प्नते वारिणा ॥५६॥

कुछ लोग एक सौ आठ भृगाधिप का पूजन सात मृत्तिका बल्मीक  
 ( बाँधी ) में—रमजान में और चतुष्पथ में ग्रहण करके रक्त चन्दन से  
 भलीभाँति मिश्रित करे और गौ के क्षीर से लोडन करना चाहिए । फिर  
 छ अंगुल प्रमाण घाली सिंह की प्रतिमा का निर्माण करे ॥५०-५१॥  
 तथा भोजपत्र में लिम्पन करे और रोचना से लेखन करना चाहिए ।  
 मन्त्र के ज्ञाता पुरुष को उसे नरसिंह भगवान् के कण्ठ में बद्ध कर देना  
 चाहिए ॥५२॥ जलाशय में पूजन करके बिना ही सख्या के उसका जाप  
 करे । सप्त इन्द्रियो का सयम में रखने वाले साधक पुरुष को एक सप्ताह  
 भर इसका जप करना चाहिए ॥५३॥ एक मूहूर्त मान समय में ही  
 सम्पूर्ण मेदिनी जल से समाकीर्ण हो जाती है । अथवा किसी सूखे हुए  
 वृक्ष के अग्रभाग में नरसिंह देव का यजन करना चाहिए ॥५४॥ आठ  
 सौ तत्त्व का जाप करके वर्षते हुए का निवारण कर देवे । इस प्रकार  
 से उसको एक पिञ्जक में बाँधकर उत्तम साधक को उसे घुमाना  
 चाहिए ॥५५॥ एक मूहूर्त मात्र समय में ही महान् वात आ जाया  
 करता है—इसमें कुछ भी शशय नहीं है । और फिर इसको क्षीघ्र ही  
 सात बार, जपे, हुए जल से धारण करे ॥५६॥

अथ ता प्रतिमा द्वारि निखनेद्यस्य साधकः ।

गोक्षोत्सादो भवेत्तस्य उद्धृते चैव क्षान्तिदः ॥५७॥



तस्मात्तं मुनिशार्दूलो भक्त्या संपूजयेत्तदा ।  
 मृगराजं महावीर्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥५८॥  
 विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।  
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातयः ॥५९॥  
 संपूज्य तं सुरश्रेष्ठं भक्त्या सिंहवपुर्धरम् ।  
 मुच्यन्ते चाशुभेर्दुःखैर्जन्मकोटिसमुद्भवैः ॥६०॥  
 संपूज्य तं सुरश्रेष्ठं प्राप्नुवन्त्यभिवाञ्छितम्  
 देवत्वममरेशत्वं गन्धर्वं च भो द्विजाः ॥६१॥  
 यक्षविद्याधरत्वं च तथाऽन्यच्चाभिवाञ्छितम् ।  
 दृष्ट्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा संपूज्य नरकेसरीम् ॥६२॥  
 प्राप्नुवन्ति नरा राज्यं स्वर्गं मोक्षं च दुर्लभम् ।  
 नरसिंहं नरो दृष्ट्वा लगेदभिमतं फलम् ॥६३॥

साधक जिसके द्वार पर इस प्रतिमा को गाढ़ देवे तो उसका गोत्र  
 का एकदम उत्साह हो जाया करता है और उसके उद्धृत करने पर  
 शान्ति देने वाला हुआ करता है अर्थात् वह प्रतिमा भूमि में रहेगी जब  
 तक उसके वश का नाश होता ही रहेगा और उसे निकाल लेने पर ही  
 शान्ति हुआ करती है ॥५७॥ इस कारण से हे मुनि शार्दूलो ! उन  
 महान् वीर्य वाले सब कामों के फल को प्रदान करने वाले मृगराज का  
 सदा ही पूजन करना चाहिए ॥५८॥ वह पूजक पुरुष सब पापों से विमुक्त  
 होकर सीधा विष्णु भगवान् के लोक को गमन किया करता है । ब्राह्मण,  
 क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, और स्त्रियाँ तथा अन्त्यज सभी भक्तिभाव से सिंह के  
 शरीर का धारण करने वाले उन सुरों में श्रेष्ठ का भली भाँति पूजन  
 करके करोड़ों जन्मों में समुत्पन्न होने वाले अशुभ दुखों से छुटकारा पा  
 जाया करते हैं ॥५९-६०॥ उन सुरों में परम श्रेष्ठ देव का अभ्यर्चन  
 करके मनुष्य अथवा अभिवाञ्छित फल की प्राप्ति किया करते हैं । देवत्व-  
 अमरत्व-अमरों का ईशत्व-गन्धर्वत्व-यक्ष तथा विद्याधरत्व और हे द्विज-  
 गणो ! इनके अतिरिक्त जो कुछ भी अन्य अभीष्ट मनोरथ होता है उसको  
 भी भगवान् नरकेसरी का दर्शन करके-स्तवन करके-नमस्कार करके और

भली विधि से पूजन करके मनुष्य प्राप्त कर लिया करते हैं। राज्य-स्वर्गवास और परम दुर्लभ मोक्ष को भी मनुष्य नरसिंह भगवान् का दर्शन करके अभिमत फल का लाभ प्राप्त किया करता है ॥६१-६३॥

निर्मुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।

सकृद्दृष्ट्वा तु तं देव भक्त्या सिंहवपुर्धरम् ॥६४॥

मुच्यते चाशुभैर्दुःखैर्जन्मकोटिसमुद्भवं ।

सग्रामे सकटे दुर्गे चोरव्याघ्रादिपीडिते ॥६५॥

कान्तारे प्राणसदेहे विषवह्निजलेषु च ।

राजादिभ्यः समुद्रेभ्यो ग्रहरोगादिपीडिते ॥६६॥

स्मृत्वा तं पुरुषः सर्वे राजग्रामैर्विमुच्यते ।

सूर्योदये यथा नाश तमोऽभ्येति महत्तरम् ॥६७॥

तथा सदशने तस्य विनाशं यान्त्युपद्रवाः ।

गुटिकाञ्जनपातालपादुके च रसायनम् ॥६८॥

नरसिंहे प्रसन्ने तु प्राप्नोत्यन्यांश्च वाञ्छितान् ।

यान्यान्कामानभिध्यायन्भजते नरकेसरीम् ॥६९॥

तास्तान्कामानवाप्नोति नरो नास्त्यत्र सशयः ।

दृष्ट्वा तं देवदेवेश भक्त्याऽऽपूज्य प्रणम्य च ॥७०॥

वह मनुष्य फिर सभी पापों से छूटकर विष्णुलोक में सिंह रूप धारी देव का भक्तिभाव से दर्शन प्राप्त कर लेता है वह करोड़ों जन्मों में उत्पन्न हुए अशुभ दुःखों से विमुक्त हो जाता है। सग्राम में-सङ्कट में-दुर्ग में-घोर तथा व्याघ्रादि से पीड़ित होने के समय में-गहन वन में-प्राणों के सन्देह के अवसर पर-विष, वह्नि और जल में- राजा आदि से तथा समुद्रों से और ग्रह तथा रोग आदि से पीड़ित होने पर पुरुष उन भगवान् का स्मरण करके ही सभी राजग्रामों से विमुक्त हो जाया करता है। जिस प्रकार से सूर्य के उदय होने पर महान् से भी महान् अन्धकार विनष्ट हो जाता है ठीक उसी भाँति से उन प्रभु के दर्शन होने पर भी प्रकार के उपद्रव विनाश को प्राप्त होते हैं। गुटिका-अञ्जन-

पातालाञ्जन-मादुकाएँ तथा रसायन ये सभी भगवान् नरसिंहदेव के प्रसन्न होने पर प्राप्त हो जाया करते हैं और धन्य भी वाञ्छितों को प्राप्त कर लेता है । नर केसरी का ध्यान करते हुए जिन-जिन मनोरथों को मनुष्य किया करता है उन्हीं-उन कामनाओं को मनुष्य प्राप्त कर लेता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । उन देवेश्वर का दर्शन—भक्ति से अर्चन और प्रणाम करके बहुत अधिक फल प्राप्त किया करता है ॥६४-७०॥

दशानामश्वमेधानां फलं दशगुणं लभेत् ।  
 पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तो गुणैः सर्वैरलंकृतः ॥७१॥  
 सर्वकामसमृद्धात्मा जरामरणवर्जितः ।  
 सौवर्णेन विमानेन किंकिणीजालमालिना ॥७२॥  
 सर्वकामसमृद्धेन कामगेन सुवर्चसा ।  
 तक्षणादित्यवर्णेन मुक्ताहारावलम्बिना ॥७३॥  
 दिव्यस्त्रीशतयुक्तेन दिव्यगन्धर्वनादिना ।  
 कुलैकविंशमुद्धृत्य देववन्मुदितः सुखी ॥७४॥  
 स्तूयमानोऽप्सरोभिश्च विष्णुलोकव्रजेधरः ।  
 भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्विष्णुलोके द्विजोत्तमाः ॥७५॥  
 गन्धर्वैरप्सरैर्युक्तः कृत्वा रूपचतुर्भुजम् ।  
 मनोह्लादकरं सौख्यं यावदाभूतसप्लवम् ॥ ६॥  
 पुण्यक्षयादिहाऽऽयातः प्रवरे योगिना कुले ।  
 चतुर्वेदी भवेद्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः ॥  
 चैष्णवं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥७७॥

दश अश्वमेध यज्ञों के जो फल होते हैं उससे भी दश गुना फल भगवान् नरसिंह के दर्शन आदि से प्राप्त हुआ करता है । भगवान् नरसिंह का उपासक पुरुष सब पापों से निर्मुक्त होना हुआ सभी सद्गुणों से समलङ्घित हो जाता है । सब कामनाओं से समृद्ध होकर जरा (वृद्धता) और मरण से छुटकारा प्राप्त कर लेता है । वह फिर विद्विजियों के जालों की माला बाले, सुवर्ण निर्मित, सभी कामों से

सुसम्पन्न, कामग, सुवर्चस, तरुण आदिष्ट के समान धर्ष वाले, मुक्ताओं के हारों से युक्त, दिव्य स्त्रियों के संकड़ी समूह से रायुत और दिव्य गन्धर्व आदि से समन्वित विमान के द्वारा अपने इसीस कुलो का उद्धार करके देवता के समान प्रसन्न एवं सुखी होकर विष्णुलोक को गमन किया करता है और अप्सराएँ उसकी स्तुति किया करती हैं ॥७१-७५॥ हे द्विजोत्तमो ! वह मनुष्य उस विष्णुलोक में परम श्रेष्ठ भोगों का उपभोग करके गन्धर्व तथा अप्सराओं से युक्त होकर चतुर्भुज स्वरूप धारण कर लिया करता है और मन को आह्लादित करने वाला सुख महाप्रलय व समय तक प्राप्त किया करता है ॥७६॥ जब पुण्य फलों का दाय हो जाता है तो पुन वह यहाँ पर किसी योगियों के परम श्रेष्ठ कुल में जन्म ग्रहण विधा करता है । वह विप्र चारों वेदों और वेदाङ्गों का पारंगामी विद्वान हुआ करता है । फिर वैष्णव योग में समास्थित होकर मोक्ष की प्राप्ति किया करता है । नरसिंहदेव की उपासना से श्रेष्ठ भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति हो जाती है ॥७७॥



## २६—श्वेतमाधवमाहात्म्यवर्णन

अनन्ताख्य वासुदेव दृष्ट्वा भक्त्या प्रणम्य च ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो नरो याति परं पदम् ॥१॥  
 मया चाऽऽराधितश्चासौ शक्रेण तदन्तरम् ।  
 विभीषणेन रामेण कस्तं नाऽऽराधयेत्पुमान् ॥२॥  
 श्वेतगङ्गा नरः स्नात्वा यः पश्येच्छ्वेतमाधवम् ।  
 मत्स्याख्य माधव चैव श्वेतद्वीपे स गच्छति ॥३॥  
 श्वेतमाधवमाहात्म्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः ।  
 विस्तरेण जगन्नाथ प्रतिमां तस्य वै हरं ॥४॥

तस्मिन्क्षेत्रे वरे पुण्ये विख्याते जगतीतले ।

श्वेताख्यं माधव देवं कस्त स्थापितवान्पुरा ॥५॥

अभूत्कृतयुगे विप्राः श्वेतो नाम नृपो बली ।

मतिमान्धर्मविच्छूरः सत्यसधो दृढव्रतः ॥६॥

यस्य राज्ये तु वर्षाणां सहस्रं दश मानवाः ।

भवन्त्यायुष्मन्तो लोका वालस्तस्मिन्न सीदति ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अनन्त नाम वाले भगवान् वासुदेव को प्रणाम करके मनुष्य सभी पारों से विमुक्त हो जाया करता है और वह परम पद को प्राप्त हो जाता है ॥१॥ मेरे द्वारा इनकी आराधना की गयी थी और इसके पश्चात् इन्द्रदेव ने उनकी आराधना की थी । विभीषण के द्वारा तथा राम के द्वारा भी उनकी आराधना की गयी थी । ऐसे उनकी कौन पुरुष आराधना न करेगा ॥२॥ जो पुरुष श्वेत गङ्गा में स्नान करके भगवान् श्वेत माधव का दर्शन किया करता है तथा मत्स्य नाम वाले माधव का दर्शन करता है वह श्वेत द्वीप को गमन किया करता है ॥३॥ मुनिगण ने कहा—हे जगन्नाथ ! आप कृपा करके श्वेत माधव का माहात्म्य पूर्ण रूप से और विस्तार पूर्वक वर्णन करने के योग्य है तथा हरि की प्रतिमा के विषय में भी वर्णन कीजिए ॥४॥ उस श्रेष्ठ एव पुण्यमय क्षेत्र में जोकि इस जगती तल में परम विख्यात है उसमें किसने पहिले श्वेत नामक माधवदेव को स्थापित किया था ॥५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे विभो ! कृतयुग में बलवान् एक श्वेत नाम वाला नृप हुआ था जो बहुत ही बुद्धिमान, धर्म का वेत्ता, दूर, दृढ व्रत वाला और सत्य प्रतिज्ञा वाला हुआ था ॥६॥ जिसके राज्य में मनुष्य दश सहस्र वर्षों की आयु वाले होने से तथा उसमें कोई भी वाल्पार्श्वस्या में विनष्ट नहीं हुआ करता था ॥७॥

वर्तमाने तदा राज्ये किञ्चित्काले गते द्विजाः ।

कपालगौतमो नाम ऋषिः परमधार्मिकः ॥८॥

सुतोऽस्याजातदन्तश्च मृतः कालवशाद् द्विजाः ।

तमादाय ऋषिर्धोमाघ्नपस्यान्तिकमानयत् ॥९॥

दृष्ट्वा वंद्यं नृपतिः सुप्तं कुमारं गतचेतसम् ।  
 प्रतिज्ञामकरोद्विप्रा जीवनाय शिशोस्तदा ॥१०॥  
 यावद्बालमहं त्वेनं यमस्य सदने गतम् ।  
 नाऽऽनये सप्तरात्रेण चितां दीप्ता समारुहे ॥११॥  
 एवमुक्तवाऽसितः पद्मैः शतैर्दशशतादिकैः ।  
 सपूज्य च महादेव राजा विद्या पुनर्जनेत् ?) ॥१२॥  
 अतिभक्तिं तु सचिन्त्य नृपस्य जगदीश्वरः ।  
 सानिध्यमगमत्तुष्टोऽस्मीत्युवाच सहोमया ॥१३॥  
 श्रुत्वा गिरमीशस्य विलासप्रसहसा हरम् ।  
 भस्मदिग्ध विरूपाक्ष शरत्कुन्देन्दुवर्चसम् ॥१४॥  
 शार्दूलचमवसन शशाङ्काङ्कितमूर्धजम् ।  
 मही निपत्य सहसा प्रणम्य स तदाऽब्रवीत् ॥१५॥

हे द्विजगणो ! उसी समय मे उस राजा के राज्य के वर्तमान होने पर तथा कुछ काल के व्यतीत हो जाने पर एक कपाल गीतम नाम वाला ऋषि परम धार्मिक हुआ था । हे द्विजो ! काल के यश से उसका पुत्र जिसके दाँत भी नहीं निकले थे मृत हो गया था । उसको लेकर धीमावृ ऋषि उस नृप के समीप मे उपस्थित हुआ था । हे विप्रो ! उस समय मे शिशु के जीवन के लिये राजा ने प्रतिज्ञा की थी ॥१०-११॥ राजा ने कहा—जब तक मैं यमराज के सदन मे गये हुए इस बालक को सात रात्रि मे नहीं ला सकूँगा तो मैं फिर दीप्त हुई चिता पर समारोहण कर जाऊँगा ॥११॥ ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से कहकर राजा ने एक सहस्र सौ असित पद्मों से महादेव का भक्तीभाँति पूजन करके पुनः विद्या का जाप किया था ॥१२॥ जगदीश्वर ने नृप की अत्यधिक भक्ति का चिन्तन करके उमादेवी के माहित स्वयं उसके समीप मे आगये और उससे बोले—मैं तुझ पर बहुत प्रसन्न हो गया हूँ ॥१३॥ इस प्रकार की ईश की वाणी का श्रवण करके तथा सहसा भगवान् हर को देखकर जिनका भस्म से दिग्ध शरीर था और जो विरूप नेत्रों वाले थे और शरत्काल के चन्द्र के समान वर्चस वाले थे । शिव शार्दूल के चर्म का

वस्त्र धारण करने वाले और जो शशाङ्क से श्रद्धित वेशी वाले थे ।-  
ऐसे स्वरूप वाले शिव का दर्शन करके उसी समय में यह राजा सहसा  
शिव के चरणों में भूमि पर गिर गया था और दण्डवत् प्रणाम करके  
भगवान् महादेव से बोला— ॥१४-१५॥

कारुण्यं यदि मे दृष्ट्वा प्रसन्नोऽसि प्रभो यदि ।

कालस्य वशमापन्नो बालको द्विजपुत्रकः ॥१६

जीवत्वेप पुनर्बाल इत्येवं व्रतमाहितम् ।

अकस्माच्च मृतं बाल नियम्य भगवन्स्वयम् ॥

यथोक्तायुष्यसंयुक्तं क्षेमं कुरु महेश्वर ॥१७

श्वेतस्यैतद्वचः श्रुत्वा मुद प्राप हरस्तदा ।

कालमाज्ञापयामास सर्वभूतभयकरम् ॥१८

नियम्य कालं दुर्धर्षं यमस्याऽऽज्ञाकर द्विजाः ।

बालं सजीवयामास मृत्योर्मुखगतं पुनः ॥१९

कृत्वा क्षेम जगत्सर्वं मुनेः पुत्रं स तं द्विजाः ।

देव्या सहोमया देवस्तत्रैवान्तरधीगत ॥२०

एव सजीवयामास मुनेः पुत्रं नृपोत्तम ॥२१

राजा श्वेत ने कहा—हे प्रभो ! यदि आप मेरी करुणा पूर्ण दशा  
को देखकर मुझ पर परम प्रसन्न हैं तो यह बालक द्विज का पुत्र जो कि  
काल के वश में प्राप्त हो गया है । यह बालक पुनः जीवित हो जावे—  
यही व्रत मैंने आहित किया है । हे भगवन् ! यह बालक अकस्मान् मृत  
हो गया है । हे महेश्वर ! आप स्वयं नियमन करके इसको यथोक्त  
आयुष्य से संयुक्त करके 'इसका क्षेम करिये ॥१६-१७॥ उस समय में  
श्वेत नृप के इस वचन को सुनकर भगवान् हर बहुत अधिक आनन्दित  
हुए और सब प्राणियों को भय देने वाले काल को उन्होंने उसी समय में  
आज्ञा दे दी थी ॥१८॥ हे द्विजगणो ! यमराज की आज्ञा को करने वाले  
काल का नियमन करके जो कि बहुत ही दुर्धर्ष होता है भगवान् हर ने  
मृत्यु के मुख में गये हुए बालक को पुनः संजीवित कर दिया था ॥१९॥  
हे द्विजो ! उन देवेश्वर ने उस मुनि के पुत्र को जीवित करके सम्पूर्ण

जगत् को क्षेम पूर्ण करके वे फिर उमा देवी के सहित वही पर धन्तर्हि  
हो गये थे ॥२०॥ उस नृगोत्तम ने इस प्रकार से मुनि के पुत्र को संबो-  
दित कर दिया था ॥२१॥

देवदेव जगन्नाथ त्रैलोक्यप्रभवान्वय ।

ब्रूहि नः परम तथ्य श्वेताश्वस्य च सांप्रतम् ॥२२

शृणुष्व मुनिशार्दूलः सर्वसत्त्वहितावहम् ।

प्रवक्ष्यामि यथातथ्य यत्पृच्छथ ममानघाः ॥२३

माधवस्य च माहात्म्य सर्वपापप्रणाशनम् ।

यच्छ्रुत्वाऽभिमतान्कामान्द्रुव प्राप्नोति मानवः ॥२४

शृणुष्व मुनिशार्दूलः सर्वसत्त्वहितावहम् ।

शृणुष्व ता कथा दिव्या भयशोकातिनाशिनीम् ॥२५

स कृत्वा राज्यमेकाग्रं वर्षाणां च सहस्रशः ।

विचार्यं लौकिकान्धर्मन्विदिकान्नियमास्तथा ॥२६

केशवाराधने विप्रा निश्चितं व्रतमास्थितः ।

स गत्वा परम क्षेत्रं सागरं दक्षिणाश्रयम् ॥२७

तटे तस्मिञ्छुभे रम्ये देशे कृष्णस्य चान्तिके ।

श्वेतोऽथ कारयामास प्रसादं शुभलक्षणम् ॥२८

मुनिगण ने कहा—हे देवो के भी देव ! आप तो इस जगत् के स्वामी हैं और सम्पूर्ण त्रैलोक्य के उन्मदाता हैं । हे अव्यय ! अब आप कृपा करके इस श्वेत नाम वाले नुन का जो परम तथ्य है उसको हमारे सामने वर्णित कीजिए ॥२२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिशार्दूलो ! आप लोग सभी जीवों के हित का सावहन करने उसका अब वर्णन करिए । हे अनघो ! जान लोग जो मुझ से पूछ रहे हैं उसको ठीक-ठीक बतलाता हूँ ॥२३॥ भगवान् माधव का माहात्म्य समस्त पापों का विनाश करने वाले हैं । जिनका श्रवण करके मनुष्य अपने अभिमत कामनाओं को निश्चय ही प्राप्त कर लेता है ॥२४॥ हे मुनिशार्दूलो ! उस सब जीवों के हित करने वाले उस चरित को मुनिए और उम दिव्य तपा नव-



शोक और आर्ति का नाश करने वाली कथा का श्रवण कीजिए ॥२५॥  
उस राजा श्वेत ने सहस्रों वर्षों तक उस अपने उत्तम राज्य का शासन  
करके तथा लौकिक और वैदिक धर्मों का एव नियमों का विचार करके  
हे विप्रो ! फिर उसने भगवान् श्री केशव के आराधन में निश्चित यत्न  
को करने में अपना ध्यान लगाया था । वह दक्षिण सागर के आश्रय  
वाले परम क्षेत्र को चला गया था ॥२६-२७॥ उस परम रम्य एवं शुभ  
देश में तथा तट पर भगवान् श्रीकृष्ण के समीप में उनका परम शुभ  
लक्षण वाला प्रसाद राजा श्वेत ने कराया था ॥२८॥

धन्वन्तरशतं चैकं देवदेवस्य दक्षिणे ।

ततः श्वेतेन विप्रेन्द्राः श्वेतशैलमयेन च ॥२९॥

कृतः स भगवाञ्छ्वेतो माधवश्चन्द्रसंनिभः ।

प्रतिष्ठा विधिवच्चक्रे यथोद्दिष्टां स्वयं तु सः ॥३०॥

दत्त्वा दानं द्विजातिभ्यो दीनानायतपस्विनाम् ।

अथानन्तरतो राजा माधवस्य च संनिधौ ॥३१॥

मही निपत्य सहस्रा ओकारं द्वादशाक्षरम् ।

जपन्त मीनमास्थाय भारामेक समाधिना ॥३२॥

निराहारो महाभागः सम्यग्विष्णुपदे स्थितः ।

जपन्ते स तु देवेशं संस्तोतुमुपचमे ॥३३॥

ओं नमो वासुदेवाय नमः सकर्पणाय च ।

प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमो नारायणाय च ॥३४॥

नमोऽस्तु बहुरूपाय विश्वरूपाय वेधसे ।

निगुणायप्रतर्क्याय शुचये शुक्लकर्मेणे ॥३५॥

हे विप्रेन्द्रो ! देवदेव के दक्षिण में एक धन्वन्तर शत उस श्वेत ने  
श्वेत शैलमय के द्वारा चन्द्रमा के सदृश भगवान् श्वेत माधव का निर्माण  
किया था । फिर उसने विधि-विधान के साथ स्वयं ही यथोद्दिष्ट उनकी  
प्रतिष्ठा भी की थी ॥२९-३०॥ दीनानाय तपस्वियों को द्विजातियों को  
दान देकर हमके अनन्तर वह राजा भगवान् माधव की सन्निधि में गया  
था ॥३१॥ उसने सहस्रा भूमि में निपात कर दण्डवत् प्रणाम करते हुए

ओङ्कार के सहित द्वादशाक्षर मन्त्र का जाप करते हुए एक मास पर्यन्त समाधि के साथ मोन घन में समाप्पित हो गया था ॥३२॥ वह महा-भाग निराहार होकर भलोभाति भगवान् विष्णु के पद में स्थित हो गया था । जप के अन्त में उसने देवेश्वर का संस्तवन करने का समारम्भ किया था ॥३३॥ राजा श्वेत ने कहा—भगवान् वासुदेव के लिये मेरा नमस्कार है । मङ्कुर्यण प्रभु के लिये मेरा नमस्कार है । प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, और नारायण भगवान् की सेवा में मेरा नमस्कार है ॥३४॥ बहुत से रूप धारण करने वाले विश्व रूप वेधा-निर्गुण, शुचि शुक्लकर्मा, और अप्रतर्क्य प्रभु के लिये मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥३५॥

ओ नमः पद्मनाभाय पद्मगर्भोद्भवाय च ।

नमोऽस्तु पद्मवर्णाय पद्महस्ताय ते नमः ॥३६॥

ओ नमः पुष्कराक्षाय सहस्राक्षाय मीढुपे ।

नमः सहस्रापादाय सहस्रभुज मन्यवे ॥३७॥

ओ नमोऽस्तु वराहाय वरदाय सुमेघसे ।

वरिष्ठाय वरेण्याय शरण्यायाञ्च्युताय च ॥३८॥

ओ नमो बालरूपाय बालपद्मप्रभाय च ।

बालकसोमनेत्राय मुञ्जकेशाय धीमते ॥३९॥

केशवाय नमो नित्यं नमो नारायणाय च ।

माधवाय वरिष्ठाय गोविन्दाय नमो नमः ॥४०॥

ओ नमो विष्णवे नित्यं देवाय वसुरेतसे ।

मधुसूदनाय नमः शुद्धायाशुधराय च ॥४१॥

नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय नमः श्रीवत्सधारिणे ।

ल्लिविक्रमाय च नमो दिव्यपीताम्बराय च ॥४२॥

पद्मनाभ, पद्मगर्भोद्भव, पद्मवर्ण और पद्म हाथ में धारण करने वाले प्रभु के लिये मेरा बारम्बार नमस्कार नमस्कार है ॥३६॥ पुष्कराक्ष, सहस्राक्ष मीढु, सहस्रापाद, सहस्रभुज और मनु के लिये मेरा नमस्कार है ॥३७॥ श्री वराह वरद, सुमेधा, वरिष्ठ, वरेण्य, शरण्य और भगवान् अच्युत के लिये मेरा नमस्कार है ॥३८॥ बालरूप, बाल पद्मप्रभ, बाल-

सूर्य, और सोम के समान नेत्रों वाले, मुञ्जशेष तथा धीमान् के लिये मेरा नमस्कार है ॥३६॥ भगवान् केशव के लिये मेरा नित्य ही नमस्कार है तथा नारायण के लिये मेरा नमस्कार है । भगवान् माधव, वरिष्ठ, और गोविन्द के लिये मेरा बारम्बार प्रणाम है ॥४०॥ भगवान् विष्णु देव और वसुरेता देव के लिये मेरा नित्य ही प्रणाम है । मधुसूदन-शुद्ध और अशुद्ध के लिये मेरा नमस्कार है ॥४१॥ अनन्त के लिये-सूक्ष्म के और श्री वत्स का चिह्न धारण करने वाले के लिये नमस्कार है । भगवान् त्रिविक्रम के लिये और दिव्य पीताम्बर धारी प्रभु के लिये मेरा प्रणाम है ॥४२॥

सृष्टिकर्त्रे नमस्तुभ्य गोप्त्रे धात्रे नमो नमः ।

नमोऽस्तु गुणभूताय निर्गुणाय नमो नमः ॥४३॥

नमो वामनरूपाय नमो वामनकर्मणे ।

नमो वामननेत्राय नमो वामनवाहिने ॥४४॥

नमो रम्याय पूज्याय नमोऽस्त्वव्यक्तरूपिणे ।

अप्रतर्क्याय शुद्धाय नमो भयहराय च ॥४५॥

संसारार्णवपोताय प्रशान्ताय स्वरूपिणे ।

शिवाय सौम्यरूपाय रुद्रायोत्तारणाय च ॥४६॥

भवभङ्गकृते चैव भवभोगप्रदाय च ।

भवसघातरूपाय भवसृष्टिकृते नमः ॥४७॥

ओं नमो दिव्यरूपाय सोमाग्निश्वसिताय च ।

सोमसूर्याशुकेशाय गाम्राह्मणहिताय च ॥४८॥

ओं नमः ऋक्स्वरूपाय पदक्रमस्वरूपिणे ।

ऋक्स्तुताय नमस्तुभ्य नमः ऋक्साधनाय च ॥४९॥

इस सृष्टि की रचना करने वाले आपके लिये प्रणाम है तथा गोप्ता और धाता के लिये मेरा नमस्कार है । गुण स्वरूप आपके लिये तथा निर्गुण भगवान् की सेवा में मेरा बारम्बार प्रणाम है ॥४३॥ वामन का रूप धारण करने वाले, वामन का कर्म करने वाले, वामन नेत्र, वामन वाही के लिये मेरा प्रणाम है ॥४४॥ परम रम्य, और पूजने

के योग्य के लिये नमस्कार है तथा अव्यक्त रूप वाले, अप्रतर्क्य, शुद्ध और भयो के हरण करने वाले प्रभु के लिये नमस्कार है ॥४५॥ ससाररूप सागर के पोत अर्थात् ससार सागर से पार करने वाले, प्रशान्त स्वरूप, सुन्दर रूप वाले सौम्यरूप धारी शिव के लिये और उच्चारण करने वाले भगवान् रुद्रदेव के लिये प्रणाम है ॥४६॥ इस ससार के भङ्ग करने वाले और सासारिक भोगों के प्रदान करने वाले, षड् (ससार) के सघात रूप वाले और भव की सृष्टि करने वाले के लिये मेरा प्रणाम है ॥४७॥ दिव्य रूप वाले और सोम एव अग्नि के श्रवित वाले के लिये नमस्कार है । सोम सूर्याशुक्लेश और गौओं तथा ब्राह्मणों के हित करने वाले के लिये प्रणाम है ॥४८॥ ऋग्वेद के स्वरूप वाले तथा पद, क्रम के स्वरूप से स्थित के लिये और ऋग्वेद द्वारा स्तुति किये गये तथा ऋक् के साधन वाले आपके लिये मेरा अनेक प्रणाम है ॥४९॥

ओं नमो यजुषा धात्रे यजूरूपधराय च ।

यजुर्याज्याय जुष्टाय यजुषा पतये नमः ॥५०॥

ओ नमः श्रोपते देव श्रीधराय वराय च ।

श्रियः कान्ताय दान्ताय गोगिचिन्त्याय योगिने ॥५१॥

ओं नमः सामरूपाय सामध्वनिवराय च ।

ओं नमः सामसौम्याय सामयोगविदे नमः ॥५२॥

साम्ने च सामगीताय ओं नमः सामधारिणे ।

सामयज्ञविदे चैव नमः सामकराय च ॥५३॥

नमस्त्वथर्वशिपसे नमोऽथर्वस्वरूपिणे ।

नमोऽस्त्वथर्वपादाय नमोऽथर्वकराय च ॥५४॥

ओ नमो वज्रशीर्षाय मधुकैटभघातिने ।

महोदधिजलस्याय वेदाहरणकारिणे ॥५५॥

नमो दोषस्वरूपाय हृषीकेशाय वै नमः ।

नमो भगवते तुम्य वासुदेवाय ते नमः ॥५६॥

यजुर्वेद के धाता, यजुर्वेद के स्वरूप धारी, यजुर्वेद के द्वारा यजन करने के योग्य, जुष्ट और यजुर्वेद व मन्त्रों के स्वामी के लिये प्रणाम है ॥५०॥ हे श्रीपतेदेव ! श्री के धारण करने वाले और वरदान स्वरूप, श्री के कान्त एवं दान्त, योगियों के द्वारा चिन्तन करने के योग्य योगी आपके लिये मेरा प्रणाम है ॥५१॥ सामवेद के रूप वाले और साम की श्रेष्ठ ध्वनि वाले, साम सौम्य तथा साम योग के वेत्ता आपके लिये मेरा प्रणाम है ॥५२॥ सामवेद, सामवेद के गीत और साम के धारण करने वाले, सामयज्ञ के ज्ञाता और साम के कर्त्ता आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥५३॥ अथर्ववेद के शिर वाले और अथर्ववेद के स्वरूप धाले आपके लिये मेरा प्रणाम है । अथर्व के पाद वाले के लिये और अथर्ववेद के करने वाले के लिये प्रणाम है ॥५४॥ भगवान् वज्र क्षीप और मधु तथा कंटक के धात करने वाले और महोदधि के जल में स्थित एवं वेदों के आहरणकारी भगवान् के लिये मेरा वारम्बार प्रणाम है ॥५५॥ दीप्त स्वरूप बाने हृषीकेश के लिये मेरा नमस्कार है । भगवान् वासुदेव आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥५६॥

नारायण नमस्तुभ्यं नमो लोकहिताय च ।  
 ओ नमो मोहनाशाय भवभङ्गकराय च ॥५७॥  
 गतिप्रदाय च नमो नमो बन्धहराय च ।  
 ॐ लोक्यतेजसा कर्त्रे नमस्तेजःस्वरूपिणे ॥५८॥  
 योगीश्वराय शुद्धाय रामयोत्तरणाय च ।  
 सुखाय सुखनेत्राय नमः सुकृतधारिणे ॥५९॥  
 वासुदेवाय वन्द्याय वामदेवाय वं नमः ।  
 देहिनां देहकर्त्रे च भेदभङ्गकराय च ॥६०॥  
 देवैर्वन्दितदेहाय नमस्ते दिव्यमालिने ।  
 नमो वासनिवासाय वासव्यवहराय च ॥६१॥  
 ओ नमो वसुकर्त्रे च वसुवासप्रदाय च ।  
 नमो यज्ञस्वरूपाय यज्ञेशाय च योगिने ॥६२॥

यतियोगकरेशाय नमो यज्ञाङ्गधारिणे ।

सकर्मणाय च नमः प्रलम्बमथनाय च ॥६३॥

हे नारायण ! आपके लिये मेरा नमस्कार है । लोको के हित करने वाले, मोह के नाशक तथा इस ससार के आवागमन के विनाश करने वाले आपके लिये मेरा प्रणाम है ॥६३॥ सद्गति के प्रदान करने वाले, बन्धन का हरण करने वाले आपकी सेवा में मेरा दारम्भार नमस्कार है । इस त्रिलोकी के तेजो के करने वाले तथा तेज के स्वरूप वाले, योगेश्वर, शुद्ध स्वरूप, रामा (महालक्ष्मी) को अपनी बाँहि और विराजमान रखने वाले, सुख स्वरूप, नेत्रो के सुख प्रदान करने वाले और सुकृत को धारण करने वाले आपको मेरा प्रणाम है ॥६४-६५॥ वन्दना करने के योग्य वासुदेव भगवान् के लिये तथा वासुदेव प्रभु के लिये नमस्कार । समस्त देहधारियों के देह के करने वाले और भेद के भङ्ग करने वाले के लिये मेरा प्रणाम है ॥६६॥ देवो के द्वारा वन्दित देह वाले, दिव्य माला धारण करने वाले, वास निवास, वास व्यवहार, दसु के कर्ता, वसु और वास के प्रदान करने वाले, यज्ञ के स्वरूप वाले, यज्ञो के स्वामी और योगी के लिये नमस्कार है ॥६१-६२॥ यति और योग करने वालो के ईश, यज्ञाङ्ग धारी, सकर्मण और प्रलम्ब के मथन करने वाले के लिये मेरा प्रणाम है ॥६३॥

मेघघोषस्वनोत्तीर्णवेगलाङ्गसधारिणे ।

नमोऽस्तु ज्ञानिना ज्ञान नारायणपरायण ॥६४॥

न मेऽस्ति त्वामृते बन्धुर्नरकोत्तारणे प्रभो ।

अतस्त्वां सदभावेन प्रणतो नतवत्सल ॥६५॥

मल यत्कायज याऽपि भानस चैव केशव ।

न तस्यान्योऽस्ति देवेश क्षालकस्त्वामृतेऽच्युत ॥६६॥

ससर्गाणि समस्तानि विहाय त्वामुपस्थितः ।

सगो मेऽस्तु त्वया सार्धमात्मलाभाय केशव ॥६७॥

कष्टमापत्सुदुष्पारं ससार वेदमि केशव ।

तापत्रयपरिविलष्टेन त्वा शरणं गतः ॥६८॥

एषणाभिर्जंगत्सर्वं मोहितं मायया तव ।

आकर्षितं च लोभाद्यै रतस्त्वामहमाश्रितः ॥६८॥

नास्ति किञ्चित्सुखं विष्णो संसारस्यस्य देहिनः ।

यथा यथा हि यज्ञेश त्वयि चेतः प्रवर्तते ॥७०॥

तथा फलविहीनं तु सुखमात्यन्तिकं लभेत् ।

नष्टो विवेकशून्योऽस्मि दृश्यते जगदातुरम् ॥७१॥

मेघो के घोष की ध्वनि को पार करने वाले वेग युक्त साज्जल के धारण करने वाले के लिए मेरा नमस्कार है । हे जानियो के भी ज्ञान ! हे नारायण परायण ! हे विप्रो ! आप के बिना नरको से पार करने वाला कोई भी बन्धु नहीं है । हे प्रणतो पर प्यार करने वाले ! अतएव मैं आपके चरणों में प्रणत हो रहा हूँ ॥६४-६५॥ हे केशव ! हे अच्युत ! जो इस काया से समुत्पन्न मल है अथवा मन में जमा हुआ मल है उसका प्रक्षालन करने वाला हे देवेश्वर ! आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं है ॥६६॥ मैं सभी ससर्गों का त्याग करके अर्थात् अन्य सासारिक समस्त सम्बन्धों को छोड़कर अब आपकी सेवा में समुपस्थित हो गया हूँ । हे केशव ! अब तो आत्म लाभ प्राप्त करने के लिये केवल आपके ही साथ मेरा संग है ॥६७॥ हे केशव ! आपत्तियों में महान् कष्ट होता है और मैं इस ससार को परम दुस्वार समझता हूँ । मैं इस समय में आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार के तापो से परिक्लिष्ट हो रहा हूँ । इसीलिये इनमें युद्धकारा पाने के लिये आपके चरणों की धरण में प्राप्त हुआ हूँ ॥६८॥ आपकी माया बड़ी प्रबल है और एषणाओं से यह सम्पूर्ण जगत् मोहित हो रहा है । मैं लोभ आदि से अत्यन्त आकर्षित हो रहा हूँ । इसीलिये अब से आपकी धरण में प्राप्त हो गया हूँ ॥६९॥ हे विष्णो ! इस ससार में स्थित देहधारी को कुछ भी सुख नहीं होता है । जैसे २ हे यज्ञेश ! यह चित्त आपकी धरणगति में प्रवृत्त होता है तथा फल से विहीन यह आत्यन्तिक सुख को प्राप्त किया करता है । मैं विनष्ट और विवेक से शून्य हूँ और सम्पूर्ण जगत् आतुर दिखलाई दिया करता है ॥७०-७१॥

गोविन्द ग्राहि ससारान्मामुद्धतुं त्वमर्हसि ।  
 मग्नस्य मोहसलिले निरुत्तारे भवार्णवे ॥  
 उद्धर्ता पुण्डरीकाक्ष त्वामृतेऽन्यो न विद्यते ॥७२  
 इत्थं स्तुतस्ततस्तेन राज्ञा श्वेतेन भो द्विजाः ।  
 तस्मिन्क्षेत्रवरे दिव्ये विख्याते पुरुषोत्तमे ॥७३  
 भक्तिं तस्य तु सचिन्त्य देयदेवो जगद्गुरुः ।  
 आजगाम नृपस्याग्रे सर्वदेववृत्तो हरिः ॥७४  
 नीलजीमूतसकाशः पद्मपत्रायतेक्षणः ।  
 दधत्सुदर्शनं धीमान्कराग्रे दीप्तमण्डलम् ॥७५  
 क्षीरोदजलसकाशो विमलश्चन्द्रसनिभः ।  
 रराज धामहस्तेऽस्य पान्धजन्यो महाद्युतिः ॥७६  
 पक्षिराजध्वजः श्रीमान्गदाशङ्खसिध्दप्रभुः ।  
 उवाच साधु भो राजन्यस्य ते मतिरुत्तमा ॥  
 यदिष्ट वरं भद्रं ते प्रसन्नोऽस्मि तवानघ ॥७७

हे गोविन्द ! आप मेरा परिश्राण करिए । आप इस ससार से मेरा  
 उद्धार करने के योग्य हैं । इस मोहरूपी जल में मग्न हो रहा हूँ । इस  
 महान् ससार सागर में जितना कही भी कोई पार होना नहीं दिखलाई  
 देता है मैं विमग्न हो रहा हूँ । हे पुण्डरीकाक्ष ! इससे उद्धार करने  
 वाला मुझे आपके बिना अन्य कोई भी विद्यमान नहीं दिखलाई देता  
 है ॥७२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजो ! उस राजा श्वेत के द्वारा  
 जब वह इस प्रकार से स्तुति किये गये तो उस परम दिव्य क्षेत्र में उस  
 विख्यात पुरुषोत्तम में उसकी भक्ति का भली-भाँति चिन्तन करके देवों  
 के भी देव जगत के गुरु समस्त देवों से परिवृत्त होते हुए भगवान् श्री  
 हरि स्वयं उस राजा के सामने समागत हो गये थे ॥७३-७४॥ जिस  
 समय में श्री हरि स्वयं उस अपने परम भक्त नृप के समक्ष में पधारे थे  
 उस समय के प्रभु के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—नीले वर्ण वाले  
 सघन मेघ के समान उनका वर्ण था, पद्म के दलों के सदृश विस्तीर्ण  
 शोचन थे, परम धीमान् प्रभु ने हाथ के अप्रभाग में प्रदीप्त मण्डल वाला



सुदर्शन चक्र धारण कर रक्खा था ॥७५॥ क्षीर सागर के स्वच्छ जल के समान तथा चन्द्रमा के सदृश विमल उनका स्वरूप था । इनके बाँधे हाथ में महान् युति से युक्त पाञ्चजन्य शंख द्योभित हो रहा था ॥७६॥ गरुड़ की श्रृंखला से युक्त, श्री सम्पन्न, गदा, शार्ङ्ग धनुष, खड्ग को धारण किये हुए थे ऐसे प्रभु ने वहाँ पर समागत होकर कहा—हे नृप ! बहुत अच्छा है, तुझ क्षत्रिय की मति अत्यन्त उत्तम है । हे निष्पाप ! मैं तुझपर परम प्रसन्न हो गया हूँ । अब तुझे जो भी अभीष्ट वरदान प्राप्त करना हो करले । तेरा कल्याण ही होगा ॥७७॥

श्रुत्वैवं देवदेवस्य वाक्यं तत्परमामृतम् ।  
 प्रणम्य शिरसोवाच श्वेतस्तदगतमानसः ॥७८॥  
 यद्यहं भगवन्भक्तः प्रयच्छ वरमुत्तमम् ।  
 आब्रह्मभवनादूर्ध्वं वैष्णवं पवमव्ययम् ॥७९॥  
 विमल विरजं शुद्धं ससारासङ्गवर्जितम् ।  
 तत्पदं गन्तुमिच्छामि त्वत्प्रसादाज्जगत्पते ॥८०॥  
 यत्पदं त्रिवुधाः सर्वे मुनयः सिद्धयोगिनः ।  
 नाभिगच्छन्ति यद्रम्य परं पदमनामयम् ॥८१॥  
 यास्थसि परमं स्थानं राज्यामृतमुपास्य च ।  
 सर्वाल्लोकानतिक्रम्य मम लोकं गमिष्यसि ॥८२॥  
 कीर्तिस्तवात्र राजेन्द्र श्रील्लोकाश्च गमिष्यति ।  
 सानिध्यं मम चंवात्र सर्वदेव भविष्यति ॥८३॥  
 श्वेतगङ्गा इति गास्यन्ति सर्वे ते देवदानवाः ।  
 कुशाग्रैर्नापि राजेन्द्र श्वेतगङ्गां ज्ञेयमम्बु च ॥८४॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय मे देवों के भी आराध्यदेव के उस परम अमृतमय वचन का श्रवण करके उस नृप ने उनके श्री चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया था और उस श्वेत राजा ने उनके चरणों में अपना मनपूर्ण तन रखते हुए उनसे निवेदन किया था—॥७८॥ राजा श्वेत ने कहा—हे भगवन् ! यदि मैं आपका परम भक्त हूँ तो अब आप कृपया

मुझे उत्तम धरदान प्रदान कीजिए । हे जगत् के स्वामिन् ! मैं आपके प्रसाद से ब्रह्मभवन से भी ऊपर-अध्वय-विमल-विरज शुद्ध-सत्तार के आसङ्ग से रहित जो वैष्णव पद (स्थान) है उसमें मैं गमन करना चाहता हूँ ॥७६-८०॥ श्री भगवान् ने कहा—जिस पद को समस्त देवगण-भुनिमण्डल और सिद्ध तथा योगी जन नहीं जाया करते हैं वह ऐसा ही परम रम्य और अनान्य पद है ॥८१॥ तुम प्रथम अपने राज्य के अमृतमय सुखों को भोग कर फिर अन्त में उन्नी परम पद को प्राप्त करोगे और समस्त लोकों का अतिक्रमण करके मेरे लोक में ही गमन करोगे ॥८२॥ हे राजेन्द्र ! तेरा यश तीनों लोकों में फैल जायेगा और तेरा वहीं पर मेरी सद्भिधि में निवास सर्वदा ही रहेगा ॥८३॥ समस्त देव दानव उसे “श्वेत गङ्गा” कहकर गान किया करेंगे । हे राजेन्द्र ! कुशा के अग्रभाग के द्वारा भी इस श्वेत गङ्गा के जल का स्पर्श करके स्वर्ग की प्राप्ति किया करेंगे ॥८४॥

स्पृष्ट्वा स्वर्गं गमिष्यन्ति मद्भक्ता ये समाहिताः ।  
 यस्त्विमा प्रतिमा गच्छेन्माधवात्पुत्रा दक्षिप्रभाम् ॥८५॥  
 शङ्खगोक्षीरसकाशामरोपाधविनाशिनीम् ।  
 ता प्रणम्य सकृद्भक्त्या पुण्डरीकनिभेक्षणाम् ॥८६॥  
 विहाय सर्वलोकान्वै मम लोके महीयते ।  
 मन्वन्तराणि तत्रैव देवकन्याभिरावृतः ॥८७॥  
 गीयमानश्च मधुरं सिद्धगन्धर्वसेवितः ।  
 भुनक्ति विपुलान्भोगान्पयेष्टं मामकैः सह ॥८८॥  
 च्युतस्तस्मादिहाऽऽगत्य मनुष्यो ब्राह्मणो गवेत् ।  
 वेदवेदाङ्गच्छिन्नीमान्भोगवाश्चिरजीवितः ॥८९॥  
 गजाश्वरथयानाढ्यो धनधान्यावृतः शुचिः ।  
 रूपवान्वह्नुर्भाग्यश्च पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥९०॥  
 पुरपोत्तम पुनः प्राप्य बटमूलेऽथ सागरे ।  
 त्यक्त्वा देहं हरिं स्मृत्वा ततः शान्तपदं व्रजेत् ॥९१॥

जो मेरे परम समाहित भक्त है वे ही इसका पुशाप्रभाग से सार्श करके स्वर्ग को गमन किया करेंगे । जो चन्द्र के समान प्रभा वाली मेरी माधव नामधारिणी प्रतिमा है उसके समीप मे जो भी कोई गमन करेगा जिसका स्वरूप शङ्ख, गो-दुग्ध के समान है और जो समस्त अधो वा विनाश करने वाली है एव पुण्डरीक के समान जिसके परम सुन्दर नेत्र हैं उस मेरी प्रतिमा को भक्तिभाव से जो कोई एक बार भी प्रणाम किया करता है वह सभी लोको का त्याग करके मेरे ही लोक मे प्रतिष्ठित हुआ करता है । वहाँ पर वह देव कन्याओं से समावृत रहता हुआ बहुत से मन्वन्तरों तक निवास किया करता है । उसको स्तुति का वहाँ गान किया जाता है जो परम मधुर होता है और सिद्ध तथा गन्धर्वगण उसकी सेवा किया करते हैं । वहाँ पर वह मेरे अनेक भक्तो के साथ यथेष्ट रूप से बहुत से भोगो का उपभोग किया करता है ॥८५-८८॥ वहाँ से च्युत होकर वह अधिक काल के पश्चात् पुण्यो का क्षय हो जाने पर यहाँ पुनः आता है और मनुष्यों मे ब्राह्मण हुआ करता है जो वेदो और वेदाङ्ग शास्त्रो का पूर्ण ज्ञाता-भोगो वाला और चिरकाल तक जीवित रहने वाला होता है ॥८९॥ वह विप्र होकर भी हाथी-घोटे-रथ और धन से सुसम्पन्न होता है । धन धान्य से परिपूर्ण-शुचि-रूप लावण्य से युक्त बहुत ही भाग्यशाली तथा पुन पीनादि से समन्वित हुआ करता है । पुनः वह पुरुषोत्तम को बट के मूल मे अथवा सागर मे प्राप्त किया करता है । फिर वह इस देह का परित्याग करके भगवान् श्री हरि का स्मरण करके परम शान्त पद को गमन किया करता है ॥९०-९१॥

## २७—समुद्रस्नानविधिवर्णन

श्वेतमाधवमालोक्य समीपे वत्स्यमाधवम् ।  
 एकार्णवजले पूर्वं रोहितं रूपमास्थितम् ॥१॥  
 वेदानां हरणार्थाय रसातलतले स्थितम् ।  
 चिन्तयित्वा क्षितिं सम्यक्तस्मिन्स्थाने प्रतिष्ठितम् ॥२॥  
 आद्यावत्तरण रूप माधव मत्स्यरूपिणम् ।  
 प्रणम्य प्रणतो भूत्वा सवदुःखाद्विमुच्यते ॥३॥  
 प्रयाति परम स्थानं यत्र देवो हरिः स्वयम् ।  
 काले पुनरिहाऽऽयातो राजा स्यात्पृथिवीतले ॥४॥  
 वत्समाधवमासाद्य दुराधर्षो भवेन्नरः ।  
 दाता भोक्ता भवेद्यज्वा वैष्णवः सत्यसगरः ॥५॥  
 योगं प्राप्य हरेः पश्चात्ततो मोक्षमवाप्नुयात् ।  
 मत्स्यमाधवमाहात्म्यं मया सपरिकीर्तितम् ॥  
 यदृष्ट्वा मुनिशार्दूलः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥६॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् श्वेत माधव का दर्शन करके उनके समीप में ही मत्स्य माधव विराजमान हैं उनका अवलोकन करना चाहिए । पहिले यह मत्स्य माधव प्रभु उस एकार्णव जल में रोहित के रूप में समास्थित हो गये थे ॥१॥ वेदों के आहरण करने के लिये रसातल में स्थित हुए । क्षिति का चिन्तन करके उमी स्थान में यह भली भाँति प्रतिष्ठित हो गये थे ॥२॥ मत्स्य के स्वरूप वाले माधव का स्वरूप आदि में होने वाला अवतार है । इनको प्रणाम करके और इनके समक्ष में प्रणत होने वाला प्राणी सभी दुःखों से मुक्तिकार प्राप्त कर लिया करता है ॥३॥ अन्त समय में वह परम पद को गमन किया करता है जहाँ पर स्वयं श्री हरि विराजमान रहा करते हैं । पुण्य के क्षीण होने पर चिरकाल के पश्चात् वह पुनः इस ब्रह्मभूमि भारत में जन्म ग्रहण करके पृथिवी तल में राजा होता है ॥४॥ मनुष्य वत्स माधव

को प्राप्त करके दुराघर्ष हो जाया करता है ; वह दाता-भोक्ता-यज्वा-सत्यसङ्कर और वैष्णव होता है ॥५॥ फिर यहाँ पर भगवान् श्री हरि के योग को प्राप्ति करके मोक्ष को प्राप्त किया करता है । मैंने यह भगवान् मत्स्य माधव के माहात्म्य का परम संक्षेप से वर्णन कर दिया है । हे मुनिशार्दूलो ! जिन मत्स्य माधव भगवान् का दर्शन करके मनुष्य सभी कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करता है ॥६॥

भगवञ्श्रोतुमिच्छामो मार्जनं वरुणालये ।

क्रियते स्नानदानादि तस्याशेषफलं वद ॥७॥

शृणुध्वं मुनिशार्दूलो मार्जनस्य यथाविधि ।

भक्त्या तु तन्मना भूत्वा सप्राप्य पुण्यपुन्यम् ॥८॥

मार्कण्डेयहृदे स्नानं पूर्वकाले प्रशस्यते ।

चतुर्दश्यां विशेषेण सर्वपापप्रणाशनम् ॥९॥

तद्वत्स्नानं समुद्रस्य सर्वकृष्ण प्रशस्यते ।

पौर्णमास्यां विशेषेण हयमेवफलं लभेत् ॥१०॥

मार्कण्डेयं वटं कृष्णं रौहिणेयं महोदधिम् ।

इन्द्रद्युम्नसरश्चैव पञ्चतीर्थोविधिः स्मृतः (?) ॥११॥

पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य ज्येष्ठा ऋक्ष यदा भवेत् ।

तदा गच्छेद्विशेषेण तीर्थराजं पर शुभम् ॥१२॥

कायवाङ्मानसः शुद्धस्तद्भावो नान्यमानसः ।

सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो वीतरागो विमत्सरः ॥१३॥

कल्पवृक्षवट रम्य तत्र स्नात्वा जनार्दनम् ।

प्रदक्षिणं प्रकुर्वीत त्रिवार सुसमाहितः ॥१४॥

मुनिगण ने कहा—हे भगवन् ! अब हम लोग वरुणालय ( सागर ) में मार्जन ( स्नान ) करने के विधान का अवगण करने की अत्यन्त उत्कृष्ट अभिलाषा रखते हैं । वहाँ पर जो स्नान-आदि किया जाता है उस सब फल का वर्णन कीजिए ॥७॥ हे मुनिशार्दूलो ! अब आप संक्षेप मार्जन का विधान सुनिए । जो कि भक्ति भाव के साथ तन्मनस्क होकर यथाविधि मार्जन करके उत्तम पुण्य की प्राप्ति मनुष्य किया करता है

॥८॥ इसके भी पूर्व समय में मार्कण्डेय तृद में स्नान करना परम प्रशस्त माना जाता है । विशेष रूप से चतुर्दशी तिथि में यहाँ स्नान करना सभी पापों का विनाश कर देने वाला होता है ॥९॥ उसी भाँति समुद्र के स्नान को भी सभी कालों में प्रशस्त माना गया है । पूर्णिमा तिथि में विशेष रूप से अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है ॥१०॥ मार्कण्डेय-वटकृष्ण-रोहिणेय-महोदधि और इन्द्रद्युम्न सरोवर—यह पाँच तीर्थों की विधि बतायी गयी है ॥११॥ ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा तिथि में जब कि ज्येष्ठा नक्षत्र होवे उसी समय में विशेष रूप से यह तीर्थराज परम शुभ होता है ॥१२॥ सरीर-मन वचनों से शुद्ध होकर तीर्थराज में ही भावना रखने वाला अन्य किसी में भी अपना मन न लगाने वाला सभी सासारिक दुन्दुओं से विमुक्त रहकर राग से रहित एवं मात्सर्य दोष से शून्य होने वाला पुरुष परम रम्य स्नान करके कल्प वृक्ष वट भी जनार्दन प्रभु की प्रदक्षिणा करे और परम सावधान होकर तीन बार परिक्रमा करनी चाहिए ॥१३-१४॥

य दृष्ट्वा मुच्यते पापात्सप्तजन्मसमुद्भवात् ।

पुण्य चाऽऽप्नोति विपुल गतिमिष्टां च भो द्विजाः ॥१५॥

तस्य नामानि वक्ष्यामि प्रमाणं च युगे युगे ।

यथासस्य च भो विप्राः कृतादिषु यथाक्रमम् ॥१६॥

वट वटेश्वर कृष्ण पुराणपुरुष द्विजाः ।

वटस्येतानि नामानि कीर्तितानि कृतादिषु ॥१७॥

योजन पादहीनं च योजनार्धं तदधकम् ।

प्रमाणं कल्पवृक्षस्य कृतादौ परिकीर्तितम् ॥१८॥

यथोक्तेन तु मन्त्रेण नमस्कृत्वा तु तं वटम् ।

दक्षिणाभिमुखो गच्छेद्धन्वन्तरशतत्रयम् ॥१९॥

यत्रासी दृश्यते विष्णुः स्वर्गद्वारं मनोरमम् ।

सागराम्भः समाकृष्टं काष्ठं सर्वगुणान्वितम् ॥२०॥

प्रणिपत्य ततस्तं भो परिपूज्य ततः पुनः ।

मुच्यते सर्वरोगार्थं स्तथा पापं ग्रंहादिभिः ॥२१॥

हे द्विजगण ! उन प्रभु का दर्शन प्राप्त करके मनुष्य सात जन्मों में सञ्चित किये हुए पापों से मुक्त हो जाया करता है और बहुत अधिक पुण्य की प्राप्ति किया करता है तथा अभीष्ट गति का लाभ प्राप्त कर लेता है ॥१५॥ उनके शुभ नाम और युग-युग में जो प्रमाण हैं उनको मैं बतलाता हूँ । हे विप्रो ! कृतयुग आदि में मैं उन नामों को सख्यन्नु-सार तथा क्रम के अनुसार बतलाता हूँ ॥१६॥ हे द्विजो ! कृतयुग आदि में इस वर के वट वटेश्वर-कृष्ण और पुराण पुरुष-ये नाम कीर्तित किये गये हैं ॥१७॥ कृतयुग आदि में एक योजन ( जो चार कोश का माना जाता है )—पौन योजन अर्थात् तीन कोश-आधा योजन और एक पाव योजन इस कल्प वृक्ष का प्रमाण कहा गया है ॥१८॥ यथोक्त मन्त्र के द्वारा उस वट को प्रणाम करके दक्षिण की ओर मुख करके तीन सौ सन्वन्तर तक गमन करना चाहिए ॥१९॥ जहाँ पर यह भगवान् विष्णु दिखलाई दिया करते हैं वह परम मनोरम स्वर्ग का द्वार है । सागर के जल के द्वारा समाकृत है जो सभी गुण-गण से युक्त होता है ॥२०॥ उसका प्रणिपात करके उसके उपरान्त उसका पूजन करे । इसका यह फल होता है कि वह मनुष्य सब रोग आदि से समस्त पापों से और दुष्ट ग्रह आदि के प्रकोप से मुक्त हो जाया करता है ॥२१॥

उग्रमेन पुरा दृष्ट्वा स्वर्गद्वारेण सागरम् ।

गत्वाऽऽचम्य शुचिस्तत्र ध्यात्वा नारायण परम् ॥२२॥

न्यसेदष्टाक्षर मन्त्र पश्चाद्विस्तशरीरयोः ।

ॐ नमो नारायणयेति य वदन्ति मनोपिणः ॥२३॥

किं कार्यं बहुभिर्मन्त्रं मनोविभ्रमकारकैः ।

ॐ नमो नारायणयेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥२४॥

आपो नरस्य सूनुत्वान्नारा इतीह कीर्तिताः ।

विष्णोस्तास्त्वयन पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ ५

नारायणपरा वेदा नारायणपरा द्विजाः ।

नारायणपरा यज्ञा नारायणपरा क्रियाः ॥२६॥

नारायणपरा पृथ्वी नारायणपरं जलम् ।

नारायणपरो वह्निर्नारायणपरं नभः ॥२७

नारायणपरो वायुर्नारायणपरं मनः ।

अहंकारश्च बुद्धिश्च उभे नारायणात्मके ॥२८

पहिले उग्रसेन का दर्शन करके स्वर्ग द्वार से सागर को जाकर वहाँ आचमन करे । पवित्र होकर परम पुरुष नारायण का ध्यान करना चाहिए ॥२२॥ इसके पीछे हाथ और शरीर में अष्टाक्षर मन्त्र का न्यास करना चाहिए । वह मन्त्र—“ॐ नमो नारायणाय” यह है जिसको मनीषी लोग कहा करते हैं ॥२३॥ अन्य बहुत से मन के विभ्रम करने वाले मन्त्रों से फिर क्या प्रयोजन है ? ॐ नमो नारायणाय—यह मन्त्र ही सर्वियों का साधक होता है ॥२४॥ नर के पुत्रहीन होने से ही जल “नारा”—इस नाम से कीर्तित किये गये है । वे ही जल भगवान् विष्णु के अयन हैं जो कि सबसे पूर्व में था । अतएव वह नारायण नाम वाले बहे गये है ॥२५॥ भगवान् नारायण ही में परायण रहने वाले समस्त वेद हैं अर्थात् सब वेद नारायण की ही मुख्यतया प्रतिपादित किया करते हैं । सब द्विजगण भी नारायण में ही तत्पर रहा करते हैं । सब यज्ञ भी नारायण के ही प्राप्त कराने वाले हैं । नारायण की प्राप्ति ही उनका मुख्य ध्येय होता है । समस्त शास्त्रोक्त धार्मिक क्रियाएँ भी नारायण-परायण हुआ करती है । यह सम्पूर्ण पृथ्वी भी नारायण में ही परायण होती है और जल भी नारायण पर है । नभ तथा वह्नि भी नारायण में तत्पर रहा करते है एवं वायु और यम भी नारायण में ही परायण रहते हैं । अहङ्कार और बुद्धि ये दोनों भी नारायण स्वरूप ही होने हैं ॥२६-२८॥

भूत भव्य भविष्य च यत्किञ्चिज्जीवसञ्ज्ञितम् ।

स्थूल सूक्ष्मं परं चैव सर्वं नारायणात्मकम् ॥२९

शब्दाद्या विषयाः सर्वे श्रोत्रादीनिन्द्रियाणि च ।

प्रकृतिः पुरुषश्चैव सर्वे नारायणात्मकाः ॥३०



जले स्थले च पाताले स्वर्गलोकेऽम्बरे नगे ।

अवष्टम्य इदं सर्वमास्ते नारायणः प्रभुः ॥ १

किं चात्र बहूनोक्तेन जगदेतच्चराचरम् ।

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त सर्वं नारायणात्मकम् । ३२

नारायणात्परं किञ्चिन्नेह पश्यमि भो द्विजाः ।

तेन व्याप्तमिदं सर्वं दृश्यादृश्यं चराचरम् ॥ ३३

आपो ह्यायतन विष्णोः स च एवाम्भसां पतिः ।

तस्मादप्सु स्मरेन्नित्यं नारायणमघापहम् ॥ ३४

स्नानकाले विशेषेण चोपस्थाय जले शुचिः ।

स्मरेन्नारायणं ध्यायेद्वस्ते काये च विन्यसेत् ॥ ३५

भूतकाल जो व्यतीत हो चुका है-भव्यकाल जो वर्तमान में है और भविष्य जो आगे आने वाला समय है तथा जो भी कोई जीव सत्ता से युक्त है-स्थूल स्वरूप से और सूक्ष्म स्वरूप वाले तथापर ये सभी नारायण के एक होते हैं ॥३६॥ शब्द आदि समस्त इन्द्रियों के विषय और श्रोत्रप्रभृति सब इन्द्रियों का समुदाय प्रकृति एवं पुरुष नाम से सम्बोधित किये जाने वाला-ये सभी भगवान् नारायण के ही स्वरूप होत हैं । तात्पर्य यह है कि इस विश्व में नारायण के सब विभिन्न स्वरूप हैं और उनसे व्यतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है ॥३७॥ जल में, स्थल में, पाताल में, स्वर्गलोक में, अम्बर में, पर्वत में भगवान् नारायण ही सबको अवष्टम्भ करके विद्यमान रहा करते हैं और निष्कर्षार्थ में सब नारायण का ही स्वरूप है जो कि सर्व साधारण को विभिन्न रूपों में दिखलाई दिया करते हैं ॥३८॥ विशेष बखान करने से पया लाभ है यह सम्पूर्ण चराचर जगत् ब्रह्म से लेकर स्तम्ब पर्यन्त सभी नारायण का स्वरूप होता है ॥३९॥ हे द्विजो ! हम यहाँ पर नारायण से पर अन्य कुछ भी नहीं देखते हैं । उन्हीं से दृश्य तथा अदृश्य चराचर सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है ॥४०॥ आप अर्थात् जल भगवान् विष्णु का आयतन अर्थात् निवास स्थान है और वही जलो का स्वामी है । इसी लिये अर्घों के अपहरण करने वाले भगवान् नारायण का स्मरण नित्य ही जल में करना चाहिए

॥३४॥ विशेष रूप से स्नान करने के समय में उपस्थान करके और पुत्रि होकर भगवान् नारायण का स्मरण करना चाहिए तथा हस्त में और शरीर में विन्यास करे ॥३५॥

ओंकार च नकारं च अङ्गुष्ठे हस्तयोर्न्यसेत् ।

शपैहं(पान्ह)स्ततल (ले)यावत्तर्जंन्यादिषु विन्यसेत् ॥३६

ओंकारं वामपादे तु नकारं दक्षिणे न्यसेत् ।

मोकारं वामकट्या तु नाकारं दक्षिणे न्यसेत् ॥३७

राकारं नाभिदेशे तु यकार वामबाहुके ।

णाकार दक्षिणे न्यस्य यकारं मूर्ध्नि विन्यसेत् ॥३८

अधश्चोर्ध्वं च हृदये पार्श्वतः पृष्ठतोऽग्रतः ।

ध्यात्वा नारायण पञ्चदारभेत्कवचं बुधः ॥३९

पूर्वे मा पातु गोविन्दो दक्षिणे मधुसूदनः ।

पश्चिमे श्रीधरो देवः केशवस्तु तथोत्तरे ॥४०

पातु विष्णुस्तथाऽऽग्नेये नैऋते माधवोऽव्ययः ।

वायव्ये तु हृषीकेशस्तथेशाने च वामनः ॥४१

भूतले पातु वाराहस्तयोर्ध्वं च त्रिविक्रमः ।

कृत्वं च कवकं पश्चादात्मानं चिन्तयेत्ततः ॥४२

ॐंकार और नकार का दोनों हाथों के अङ्गुष्ठों में न्यास करे । शप-  
इनसे हस्ततल में तर्जनी आदि में विन्यास करना चाहिए ॥३६॥ ॐंकार  
को वामपाद में-नकार को दक्षिण पाद में न्यस्त करना चाहिए । मोंकार  
को बाँये पाद में तथा नांकार को दक्षिण पाद में विन्यस्त करे ॥३७॥  
रांकार को नाभि देश में और मंकार को वाम बाहु में न्यस्त करे ।  
णांकार को दक्षिण में विन्यस्त करे तथा यकार का न्यास मूर्द्धा में करना  
चाहिए ॥३८॥ हृदय में नीचे तथा ऊपर-पार्श्व भाग में और आगे की  
ओर भगवान् नारायण का ध्यान करके बुध पुरुष को अनन्तर में  
नारायण कवच का आरम्भ करना चाहिए ॥३९॥ श्री गोविन्द भगवान्  
पूर्व दिशा में भेरी रक्षा करें, मधुसूदन प्रभु दक्षिण में रक्षा करें ।  
श्रीधरदेव पश्चिम में मुरक्षा करे तथा उत्तर में केशवदेव रक्षा करें ॥४०॥

आग्नेय कोण में विष्णु रक्षा करें, नैऋत्य कोण में अव्यय माधव रक्षा करें । वायव्य दिशा में भगवान् हृषीकेश और ईशान कोण में वामन भगवान् रक्षा करें ॥४१॥ वाराह भगवान् भूतल में मेरा यदि भ्रमण करें और ऊर्ध्वभाग में त्रिविक्रम प्रभु रक्षा करें । इस प्रकार से सम्पूर्ण कवच का पाठ करके पीछे आत्मा का चिन्तन करना चाहिए ॥४२॥

अहं नारायणो देवः शङ्खचक्रगदाधरः ।

एव व्यात्वा तदाऽऽत्मानमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥४३॥

त्वमग्निद्विपदां नाय रेतोधाः कामदीपनः ।

प्रधानः सर्वभूतानां जीवानां प्रभुरव्ययः ॥४४॥

अमृतस्यारणिस्त्व हि देवयोनिरपां पते ।

वृजिनं हर मे सर्वं तीर्थराज नमोऽस्तु ते ॥४५॥

एवमुच्चार्य विधिवत्ततः स्नानं समाचरेत् ।

अन्यथा भो द्विजश्रेष्ठाः स्नानं तत्र न शस्यते ॥४६॥

कृत्वा तु वैदिकमन्त्रं रभिषेका च मार्जनम् ।

अन्तर्जले जपेत्पश्चाद्भिरावृत्त्याऽधमर्पणम् ॥४७॥

हयमेधो यथा विप्राः सर्वपापहरः क्रतुः ।

तथाऽधमर्पणं चात्र सूक्तं सर्वाधिनाशनम् ॥४८॥

उत्तीयं वाससी धौते निर्मले परिधाय वं ।

प्राणानायम्य चाऽऽचम्य स्रग्ध्या चोपास्य भास्करम् ॥४९॥

आत्म चिन्तन का विधान यह है कि मैं ही देव नारायण का स्वरूप हूँ और शंख-चक्र तथा गदा के धारण करने वाला भी मैं हूँ । इस प्रकार से अपने आपके विषय में ध्यान करके फिर इस नीचे बताये हुए मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए ॥४३॥ हे नाय ! आप द्विपदों की अग्नि हो, रेतोधा तथा काम के दीपन करने वाले हो । आप समस्त भूतों में प्रधान हो और सब जीवों के प्रभु एवं आप अव्यय हो ॥४४॥ हे जलों के स्वामिन् ! आप अमृत के अरणि हैं और देवयोनि हैं । हे तीर्थराज ! मेरे सब वृजिन (पाप) का हरण करिए मेरा आपको नमस्कार है ॥४५॥ इस प्रकार से विधि पूर्वक उच्चारण करके इसके उपरान्त स्नान करना

चाहिए । हे द्विजो मे परम श्रेष्ठो ! इस विधान के विपरीत वहाँ पर स्नान करना भी प्रशस्त नहीं होता है । कई वैदिक मन्त्रों के द्वारा अभिषेक और मार्जन करके पीछे जल के अन्दर स्थित होकर तीन बार अघमर्पण मन्त्र का जाप करना चाहिए ॥४७॥ हे विप्रगणो ! अश्वमेध यज्ञ जिस प्रकार से सभी पापों का हरण करने वाला है उसी भाँति यह अघमर्पण सूक्त समस्त अघों का विनाश करने वाला यहाँ पर हुआ करता है ॥४८॥ उतर कर शुद्ध निर्मल धुले हुए वस्त्रों को धारण करना चाहिए । फिर प्राणायाम करके तथा आचमन करके सन्ध्या वन्दना करे और भगवान् भास्कर की उपासना करनी चाहिए ॥४९॥

उपतिष्ठेत्ततश्चोर्ध्वं क्षिप्त्वा पुष्पजलाञ्जलिम् ।

उपम्यायोर्ध्वं बाहुश्च तल्लिङ्गं भस्करं ततः ॥५०॥

गायत्री पावनी देवी जपेदष्टोत्तरं शतम् ।

अन्याश्च सौरमन्त्राश्च जप्त्वा तिष्ठन्समाहितः ॥५१॥

कृत्वा प्रदक्षिण सूर्यं नमस्कृत्योपविश्य च ।

स्वाध्याय प्राङ्मुख कृत्वा तर्पयेद्देवतान्यृषीन् ॥५२॥

मनुष्याश्च पितृ श्रान्यान्नामगोत्रेण मन्त्रवित् ।

तोयेन तिलमिश्रेण विधिवत्सुसमाहितः ॥५३॥

तर्पणं देवतानां च पूर्वं कृत्वा समाहितः ।

अधिकारी भवेत्पश्चात्पितृणां तर्पणे द्विजः ॥५४॥

श्राद्धे हवनकाले च पाणिनेकेन निर्वपेत् ।

तर्पणे तूभयं कुर्यादपि एव विधिः सदा ॥५५॥

अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु ।

तृप्यतामिति सिञ्चेत्तु नामगोत्रेण वाग्यतः ॥५६॥

इसके उपरान्त उपस्थान करे और ऊपर की ओर सूर्यदेव के लिये पुष्पाञ्जलि का प्रक्षेप करना चाहिए । उपस्थान करके ऊपर की ओर बाहुओं वाला होते हुए उनके लिङ्गों के द्वारा भास्कर का उपस्थान करे और परम पावनी गायत्रीदेवी का एक सौ आठ बार जाप करना चाहिए

तथा परम समाहित होते हुए खड़ा रहकर अन्य जो सूर्यदेव के मन्त्र हों उनका भी जप करे । फिर प्रदक्षिणा करके सूर्यदेव को प्रणाम करे और बैठ जावे । पूर्व की ओर मुख करके स्वाध्याय करना चाहिए और देवों का तथा ऋषियों का तर्पण करे ॥५०-५२॥ मन्त्रों के ज्ञाता पुरुष को नाम और गोत्रों के उच्चारण के सहित मनुष्यों का एवं पितृगणों का तिलो से मिश्रित जल के द्वारा परम सावधान होकर तर्पण करना चाहिए ॥५३॥ सबसे पूर्व सावधान रह कर देवों का तर्पण करे और इसके पीछे ही द्विज पितृगणों के तर्पण करने का उचित अधिकारी हुआ करता है ॥५४॥ श्राद्ध में और हवन के समय में एक हाथ से ही निर्वपण करना चाहिए । तथा तर्पण के समय में दोनों हाथों से ही करे-यह ही सदा इसका विधान होता है ॥५५॥ अन्धारव्य सव्य और दक्षिण हाथ से तृप्यताम् अर्थात् तृत होइये यह कहते हुए नाम एवं गोत्र का उच्चारण करके मौन रहते हुए सिञ्चन करना चाहिए । यही तर्पण की विधि है ॥५६॥

कायस्थेयंस्तिलैर्मोहात्करोति पितृतर्पणम् ।

तर्पितास्तेन पितरस्तद्भांसरुधिरास्थिभिः ॥५७॥

अङ्गस्थेन तिलैः कुर्याद्देवतापितृतर्पणम् ।

रुधिर तद्भवेत्तोयं प्रदाता किल्बिषी भवेत् ॥५८॥

भूम्यां यद्दीयते तोयं दाता चैव जले स्थितः ।

वृथा तन्मुनिशादूला नोपतिष्ठति कस्यचित् ॥५९॥

स्थले स्थित्वा जले यस्तु प्रयच्छेद्बुदकं नरः ।

पितृणां नोपतिष्ठेत्त सलिल यन्निरर्थकम् ॥६०॥

उदके नोदकं कुर्यात्पितृभ्यश्च कदाचन ।

उत्तीर्य तु शुची देशे कुर्याद्बुदकतर्पणम् ॥६१॥

नोदकेषु न पात्रेषु न क्रुद्धो नैकपाणिना ।

नोपतिष्ठति तत्तोयं यद्भूम्यां न प्रदीयते ॥६२॥

काया में स्थित तिलो के द्वारा मोह से फिर तर्पण किया करता है उससे त्वचा-भांस-रुधिर और अस्थियों के द्वारा पितर तर्पित होते हैं

॥५७॥ अङ्गस्य तिलो से देवता पितृगणो का तर्पण नहीं करना चाहिए  
 क्योंकि ऐसा करने से वह जल रुधिर हो जाया करता है और जो जल  
 का प्रदान करने वाला है वह पाप का भागी होता है ॥५८॥ दाता जल  
 में स्थित होकर भूमि में जो जल इसके द्वारा दिया जाता है हे मुनि-  
 शास्त्रो ! वह व्यर्थ ही होता है और किसी को भी प्राप्त नहीं हुआ  
 करता है ॥५९॥ जो मनुष्य स्थल में स्वयं स्थित होकर जल को जल  
 में ही दिया करता है वह जल भी पितृगणों को प्राप्त नहीं होता है और  
 ऐसा जल देना सर्व वा निरर्थक हुआ करता है ॥६०॥ पितृगणों को  
 जल दान किया जाता है उस उदक को कभी भी उदक में नहीं करना  
 चाहिए । किसी पवित्र भाग में उत्तर का ही उदक तर्पण करना चाहिए ।  
 उदको में नहीं-पात्रों में नहीं-क्रुद्ध होकर एक हाथ से नहीं जलदान  
 करना चाहिए क्योंकि वह जल उनको प्राप्त नहीं हुआ करता है जो कि  
 भूमि में प्रदान नहीं किया जाया करता है ॥६१-६२॥

पितृणामक्षय स्थान मही दत्ता मया द्विजाः ।

तस्मात्तत्रैव दातव्य पितृणा प्रीतिमिच्छता ॥६३॥

भूमिपृष्ठे समुत्पन्ना भूम्या चैव च सस्थिताः ।

भूम्या चैव लय याता भूमौ दद्यात्ततो जलम् ॥६४॥

आस्तीर्य च कुशान्साग्रास्तानावाह्य स्वमन्त्रतः ।

प्राचीनाग्रेषु च देवान्याम्याग्रेषु तथा पितृन् ॥६५॥

हे द्विजो ! मैंने पितृगणों को अक्षय स्थान मही दी है ।  
 इसलिये पितृगणों की प्रीति की अभिलाषा रखने वालों को भूमि में ही  
 जलदान करना चाहिए ॥६३॥ ये सभी भूमि के ही पृष्ठ पर समुत्पन्न  
 हुए हैं तथा भूमि पर ही सस्थित भी रहेंगे और इस भूमि में ही ये सब  
 लय को प्राप्त हुए हैं अतएव भूमि में ही जल उनको देना चाहिए ॥६४॥  
 अग्रभाग के सहित कुशाओं को फैलाकर वहाँ पर अपने मन्त्र से उनका  
 आवाहन करना चाहिए । प्राचीनाग्रों पर देवों का आवाहन करे तथा  
 याम्याग्रों पर पितृगणों का आवाहन करे ॥६५॥

२ = — पूजाविधिकथन

देवान्पितृस्तथा चान्यान्सतर्प्याऽऽचम्य वाग्यतः ।

हस्तमात्रं चतुष्कोणं चतुर्द्वारं सुशोभनम् ॥१॥

पुरं विलिख्य भो विप्रास्तीरे तस्य महोदधेः ।

मध्ये तत्र लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सर्गणिकम् ॥२॥

एव मण्डलमालिख्य पूजयेत्तत्र भो द्विजाः ।

अष्टाक्षरविधानेन नारायणमजं विभुम् ॥३॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि कायशोधनमुत्तमम् ।

अकारं हृदये ध्यात्वा चक्रेखासमन्वितम् ॥४॥

ज्वलन्तं त्रिशिखं चैव दहन्तं पापनाशनम् ।

चन्द्रमण्डलमव्यस्य राकारं मूर्ध्नि चिन्तयेत् ॥५॥

शुक्लवर्णं प्रवर्पेन्तममृतं प्लावयन्महीम् ।

एव निधूतपापस्तु दिव्यदेहस्ततो भवेत् ॥६॥

अष्टाक्षरं ततो मन्त्रं न्यसेदेवाऽऽत्मनो बुधः ।

वामपादं समारम्य क्रमशश्चैव विन्यसेत् ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—देवों को तथा पितृ गणों को एवं अन्य सबको भली भाँति तृप्त करके आचमन करे और मौन व्रत धारण करके एक हाथ भर के प्रमाण वाले चार कोनों वाले तथा चार द्वारों वाले परम शोभा से युक्त पुर का लेखन करे हे विप्रा ! इस पुर का विलेखन उस महोदधि के तट, पर ही करना चाहिए । उस पुर के मध्य में एक आठ दलों वाले तथा कर्णिका से युक्त पद्म का विलेखन करना चाहिए ॥१-२॥ हे द्विजो ! इस प्रकार के मण्डल का विलेखन करके वहाँ पर पूजा करनी चाहिए । अष्टाक्षर के विधान के द्वारा विभु अजन्मा भगवान् नारायण का अर्चन करे ॥३॥ इससे आगे मैं उत्तम काया के शोधन का विषय में बतलाता हूँ । साधक को अपने हृदय में चक्रेखा से युक्त अकार का ध्यान करना चाहिए ॥४॥ जाज्वल्यमान-तीन शिखाओं से सयुक्त-दहन करते हुए पापों का विनाश करने वाले तथा चन्द्रमण्डल के मध्य में स्थित राकार को मूर्ध्नि में चिन्तन करना चाहिए ॥५॥ अमृत

को वर्ण करने वाले-शुक्ल वर्ण में युक्त-सम्पूर्ण मही को प्लावित करने हुए इस प्रकार से निधूत पापी वाला होकर फिर दिव्य देह वाला हो जाया करता है ॥६॥ फिर बुध पुरुष अपना अष्टाक्षर मन्त्र का न्यास करना चाहिए। वामपाद से समारम्भ करके श्रम से ही विन्यास करना चाहिए ॥७॥

पञ्चाङ्ग वंष्णव चैव चतुर्व्यूह तथैव च ।

करशुद्धिं प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण साधकः ॥८॥

एवंकं चैव वर्णं तु अङ्गं लीपु पृथक्पृथक् ।

ओकारं पृथिवी शुक्ला वामपादे तु विन्यसेत् ॥९॥

नकारः शोभयः श्यामो दक्षिणे तु व्यवस्थितः ।

मोकारं कालमेवाऽऽहुर्वामकट्या निधापयेत् ॥१०॥

नाकारः सर्वबीजं तु दक्षिणस्या व्यवस्थितः ।

राकारस्तेज इत्याहुर्नाभिदेशे व्यवस्थितः ॥११॥

वायव्योऽयं यकारस्तु वामस्कन्धे समाश्रितः ।

णाकारः सर्वगो जेयो दक्षिणांसे व्यवस्थितः ॥

यकारोऽयं शिरस्थश्च यत्र लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥१२॥

ममाग्रेऽवस्थितो विष्णुः पृष्ठतश्चापि वेशवः ।

गोविन्दो दक्षिणे पादौ वामे तु मधुसूदनः ॥१३-१४॥

वंष्णव पञ्चाङ्ग को तथा चतुर्व्यूह का विन्यास करे। साधक को मूल मन्त्र के द्वारा कर शुद्धि करनी चाहिए ॥८॥ अंगुलियों में एक-एक वर्ण को पृथक् २ विन्यस्त करे। ओङ्कार को तथा शुक्ला पृथिवी को वामपाद में विन्यस्त करे ॥९॥ नकार शोभय और श्याम है जो दक्षिण पाद में व्यवस्थित है। मोकार काल को ही वाम कटि में निधापित करे ॥१०॥ नाकार सर्वबीज को दक्षिण कटि में व्यवस्थित करना चाहिए। राकार तेज ऐसा कहा गया है जो कि नाभि देश में व्यवस्थित होता है ॥११॥ यह यकार वायव्य है जो नमः स्कन्ध में समाश्रित होता है। णाकार को सर्वत्र गमन करने वाला जानना चाहिए। जो कि दक्षिण अंश में व्यवस्थित रहा करता है। यह यकार शिर में स्थित रहने वाला



है जहाँ पर सब लोक प्रणिष्ठित रहा करते हैं ॥१२॥ मेरे आगे वाले भाग मे भगवान् विष्णु अवस्थित हैं और पृष्ठभाग मे केशव स्थित रहते हैं । दक्षिण पार्श्व मे गोविन्द और वाम पार्श्व मे मधुसूदन प्रभु रहते हैं ॥१३-१४॥

उपरिष्ठात्तु वैकुण्ठो वाराहः पृथिवीतले ।

अवान्तरदिशो यास्तु तासु सर्वासु माधवः ॥१५

गच्छतस्तिष्ठतो वाऽपि जाग्रतः स्वपतोऽपि वा ।

नरसिंहकृता गुप्तिर्वासुदेवमयो ह्ययम् ॥१६

एवं विष्णुमयो भूत्वा ततः कर्म समारभेत् ।

यथा देहे तथा देवे सर्वतत्त्वानि योजयेत् ॥१७

ततश्चैव प्रकुर्वीत प्रोक्षणं प्रणवेन तु ।

फट्कारान्तं समुद्दिष्टं सर्वविघ्नहरं शुभम् ॥१८

तत्रार्कचन्द्रबह्वीना मण्डलानि विचिन्तयेत् ।

पद्ममध्ये न्यसेद्विष्णुं पवनस्याम्बरस्य च ॥१९

ततो विचिन्त्य हृदय ओंकारं ज्योतीरूपिणम् ।

कर्णिकाया समासीनं ज्योतीरूपं सनातनम् ॥२०

अष्टाक्षरं ततो मन्त्रं विन्यसेच्च यथाक्रमम् ।

तेन व्यस्तसमस्तेन पूजनं परमं स्मृतम् ॥२१

ऊपर के भाग मे वैकुण्ठ हैं और पृथिवी तल मे वाराह देव स्थित रहते हैं । जो अवान्तर दिशाएँ हैं उन सबमे माधव भगवान् विराजमान रहा करते हैं ॥१५॥ गमन करते हुए, स्थित रहते हुए, जागते हुए, सोते हुए नरसिंह कृता गुप्ति है अर्थात् भगवान् नरसिंह के द्वारा की हुई रक्षा होती है । यह सब वासुदेवमय ही है ॥१॥ इस प्रकार से विष्णु-मय होकर ही इसके अनन्तर कर्म का आरम्भ करना चाहिए । जिस प्रकार से देह मे है उसी भाँति समस्त तत्त्वों को देव में योजित करना चाहिए ॥१७॥ इसके उपरान्त प्रणव ( ॐकार ) के द्वारा प्रोक्षण करे । फट्कार जिसके अन्त मे हो ऐसा समुद्दिष्ट किया गया है जो कि सब का हरण करने वाला एवं शुभ होता है ॥१८॥ वहाँ पर चन्द्र-अर्क और

बह्नियो के मण्डलो का विचिन्तन करना चाहिए । पद्म के मध्य में भगवान् विष्णु का पवन का तथा अम्बर का न्यास करना चाहिए ॥१६॥ इसके अनन्तर ज्योति स्वरूप वाले ओङ्कार का हृदय विचिन्तन करे जो कर्णिका में समासीन हैं और ज्योति स्वरूप वाले सनातन हैं ॥२०॥ इसके पश्चात् यथाक्रम आठ अक्षर वाले मन्त्र का विन्यास करना चाहिए । उस व्यस्त अर्थात् अलग २ और समस्त अर्थात् सम्पूर्ण उसके द्वारा परम श्रेष्ठ पूजन बताया गया है ॥२१॥

द्वादशाक्षरमन्त्रेण यजेद्देव सनातनम् ।  
 ततोऽवधार्य हृदये कर्णिकाया बहिर्न्यसेत् ॥२२॥  
 चतुर्भुज महासत्त्व सूर्यकोटिसमप्रभम् ।  
 चिन्तयित्वा महायोग ज्योतीरूप सनातनम् ॥  
 ततश्चाऽऽवाहयेन्त्र क्रमेणाऽऽचिन्त्य मानसे ॥२३॥  
 पूर्वे दले वासुदेव याम्ये सकर्पण न्यसेत् ।  
 प्रद्युम्न पश्चिमे कुर्यादनिरुद्ध तथोत्तरे ॥२४॥  
 वाराह च तथाऽऽग्नेये नरसिंह च नैऋते ।  
 वायव्ये माधव चैव तथैशाने त्रिविक्रमम् ॥२५॥  
 तथाऽष्टाक्षरदेवस्य गरुड पुरतो न्यसेत् ।  
 वामपार्श्वे तथा चक्र शङ्ख दक्षिणतो न्यसेत् ॥२६॥  
 तथा महागदा चैव न्यसेद्देवस्य दक्षिणे ।  
 ततः शङ्खं धनुर्विद्वानन्यसेद्देवस्य वामतः ॥२७॥

इस प्रकार से द्वादशाक्षर (ओ नमो भगवते वासुदेवाय) अर्थात् वाराह अक्षरों वाले इस उपर्युक्त मन्त्र से सनातन देव का यजन करना चाहिए । इसके उपरान्त हृदय में कर्णिका में अर्थात् हृदयरूप कमल की कर्णिका में अवधारण करके फिर बाहिर न्यास करना चाहिए ॥२२॥ महात् सत्त्व वाले, करोड़ों सूर्यों के समान प्रभा से समुत्पन्न चार भुजाओं वाले, महा योग, ज्योति स्वरूप, सनातन का चिन्तन करना चाहिए । और इसके पश्चात् क्रम से मानस में चिन्तन करके मन्त्र के

द्वारा आवाहन करे आवाहन, स्थापन, अर्घ, पाद्य, मधुपर्क, आचमनीय, स्नान, चस्त्र, विलेपन, उपवीत, अलङ्कार, धूप, दीप, नैवेद्य, आदि का मन्त्रों द्वारा विनि-  
षेदन करना चाहिए फिर पूर्व दल में अर्थात् बाहिर विलिखित पद्म के पूर्व  
दिशा की ओर वाले दल में वासुदेव का न्यास करे, दक्षिण दल में मङ्कुरंग  
का, पश्चिम की ओर वाले दल में प्रद्युम्न का तथा उत्तर में अनिरुद्ध न्यास  
करना चाहिए ॥२३-२४॥ विदिशाओं में आग्नेय कोण में वाराह का,  
नैऋत में नरसिंह का, वायव्य में माधव का और ईशान कोण में त्रिविक्रम  
शम्भु का न्यास करना चाहिए ॥२५॥ तथा अष्टाक्षर देव के गरुड़ को आगे  
विन्यस्त करे । वाम पादवं में सुदर्शन चक्र का और दक्षिण की ओर  
शङ्ख (पाञ्चजन्य) का न्यास करना चाहिए ॥२६॥ इसके अनन्तर महा  
गदा कीमोदनी को देव के दक्षिण भाग में विन्यस्त करे और शङ्ख धनुष  
को देव के वाम भाग में विद्वान के द्वारा विन्यास करना चाहिए ॥२७॥

दक्षिणेनेपुथी दिव्ये खड्गे वामे च विन्यसेत् ।

श्रिय दक्षिणतः स्थाप्य पुष्टिमुत्तरतो न्यसेत् ॥२८॥

वनमालां च पुरतस्ततः श्रोवत्सकोस्तुभौ ।

विन्यसेद्दधृदयादीनि पूर्वादिषु चतुर्दिशम् ॥२९॥

ततोऽस्त्रं देवदेवस्य कोणे चैव तु विन्यसेत् ।

इन्द्रमग्निं यमं चैव नैऋतं वरुणं तथा ॥३०॥

वायुं धनदमीशानमनन्तं ब्रह्मणा सह ।

पूजयेत्तान्निकंमन्त्रंरधश्चोर्ध्वं तथैव च ॥३१॥

एव संपूज्य देवेश मण्डलस्थं जनार्दनम् ।

लभेदमिमतां कामान्नरो नास्त्यत्र सशयः ॥३२॥

अनेनैव विधानेन मण्डलस्थं जनार्दनम् ।

पूजितं यः संपश्येत् स विशेद्विष्णुमव्ययम् ॥३३॥

सकृदप्यचिता येन विधिनाऽनेन केशवः ।

जन्ममृत्युजरां तीर्त्वा स विष्णोः पद्मान्मुयात् ॥३४॥

दक्षिण की ओर दिव्य इपुषियो की ओर वाम भाग में शङ्ख का

मे पुट्टि का न्यास करे ॥२८॥ आगे बनमाला का और फिर श्री वत्स और कौस्तुभ का न्यास करना चाहिए । पूर्वादिक चारो दिशाओ में हृदयादि का न्यास करे ॥२९॥ फिर देवों के देव के अन्त्र को कोण मे विन्यस्त करे । इन सब विन्यासो के करने के अनन्तर अधोभाग मे और ऊर्ध्व भाग मे तान्त्रिक मन्त्रों के द्वारा इन्द्रअग्नि-यम-नैऋत-वरुण-वायु-घनद-ईशानब्रह्मा के सहित अनन्त का पूजन करना चाहिए ॥३०-३१॥ इस भाँति से मण्डल मे स्थित देवेश्वर जनार्दन का भली-भाँति से अभ्यर्चन करके मनुष्य अपने समस्त अभिमत मनोरथों को प्राप्त कर लिया करता है, इनमे तनिक भी सशय नही है ॥३२॥ इसी वर्णित विधान के द्वारा मण्डल मे समवस्थित देवेश्वर जनार्दन प्रभु को समर्पित हुए जो भी भली-भाँति दर्शन कर लेता है वह अथ्यय भगवान् विष्णु के पुर मे प्रवेश किया करता है ॥३३॥ इस वर्णित किये हुए विधान के द्वारा जिस किसी ने जीवन मे एक बार भी बेशय भगवान् का अभ्यर्चन कर लिया है वह इस ससार के जन्म-मरण और जरा को पार करके अन्त मे विष्णु भगवान् के पद को प्राप्त कर लिया करता है ॥३४॥

य स्मरेत्सतत भक्त्या नारायणमतन्द्रितः ।

अन्वह तस्य वासाद्य श्वेतद्वीपः प्रकल्पितः ॥३५॥

ओकारादिसमायुक्त नमःकारान्तदीपितम् ।

तन्नाम सर्वतत्त्वानां मन्त्र इत्यभिधीयते ॥३६॥

अनेनैव विधानेन गन्धपुष्प निवेदयेत् ।

एकैकस्य प्रकुर्वीत मयोद्दिष्टं क्रमेण तु ॥३७॥

मुद्रास्ततो निगन्धीयाद्यथोक्तम् । चोदिताः ।

जप चैव प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण मन्त्रचित् ॥३८॥

अष्टाविंशतिमष्टौ वा शतमष्टोत्तरं तथा ।

कामेषु च यथाप्रोक्तं यथाशक्ति समाहितः ॥३९॥

पद्म शङ्खश्च श्रीवत्सो गदा गरुड एव च ।

चक्रं खड्गश्च शार्ङ्गं च अष्टौ मुद्राः प्रकीर्तिताः ॥४०॥

विसर्जनमन्त्रः—गच्छ गच्छ परं स्थानं पुराणपुरुषोत्तम ।  
यत्र ब्रह्मादयो देवा विन्दन्ति परम पदम् ॥४१॥  
अर्चनं ये न जानन्ति हरेर्मन्त्रैर्ययादितम् ।  
ते तत्र नूलमन्त्रेण पूजयन्त्वच्युतं सदा ॥४२॥

जो निरन्तर भक्ति की भावना से तन्द्रारहित होकर भगवान् नारायण का स्मरण किया करता है प्रति दिन उसके वास के लिये श्वेत द्वीप को कल्पित किया गया है ॥३५॥ ओंकार के आदि से मुक्त नमःकार के द्वारा अन्त में दीपित और उनका शुभ नाम सर्व तत्त्वों का मन्त्र है जो कि कहा जाया करता है ॥३६॥ इसी विधान से गन्ध, पुष्पादि का समर्पण करना चाहिए । क्रम से जो जहा उद्दिष्ट किये गये हैं उनमें एक-एक को निवेदन करना चाहिए ॥३७॥ जैसा कि क्रम बताया गया है उसी के अनुसार फिर मुद्राओं का निबन्धन करे । मन्त्र के ज्ञाता पुष्पमूल मन्त्र के द्वारा जाप भी करना चाहिए ॥३८॥ आठ-अट्ठाईस-अष्टोत्तर शत जाप जो जिस नामना में जैसा भी कहा गया है उसको यथा शक्ति समाहित होकर वैसा ही करना चाहिए ॥३९॥ पद्म शङ्ख-श्री वत्स-गदा-गरुड-चक्र-खड्ग-शार्ङ्ग—ये कूल आठ मुद्राएँ कीर्तित की गयी हैं ॥४०॥ इसके अनन्तर विसर्जन करे । इसका मन्त्र यही है—हे पुराण पुरुषोत्तम ! अब आप कृपा करके परम स्थान में पधारिये और गमन करिये जहाँ पर ब्रह्मादिक देवगण परम पद को जानते हैं ॥४१॥ जो लोग भगवान् के परम भक्त हैं किन्तु जिन-जिन मन्त्रों द्वारा हरिका अभ्यर्चन ऊपर में बताया गया है उसका पूर्ण ज्ञान उनको नहीं है तो वे ज्ञान के अभाव में कुछ भी न करे, ऐसा नहीं है प्रत्युत उनको सदा केवल मूल-मन्त्र के द्वारा ही अच्युत भगवान् का पूजन करना चाहिए ॥४२॥

## २६—समुद्रस्नानमाहात्म्यवर्णन

एव संपूज्य विधिवद्भक्त्या तं पुरुषोत्तमम् ।  
 प्रणम्य शरसापश्चात्सागरं च प्रसादयेत् ॥१॥  
 प्राणस्त्व सर्वभूतानां योनिश्च सरिता पते ।  
 तीर्थराजं नमस्तेऽस्तु त्राहि मामच्युतप्रिय ॥२॥  
 स्नात्वं सागरे सम्यक्तस्मिन्क्षेत्रवरे द्विजा ।  
 तीरे चाग्यर्च्यं विधिवन्नारायणमनामयम् ॥३॥  
 रामं कृष्णं सुमद्रा च प्रणिपत्य च सागरम् ।  
 शतानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानव ॥४॥  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वदुःखविवर्जितः ।  
 धृन्दारक इव श्रीमान्नृपयौवनगवितः ॥५॥  
 विमानेनाकं वर्णेन दिव्यगन्धर्वनादिना ।  
 कुलैकविंशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥६॥  
 भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्क्रीडित्वा चाप्स्यरैः सह ।  
 मन्वन्तरवत् साग्रे जरामृत्युविवर्जितः ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस पूर्व वर्णित विधि-विधान के द्वारा भक्तिभाव से उन पुरुषोत्तम भगवान् का सम्पर्क रीति से अभ्यर्चन करके और साक्षात् दण्डवत् प्रणाम उनको करके पीछे सागर का प्रसाद प्राप्त करना चाहिए ॥१॥ हे सरिताओं के स्वामिन् ! आप ही समस्त भूतों के प्राण तथा उत्पत्ति स्थल हैं । हे अच्युत भगवान् ! के परम प्रिय तीर्थों के राजन् ! आशुकी मेधा में मेरा सादर प्रणाम है । आप मेरा परित्राण करिए ॥२॥ हे द्विजो ! उस परम श्रेष्ठ क्षेत्र में भली-भाँति सागर में स्नान करके तट पर अनामय नारायण का विधि पूर्वक अर्चन करना चाहिए ॥३॥ श्रीराम भद्र, श्रीकृष्ण चन्द्र, सुमद्रा देवी तथा नदीश्वर सागर की प्रणिपात करके मनुष्य एकशत अश्वमेध यज्ञों के यजन करने

का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है ॥४॥ वह मनुष्य सभी पापों से जो भी इस जन्म के तथा पूर्व जन्मों में सञ्चित हो छुटकारा पाकर समस्त सांसारिक दुःखों से रहित हो जाता है । वह फिर देवता के समान श्री से सुमन्वन्त होकर रूप एवं यौवन से गर्वित हो जाया करता है ॥५॥ फिर वह सूर्य के सहज वर्ण वाले विमान के द्वारा जो कि परम दिव्य गन्धर्व और अप्सरा आदि से ससेवित होता है अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करके अन्त में सीधा विष्णुलोक में ही गमन किया करता है । वहाँ पर वह परमोत्तमोत्तम भोगों का सुख भोग करके तथा दिव्या-प्सरसों के साथ विलास क्रीड़ा करके डेढ़सौ मन्वन्तरो के बहुत लम्बे समय तक जरा-जन्म और मृत्यु के क्लेशों से छुटकारा पा जाया करता है ॥६-७॥

पुण्यक्षयादिहऽऽयातः कुले सर्वगुणान्विते ।

रूपवान्सुभगः श्रीमान्सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥८॥

वेदशास्त्रार्थविद्विप्रो भवेद्यज्वा तु वैष्णवः ।

योग च वैष्णव प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥९॥

ग्रहोपरागे सक्रान्त्यामयने विभुवे तथा ।

युगादिषु पडशीत्यां व्यतीपाते दिनक्षये ॥१०॥

आषाढ्या चैव कार्तिवद्या माघ्या वाऽन्ये शुभे तिथौ ।

ये तत्र दान विप्रेभ्य प्रयच्छन्ति सुमेधसः ॥११॥

फल सहस्रगुणितमन्यतीर्थान्नमन्ति ते ।

पितृणा ये प्रयच्छन्ति पिण्डं तस्य विधानतः ॥१२॥

अक्षया पितरस्तेषां तृप्तिं संप्राप्नुवन्ति वं ।

एव स्नानफल सम्यक्सागरस्य मयोदितम् ॥१३॥

दानस्य च फल विप्राः पिण्डदानस्य चैव हि ।

धर्मार्थमोक्षफलदमायुष्कीर्तियशस्करम् ॥१४॥

जब अपने किये हुए पुण्यों का उपभोग द्वारा शनः शनः क्षय होता है तो फिर वह पुनः इस कर्मभूमि भारत में आकर सभी गुणगण से युक्त किसी उत्तम कुल में जन्म ग्रहण किया करता है । वह मानव जीवन में

भी उसी पूर्ववृत्त महान् पुण्य के प्रभाव से रूपवान्, सुमग, श्रीमान्, सत्य-  
वादी, जितेन्द्रिय, वेदो और समस्त शास्त्रों का ज्ञाता, यज्ञा और वैष्णव  
विप्र हुआ करता है । फिर यहाँ पर वैष्णव योग को प्राप्त करके अन्त में  
मोक्ष को प्राप्त किया करता है । सारवर्ण्य यह है कि पहिले अनुल-अनुपम  
भोग और अन्त में युक्ति, दोनों ही उसे प्राप्त हो जाने हैं ॥८-९॥ कुछ  
ऐसे विशिष्ट अवसर हैं जैसे-ग्रहोन्मत्त (ग्रहण) सङ्क्रान्ति-विषुवअयन-  
युगादि-पङ्कशीति-अतीपात-दिनअय-आषाढी, कार्तिकी तथा माघी पूर्णिमा  
एव अन्य शुभतिथि इन अवसरों पर जो सुन्दर मेघा वाले पुरुष वहाँ  
पर विप्रों को दान दिया करते हैं वे अन्य तीर्थों से महत् गुना  
पुण्य-फल प्राप्त किया करते हैं । जो वहाँ पर पितृगणों को दिधि  
पूर्वक पिण्ड दान किया करते हैं ॥१०-१२॥ उससे उनके पितृगण  
अक्षय तृप्ति की प्राप्ति किया करते हैं । इस रीति से मैंने सागर के स्नान  
करने का पुण्य-फल भली-भाँति वर्णित कर दिया है । साथ ही वहाँ पर  
दिये हुए दान का फल तथा पितरों के किये गये पिण्डदान का फल भी  
बता दिया है जो धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष के फल देने वाला तथा आयु-  
कीर्ति और यश के प्रदान करने वाला होता है ॥१३-१४॥

भुक्तिमुक्तिफल नृणां घन्यं दुःस्वप्ननाशम् ।

सर्वपापहरं पुण्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥१५॥

नास्तिकायं न वक्तव्यं पुराणं च द्विजोत्तमाः ।

तावद्गर्जन्ति तीर्थानि माहात्म्यैः स्वं पृथक्पृथक् ॥१६॥

यावन्न तीर्थराजस्य माहात्म्यं वर्ण्यते द्विजाः ।

पुष्करादीनि तीर्थानि प्रयच्छन्ति स्वकं फलम् ॥१७॥

तीर्थराजस्तु स पुनः सर्वतीर्थफलप्रदः ।

भूतले यानि तीर्थानि सरितश्च सरासि च ॥१८॥

विशन्ति सागरे तानि तेनासी श्रेष्ठतां गतः ।

राजा समस्ततीर्थानां सागरः सरिता पतिः ॥१९॥

तस्मात्समस्ततीर्थेभ्यः श्रेष्ठोऽपी सर्वकामदः ।

तमो नादां यथाऽभ्येति भास्करेऽभ्युदिते द्विजाः ॥२०॥



यह मनुष्यों को मुक्ति और मुक्ति के फल को प्रदान करने वाला है तथा परम धन्य और दुःस्वप्नों का नाशक भी है । सब पापों के हरण करने वाला परम पुण्यमय और सब मनोरथों के फलों को देने वाला है ॥१५॥ हे द्विजोत्तमो ! इस पुराण को भूलकर भी कभी ऐसे पुरुष को मत बताना जो ईश्वर की सत्ता को ही न मानने वाला नास्तिक हो । तभी तक सब तीर्थ अपने अपने पृथक् २ माहात्म्यों की प्रशंसा लेकर गर्जना किया करते हैं जब तक कि हे द्विजो ! इस तीर्थराज की महिमा एव माहात्म्य का वर्णन नहीं किया जाता है । तात्पर्य यह है कि तीर्थराज के माहात्म्य के आगे सब अन्य तीर्थों का माहात्म्य हेय ही रह जाया करता है । अन्य पुष्कर आदि तीर्थ केवल अपना ही फल दिया करते हैं ॥१६-१७॥ किन्तु यह तीर्थराज तो स्वयं अकेला ही समस्त तीर्थों का पुण्य-फल प्रदान करने वाला होता है । इस भूमण्डल में जो भी तीर्थ-सरिताएँ और सर हैं ॥१८॥ वे सभी अन्त में सागर में ही जाकर प्रवेश किया करते हैं । इसी कारण से इसकी श्रेष्ठता सबसे अधिक है । समस्त तीर्थों का राजा सरिताओं का स्वामी सागर ही है ॥१९॥ इसी कारण से यह अन्य सब तीर्थों से श्रेष्ठ और सब कामनाओं का प्रदाता होता है । हे द्विजगण ! जैसे भगवान् भास्कर के समुदित हो जाने पर तम का विनाश हो जाया करता है वैसे ही इस तीर्थराज के द्वारा पापों का नाश हो जाया करता है ॥२०॥

स्नानेन तीर्थराजस्य तथा पापस्य सक्षयः ।

तीर्थराजसम तीर्थं न भूत न भविष्यति ॥२१॥

अधिष्ठानं यदा यत्र प्रभोनारायणस्य वै ।

क. शक्नोति गुणान्वक्तुं तीर्थराजस्य भो द्विजाः ॥२२॥

कोट्यो नवनवत्यस्तु यत्र तीर्थानि सन्ति वै ।

तस्मात्स्नानं च दानं च होमं जप्यं सुरार्चनम् ॥

यत्किंचित्क्रियते तत्र चाक्षयं क्रियते द्विजाः ॥२३॥

इस तीर्थराज सागर के स्नान से पापों का अच्छी तरह से क्षय हो जाता है । इस तीर्थराज के समान अन्य कोई भी तीर्थ न तो जब तक

हुआ है और न भविष्य में भी होगा ॥२१॥ जब जहाँ पर प्रभु नारायण का अधिष्ठान होता है तो ऐसे इस तीर्थराज मागर के गुणों को कौन वर्णन करने में समर्थ हो सकता है ? करोड़ों नवनवति तीर्थ जहाँ पर विद्यमान रहते हैं उसकी महिमा का क्या पारावार है । इसलिये वहाँ दान-स्नान-होम चप और मुराचन जो भी कुछ शुभ कर्म किया जाता है वह सभी है द्विजगण ! अक्षय ही होता है ॥२२-२३॥

### ३०— पञ्चतीर्थोमाहात्म्यनिरूपण

ततो गच्छेद्द्विजश्चेष्टास्तीर्थं यज्ञाङ्गसम्भवं ।  
 इन्द्रद्युम्नसरो नाम यत्राऽस्ते पावनं शुभम् ॥१॥  
 गत्वा तत्र शुचिर्धोमानाचम्य मनसा हरिम् ।  
 घ्यात्वोपस्थाय च जलमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥२॥  
 अश्वमेधाङ्गसम्भूतं तीर्थं सर्वाघनाशनं ।  
 स्नानं त्वयि करोम्यद्य पापं हर नमोऽस्तु ते ॥३॥  
 एवमुच्चार्य विधिवत्स्नात्वा देवानृषीन्पितॄन् ।  
 तिलोदकेन चान्याश्च सतर्प्याऽऽचम्य वाग्यतः ॥४॥  
 दत्त्वा पितॄणां पिण्डाश्च संपूज्य पुरपोत्तमम् ।  
 दशाश्वमेधिकं सम्यक्फलं प्राप्नोति मानवः ॥५॥  
 सप्तावरान्सप्त परान्वशानुद्धृत्य देववत् ।  
 कामगेन विमानेन विष्णुलोकं स गच्छति ॥६॥  
 भुक्त्वा तत्र सुखान्भोगान्यावच्चन्द्रार्कतारकम् ।  
 प्लुतस्तस्मादिहाऽऽयातो मोक्षं च लभते ध्रुवम् ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजो ! हमके आगे यज्ञाङ्ग सम्भव तीर्थ पर गमन करना चाहिए जहाँ पर इन्द्रद्युम्न नाम वाला परम पावन एवं

शुभ सरोवर है ॥१॥ वहाँ पर पहुँच कर परम शुचि होकर बुद्धिमान् पुरुष को आचमन करके मन के द्वारा श्री हरि का ध्यान तथा उपस्थान करना चाहिए । उस जल पर उपस्थित होकर निम्न वर्णित मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए ॥२॥ हे तीर्थ ! आपकी उत्पत्ति अश्वमेध के अङ्ग से हुई है और आप समस्त अघों के विनाश करने की शक्ति रखते हैं । आज इस समय मे मैं आप में स्नान करता हूँ । आप मेरे सब पापों का हरण कीजिए । आपको मेरा परमाधिक आदर के साथ प्रणाम है ॥३॥ इस प्रकार से समुच्चारण करके फिर विधि-विधान के साथ स्नान करे और तिलोदक से देवों का, ऋषियों का, पितृगण का तथा अन्यो का भली भाँति वहाँ पर तर्पण करना चाहिए । फिर आचमन करके मोन हो पितरो को पिण्ड दान करे और पुरुषोत्तम प्रभु का अभ्यर्चन करना चाहिए । इस सबके करने से मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञों के यजन करने का फल प्राप्त किया करता है ॥४-५॥ वह मनुष्य अपने सात पहिले और सात आगे होने वाले वशों का उद्धार करके स्वेच्छागामी विमान के द्वारा सीधा विष्णुलोक को गमन किया करता है ॥६॥ वहाँ पर जब तक चन्द्र-सूर्य और तारागण नभ मण्डल में विद्यमान रहते हैं तब तक परमोत्तम दिव्य सुखों का उपभोग किया करता है । जब भोगों के करने से उस महान् पुण्य का धन, धन क्षय होता है तथा कुछ स्वल्पाश शेष रहता है तब वह वहाँ से च्युत हो जाता है और यहाँ मर्त्यलोक में जन्म ग्रहण करके निश्चित रूप से मोक्ष को प्राप्त करता है ॥७॥

एव कृत्वा पञ्चतीर्थमिकादश्यामुपोषितः ।

ज्येष्ठशुक्लपञ्चदश्यां यः पश्येत्पुरुषोत्तमम् ॥८॥

स पूर्वोक्त फल प्राप्य क्रीडित्वा वाञ्छयुतालये ।

प्रयाति परमं स्थानं यस्मान्नाऽऽवर्तते पुनः ॥९॥

मासानन्यान्परित्यज्य माघादीन्प्रपितामह ।

प्रशस्यति कथं ज्येष्ठं ब्रूहि तत्कारणं प्रभो ॥१०॥

शृणुष्व मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्यामि समासतः ।  
 ज्येष्ठ मास तथा तेभ्यः प्रशंसामि पुनः पुनः ॥११॥  
 पृथिव्या यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च ।  
 पुष्करिण्यस्तडागानि वाप्यः कूपास्तथा ह्रदाः ॥१२॥  
 नानानद्यः समुद्राश्च सप्ताह पुरुषोत्तमे ।  
 ज्येष्ठशुक्लदशम्यादि प्रत्यक्षं यन्ति सर्वदा ॥१३॥  
 स्नानदानादिकं तस्माद्देवताप्रेक्षणं द्विजाः ।  
 यत्किञ्चित्क्रियते तत्र तस्मिन्कालेऽप्य भवेत् ॥१४॥

इस प्रकार से पञ्चतीर्थों का क्रियाकलाप समाप्त करके एकादशी से उपवास करना चाहिए । जो ज्येष्ठ मास की शुक्ल पक्ष की पञ्चमी के दिन पुरुषोत्तम प्रभु का दर्शन किया करता है वह पूर्व में वर्णित फल का लाभ किया करता है अथवा अच्युत भगवान् के आलय में आनन्द की क्रीड़ा करके परमोत्तम पद को प्राप्त करता है जहाँ से पुनः आवृत्ति नहीं होता है ॥१२-१६॥ मुनियों ने कहा—हे प्रपितामह ! हे प्रभो ! माघ आदि अन्य समस्त श्रेष्ठ मासों का परित्याग करके इस ज्येष्ठ मास की ही इतनी अधिक प्रशंसा क्यों कर रहे हैं—इसका क्या कारण है—यह हमको बतलाने की कृपा कीजिए ॥१७॥ श्री परमेश्वरी पितामह ने कहा—हे मुनिगणो ! आप इसका कारण सुनिए । मैं संक्षेप में इसे बतलाता हूँ । मैं इस ज्येष्ठ मास की उन अन्य मासों से जो बारम्बार प्रशंसा क्यों करता हूँ ॥११॥ इस पृथिवी में जितने भी तीर्थ हैं—सरिताएँ, सरोवर, पुष्करिणियाँ, तालाव, बावड़ी, कूप, ह्रद—अनेक नदियाँ और समुद्र हैं वे पुरुषोत्तम में सप्ताह के सिये ज्येष्ठ मास की शुक्ल पक्ष की दशमी से लेकर सर्वदा प्रत्यक्ष रूप को प्राप्त किया करते हैं ॥१२-१३॥ इसी कारण से हे द्विजो ! उस अवसर पर जो वहाँ स्नान दान आदि तथा देव दर्शन जो कुछ भी किया जाता है उस समय में अक्षय हुआ करता है ॥१४॥

शुक्लपक्षस्य दशमी ज्येष्ठे मासि द्विजोत्तमाः ।  
 हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृताः ॥१५॥

यस्तस्यां हलिनं कृष्णं पश्येद्भद्रां सुसंयतः ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥१६॥

उत्तरे दक्षिणे विप्रास्त्वयने पुरुषोत्तमम् ।

दृष्ट्वा रामं सुभद्रां च विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥१७॥

नरो दोलागतं दृष्ट्वा गोविन्दं पुरुषोत्तमम् ।

फाल्गुन्यां प्रयतो भूत्वा गोविन्दस्य पुरं व्रजेत् ॥१८॥

विषुद्धिदवसे प्राप्ते पञ्चतीर्थी विधानतः ।

कृत्वा सकर्षणं कृष्णं दृष्ट्वा भद्रां च भो द्विजाः ॥ ६॥

नरः समस्तयज्ञानां फलं प्राप्नोति दुर्लभम् ।

विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२०॥

यः पश्यति तृतीयायां कृष्ण चन्दनरूपितम् ।

वैशाखस्यासिते पक्षे स यात्यच्युतमन्दिरम् ॥२१॥

ज्येष्ठ्यां ज्येष्ठक्षयुक्तायां यः पश्येत्पुरुषोत्तमम् ।

कुलैकविंशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २॥

हे द्विजोत्तमो ! ज्येष्ठ मास में शुक्ल पक्ष की जो दशमी तिथि है वह दश प्रकार के पापों का अपहरण किया करती है इसीलिये वह दशहरा मही गयी है ॥१५॥ जो नर उत्ततिथि के दिन में हलधर बलराम-श्रीकृष्ण और सुभद्रा देवी का सुमयत होकर दर्शन करता है वह समस्त पापों से विमुक्त होकर विष्णुलोक को गगन करता है । उत्तरायण और दक्षिणायन में भगवान् पुरुषोत्तम-श्री बलराम और सुभद्रा का जो पुरुष दर्शन प्राप्त करता है वह विष्णुलोक को चला जाता है ॥१६-१७॥ फाल्गुनी पूर्णिमा के दिन प्रयत होकर जो मनुष्य डोला में विराजमान पुरुषोत्तम गोविन्द का दर्शन किया करता है वह सीधा गोविन्द के ही पुर को जाया करता है ॥१८॥ विषुवद् दिवस में प्राप्त होने पर पञ्च-तीर्थों के विधान से हे द्विजगण ! भगवान् सकर्षण-श्रीकृष्ण और सुभद्रा देवी के दर्शन करता है वह मनुष्य समस्त यज्ञों के यजन करने का दुर्लभ फल प्राप्त किया करता है और सब पापों से विमुक्त होकर विष्णुलोक को गगन कर जाता है ॥१९-२०॥ जो वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में

ऋषिकुल्या, कुमारी, विपाशा, हृषीकेशी, ॥११-१२॥ सरयू, नाकगङ्गा, गण्डकी, महानदी, कौशिकी, करतोया, त्रिस्रोता, मधुवाहनी, महानदी, वैतरणी और जो अन्य नदियाँ तीर्थ हैं जिनका नाम निर्देश यहाँ पर नहीं किया गया है । हे द्विजोत्तमो ! अथवा बहुत अधिक बचन से क्या साम है ॥१३-१४॥

पृथिव्या सर्वतीर्थेषु सर्वेष्वायतनेषु च ।

सामरेषु च शैलेषु नदीषु च सरःसु च ॥१५॥

यत्फलं स्नानदानेन राहुग्रस्ते दिवाकरे ।

तत्फलं कृष्णमालोक्य महाज्यैष्ठ्या लभेन्नरः ॥१६॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गन्तव्यं पुरुषोत्तमे ।

महाज्यैष्ठ्या मुनिश्रेष्ठा सर्वकामफलेप्सुभिः ॥१७॥

दृष्ट्वा राम महाज्येष्ठं कृष्ण सुभद्रया सह ।

विष्णुलोकं नरो याति समुद्धृत्य सम कुलम् ॥१८॥

भक्त्वा तत्र धरान्भोगान्यावदाभूतसप्तवम् ।

पुण्यक्षयादिहाऽऽगत्य चतुर्वेदी द्विजो भवेत् ॥१९॥

स्वधर्मनिरतः शान्तः कृष्णभक्तो जितेन्द्रियः ।

वैष्णव योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥२०॥

इस पृथ्वी तल में सब तीर्थों में तथा समस्त आयतनों में, सामर शैलो में नदियों में और सरोवरों में जो भी पुण्य-फल राहु के द्वारा सूर्य के प्रसिद्ध होने के समय में स्नान करने तथा दान करने से होता है वह सम्पूर्ण फल महाज्यैष्ठ्यी में श्री कृष्ण भगवान् के दर्शन करके मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥१५-१६॥ इन कारण से सभी प्रकार के प्रव्रत प्रयत्नों के द्वारा हे मुनिश्रेष्ठा ! महाज्यैष्ठ्यी में पुरुषोत्तम प्रभु के समीप में सब कामनाओं के फल प्राप्त करने की अभिलाषा रखने वाले पुरुषों को अवश्य जाना चाहिए ॥१७॥ यहाँ पर महा ज्येष्ठ थी बलराम, श्री कृष्ण और सुभद्रा का दर्शन करे । इसमें मनुष्य अपने ही साथ अपने पूरे कुल का उद्धार करके विष्णुलोक को गमन किया करता है ॥१८॥

वहाँ पर परमोत्तम दिव्य भोगों का उपभोग करके महाप्रलय पर्यन्त निवास करता है । पुण्यो के क्षीण होने पर वह चारों वेदों का शाता द्विज यहाँ पर होता है । अपने धर्म में रत, शान्त, कृष्णमत्त, जितेन्द्रिय होकर वैष्णव योग को प्राप्त कर फिर मोक्ष प्राप्त किया करता है ॥१६-२०॥

—:ॐ:—

### ३२—कृष्णस्नानमाहात्म्यवर्णन

कस्मिन्काले भवेत्स्नानं कृष्णस्य कमलोद्भव ।  
विधिना केन तद्ब्रूहि ततो विधिविदां वर ॥१  
शृणुध्वं मुनयः स्नानं कृष्णस्य वदतो मम ।  
रामस्य च सुमद्रायाः पुण्यं सर्वाधिनाशनम् ॥२  
मासि ज्येष्ठे च संप्राप्ते नक्षत्रे चन्द्रदेवते ।  
पौर्णमास्यां तदा स्नानं सर्वकाल हरेद्विजाः ॥३  
सर्वतीर्थमयः कृष्णस्तत्रास्ते निर्मलः शुचिः ।  
तदा भोगवती तत्र प्रत्यक्षा भवति द्विजाः ॥४  
तस्मान्ज्येष्ठ्यां समृद्धृत्य हेमाढ्यः कलशैर्जलम् ।  
कृष्णरामाभिपेकार्थं सुमद्रायाश्च भो द्विजाः ॥५  
कृत्वा सुशोभनं मन्त्रं पताकाभिरलंकृतम् ।  
सुदृढं सुखसचारं वस्त्रैः पुष्पैरलंकृतम् ॥६  
विस्तीर्णं धूपितं धूपैः स्नानार्थं रामकृष्णयोः ।  
सितवस्त्रपरिच्छन्नं मुक्ताहारावलम्बितम् ॥७

मुनिगण ने कहा—हे कमलोद्भव ! आप तो विधि-विधान के शाताओं में परम श्रेष्ठ हैं । अब आप कृपा करके यह वतलाइये कि श्रीकृष्ण

का स्नान किस समय में और किस विधि से होता है ॥१॥ श्री प्रह्लादी ने कहा—हे मुनिगणो ! अब मैं श्रीकृष्ण के स्नान के विषय में बतलाता हूँ आप श्रवण कीजिए । इसी भाँति श्री दत्ताराम का और सुभद्रा देवी का स्नान भी बतलाऊँगा जो कि परम पुण्यमय एवं समस्त अधो का विनाश करनेवाला है ॥२॥ हे द्विजगण ! ज्येष्ठ मास में चन्द्र दैवत नक्षत्र के सम्प्राप्त होने पर उमी समय में पूर्णिमा तिथि में श्री हरि का स्नान सर्वकाल में होता है । सर्वंतीर्थों से परिपूर्ण रूप होता है और उसमें निर्मल एवं शुद्ध होता है । उस समय में वहाँ पर भोगवती प्रत्यक्ष होती है ॥३-४॥ उससे ज्येष्ठी में हैमादय अर्थात् सुवर्ण निमित्त बलशो से जल को निशाले और हे द्विजो ! वह श्री बलराम-कृष्ण और सुभद्रा के लिये अभिषेक में लिया जाता है ॥५॥ उस अभिषेक के लिये एक मन्त्र की रचना करना आवश्यक है जो कि परम शोभा से समन्वित हो और पताकाओं से भी विभूषित किया जावे । वह मन्त्र सुदृढ-सुख का संचार करने वाला तथा वस्त्रों और पुष्पों से मण्डित होना चाहिए ॥६॥ यह मन्त्र श्री राम कृष्ण दोनों के अभिषेक के लिये विस्तार वाला तथा धूप से घूषित होना आवश्यक है । इस मन्त्र को श्वेतवस्त्र से ढक देवे और इसके चारों ओर पुक्ताओं के हार लटका देवे ॥७॥

तस्र नानाविधैर्वाद्यैः कृष्णं नीलाम्बर द्विजाः ।  
 मध्ये सुभद्रा चाऽऽस्थाप्य जयमङ्गलनिस्वनैः ॥८॥  
 ग्राहमणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं श्रान्त्यं च जातिभिः ।  
 अनेकशतसाहस्रं वृतं स्त्रीपुरुषैर्द्विजाः ॥९॥  
 गृहस्थाः स्नातकाश्च यत्तयो ब्रह्मचारिणः ।  
 स्नापयन्ति तदा कृष्ण मन्त्रस्थं सहलायुधम् ॥१०॥  
 तथा समस्ततीर्थानि पूर्वोक्तानि द्विजोत्तमाः ।  
 खोदकैः पूष्पमित्रैश्च स्नापयन्ति पृथक्पृथक् ॥११॥  
 पश्चात्पटहशङ्खाद्यैर्भेरीमुरजनिस्वनैः ।  
 काहलैस्तालशब्दैश्च मृदङ्गैर्क्षेत्रैस्तथा ॥१२॥



अन्यैश्च विविधैर्वाद्यैर्घण्टास्वनविभूषितैः ।

स्त्रीणां मङ्गलशब्दैश्च स्तुतिशब्दैर्मनोहरैः ॥१३॥

जयशब्दैस्तथा स्तोत्रैर्वीणावेणुनिनादितैः ।

श्रूयते सुमहाज्जब्दः सागरस्येव गर्जतः ॥१४॥

उस मंच पर हे द्विजगणो ! अनेक प्रकार के वाद्यों के द्वारा तथा जय मङ्गल शब्दों के द्वारा नीले मेघ के समान वर्ण वाद्ये भगवान् श्रीकृष्ण को तथा मध्य भाग में सुमद्रा जी को समास्तित करे ॥८॥ फिर हे द्विजो ! ब्राह्मण-शत्रिय-वैश्य-शूद्र तथा अन्य जाति वालों के द्वारा बहुत से संकडों और सहस्रों सभी स्त्री और पुरुषों के से समावृत हलायुध ( बलराम ) के सहित मंच पर स्थित श्रीकृष्ण को गृहस्थ-स्नातक-यतिगण और ब्रह्मचारीगण उम समय में स्नपन कराते हैं ॥९-१०॥ हे उत्तम द्विजो ! उसी भाँति पूर्व में वर्णित समस्त तीर्थ पुष्पों से मिश्रित अपने २ जलो के द्वारा पृथक् २ स्नपन कराते हैं ॥११॥ इसके पश्चात् पटह-खखादि-भेरी और मुरज की स्वनियों से कोलाहल और ताल के शब्दों से तथा मृदङ्ग और झंझरो से एवं अन्य विविध वाद्यों के द्वारा-घण्टा के स्वर ( ध्वनि ) से विभूषित स्त्रियों के मङ्गल वाचक शब्दों से मनोहर स्तवन के शब्दों से, जय शब्दों से, स्तोत्रों से, वीणा और वेणु के शब्दों से गर्जना करते हुए सागर के समान महान् शब्दों का घोष सुनाई दिया करता है ॥१२-१४॥

मुनीनां वेदशब्देन मन्त्रशब्दस्तथाऽपरैः ।

नानास्तोत्ररवैः पुण्यैः सामशब्दोपवृत्तितं ॥१५॥

यतिभिः स्नातकैश्चैव गृहस्थैर्ब्रह्मचारिभिः ।

स्नानकाले सुरश्रेष्ठ स्तुवन्ति परया मुदा ॥१६॥

श्यामं वैश्याजनंश्चैव कुचभारावनामिभिः ।

पीतरक्ताम्बराभिश्च माल्यदामावनामिभिः ॥१७॥

सरत्नकुण्डलदिव्यैः सुवर्णस्तवकान्वितैः ।

चामरै रत्नदण्डैश्च वीज्येते रामकेशवी ॥१८॥

यक्षविद्याधरः सिद्धः किन्नरश्चाप्सरोगणः ।  
 परिवार्यम्बिरगतर्देवगन्धर्वचारणः ॥१९॥  
 आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वे मरुद्गणाः ।  
 लोकपालास्तथा चान्ये स्तुवन्वि पुरुषोत्तमम् ॥२०॥  
 नमस्ते देवदेवेश पुराण पुरुषोत्तम ।  
 सर्गस्थित्यन्तकृद्देव लोकनाथ जगत्पते ॥२१॥

उस स्नान के समय में मुनिगणों के द्वारा समुच्चारित वेद मन्त्रों की ध्वनि से, तथा दूसरे अनेक प्रकार के स्तोत्रों के शब्दों से, पुण्यमय सामवेद के शब्दों से उपवृत्त यति-स्नातक-गृहस्थ और ब्रह्मचारियों के द्वारा हे सुरथेष्ठो ! परमाधिक आनन्द से स्तुतियाँ की जाती हैं ॥१५-१६॥ अपने स्तनों के भार में अवनमन करने वाली श्याम वेश्या जनों के द्वारा-माल्यों के भार से नीचे की ओर झुक जाने वाली तथा पीत और रक्त वस्त्र धारिणी नारियों के द्वारा-रत्न जटित कुण्डलों से और दिव्य सुवर्ण के स्तवकों से युक्त-रत्नों के दण्ड वाले चामरों से वे दोनों राम और केशव धीज्यमान होते हैं ॥१७-१८॥ यक्ष, विद्याधर, सिद्ध, किन्नर, अप्सराओं के गण, देव, गन्धर्व, चारण लोग आकाश में चारों ओर घिरे हुए होते हैं । इन सबसे परिचारित आदित्य, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण, साध्य, विश्वेदेवा, लोकपाल और अन्य सब उस समय में पुरुषोत्तम प्रभु का स्तवन किया करते हैं ॥१९-२०॥ उस समय में सभी यही स्तवन किया करते हैं-हे पुराण पुरुषोत्तम ! आप तो देवों के भी देवता हैं और आप विश्व की सृष्टि-स्थिति तथा अन्त करने वाले हैं । हे देव ! हे सोनों के स्वामिन् ! हे जगतों के पति ! आपको हम नमस्कार करते हैं ॥२१॥

त्रिलोक्यधारिणं देव ब्रह्मण्य मोक्षकारणम् ।  
 त नमस्यामहे भक्त्या सर्वकामफलप्रदम् ॥२२॥  
 स्तुत्वैव विबुधाः कृष्ण रामं चैव महाबलम् ।  
 सुमद्रा च मुनिश्रेष्ठास्तदाऽऽकाश व्रजस्थिताः ॥२३॥

गायन्ति देवगन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसस्तथा ।  
 देवतूर्याण्यवाद्यान्त वाता वान्ति सुशीतलाः ॥२४॥  
 पुष्पमिश्रं तदा मेघा वर्षन्त्याकाशगोचराः ।  
 जयशब्दं च कुर्वन्ति मुनयः सिद्धचारणाः ॥२५॥  
 शक्राद्या विबुधाः सर्वे ऋषयः पितरस्तथा ।  
 प्रजानां पतयो नागा ये चान्ये स्वर्गवासिनः ॥२६॥  
 ततो मङ्गलसभारं विधिमन्यपुरस्कृतम् ।  
 अभियेचनिकं द्रव्यं गृहीत्वा देवतागणाः ॥२७॥  
 इन्द्रो विष्णुर्महावीर्यः सूर्याचन्द्रमसौ तथा ।  
 चाता चं व विधाता च तथा चं वानिलानलौ ॥२८॥

उन त्रैलोक्य के धारण करने वाले ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले मोक्ष के कारण स्वरूप सब कामनाओं के फल प्रदान करने वाले उन देव को हम नमस्कार करते हैं ॥२२॥ इस रीति से देवगण महान् धल वाले श्री राम एवं कृष्ण का स्तवन करके हे मुनिश्रेष्ठो ! तथा सुभद्रा देवी की स्तुति करके फिर सब आकाश में व्यवस्थित हो जाया करते हैं ॥२३॥ देव गन्धर्व गान किया करते हैं—अप्सरारों नृत्य करती हैं—देवों के तूर्य बजाये जाते हैं और वायु परम शीतल होकर वहन किया करते हैं ॥२४॥ उस मुसमय पर आकाश में दिखाई देने वाले मेघ पुष्पों से मिश्रित जल की वृष्टि किया करते हैं । मुनिगण-सिद्ध और चारण जय-जयकार के शब्दों का उच्चारण किया करते हैं ॥२५॥ इन्द्र आदि देवता सब ऋषिगण पितृगण प्रजापतिगणों के समुदाय नाग तथा अन्य स्वर्ग निवासी सभी जय-जयवार किया करते हैं ॥२६॥ इसके पश्चात् मङ्गल के संभारों से विधि मन्त्रों से पुरस्कृत अभियेक के द्रव्य को देवगण ग्रहण करके वहाँ पर स्थित रहते हैं ॥२७॥ उनके कतिपय प्रमुख नामों को बतलाया जाता है—इन्द्र विष्णु जो महान् वीर्य से युक्त हैं—सूर्य-चन्द्रमा-धाता-विधाता-अनिल-अनल ये सब देवता वहाँ पर उपस्थित रहते हैं ॥२८॥

पूषा भगोऽयमा त्वष्टा अंशुर्नैव विवस्वता ।  
 पत्नीभ्यां सहितो धीमान्मित्रेण वरुणेन च ॥२६॥  
 रुद्रं वंसुभिरादित्यं रश्मिभ्यां च वृतः प्रभुः ।  
 विश्वं दैवं मरुद्भिर्मरुद्भिश्च साध्यं च पितृभिः सह ॥३०॥  
 गन्धर्वैरप्सरोग्भिश्च यक्षराक्षसपन्नगैः ।  
 देवर्षिभिरसुर्येयैस्तथा ब्रह्मर्षिभिर्वरैः ॥३१॥  
 वैखानसैर्बालिलित्यैर्व्याहारैर्मरोचिषैः ।  
 भृगुभिश्चाङ्गिरोभिश्च सर्वविद्यासुनिष्ठितैः ॥३२॥  
 सर्वविद्याधरैः पुण्यैर्योगसिद्धिभिरावृतः ।  
 पितामहः पुलस्त्यश्च पुलहश्च महातपाः ॥३३॥  
 अङ्गिराः कश्यपोऽत्रिश्च मरोचिर्भृगुरेव च ।  
 क्रतुर्हरः प्रचेताश्च मनुदंक्षस्तथैव च ॥३४॥  
 ऋतवश्च प्रहाश्चैव ज्योतीषि च द्विजोत्तमाः ।  
 भूतिमत्यश्च सरितो देवाश्चैव सनातनाः ॥३५॥

पूषा, भग, अयमा, त्वष्टा जो अंशु और विवस्वाद् धीमाद् पत्नियों के सहित हैं । मित्र, वरुण, रुद्र, वसु, आदित्य और अश्विनी कुमारों से प्रभु परिवृत रहने हैं । विश्वेदेवा, मरुद्गण, साध्य, पितृगण, गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष, राक्षस और पन्नगों से पुण्योत्तम प्रभु उस समय में घिरे हुए रहते हैं । असुर्य देवर्षि गग तथा श्रेष्ठ ब्रह्मर्षियों से भी चारों ओर में आवृत रहते हैं ॥२६-३१॥ वैखानस, बालिलित्य, व्याधु के आहार करने वाले, मरोचिष, सब विद्याओं में परिनिष्ठित भृगु और अङ्गिरा, सब विद्याओं के धारण करने वाले पुण्यात्मा योग सिद्धियों के द्वारा वे आवृत रहते हैं । उस अभिषेक के समय पर पितामह, पुलस्त्य, पुलह, महात्मा अङ्गिरा, कश्यप, अत्रि, मरोचि, भृगु, क्रतु, हर, प्रचेता, मनु, दक्ष—ये सब उस अभिषेक के समय में उपस्थित थे ॥३२-३४॥ सब ऋतुएँ, समस्त ग्रह, ज्योतिर्गण, भूतिमनी सब सरिताएँ और सनातन सब देवगण वहाँ पर थे ॥३५॥

समुद्राश्च हृदाश्चैव तीर्थानि विविधानि च ।

पृथिवी द्यौर्दिशश्चैव पादपाश्च द्विजोत्तमाः ॥३६

अदितिर्देवमाता च ह्रीः श्रीः स्वाहा सरस्वती ।

उमा शची सिनीवाली तथा चानुमतिः कुहूः ॥३७

राका च धिपणा चैव पत्न्यश्चान्या दिवोकसाम् ।

हिमवाश्चैव विन्ध्यश्च मेरुश्चानेकशृङ्गवान् ॥३८

ऐरावतः सानुचरः कलाकाष्ठास्तथैव च ।

मासार्धं मासश्चतवस्तथा रात्र्यहनी समाः ॥३९

उच्चैः श्रवा ह्यश्रेष्ठो नागराजश्च वामनः ।

अरुणो गरुडश्चैव वृक्षाश्चैव पथिभिः सह ॥४०

धर्मश्च भगवान्देव समाजगृहि सगताः ।

कालो यमश्च मृत्युश्च यमस्यानुचराश्च ये ॥४१

बहुलत्वाच्च नोक्ता ये विविधा देवतागणाः ।

ते देवस्याभिषेकार्थं समायान्ति ततस्ततः ॥४२

द्विजोत्तमो ! सब समुद्र, हृद, विविध तीर्थ, पृथिवी, द्यौ, दिशाएँ समस्त पादप, देवमाता अदिनि, ह्री, श्री स्वाहा, सरस्वती, उमा शची, सिनी वाली, अनुमति, कुहू, राका, धिपणा, देवगणों की अन्य पत्नियाँ ये सब वहाँ पर उस समय में विद्यमान थे । हिमवान्, विन्ध्य, मेरु, अनेक शृङ्गवान्, ऐरावत, अनुचरो के सहित, कला, काष्ठा, मास का अर्धभाग पक्ष, मास, यव श्रुतुएँ, रात्रि, दिन, समा, हनो में श्रेष्ठ उच्चैः श्रवा, नागराज, वामन, अरुण, गरुड, समस्त औपधिया, भगवान् देव धर्म में सभी संगन होकर वहाँ पर समागत हुए थे । काल, यमराज, मृत्यु, और समस्त यम के अनुचर गण, देवगण अनेक और बहुत हैं वे सब नहीं बतलाये गये हैं । वे सभी जिनके नाम नहीं बतलाये गये हैं इधर-उधर से पुरुषोत्तम देव के अभिषेक के लिए समागन होते हैं ॥३६-४२॥

गृहीत्वा ते तदा विप्राः सर्वे देवा दिवोकसः ।

आभिषेचनिक द्रव्य मङ्गलानि च सर्वशः ॥४३

दिव्यसंभारसंपुक्तैः कलशैः कञ्चनैर्द्विजाः ।

सारस्वतीभिः पुण्याभिर्दिव्यतोयाभिरेव च ॥४४

तोयेनाऽऽकाशगङ्गायाः कृष्ण रामेण सगतम् ।

सपुष्पैः काञ्चनैः कुम्भैः स्नापयन्त्यवनिस्थिताः ॥ ५

सचरन्ति विमानानि देवनामम्बरे तथा ।

उच्चावचानि दिव्यानि कामगानि स्थिराणि च ॥४६

दिव्यरत्नविचित्राणि सेवितान्यप्सरोगणैः ।

गीतैर्वाद्यैः पताकाभिः शोभितानि समन्ततः ॥४७

एव तदा मुनिश्रेष्ठाः कृष्ण रामेण सगतम् ।

स्नापयित्वा सुभद्रा च सस्तुवन्ति मुदाऽन्विताः ॥४८

हे विप्रो! उस अभिवेक के अवसर पर समस्त देवगण और दिवलोक में निवास करने वाले सभी ओर से मङ्गलमय वदार्थों को और अभिवेचनिक द्रव्य की ग्रहण करके वहाँ पर समुपस्थित थे ॥४३॥ हे द्विजगणो! दिव्य सम्भारों से समन्वित-कञ्चन के निमित्त कलशों से सारस्वती के परम पुष्पमय एव दिव्यजलो से-आकाश गङ्गा के जल से-पुष्पों के सहित सुवर्ण निमित्त कुम्भों से भगवान् राम के सहित श्री कृष्ण का भूमि में स्थित होकर सब स्नपन कराते हैं ॥४४-४५॥ नभो-मण्डल में देवों के उच्चावच, स्वेच्छागामी-स्थिर दिव्य-दिव्य रत्नों के जटित होने के कारण अति अद्भुत-अप्सराओं व समुदाय के द्वारा सेवित-सभी ओर गीत वाद्यों से एव पताकाओं से सुशोभित देवों को विमान सञ्चरण किया करते हैं ॥४६-४७॥ इस प्रकार से हे मुनि श्रेष्ठो! सभी राम के सहित श्री कृष्ण का और सुभद्रा देवी का बड़े आनन्द के साथ सस्तवन किया करते हैं और स्नपन कराते हैं ॥४८॥

जय जय लोकपाल भक्तरक्षक जय जय प्रणतवत्सल जय  
जय भूतचरण जय जयाऽऽदिदेव बहुकारण जय जय वामुदेव  
जय जयासुरसहरण जय जय दिव्यमीन जय जय त्रिदशवर जय  
जय जलघिशयन जय जय योगिवर जय जय सूर्यनेत्र जय जय

देवराज जय जय कैटभारे जय जय वेदवर जय जय कूर्मरूप जय  
जय यज्ञवर जय जय कमलनाभ जय जय शैलचर जय जय  
योगशायिष्ठय जय वेगधर जय जय विश्वमूर्ते जय जय चक्रधर  
जय जय भूतनाथ जय जय धरणीधर जय जय शेषशायिष्ठय  
जय पीतवासी जय जय सोमकान्त जय जय योगवास जय जय  
दहनवक्त्र जय जय धर्मवास जय जय गुणनिधान जय जय  
श्रीनिवास जय जय गरुडगमन जय जय सुखनिवास जय जय  
धर्मकेतो जय जय महीनिवास जय जय गहनचरित्र जय जय  
योगिगम्य जय जय मयनिवास जय जय वेदवेद्य जय जय शान्तिकर  
जय जय योगिचिन्त्य जय जय पुष्टिकर जय जय ज्ञानमूर्ते जय  
जय कमलाकर जय जय भाववेद्य जय जय मुक्तिकर जय जय  
विमलदेह जय जय सत्त्वनिलय जय जय गुणसमृद्ध जय जय  
यज्ञकर जय जय गुणविहीन जय जय मोक्षकर जय जय भूश-  
रण्य जय जय कान्तियुत जय जय लोकशरण जय जय लक्ष्मी-  
युत जय जय पङ्कजाक्ष जय जय सृष्टिकर जय जय योगयुत  
जय जयातसीकुसुमदयामदेह जय जय समुद्रविष्टदेह जय जय  
लक्ष्मीपङ्कजपट्चरण जय जय भक्तवश जय जय लोककान्त जय  
जय परमशान्त जय जय परमसार जय जय चक्रधर जय जय  
भोगियुत जय जय नीलाम्बर जय जय शान्तिकर जय जय मोक्ष  
कर जय जय कलुपहर ॥४६

अब सस्तवन जिस प्रकार से किया जाता है वह बतलाते हैं—  
हे देवेश्वर ! आप सब लोको के पालन करने वाले हैं आपकी सदा जय  
जय होवे । आप अपने भक्तों की रक्षा करने वाले हैं आपका जय-जय-  
नार होवे । आप क्षरणागति में आने वाले प्रणतो पर प्यार करने वाले  
हैं आपकी सदा जयनार होवे । हे भूत चरण ! आपकी जय होवे ।  
आप आदि देव हैं तथा घटूतो के कारण हैं आपका सदा जयनार  
होवे । हे वासुदेव ! आपकी जय हो । हे असुरों के संहार करने वाले !

आपकी जय हो । हे दिव्यमीन ! आपका जय-जयकार होवे । हे देवों में परमश्रेष्ठ ! आपकी जय हो । आप जलधि में शमन करने वाले तथा योगियों में परम श्रेष्ठ हैं आपकी जय होवे । हे सूर्य के नेत्र वाले ! आप देवों के राजा हैं और हे षण्ढम जसुर के हनन करने वाले ! आप वेदों में परमश्रेष्ठ पुकारे जाते हैं आपकी जयकार हो । हे वूर्म का स्वरूप धारण करने वाले ! आप यज्ञों में श्रेष्ठ हैं तथा नाभि में कमल रखने वाले हैं आपकी सर्वदा जय हो । हे शैलो पर चरण करने वाले ! आप योगावस्था में शयन करने वाले तथा वेगों को धारण करने वाले हैं आपकी जय हो । हे विश्व की मूर्ति वाले ! तथा हे चक्र को धारण करने वाले ! आप समस्त भूतों के नाथ हैं और इस धरणी को धारण करने वाले हैं आपका सदा जयकार होवे । हे शेष की शय्या पर शयन करने वाले ! आप पीताम्बर धारी हैं—चन्द्र के समान सुन्दर हैं तथा योग में ही वास किया करते हैं आपकी जय हो । हे दहन के मुख वाले ! हे धर्म के निवास से युक्त आप गुणों की खान हैं—आप में श्री का निवास रहता है और सदा अपने वाहन गरुड पर बैठ कर गमन किया करते हैं आपकी सदा जयकार होवे । हे मुख के आश्रय ! आप धर्म के केतु हैं आपकी जय हो । हे भूमि पर निवास करने वाले अथवा मही को आश्रय देने वाले ! आपका चरित्र बहुत ही महान है—आप योगियों के द्वारा जानने के योग्य हैं—मछों में आप विद्यमान रहा करते हैं—वेदों के द्वारा आपका ज्ञान होता है और आप शान्ति के करने वाले हैं आपका अनेक बार जय-जयकार होवे । हे योगिजनों के द्वारा चिन्तन करने के योग्य ! आप पुष्टि के करने वाले हैं—ज्ञान की मूर्ति हैं—वस्त्रना के आकार हैं—भावना के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के योग्य हैं और आप मानव का समार के जन्म-मरण जय के बारम्बार बन्धन से छुड़कारा देने वाले हैं—आपका कर्म पूर्णतया विमल है अर्थात् कर्मों का कोई भी प्रभाव आपके देह पर नहीं होता है । आपका जय हो । हे सत्त्व नित्य ! आप गुण गणों से समृद्धि प्राप्त करने वाले हैं—यज्ञों के करने वाले—मोक्ष को प्रदान करने वाले—भूमि को धारण



देने वाले और कान्ति से युक्त है अर्थात् पूर्ण कान्ति से सुसम्पन्न हैं । आपका सर्वदा जय जयकार होवे । हे लोको को सुरक्षा प्रदान करने वाले ! आप लक्ष्मी से युक्त हैं—कमल के सदृश सुन्दर नेत्रो वाले हैं—सृष्टि के करने वाले हैं—योग से युक्त हैं—अलसी के कुसुम के समान श्याम शरीर वाले हैं—समुद्र मे विष्ट देह वाले हैं आपकी जय-जयकार होवे । हे महालक्ष्मी के स्वरूप रूप कमल के लिये भ्रमर के समान हैं । आप अपने भक्तों के वश मे रहते हैं—लोको के कान्त हैं—परम शान्त स्वरूप हैं—परमाधिक तार रूप हैं—सुदर्शन चक्र के धारण करने वाले हैं भोगियो से युक्त हैं—हे नीले अम्बर वाले ! हे शान्ति के करने वाले ! मोक्ष के कर्ता और आप कलुषो के हरण करने वाले हैं—आपका सदा-सर्वदा जय-जयकार होवे ॥४६॥

जय कृष्ण जगन्नाथ जय सकर्पणानुज ।

जय पद्मपलाशाक्ष जय वाञ्छाफलप्रद ॥५०॥

जय मालावृत्तोरस्क जय चक्रगदाधर ।

जय पद्मालयाकान्त जय विष्णो नमोऽस्तु ते ॥५१॥

एव स्तुत्वा तदा देवाः शक्राद्या हृष्टमानसाः ।

सिद्धचारणसघाश्च ये चान्ये स्वर्गवासिनः ॥५२॥

मुनयो बालखिल्याश्च कृष्ण रामेण सगतम् ।

सुभद्रां च मुनिश्रेष्ठाः प्रणिपत्याम्बरे स्थिताः ॥५३॥

दृष्ट्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा तदा ते त्रिदिवोकसः ।

कृष्ण राम सुभद्रा च यान्ति स्वं स्व निवेशनम् ॥५४॥

सचरन्ति विमानानि देवानामम्बरे तदा ।

उच्चावचानि दिव्यानि कामगानि स्थिराणि च ॥५५॥

दिव्यरत्नविचित्राणि सेविताग्न्यप्सरोगणैः ।

गीतैर्वर्च्यैः पताकाभिः शोभितानि समन्ततः ॥५६॥

हे जगत् के नाथ कृष्ण ! आपकी जय हो । हे सङ्कर्षण भगवान् के छोटे भाई ! आपका जयकार हो । हे पद्म के दलों के समान लोचनो वाले ! आप वाञ्छा के अनुसार फल प्रदान करने वाले हैं । आपकी

जय-जयकार होवे ॥५०॥ हे मालाओं से सतावृत वक्षःस्थल वाले ! हे चक्र गदा दोनों के धारण करने वाले ! हे महासङ्ग्रीही देवी के स्वामिन् ! हे विष्णु देव ! आपका सर्वदा जयकार होवे और हमारा आपकी चरण सेवा में प्रणाम समर्पित है ॥५१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस महाभिषेक के समय में इस प्रकार से इन्द्र प्रभृति देवों में परम प्रसन्न होकर स्तवन किया था और सिद्धों तथा चारणों ने सधों ने तथा अन्य स्वर्ग लोक में निवास करने वालों ने भी भगवन् विष्णुदेव की स्तुति की थी ॥५२॥ बालखिल्य मुनियों ने राम के सहित स्थित श्रीकृष्ण और सुभद्रा को प्रणिपात किया था और फिर वे सभी आकाश में स्थित हो गये थे ॥५३॥ उस समय में उन सब त्रिदिव के निवासियों ने दर्शन करके स्तवन करके श्रीकृष्ण-राम और सुभद्रा जी को प्रणाम किया था फिर वे सब अपने २ निवास स्थलों को गमन किया करते हैं ॥५४॥ उस महाभिषेक के सुअवसर पर देवों के विमान अग्न्यर में सञ्चरण किया करते हैं जो कि ऊँचे और नीचे हैं—परम दिव्य-नामनानुसार गमन करने वाले तथा स्थिर हैं ॥५५॥ वे देवों के विमान परम दिव्य रत्नों से अतीव अद्भुत हैं और अप्सराओं के गणों के द्वारा सुसेवित हैं तथा गीत-वाद्यों के द्वारा और पताकाओं से वे विमान सुन्दर शोभा से युक्त थे ॥५६॥

तस्मिन्काले तु ये मर्त्या पश्यन्ति पुरुषोत्तमम् ।

बलभद्र सुभद्रा च ते यान्ति पदमव्ययम् ॥५७॥

सुभद्रारामसहित मञ्चस्य पुरुषोत्तमम् ।

दृष्ट्वा निरामय स्थान यान्ति नास्त्यत्र सशयः ॥५८॥

कपिलाशतदानेन यत्फल पुष्करे स्मृतम् ।

तत्फल कृष्णमालोक्य मञ्चस्य सहलायुधम् ॥

सुभद्रा च मुनिश्रेष्ठाः प्राप्नोति शुभकृन्नरः ॥५९॥

कन्याशतप्रदानेन यत्फल समुदाहृतम् ।

तत्फल कृष्णमालोक्य मञ्चस्य लभते नरः ॥६०॥

सुवर्णशतनिष्काणां दानेन यत्फलं स्मृतम् ।

तत्फलं कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थं लभते नरः ॥६१॥

गोसहस्रप्रदानेन यत्फलं परिकीर्तितम् ।

तत्फलं कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थं लभते नरः ॥६२॥

भूमिदानेन विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम् ।

तत्फलं कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थं लभते नरः ॥६३॥

उस समय पर जो मनुष्य पुरुषोत्तम प्रभु बलमद्र और सुभद्रा का दर्शन किया करते हैं वे सीधे अव्यय पद को प्राप्त किया करते हैं ॥५७॥ सुभद्रा देवी और बलराम जी के सहित महामन्त्र पर विराजमान श्री पुरुषोत्तम प्रभु का दर्शन करके परम निरामय स्यान् को गमन किया करते हैं—इसमें किञ्चिन्मात्र भी संशय नहीं है ॥५८॥ एक सौ कपिला गौओं के दान का जो पुष्कर राज में पुण्य-फल होता है वही फल इला-मुष प्रभु के साथ मन्त्र पर स्थित श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त करके तथा सुभद्रा देवी का अवलोकन करके हे मुनिश्रेष्ठो ! शुभ कर्म करने वाला नर प्राप्त कर लिया करता है ॥५९॥ एक सौ कन्याओं के दान करने से जो फल बताया गया है उसी फल की प्राप्ति मन्त्र पर विराजमान श्रीकृष्ण का दर्शन करके मनुष्य किया करता है ॥६०॥ एक सौ सुवर्ण के निष्क ( एक प्राचीन सिक्का तथा परिमाण का नाम है ) के दान से जो पुण्य-फल कहा गया है उसी फल को मन्त्र पर विराजमान श्रीकृष्ण का दर्शन करके मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥६१॥ एक सहस्र गौओं के दान करने का जो भी पुण्य फल कहा गया है उसी फल को मन्त्र पर समवस्थित श्रीकृष्ण का दर्शन करके मनुष्य पा लेता है ॥६२॥ विधिपूर्वक भूमि के दान से जो फल बताया गया है उसी फल को मन्त्रस्थ कृष्ण का दर्शन करके मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥६३॥

यत्फलं चान्नदानेन अर्घातिथ्येनकीर्तितम् ।

तत्फलं कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थं लभते नरः ॥६४॥

वृषोत्सर्गेण विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम् ।

तत्फलं कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थं लभते नरः ॥६५॥

यत्फलं तोयदानेन श्रीप्ते वाऽन्यत्र कीर्तितम् ।

तत्फलं कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थं लभते नरः ॥६६॥

तिलधेनुप्रदानेन यत्फलं सप्रकीर्तितम् ।

तत्फलं कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थं लभते नरः ॥६७॥

गजाश्वरथदानेन यत्फलं समुदाहृतम् ।

तत्फला कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थं लभते नरः ॥६८॥

सुवर्णशृङ्गीदानेन यत्फलं समुदाहृतम् ।

तत्फला कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थं लभते नरः ॥६९॥

जलधेनुप्रदानेन यत्फलं समुदाहृतम् ।

तत्फलं कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थं लभते नरः ॥७०॥

जो फल अन्न के दान से तथा अर्घ्य के सहित आतिथ्य करने से कहा गया है वही फल मन्त्रस्थ श्रीकृष्ण का दर्शन कर प्राप्त हो जाता है ॥६४॥ शास्त्रोक्त विधान के साथ जो एक दृष्ट के उत्तम करने का फल कहा गया है वही फल अभिषेक के मन्त्र पर विराजमान श्रीकृष्ण भगवान् के दर्शन से प्राप्त हो जाया करता है ॥६५॥ श्रीष्म के तदन काल में जो फल जल के दान का अन्य स्थल में बताया गया है वही पुण्य का फल मन्त्रपद पर विराजमान श्री कृष्ण के दर्शन से हो जाता है ॥६६॥ तिल और धेनु के दान का जो फल कहा गया है वह मन्त्रस्थ श्रीकृष्ण के दर्शन से मनुष्य पा जाता है ॥६७॥ गज-अश्व और रथ के दान का जो फल होता है वह मन्त्र पर स्थित श्रीकृष्ण के दर्शन से होता है ॥६८॥ सुवर्ण शृङ्गी के दान के फल के समान मन्त्रस्थ श्रीकृष्ण-दर्शन से प्राप्त होता है ॥६९॥ जल धेनु के दान के फल के तुल्य ही मन्त्रस्थित श्रीकृष्ण दर्शन से दृष्टा करता है ॥७०॥

दानेन घृतधेन्वाश्च फलयत् समुदाहृतम् ।

तत्फलं कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थं लभते नरः ॥७१॥

चान्द्रायणेन चीर्णेन यत्फलं समुदाहृतम् ।

तत्फलं कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थं लभते नरः ॥७२॥

मासोपवासैर्विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम् ।

तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः ॥७३॥

अथ किं बहुनोक्तेन भाषितेन पुनः पुनः ।

तस्य देवस्य माहात्म्यं मञ्चस्थस्य द्विजोत्तमाः ॥७४॥

यत्फलं सर्वतीर्थेषु यतैर्दानैश्च कीर्तितम् ।

तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं सहलायुधम् ॥७५॥

सुमद्रां च मुनिश्रेष्ठाः प्राप्नोति शुभकृष्णरः ।

तस्मान्नरोऽयवा नारी पश्येत् पुरुषोत्तमम् ॥७६॥

ततः समस्ततीर्थानां लभेत्स्नानादिकं फलम् ।

स्नानशेषेण कृष्णस्य तोयेनाऽऽत्माऽभिपिच्यते ॥७७॥

घृत घेनु के दान का जो फल कहा गया है वही पुण्य-फल मञ्च-स्थित कृष्ण दर्शन से होता है ॥७३॥ चान्द्रायण महाव्रत के धीर्ण करने से जो फल बताया गया है वही फल मञ्चस्थ श्रीकृष्ण के दर्शन से वह प्राप्त कर लेता है ॥७४॥ एक मास के लम्बे उपवास से जो फल बताया गया है वही मञ्चस्थ श्रीकृष्ण के दर्शन से प्राप्त हो जाता है ॥७५॥ इसके पीछे बारम्बार बहुत कथन से क्या लाभ है जो कि हे द्विजगणो ! उन देवेश्वर के मञ्च पर विराजमान के दर्शन का माहात्म्य हुआ करता है क्योंकि सभी तरह के महान् पुण्यों का फल इससे प्राप्त हो जाया करता है ॥७६॥ जो फल समस्त तीर्थों में व्रतो और दानों के करने से हुआ करता है वह केवल एकमात्र मञ्चस्थ श्रीकृष्ण के दर्शन से हो जाया करता है जो कि हलायुध के सहित विराजमान रहते हैं ॥७७॥ हे मुनियो मैं परम श्रेष्ठो ! सुमद्रा देवी जो का दर्शन कोई परम शुभ कर्म करने वाला ही पुरुष प्राप्त किया करता है । इस लिये नर हो, अथवा नारी हो उन पुरुषोत्तम प्रभु का, उनको दर्शन अवश्य ही करना चाहिए ॥७८॥ इसके अनन्तर जो श्रीकृष्ण के स्नान से शेष जल है उसके द्वारा अपने आपका अभिपिचन किया जाता है वह समस्त तीर्थों के स्नान करने आदि के पुण्य-फल को प्राप्त कर लिया करता है ॥७९॥

वन्ध्या मृतप्रजा या तु दुर्भगा ग्रहपीडिता ।

राक्षसाद्यं गृहीता वा तथा रोगैश्च सहताः ॥७८

सद्यस्ताः स्नानशेषेण उदकेनाभिपेचिताः ।

प्राप्नुवन्तीप्सितान् कामान्यान्यान्वाञ्छन्ति चेप्सितान् ॥७९

पुत्रार्थिनी लभेत्पुत्रान्तोभाग्यं च सुखार्थिनी ।

रोगार्ता मुच्यते रोगाद्धनं च धनकाङ्क्षिणी ॥८०

पुण्यानि यानि तोयेनि तिष्ठन्ति धरणीतले ।

तानि स्नानावशेषस्य कला नाहन्ति षोडशीम् ॥८१

तस्मात्स्नानावशेषं यत्कृष्णस्य सलिलं द्विजाः ।

तेनाभिविञ्चेद्गात्राणि सर्वकामप्रदं हि तत् ॥८२

स्नातं पश्यन्ति ये कृष्णं यजन्त दक्षिणामुखम् ।

ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यन्ते ते न सशयः ॥८३

शास्त्रेषु यत्फलं प्रोक्तं पृथिव्यास्त्रिप्रदक्षिणैः ।

दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं यजन्त दक्षिणामुखम् ॥८४

जो नारी वन्ध्या है अथवा जिसकी सन्तान समुत्पन्न होकर मृत हो जाया करती है—जो दुर्भाग्य वाली—ग्रहों से सतायी हुई है—जो राक्षसादि के द्वारा गृहीत है—जो रोगों से युक्त है वे सभी प्रकार से पीडित नारियाँ स्नान से बचे हुए जल से अभिपेचित होकर तुरन्त ही सब पापों से छूट जाया करती हैं तथा अपने अभीष्ट मनोरथों को प्राप्त कर लेती हैं जो भी वे मन में इच्छा किया करती हैं ॥८५-७९॥ जो पुत्र की अभिलाषा रखती हैं वे पुत्रों को प्राप्त कर लिया करती हैं—जो सुखों की चाह रखती हैं वे परम सौभाग्य का लाभ लिया करती हैं । रोगों से पीडित नारी रोग से मुक्त हो जाती है और धन की आकांक्षा रखने वाली धन-लाभ करती हैं ॥८०॥ इस धरणी तल में जो भी पुण्यमय जल स्थित हैं वे सभी इस श्रीकृष्ण के अभिषेक से बचे हुए जल की सोलहवीं कला के योग्य नहीं हो सकते हैं ॥८१॥ इसलिये हे द्विजो ! श्रीकृष्ण के स्नानावशेष जो परम पावन जल है उससे अपने समस्त अङ्गों का अभिषेक करना चाहिए क्योंकि वह सभी प्रकार की कामनाओं के फल : प्रदान

करने वाला होता है ॥८२॥ दक्षिण की ओर अभिमुख स्नान करते हुए श्रीकृष्ण का जो दर्शन किया करते हैं वे ब्रह्महत्या प्रभृति को महान् पाप है उन सबसे छूट जाता है—इसमें संशय नहीं है ॥८३॥ शास्त्रों में इस पृथिवी की तीन प्रदक्षिणाओं के करने का जो फल बताया गया है उसको दक्षिण की ओर मुख करके गमन करने वाले श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त कर लिया करता है ॥८४॥

तीर्थयात्राफलं यत्तु पृथिव्यां समुदाहृतम् ।

दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥८५॥

वदर्यां यत्फलं प्रोक्तं दृष्ट्वा नारायणं नरम् ।

दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥८६॥

गङ्गाद्वारे कुरुक्षेत्रे स्नानदानेन यत्फलम् ।

दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥८७॥

प्रयागे च महामाध्या यत्फलं समुदाहृतम् ।

दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥८८॥

शालग्रामे महाचण्ड्या स्नानदानेन यत्फलम् ।

दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥८९॥

महाभिधानकार्तिक्यां पुष्करे यत्फलं स्मृतम् ।

दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥९०॥

यत्फलं स्नानदानेन गङ्गासागरसंगमे ।

दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥९१॥

जो पृथिवी में तीर्थों की यात्रा का फल बताया गया है वही सम्पूर्ण फल दक्षिण मुख कृष्ण का दर्शन करके मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥८५॥ वदरी आश्रम में नर-नारायण का दर्शन प्राप्त करने से जो पुण्य का फल प्राप्त होता है उसको दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण का दर्शन करके मनुष्य पा जाता है ॥८६॥ गङ्गा द्वार में कुरुक्षेत्र में स्नान करने तथा दान देने से जो फल होता है वही पुण्य फल दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण के दर्शन से प्राप्त हो जाता है ॥८७॥ महामाधी में प्रयाग में जो फल बताया गया है वही फल दक्षिणामुख श्रीकृष्ण भगवान् के दर्शन से

हुआ करता है ॥८८॥ महा चैत्री में शालग्राम में स्नान और दान से जो फल प्राप्त होता है उतना ही पुण्य-फल दक्षिणा की ओर मुख वाले श्री कृष्ण के दर्शन से हुआ करता है ॥८९॥ महाभिधान कार्तिकी में पुष्कर में जो फल बताया गया है वही फल दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण को अवलोकन करके प्राप्त कर लिया करता है ॥९०॥ गङ्गा सागर के संगम में स्नान करने तथा दान करने से जो परम पुण्य का फल प्राप्त हुआ करता है वह फल दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण के दर्शन करने से प्राप्त हो जाया करता है ॥९१॥

ग्रस्ते सूर्ये कुरुक्षेत्रे स्नानदानेन यत्फलम् ।

दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥९२॥

गङ्गाया सर्वतीर्थेषु यामुनेषु च भो द्विजाः ।

सारस्वतेषु तीर्थेषु तथाऽन्येषु सरःसु च ॥९३॥

यत्फलं स्नानदानेन विधिवत्समुदाहृतम् ।

दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥९४॥

पुष्करे चाथ तीर्थेषु गये चामरकण्टके ।

नैमिषादिषु तीर्थेषु क्षेत्रेष्वायतनेषु च ॥९५॥

यत्फलं स्नानदानेन राहुग्रस्ते दिवाकरे ।

दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥९६॥

अथ किं पुनरुक्तेन भाषितेन पुनः पुनः ।

यत्किञ्चित्कथितं चात्र फलं पुण्यस्य कर्मणः ॥९७॥

वेदशास्त्रे पुराणेषु भारते च द्विजोत्तमाः ।

धर्मशास्त्रेषु सर्वेषु तथाऽन्यत्र मनीषिभिः ॥९८॥

दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं सहलायुधम् ।

सकलं भद्रया सार्धं यजन्त दक्षिणामुखम् ॥९९॥

कुरुक्षेत्र में सूर्य के ग्रस्त हो जाने पर अर्थात् सूर्य ग्रहण के समय में स्नान एवं दान से जो फल मनुष्य को मिलता है ठीक वैसे ही फल दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण के अवलोकन से हो जाता है ॥९२॥ हे



द्विजगणो ! गङ्गा मे यमुना के सभी तीर्थों में सरस्वती के समस्त तीर्थों मे तथा अन्य पृथ्व्यमय सरोवरो मे स्नान से तथा दान देने से जितना भी पुण्य का विधिवत् करने से फल प्राप्त हुआ करता है - वही फल केवल एक दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण के दर्शन से मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥६३-६४॥ पुष्कर में-तीर्थों मे-गया मे-अमर कण्टक में-नैमिवारण्य आदि मे तथा अन्य तीर्थों में, क्षेत्रों में और देवायतनों में रुद्र के द्वारा प्राप्त हुए दिवाकर के समय में स्नान एवं दान करने से जो फल मिलता है वही पूरा फल दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण के दर्शन से प्राप्त होता है ॥६५-६६॥ धारम्बार कथन से और उसी बात को दुबारा-तिबारा पुनः बोलने से क्या लाभ है निष्कर्ष मे बात यह है कि यहाँ पर पुण्य कर्म का जितना भी कुछ कहा गया है और द्विजोत्तमो ! महामनीषियों ने धर्म शास्त्रों में-सब वेदों मे-पुराणों मे और भारत में जो भी बताया गया है वह सम्पूर्ण पुण्य कर्म का फल ज्येष्ठ माई हलायुध के सहित एवं सुभद्राजी के साथ गमन करते हुए दक्षिण की ओर मुख वाले श्री कृष्ण के दर्शन करने से मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥६७-६८॥

### ३३—तीर्थ संख्या के विषय में नारदजी का प्रश्न

सर्वेषां चैव तीर्थानां क्षेत्राणां च द्विजोत्तमाः ।  
जपहोमव्रतानां च तपोदानफलानि च ॥१॥  
न तत्पश्यामि भो विप्रा यत्तेन सदृशं भुवि ।  
किं चात्र बहुनोक्तेन भाषितेन पुनः पुनः ॥२॥  
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं क्षेत्रं तत्परमं महत् ।  
पुरुषाख्यं सकृद्दृष्ट्वा सागराम्भः समाप्लुतम् ॥३॥  
क्षहमविद्यां सकृज्ज्ञात्वा गर्भवासो न विद्यते ।  
हरेः सनिहिते स्यान् उत्तमे पुरुषोत्तमे ॥४॥

सवत्सरनुपासीत मासमात्रमथापि वा ।

तेन जप्तं हुतं तेन तेन तप्तं तपो महत् ॥४॥

स याति परमं स्थानं यत्र योगेश्वरो हरिः ।

भुक्त्वा भागान्द्विचित्रांश्च देवयोषित्समन्वितः ॥५॥

कल्पान्ते पुनरागत्य मर्त्यलोके नरोत्तमः ।

जायते योगिनां विप्रा ज्ञानज्ञो योचतो गृहे ॥६॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! समस्त तीर्थों के—सब क्षेत्रों के और जाप, होम और सब कृत्यों के तपो दान के जो पुण्य फल होते हैं, हे विप्रो ! मैं इस भूमण्डल में वेसा इसके समान कुछ भी नहीं देखता हूँ । यहाँ इस विषय में बहुत अधिक कहने से तथा बारम्बार भाषण करने से क्या लाभ है ॥१-२॥ यह सर्वथा सत्य है और पूर्ण-तया सत्य है एवं परम सत्य है कि यह परमाधिक एवं महान् क्षेत्र है कि सागर के जल में समाप्सुत पुरण नाम घारी प्रभु का दर्शन करके और ब्रह्म विद्या का ज्ञान एक बार प्राप्त करके फिर गर्भ में वास नहीं हुआ करता है अर्थात् पुनर्जन्म की वेदना नहीं होती है । श्री हरि के सनिहित उत्तम पुरुषोत्तम स्थान में एक वर्ष तक अथवा केवल एक मास पयन्त ही उपासना करनी चाहिए । उस पुरण ने सब जाप कर लिया समझो तथा होम और महान् तपस्या भी करली है—ऐसा ही मान लेना चाहिए । तात्पर्य यह है कि उसको फिर किसी भी जप-तपादि एवं होम करने की आवश्यकता अपने कल्याण के लिये नहीं होती है ॥३-५॥ यह पुरण तो उतने ही करने से परम स्थान को प्राप्त हो जाता है जहाँ पर योगेश्वर श्री हरि विराजमान रहा करते हैं । वहाँ पर देवाङ्गनाओं के साथ रह कर अतीव अद्भुत एवं भोगों का उपभोग करके एतदल्प के अवमान होने पर वह श्रेष्ठ नर पुनः इस मनुष्य लोक में आया करता है और योगियों के गृह में है विप्रो ! ज्ञान द्वारा ज्ञेय के प्राप्त करने के लिए अघत होने वाला होकर जन्म प्ररण किया करता है ॥६-७॥

संप्राप्य वैष्णवं योगं हरेः स्वच्छन्दतां व्रजेत् ।  
 कल्पवृक्षस्य रामस्य कृष्णस्य भद्रया सह ॥८॥  
 मार्कण्डेयेन्द्रद्युम्नस्य माहात्म्यं माधवस्य च ।  
 स्वर्गद्वारस्य माहात्म्यं सागरस्य विधिः क्रमात् ॥९॥  
 मार्जनस्य यथाकाले भागीरथ्याः समागमम् ।  
 सर्वमेतन्मया ख्यातं यत्परं श्रोतुमिच्छथ ॥१०॥  
 इन्द्रद्युम्नस्य माहात्म्यमेतच्च कथितं मया ।  
 सर्वाश्चर्यं समाख्यातं रहस्यं पुरुषोत्तमम् ॥  
 पुराणं परमं गुह्यं धन्यं संसारमोचनम् ॥११॥  
 नहि नस्तृप्तिरस्तोह शृण्वतां तीर्थं विस्तग्म् ।  
 पुनरेव पुरं गुह्यं वक्तुं महस्यशेषतः ॥  
 परं तीर्थस्य माहात्म्यं सर्वतीर्थोत्तमम् ॥१२॥  
 इममेव पुरा प्रश्नं पृष्टोऽस्मि द्विजसत्तमाः ।  
 नारदेन प्रवत्नेन तदा तं प्रोक्तवानहम् ॥१३॥  
 तपसो यज्ञदानानां तीर्थानां पावनं स्मृतम् ।  
 सर्वं श्रुतं मया त्वत्तो जगद्योने जगत्पते ॥१४॥  
 कियन्ति सन्ति तीर्थानि स्वर्गमर्त्यरसात्तले ।  
 सर्वेषामेव तीर्थानां सर्वदा किं विशिष्यते ॥१५॥

फिर वह यहाँ पर हरि के वैष्णव योग को प्राप्त करके परम स्वच्छन्दस्त को गमन किया करता है । मैंने कल्प वृक्ष का-सुभद्रा के साथ कृष्ण का मार्कण्डेयेन्द्रद्युम्न का-माधव का-तथा स्वर्ग द्वार का माहात्म्य तथा क्रम से सागर के मार्जन का विधान और यथा काल में भगवती भागीरथी का समागम-यह सभी वर्णित कर दिया है । अब इससे आगे आप लोग क्या ध्यान करने की अभिलाषा रखते हैं ? ॥८-१०॥ इन्द्र द्युम्न का यह माहात्म्य भी मैंने कह दिया है । मैंने सभी आश्चर्य कह दिये हैं और पुरुषोत्तम प्रभु का जो परम रहस्य है वह भी आप लोगों को बतला दिया है । यह पुराण परमाधिक गोपनीय है तथा अतीव धन्य है और संसार के भय के छुड़ा देने वाला है ॥११॥

मुनियो ने कहा—हे भगवन् ! यहाँ पर तीर्थों के विस्तार का जो वर्णन किया है उसका श्रवण करते हुए हमारी तृप्ति नहीं हो रही है। हमारी अब आगे यही आपसी सेवा में प्रार्थना है कि पुनः उस परम गोपनीय विषय का पूर्ण रूप से वर्णन करने के लिये आप योग्य हैं। समस्त तीर्थों में उत्तम से भी उत्तम तीर्थ का परम माहात्म्य कहिए ॥१२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजसत्तमो ! पहिले भी इसी प्रश्न को देवर्षि नारद ने मुझ से पूछा था सो मैंने पूर्ण प्रयत्न के साथ उसको बतलाया था ॥१३॥ श्री नारदजी ने कहा था—तप का-यज्ञ और तीर्थों का माहात्म्य मैंने हे जगत् के स्वामिन् ! और जगत् के कारण ! आप से सभी सुना है ॥१४॥ स्वर्ग में-रसातल में और मनुष्यलोक में कितने तीर्थ हैं ? उन सब तीर्थों में सर्वदा क्या विशेषता होती है ? ॥१५॥

चतुर्विधानि तीर्थानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले ।

दंधानि मुनिशार्दूल आसुराण्यारुपाणि च ॥१६॥

मानुषाणि त्रिलोकेषु विख्यातानि मुरादिभिः ।

मानुषेभ्यश्च तीर्थेभ्य आप तीर्थमनुत्तमम् ॥१७॥

आपेभ्यश्च तीर्थेभ्य आसुरं बहुपुण्यदम् ।

आसुरेभ्यस्तथा पुण्यं दैव तत्सावकामिकम् ॥१८॥

ब्रह्मविष्णु शिवश्चैव निर्मितं दैवमुच्यते ।

त्रिम्यो यदेक जायते तस्मान्नातः परं विदुः ॥१९॥

त्रयाणामपि लोकानां तीर्थं मेघ्यमुदाहृतम् ।

सत्रापि जाम्बव ह्येव तीर्थं बहुगुणोदयम् ॥२०॥

जाम्बवे भारत वर्षे तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।

कर्मभूमिर्यतः पुत्र तस्मात्तीर्थं तदुच्यते ॥२१॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—स्वर्ग-पाताल और मर्त्यलोक में चार प्रकार के तीर्थ होते हैं। हे मुनिशार्दूल ! मुरादि के द्वारा त्रिलोक में दैव-  
 \* मुर-आरुण और मानुष ये चार प्रकार परम विख्यात हैं। जो मानुष

तीर्थ है उनसे आर्पंतीर्थ अधिक उत्तम होते हैं ॥१६-१७॥ आर्पं तीर्थों से भी अधिक पुण्य प्रदान करने वाला असुर तीर्थ होता है । उसी भोति आसुर तीर्थों से अधिक पुण्यप्रद देव तीर्थ हुआ करता है जो कि सभी कामनाओं का देने वाला होता है ॥१८॥ जो तीर्थ ब्रह्मा-विष्णु और शिव के द्वारा निर्मित होता है वही देव तीर्थ कहा जाता है । यह तीर्थ जो तीनो देवों से समुत्पन्न होता है इसी कारण से सर्वोत्तम होता है और इससे उत्तम अन्य कोई भी नहीं हुआ करता है ॥१९॥ तीनो लोकों में तीर्थ को परम पवित्र कहा गया है । उसमें भी जम्बूद्वीप में होने वाला तीर्थ बहुत गुणों के उदय वाला होता है ॥२०॥ इस जम्बू द्वीप में भारतवर्ष तीर्थ त्रैलोक्य में विख्यात है । हे पुत्र ! यह भारत-वर्ष कर्मों के करने की भूमि है इसी कारण से यह तीर्थ कहा जाया करता है ॥२१॥

तत्रैव यानि तीर्थानि यान्युक्तानि मया तव ।  
हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये पण्ड्या देवसंभवाः ॥२२॥  
तथैव देवजा ब्रह्मन्द क्षिणाणवविन्ध्ययोः ।  
एता द्वादश नद्यस्तु प्राधान्येन प्रकीर्तिताः ॥२३॥  
अमिसपूजितं यस्माद्भारतं बहुपुण्यदम् ।  
कर्मभूमिरतो देवैर्वर्षं तस्मात्प्रकीर्तितम् ॥२४॥  
आर्पाणि चैव तीर्थानि देवजानि क्वचित्क्वचित् ।  
आसुरैरावृतान्यासस्तदेवाऽऽसुरमुच्यते ॥२५॥  
देवेष्वेव प्रदेशेषु तपस्तप्त्वा महर्षयः ।  
देवप्रभावात्तपसा आर्पाण्यपि च तान्यपि ॥२६॥  
आत्मनः श्रेयसे मुक्तये पूजायै भूतयेऽथवा ।  
आत्मनः फलभूत्यर्थं यशसोऽवाप्तये पुनः ॥२७॥  
मानुषैः कारितान्याहुर्मनुपाणीति नारद ।  
एव चतुर्विधो भेदस्तीर्थानां मुनिसत्तमाः ॥२८॥

इस भारत में जो जो भी तीर्थ होते हैं वे सब मैंने आपको बतला दिये हैं । हिमालय पर्वत और विन्ध्याचल इन दोनों के मध्य भाग में

छै सरिताएं ऐसी है जो देवों से ही समुत्पन्न हुई हैं ॥२२॥ उसी प्रकार से हे ब्रह्मन् ! दक्षिण सागर और विन्ध्याचल के मध्य में देवों से समुत्पन्न नदियाँ हैं । ये चारः नदियाँ प्रधान तथा बतलाई गयी हैं ॥२३॥ जिस कारण से बहुत पुष्प का प्रदान करने वाला यह भारत-धर्म अभिसंपूजित होता है । यह कर्मों के करने की भूमि है इसी कारण से देवों ने भी इसकी प्रशंसा का कीर्तन किया है ॥२४॥ आर्पण और दैव तीर्थ वही कदी पर ही है । जो आसुरों से आवृत्त हैं वे ही आरु र तीर्थ कहे जाते हैं ॥२५॥ दैव प्रदेशों में ही महर्षियों ने तपश्चर्या की है । दैव प्रभाव से और तप के प्रभाव से भी युक्त वे तीर्थ दैव और आर्पण दोनों ही हैं ॥२६॥ हे नारद ! आत्मा के ध्येय के लिये मुक्ति के लिये-पूजा के लिये अथवा भूति के लिये-आत्मा की फल मूर्ति के लिये तथा पुनः यश की प्राप्ति के लिये मानुषों के द्वारा जो कराये गये हैं वे मानुष तीर्थ हैं । हे मुनियो ! इस तरह से तीर्थों के चार भेद हैं ॥२७-२८॥

भेद न कश्चिज्जानाति श्रोतुं युक्तोऽसि नारद ।

बहवः पण्डितमन्याः ह्रण्वन्ति कथयन्ति च ॥

सुकृति कोऽपि जानाति वक्तुं श्रोतुं निजं गुणं ॥२९॥

तेषां स्वरूप भेदं च श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।

यच्छ त्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥३०॥

ब्रह्म-कृतयुगादी तु उपायोऽन्यो न विद्यते ।

तीर्थसेवा दिना स्वल्पायासेनाभीष्टदायिनीम् ॥३१॥

न त्वया सदृशो घातवन्क्ता जाताऽयवा क्वचित् ।

त्व नाभिकमले विष्णोः सजातोऽसिलपूर्वजः ॥३२॥

गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च वेणिका ।

तापी पयोष्णी विन्ध्यस्य दक्षिणे तु प्रकीर्तिताः ॥३३॥

भागीरथी नर्मदा तु यमुना च सरस्वती ।

विशोका च वितस्ता च हिमवत्पर्वताश्रिताः ॥३४॥

एता नद्यः पुण्यतमा देवतीर्यान्विदाहताः ।

गयः कोल्लासुरो वृत्रासुरपुरो ह्यन्धकस्तथा ॥ ३५

हयमूर्धा च लवणो नमुचिः शृङ्गकस्तथा ।

यमः पातालकेतुश्च यमः पुष्कर एव च ॥ ३६

इन तीर्थों के भेद को कोई भी नहीं जानता है हे नारद ! अतएव तुम श्रवण करने के योग्य हो । बहुत से भक्त आपको महा पण्डित मानने लगे श्रवण किया करते हैं और कहा करते हैं । कोई ही सुकृत करने वाला पुरुष ऐसा होता है जो निज के गुणों के द्वारा कहना और सुनना जाना करता है ॥३६॥ श्री नारदजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! उन समस्त तीर्थों के स्वरूप को एव भेद को मैं सात्त्विक रूप से श्रवण करने की अभिलाषा रखता हूँ । जिसका श्रवण करके मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाया करता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३७॥ हे ब्रह्मन् ! सत्य प्रणादि में अन्य कोई भी उपाय नहीं है । केवल तीर्थों की ही सेवा ऐसी है जो थोड़े से ही आयास से अभीष्टों के प्रदान कर देने वाली होती है ॥३८॥ हे धाता ! आपके समान अन्य कहीं पर भी इन विषयों का ज्ञाता तथा वक्ता कोई नहीं है । आप तो सभी से पूर्व में समुत्पन्न हुए हैं और साक्षात् भगवान् विष्णु के नाभि में स्थित कमल से ही आपकी उत्पत्ति हुई है ॥३९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—विन्ध्याचल पर्वत के दक्षिण में गोदावरी-भीमरथी-तुङ्ग-भद्रा-वेणिका-नापी-और पयोरुणी ये छह नदियाँ बतलाई गयी हैं ॥४०॥ हिमालय पर्वत में अश्रय लेने वाली छह सरिताओं में भागीरथी-नर्मदा-यमुना-सरस्वती और वितस्ता तथा विशोका हैं ॥४१॥ ये नदियाँ परम पुण्यतमा हैं और ये देव तीर्थ कही गयी हैं । गय, कोल्लासुर-वृत्र-त्रिपुर-अन्धक-हयमूर्धा-लवण-नमुचि-शृङ्गक-यम-पाताल केतु-य और पुष्कर ये असुरों के नाम हैं ॥४२-४६॥

एतैरावृततीर्थानि आसुराणि शुभानि च ।

प्रभासो भार्गवोऽगस्तिर्नरनारायणौ तथा ॥ ४७

धमिष्ठश्च भरद्वाजो गौतमः कश्यपो मनुः ।  
 इत्यादिमुनिजुष्टानि ऋषितीर्थानि नारद ॥ ८  
 अम्बरीषो हरिश्चन्द्रो माधाता मनुरेव च ।  
 कुरु कनखलश्चैव भद्राश्वः सगरस्तथा ॥ १८  
 अश्वमूपो नाचिकेता वृषाकपिररिदमः ।  
 इत्यादिमानुषं विप्र निर्मितानि शुभानि च ॥ ४०  
 यशसः फलमूत्यर्थं निमित्तानोह नारद ।  
 स्वतोद्भूतानि दैव नि यत्र कापि जगन्मये ॥  
 पुण्यतीर्थानि तान्याहुस्तीर्थभेदां मयोदितः ॥ ४१

इन उपर्युक्त असुरो से समाकूल एवं परम शुभ आसुर तीर्थ कहे जाते हैं । प्रभास-भागव-अगस्ति-नर-नारायण-वसिष्ठ-भरद्वाज-गौतम-कश्यप-मनु कुरु-कनखल-भद्राश्व-सागर-अश्वमूप-नाचिकेता वृषाकपि-अग्नि-न्दय-इत्यादि मानुषो के द्वारा निर्मित शुभ तीर्थ हैं ॥ ३७-४० ॥ हे नारद ! ये यहाँ पर यश की फल भूति के लिये ही निमित्त तीर्थ हैं जो परम शुभ हैं । स्वतः ही उत्पन्न दैव तीर्थ तीनो लोकों में जहाँ कहीं पर ही होते हैं ये सब पुण्य तीर्थ हैं जो कहे जाते हैं । इस प्रकार से तीर्थों का भेद मैंने बतला दिया है ॥ ४१ ॥

—:❦:—

### ३४—गंगाजी के दो रूप कथन

कमण्डलुस्थिता देवी महेश्वरजटागता ।  
 श्रुता देव यथा मर्त्यमागता तद्वद्वोतु मे ॥ १  
 महेश्वरजटास्या या आपो देव्यो महामते ।  
 सासा च द्विविधो भेद आहृतुं द्वयकारणात् ॥ २  
 एकाशो ब्राह्मणेनात्र व्रतदानसमाधिना ।  
 गौतमेन शिव पूज्य आहृतो लोकविश्रुतः ॥ ३



अपरस्तु महाप्राज्ञ क्षत्रियेण वलीयसा ।  
 आराध्य शंकरं देवं तपोगिनियमैस्तथा ॥४॥  
 भगीरथेन भूपेन आहृतोऽशोऽपरस्तथा ।  
 एव द्वैरूप्यमभवद्गङ्गाया मुनिसत्तम ॥५॥  
 महेश्वरजटास्था या हेतुना केन गौतमः ।  
 आहर्ता क्षत्रियेणापि आहृता केन तद्वद ॥६॥  
 यथाऽऽनीता पुरा वत्स ब्राह्मणेनेतरेण वा ।  
 तत्सर्वं विस्तरेणाहं वदिष्ये प्रीतये तव ॥७॥

श्री नारद जी ने कहा—कमण्डलु में स्थित रहने वाली देवी (गङ्गा)  
 फिर महेश्वर की मस्तक की जटा में प्राण हुई थी । हे देव ! जिस तरह  
 से वह इस मनुष्य लोक में समागत हुई थी यह ध्वनि किया है अब आप  
 उसी को पूर्ण रूप से बतलाइये ॥१॥ श्री परमेश्वरी ब्रह्माजी ने कहा—  
 भगवान् महेश्वर देव की जटाओं में स्थित रहने वाली जो जल स्वरूपा  
 हे विपार्यी हे महामते ! आहर्ता के दो कारणों से उनके भी दो भेद हैं  
 ॥२॥ उसका एक भाग धर्म और दान की समाधि वाले गौतम ब्राह्मण  
 के द्वारा यहाँ पर भगवान् शिव की पूजा करके लाया गया है । हे महा-  
 मति वाले ! यह लोक में विद्युत है ॥३॥ हे महती प्रज्ञा वाले ! दूसरा  
 अश जो उस गङ्गा देवी का था वह महान् वसवान् क्षत्रिय राजा के  
 द्वारा परम दुष्कर तपश्चर्या और नियमों के द्वारा देव शङ्कर की आरा-  
 धना करके लाया गया था ॥४॥ इस प्रकार से भूप भगीरथ के द्वारा  
 दूसरा भाग यहाँ पर समाहित हुआ था । हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार से  
 गङ्गा देवी के दो स्वरूप हुए थे ॥५॥ देवर्षि श्री नारद जी ने कहा था—  
 महेश्वर की जटा में स्थित जो गङ्गा देवी थी उसका आहरण करने वाला  
 गौतम किस कारण से हुए थे । तथा क्षत्रिय के द्वारा भी किस कारण से  
 वह कहीं पर लाई गयी थी यह मुझे बतलाइये ॥६॥ श्री ब्रह्माजी ने  
 कहा—हे वत्स ! जिस रीति से पहिले समय में एक ब्राह्मण के द्वारा  
 तथा दूसरे क्षत्रिय के द्वारा वह यहाँ लायी गयी थी उस सम्पूर्ण इतिहास  
 को मैं केवल तुम्हारे ऊपर प्रीति होने के कारण बतलाता हूँ ॥७॥

यस्मिन्काले सुरेशस्य उमा पत्न्यभवत्प्रिया ।  
 तस्मिन्नेवाभवद्गङ्गा प्रिया शभोर्महामते ॥८॥  
 मम दोषापनोदाय चिन्तयानः शिवस्तदा ।  
 उमया सहितः श्रीमान्देवी प्रेक्ष्ये विशेषतः ॥९॥  
 रसवृत्तौ स्थितो यस्मान्निर्ममे रसमुत्तमम् ।  
 रसिकत्वात्प्रियत्वाच्च स्त्र्येणत्वात्पादनत्वतः ॥१०॥  
 सर्वाभ्यो ह्यधिकप्रीतिर्गङ्गाऽभूद्विजसत्तम ।  
 तामेव चिन्तयानोऽसौ सर्वदाऽऽस्ते महेश्वरः ॥११॥  
 संबोद्भूता जटामार्गात्किंस्मिंश्चित्कारणान्तरे ।  
 स तु सगोपयामास गङ्गा शभुर्जटागताम् ॥१२॥  
 शिरसा च धृता ज्ञात्वा न शशाक उमा तदा ।  
 सोढुं ब्रह्मज्जटाजूटे स्थिता दृष्ट्वा पुनः पुनः ॥१३॥  
 अमर्षेण भव गौरी प्रेमयस्वेत्यभाषत ।  
 नैवासी प्रैरयच्छभू रसिको रसमुत्तमम् ॥१४॥

जिस समय में सुरेश की उमादेवी परम प्रिया पत्नी हुई थी और उसी समय में हे महामते । भगवान् शम्भु की प्रिया गङ्गा देवी हुई थी ॥८॥ उस समय में मेरे दोषों के अपनयन करने के लिये भगवान् शिव चिन्ता करने वाले उस समय में थे । उमा सहित श्रीमान् भगवान् शम्भु देवी की विशेष रूप से देखते थे । ॥९॥ रस की वृत्ति में स्थित वे स्थित थे इस कारण से उन्होंने उत्तम रस का निर्माण किया था । रसिक होने से-प्रिय होने से-स्त्र्येण होने से और पावन होने से ही उन्होंने ऐसा किया था ॥१०॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! सभी से अधिक प्रीति वाली गङ्गा हो गयी थी । यह महेश्वर देव सर्वदा उसी गङ्गा का चिन्तन करने वाले रहा करते थे ॥११॥ किसी अन्य कारण से यही गङ्गा देवी जटाओं के मार्ग से समुद्रग्न हो गयी थी और वे भगवान् शम्भु अपनी जटाओं में स्थित गङ्गा को छिपा रहे थे ॥१२॥ क्योंकि उस समय में गङ्गा देवी शिर के द्वारा जटा में स्थित थी और कारण की हुई थी इसलिये उमादेवी जान

न सकी थी । हे ग्रहण ! बारम्बार जटाजूट में स्थित गंगा को देखकर गौरी उसको सहन नहीं कर सकी थी और गौरी देवी अमर्ष से भगवान् भव ( शिव ) से यही कहा था कि उसको प्रकट कर प्रेम करिये । किन्तु भगवान् शम्भु परम रसिक थे और उस उत्तम रस को उन्होंने प्रकट नहीं किया था ॥१३-१४॥

जटास्वेव तदा देवी गोपायन्त विमृश्य सा ।

विनायक जयां स्कन्दं रहो वचनमब्रवीत् ॥१५

नंवाय त्रिदेशेशानो गङ्गा त्यजति कामुकः ।

साऽपि प्रिया शिवस्याद्य कथं त्यजति ता प्रियाम् ॥१६

एव विमृश्य बहुशो गौरी चाऽऽह विनायकम् ॥१७

न देवर्नासुरैर्यक्षैर्न सिद्धैर्भवताऽपि च ।

न राजभिरथान्यैर्वा न गङ्गा त्यजति प्रभुः ॥१८

पुनस्तपस्यामि वा गत्वा हिमवन्त नगोत्तमम् ।

अथवा ब्राह्मणोः पुण्यैस्तपोभिर्हृतकल्मषैः ॥१९

तैर्वा जटास्थिता गङ्गा प्रार्थिता भुवमाप्नुयात् ॥२०

एमच्छ्रुत्वा मातृवाक्य मातर प्राह विघ्नराट् ।

भ्रात्रा स्कन्देन जयया समन्त्र्येह च युज्यते ॥२१

उस समय में गौरी देवी ने जटाओं में ही गंगा देवी को छिपा कर सुरजित रखने वाले शम्भु को विचार कर उमा देवी ने एकान्त में विनायक-जया और स्कन्द से यह वचन कहा था ॥१५॥ यह देवी के अधीश्वर कामुक होने के कारण गंगा का त्याग नहीं करते हैं । आज वह भी शिव की प्रिया है । उस प्रिया को कैसे त्याग करें । इस प्रकार से बहुत अधिक विचार करके गौरी देवी विनायक से बोली—॥१६-१७॥ पार्वती जी ने कहा—देवी के द्वारा-अमुर-यक्ष-सिद्ध अन्य राजा तथा आपके द्वारा भी प्रभु गंगा का त्याग नहीं करते हैं ॥१८॥ अतएव मैं फिर पर्वतो में उत्तम हिमवान् में जाकर तपस्या करूँगी । अथवा परम पुण्यमय तपस्वी और निष्पाप ब्राह्मणों के द्वारा जटाजूट में स्थित गंगा से प्रार्थना की जावे कि वह भूलोक में प्राप्त हो जावे ॥१९-२०॥ श्री ब्रह्माजी

ने कहा—अपनी माता के इस-वाक्य को सुनकर विष्णुओं के राजा :  
गणेश जी ने अपने भाई स्कन्द और जया के साथ-मलोर्भाति मन्त्रणा  
करके फिर अपनी माता उमादेवी से कहा कि यहाँ पर यह युक्त हो  
सकता है ॥२॥

तत्कुर्मो मस्तकाद्गङ्गा यथा त्यजति मे पिता ।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मभ्रनावृष्टिर जायत ॥२२॥

द्विर्द्वादश समा मर्त्ये सर्वपाणिभयावहा ।

ततो विनष्टमभवज्जगत्स्थागरजङ्गमम् ॥२३॥

विना तु गौतमं पुण्यमाश्रमं सर्वकामदम् ।

स्रष्टुकामः पूरा पुत्र स्थावरं जङ्गमं तथा ॥२४॥

कृतो यज्ञो मया पूर्वं स देवयजनो गिरिः ।

मन्नामा तत्र विख्यातस्ततो ब्रह्मगिरिः सदा ॥२५॥

तमाश्रित्य नगश्रेष्ठं सर्वदाऽऽस्ते स गौतमः ।

तस्याऽऽश्रमे ममापुण्ये श्रेष्ठे ब्रह्मगिरौ शुभे ॥२६॥

आघयो व्याधो वाऽपि दुर्भिक्षं वाऽप्यवर्षणम् ।

भयशोकौ न दारिद्र्यं न श्रूयन्ते कदाचन ॥२७॥

तदाश्रमं विनाऽन्यत्र हव्यं वा कव्यमेव वा ।

नास्ति पुत्र तथा दाता दोता यष्टा तथैव च ॥२८॥

हम वही कार्य करते हैं जिस प्रकार से पिताजी अपने मस्तक से  
गंगा का त्याग कर देंगे । इसी बीच में हे ब्रह्मन् ! अनावृष्टि हो गयी थी-  
॥२२॥ वह अनावृष्टि भी भर्त्यलोक में चौबीस वर्ष तक रही थी जो कि  
समस्त प्राणियों के लिये बहुत ही अधिक भय देने वाली थी । इसके  
पश्चात् चराचर सम्पूर्ण जगत् विनष्ट हो गया था ॥२३॥ सब मनोरथों  
को देने वाले पुण्य आश्रम गौतम के बिना हे पुत्र ! पहिले स्थावर जगम  
की सृष्टि करने की इच्छा वाले मैंने पूषं में यज्ञ किया था । वह देव यजन  
गिरि है । वहाँ पर वह मेरे नाम से ही विख्यात हो गया था और सदा  
ब्रह्मगिरि कहा जाता है ॥२४-२५॥ उस श्रेष्ठ पर्वत का आश्रम ग्रहण

करके, गौतम सर्वदा रहा करते हैं। उसके आश्रम में जो महान् पुण्यमय श्रेष्ठ है और शुभ ब्रह्मगिरि में स्थित है ? उसकी ऐसी महिमा है कि वहाँ पर कोई भी आघियाँ ( मानसिक व्यथाएँ ) व्याघियाँ-दुर्मिष और अवृष्टि-भय-शोक तथा दरिद्रता कभी भी नहीं सुनी जाया करती हैं ॥२६-॥२७॥ हे पुत्र ! उस आश्रम के बिना अन्य किसी भी स्थान में हव्य-कव्य का दाता, होता और यष्टा नहीं है ॥२८॥

यदैव गौतमो विप्रो ददाति च जुहोति च ।  
तदंवाप्ययन स्वर्गे सुराणामपि नान्यतः ॥२९॥  
देवलोकेऽपि मर्त्ये वा श्रूयते गौतमो मुनिः ।  
होता दाता च भोक्ता च स एवेति जनाः विदुः । ३०॥  
तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे नानाश्रमनिवासिनः ।  
गौतमाश्रममापृच्छन्नागच्छन्तस्तपोवनाः ॥३१॥  
तेषां मुनीनां सर्वेषां मागतानां स गौतमः ।  
शिष्यवत्पुत्रवद्भवत्या पितृवत्पोषकोऽभवत् ॥३२॥  
यस्य (तेषां) यथेप्सितं कामं यथा योग्यं यथाक्रमम् ।  
यथानुरूपं सर्वेषां शुश्रूषामकरोन्मुनिः ॥३३॥  
आज्ञया गौतमस्याऽऽसन्नोपध्या लोकात्तरः ।  
आराधिताः पुनस्तेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥३४॥  
जायन्ते च तदोपध्या लूयन्ते च तदैव हि ।  
संपत्स्यन्ते तंदोष्यन्ते गौतमस्य तपोवलात् ॥३५॥

जिस समय में विप्र गौतम देता है और हवन किया करता है सभी स्वर्ग में सुरों की तृप्ति हुआ करती है अन्य से नहीं होती है ॥२९॥ देव लोक में अथवा मर्त्यलोक में गौतम मुनि का नाम सुना जाता है। मनुष्य यह जानते हैं कि वह ही मुनि होता-दाता और भोक्ता है ॥३०॥ यह श्रवण करके अनेक आश्रमों में निवास करने वाले मुनिगण सभी गौतम के आश्रम को पूछते थे और तपोवन मुनिगण सब ओर से वहाँ पर आ रहे थे ॥३१॥ वह गौतम ऋषि उन समागत समस्त मुनियों का भक्ति-

भाव से शिष्यवत् और पुत्रवत् तथा पिता की भाँति पोषक हो गये थे ॥३२॥ जिसका जो भी जिस प्रकार का काम था उसको यथोचित रूप से यथा क्रम स्वरूप के अनुरूप समझकर उस मुनि ने सबकी सेवा शुश्रूषा की थी ॥३३॥ उस समय में गौतम मुनि की आज्ञा से लोक की माताएँ ओषधियाँ हुई थीं । इसके अनन्तर उन्होंने ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर की महेश्वर की आराधना की थी ॥३४॥ उस समय में ओषधियाँ उत्पन्न होती थी और उषी समय में छिन्न की जाती थी । गौतम के तपोबल से सब उगती थी और सम्पन्न होती थी ॥३५॥

सर्वाः समृद्धयस्तस्य ससिध्यन्ते मनोगताः ।

प्रत्यहं वक्ति विनयाद्गौतमस्त्वागतान्मुनीन् ॥३६॥

पुत्रवच्छिष्यवच्चैव प्रेक्ष्यवत्करवाणि किम् ।

पितृवत्पोषयामास सबत्सरगणान्वहून् ॥३७॥

एव यस्तसु मुनिषु त्रैलोक्ये ख्यातिराश्रयात् ।

ततो विनायकः प्राहमातर आतर जयाम् ॥३८॥

देवानां सदनं मातर्गम्यते गौतमो द्विजः ।

यत्र साध्य सुरगणंगौतमः कृतवानिति ॥३९॥

एव श्रुतं मया देवि ब्राह्मणस्य तपोबलम् ।

स विप्रश्चालयेदेना मातर्गङ्गां जटागताम् ॥४०॥

तपसा वाऽन्यतो वाऽपि पूजयित्वा त्रिलोचनम् ।

स एव च्चावयेदेना जटास्या मे पितृप्रियाम् ॥४१॥

तत्र नीतिविधातव्या सा विप्रो याचयेद्यथा ।

तत्प्रभावात्सरिच्छेष्टा शिरसोऽवतरत्यपि ॥४२॥

उसके मन में रहने वाली सभी समृद्धियाँ संसिद्ध होती थीं । जो मुनियण वहाँ पर समागत हुए थे उनसे गौतम मुनि विनय पूर्वक प्रतिदिन निवेदन किया करते थे ॥३६॥ पुत्र की भाँति-शिष्य के सदृश और प्रेक्ष्य ( दूत ) के समान मैं आपकी क्या सेवा करूँ । इस प्रकार से गौतम मुनि ने बहुत से वर्षों तक उन सबका पिता के समान पूर्णतया पोषण किया था ॥३७॥ इस तरह से वहाँ पर उन मुनियों के निवास करने पर

उस आश्रय से तीनों लोको में ख्याति हो गयी थी । इसके अनन्तर विनायक ने अपनी माता से, भाई से और जया से कहा था ॥३८॥ विनायक ने कहा—हे माताजी ! देवो के भी सदन मे गौतम द्वित्र की प्रशंसा का गान किया जाता है कि जो सुरगणों के द्वारा भी साध्य नहीं है वह गौतम ने कर दिया है ॥३९॥ हे देवि ! मैंने ब्राह्मण का इस प्रकार का तपोव्रत सुना है । हे माताजी ! वह विप्र इस जटाओं में सम-वस्थित गङ्गा को वहाँ से चला देगा ॥४०॥ तप से अथवा किसी अन्य साधन से भगवान् त्रिलोचन का पूजन करके वही मेरे पिताजी की प्रिया इस गङ्गा को जो कि जटाओं मे स्थित है च्यावित कर देगा अर्थात् वहाँ अलग कर देगा ॥४१॥ उस विषय में कुछ नीति ( व्यावहारिक चाल ) करनी चाहिए जिससे उस गङ्गा से यह विप्र याचना करे और उसके प्रभाव से वह सरिताओं मे श्रेष्ठ गंगा पिताजी के शिर से नीचे उतर भी जायगी ॥४२॥

इत्युक्त्वा मातरं भ्रात्रा जयया सहः विघ्नराट् ।

जगाम गौतमो यत्र ब्रह्मसूत्रधरः कृशः ॥४३॥

वसन्कतिपयाहःसु गौतमाश्रममण्डले ।

उवाच ब्राह्मणान्सर्वास्तत्र तत्र च विघ्नराट् ॥४४॥

गच्छामः स्वमघिष्ठानमाश्रमाणि शुचीनि च ।

पुष्टाः स्म गौतमान्नेन पृच्छामो गौतमं मुनिम् ॥४५॥

इति समन्वय पृच्छन्ति मुनयो मुनिसत्तमाः ।

स तान्निवारयामास स्नेहबुद्ध्या मुनीन्पृथक् ॥४६॥

कृताञ्जलिः सविनयमासाध्वमिह चैव हि ।

युष्मच्चरणशुश्रूषां करोमि मुनिपुंगवाः ॥४७॥

शुश्रूषो पुत्रवन्नित्यं मयि तिष्ठति नोचितम् ।

भवता भूमिदेवानामाश्रमान्तरसेवनम् ॥४८॥

इदमेवाऽऽश्रमं पुण्यं सर्वेषामिति मे मतिः ।

अलमन्येन मुनय आश्रमेण गतेन वा ॥४९॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन विष्णो के राजा श्री गणेश जी ने अपनी माताजी उमादेवी से इस प्रकार से कहकर फिर वह अपने भाई स्कन्द और जया के साथ, वहाँ पर गये थे जहाँ पर ब्रह्मसूत्र को धारण करने वाले तपस्वी गौतम थे ॥४३॥ उस गौतम ऋषि के आश्रम में कुछ दिन पर्यन्त निवास करके वहाँ-वहाँ पर विष्णुराट् ने सभी ब्राह्मणों से कहा था ॥४४॥ अब हम अपने परम पवित्र आश्रमों को गमन करते हैं और ये भी आश्रम पवित्र हैं तथा गौतम के अश्रु से अत्यधिक पुष्ट हो गये हैं । अब हम गौतम मुनि से पूछकर गमन की आज्ञा प्राप्त करते हैं ॥४५॥ इस तरह से मन्त्रणा करके मुनियों में श्रेष्ठ मुनियों ने गौतम से पूछा था ॥४६॥ गौतम मुनि ने कहा—मैं हाथ जोड़ने वाला हूँ और विनय पूर्वक निवेदन करता हूँ कि यह आपका यहाँ से गमन करना अनुचित है । हे मुनिश्रेष्ठो ! मैं आप लोगों के चरणों की सेवा करता हूँ ॥४७॥ एक पुत्र की भौति सेवा करने की इच्छा वाले मेरे विद्यमान रहते हुए यह उचित नहीं है कि भूमिदेव आप सब मेरे इस आश्रम का त्याग कर किसी अन्य आश्रम में जाकर आश्रय ग्रहण करें ॥४८॥ मेरा ऐसा विचार है कि आप सब लोगों के लिये यही आश्रम परम पुण्यमय है । अतएव हे मुनिगणो ! अन्य आश्रम को यहाँ से आपको गमन नहीं करना चाहिए ॥४९॥

इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं विघ्नकृत्यमनुस्मरन् ।

उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा ब्राह्मणान्स्रगणाधिपः ॥५०॥

अघ्नक्रीता वयं किं नो निवारयत गौतमः ।

साम्ना नैव शक्ता गन्तुं स्व स्व निवेशनम् ॥५१॥

नायमर्हति दण्ड वा उपकासी द्विजोत्तमः ।

तस्माद्बुद्ध्या व्यवस्यामि तत्सर्वैरनुमन्यताम् ॥५२॥

ततः सर्वे द्विजश्रेष्ठाः क्रियतामित्यनुब्रूयन् ।

एतस्य तूपकाराय लोकानां हितकाम्यया ॥५३॥

ब्राह्मणानां च सर्वेषां श्रेयो यत्स्यात्तथा कुरु ।

ब्राह्मणानां वचः श्रुत्वा मेने वाक्यं गणाधिपः ॥५४॥



क्रियते गुणरूपं यद्गौतमस्य विशेषतः ॥१५॥  
 अनुमान्य द्विजान्सर्वान्पुनः पुनरुदारधीः ।  
 स्वयं च ब्राह्मणो भूत्वा प्रणम्य ब्राह्मणान्पुनः ॥  
 मातुर्मते स्थितो विद्वाञ्छयां प्राह गरुश्वरः ॥१६॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस वचन का श्रवण कर जो कि गौतम मुनि ने कहा था और विघ्न के कृत्य को स्मरण करते हुए गणाधिप ने हाथ जोड़ कर उन ब्राह्मणों से कहा था—॥१५॥ हम लोग अन्न के क्रय करने वाले है । यह गौतम क्यों हम लोगों को निवारित करत हैं । हम साम के द्वारा ही अपने २ आश्रम को गमन करने में समर्थ नहीं हैं ॥१६॥ यह परम उपकार करने वाले परम श्रेष्ठ द्विज गौतम दण्ड के योग्य नहीं है अतएव मैं अपनी बुद्धि से ऐसा निश्चय करता हूँ अतएव आप सबको अनुमति दे देनी चाहिए ॥१७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर सभी द्विजश्रेष्ठों ने 'करिए'—यह कहा क्योंकि लोको के हित की कामना से यह इसके उपकार के लिये ही होगा ॥१८॥ जिस प्रकार से समस्त ब्राह्मणों का कल्याण होवे वैसा ही करिये । ब्राह्मणों के इस वचन का श्रवण करके गणाधिप ने इस वाक्य को मान लिया था ॥१९॥ विनायक ने कहा—गुणों के अनुरूप ही और विशेष रूप से गौतम के अनुरूप ही किया जाता है ॥२०॥ इस तरह से चारम्बार समस्त द्विजों की अनुमति ग्रहण करके उदार बुद्धि वाले गरुश्वर ने स्वयं ब्राह्मण बनकर तथा समस्त ब्राह्मणों को प्रणाम करके अपनी माताजी के मत में स्थित होकर विद्वाद् गणेश जी ने जया से कहा था ॥२१॥

यथानान्यो विजानीते तथा कुरु शुभानने ।  
 गोरूपधारिणी गच्छ गौतमो यत्र तिष्ठति ॥२२॥  
 शालीन्खाद विनाश्याय विकारं कुरु भामिनि ।  
 कृते प्रहारे हुंकारे प्रेक्षिते चापि किञ्चन ॥  
 पत दीनं कृत्वा न स्वनं म्रियस्व न जीव च ॥२३॥

तथा चकार विजया विघ्नेश्वरमते स्थिता ।

यन्नाऽऽसीद्गौतमो विप्रो जया गोरूपधारिणी ॥५६॥

जगाम शालीन्खादन्तो तां ददर्श स गौतमः ।

गां दृष्ट्वा विकृतां विप्रस्तां तृणेन न्यवारयत् ॥५७॥

निवार्यमाणा सा तेन स्वनं कृत्वा पपात गोः ।

तस्यां तु पतितायां च हाहाकारो महानभूत् ॥५८॥

स्वन श्रुत्वा च दृष्ट्वा च गौतमस्य विचेष्टितम् ।

व्यथिता ब्राह्मणाः प्राहुर्विघ्नराजपुरस्कृताः ॥५९॥

विनायक ने कहा—हे शुभ मुख वाली ! जिस तरह से अन्य कोई भी न जान सके बैसा हो करो । जिस स्थान पर गौतम विद्यमान हैं वहाँ पर तुम गो रूप के धारण करने वाली होकर गमन करो ॥५७॥ इसके अनन्तर हे भामिनि ! तुम शालियों को खाओ और विनाश करके विकार उत्पन्न करो । कुछ भी प्रहार-हृद्धार और देसने पर तुम वही पर दीनता से पूर्ण ध्वनि करके गिर जाना और ऐसी अपनी अवस्था बना लेना कि न तो मरण हो हो और न जीवित रहो ॥५८॥ ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् विघ्नेश्वर के मत में स्थित रहने वाली विजया ने उसी भाँति से यह सभी कुछ किया था । जहाँ पर विप्र गौतम रहा करते थे वहीं पर विजया ने गमन किया था और शालियों को खाती हुई उस गो का स्वरूप धारण करने वाली उसको गौतम ने देखा था । उस विकृत रूप वाली गो को देखकर उस विप्र गौतम ने उसको तृण से निवारित किया था ॥५९-६०॥ उसके द्वारा निवारित होती हुई उस गो के रूप धारण करने वाली ने वहीं पर ध्वनि करके पतन किया था अर्थात् वह गिर पड़ी थी । उस समय पर उसके मूर्छित भी होकर गिर जाने पर महाद् हाहाकार हो गया था ॥६१॥ उस गो की उस ध्वनि का श्रवण कर तथा गौतम के उस विशेष रूप को देखकर विघ्नेश्वर को अपने आगे करते हुए सब ब्राह्मण बहुत ही अधिक व्यथित हुए और बोले—॥६२॥

इतो गन्धामहे सर्वे न स्यात्तव्यं तवाऽऽश्रमे ।

पुत्रवत्पोषिताः सर्वे पृष्टोऽसि मुनिषु गव ॥६३॥

इति श्रुत्वा मुनिर्वक्त्रं विप्राणां गच्छतां तदा ।  
 वच्चाहत इषाऽऽसोत्स विप्राणां पुरतोऽपतत् ॥६४॥  
 तमूचुर्ब्राह्मणाः सर्वे पश्येमां पतितां भुवि ।  
 रुद्राणां मातरं देवीं जगतां पावनी प्रियाम् ॥६५॥  
 तीर्थदेवस्वरूपिण्यामस्यां गवि विधेर्वलात् ।  
 पतितायां मुनिश्रेष्ठ गन्तव्यमवशिष्यते ॥६६॥  
 चीर्णं व्रतं क्षयं याति यथा वासस्त्वदाश्रमे ।  
 वयं नान्यधना ब्रह्मन्केवल तु तपोधनाः ॥६७॥  
 विप्राणां पुरतः स्थित्वा विनीतः प्राह गौतमः ॥६८॥  
 भवन्त एव शरण्य पूतं मा कर्तुमर्हथ ॥६९॥  
 ततः प्रोवाच भगवान्विघ्नराड्ब्राह्मणंवृतः ॥७०॥  
 नैवेयं म्रियते तत्र नैव जीवति तत्र किम् ।  
 वदामोऽस्मिन्सुसदिग्धे निष्कृति गतिमेव वा ॥७१॥

ब्राह्मणों ने कहा—हे मुनियो मे श्रेष्ठ ! अब हम सब यहाँ से जाना चाहते हैं और आपके इस आश्रम में हमको नहीं ठहरना चाहिए । अपने एक पुत्र की भाँति ही हम सबको पोषित किया है अतएव हम आपसे पूछते हैं ॥६३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—जस अवसर पर उस गौतम मुनि ने जब गमन करते हुए मुनियो का यह वचन सुना था तो वह वचन से आहत हुए के समान ही अत्यन्त दुःखित होकर उन सबके आगे गिर गया था ॥६४॥ उस समय में सभी ब्राह्मण उस मुनि से बोले—इस रुद्रो की माता देवी और जगत्तो को पवित्र करने वाली प्रिया को भूमि में पतित हुई देखो ॥६५॥ तीर्थ और देश स्वरूप वाली इस गौ के विधि बल से गिर जाने पर हे मुनिश्रेष्ठ ! अब तो हमारा गमन ही करना अवशेष रहा जाता है क्योंकि यहाँ रहना ठीक नहीं है ॥६६॥ हम लोगों ने जो कुछ भी व्रत चीर्ण किया है वह सभी क्षीणता को प्राप्त हो जाता है जब कि आपके इस आश्रम में निवास करते हैं । हे ब्रह्मन् ! हम लोगों के समीप में अन्य तो कोई धन का धर्मव है ही नहीं—हम तो केवल अपना सन्चित किये हुए तप के ही धर्मव वाले हैं ॥६७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—

उन उनमें से उन सनस्त दिशों के जाने परन विनयान्वित होकर गौतम ने प्रार्थना पूर्वक कहा था ॥६८॥ गौतम ने कहा—जब बार सोन ही मेरे रसक हैं और बार मुझको पक्षि करने के योग्य होते हैं ॥६९॥ ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर जब कि गौतम ने ऐसी प्रार्थना की थी तो ब्राह्मणों से आवृत्त ब्राह्मण स्वधारी विष्णुराज ने कहा था—॥७०॥ श्री भगवान् विष्णुराज बोले—यह गौ न तो मर रही है और न जीवित ही हो रही है तो इस प्रकार के सम्यक् से मुक्त इस विषय में हम सोन क्या इनकी निष्कृति और गति इससे क्या ऐसी दशा में इसका कोई भी प्रायश्चित्त नहीं बताया जा सकता है ॥७१॥

कथमुत्थास्यतीयं गौरय चास्मिन्न निष्कृतिम् ।

वक्तुमर्ह्य तत्त्वं करिष्येऽहमनंशयम् ॥७२॥

सर्वेषां च मतेनाय वदिष्यति च बुद्धिमान् ।

एतद्वाक्यमथास्माक प्रमाणं तव गौतम ॥७३॥

ब्राह्मणैः प्रेर्यमाणोऽसौ गौतमेन बलीयसा ।

विष्णुकृद्ब्रह्मवगुपा प्राह सर्वानिदं वचः ॥७४॥

सर्वेषां च मतेनाहं वदिष्यामि यथायं वत् ।

अनुमन्यन्तु मुनयो मद्वाक्यं गौतमोऽपि च ॥७५॥

महेश्वरजटाजूटे ब्रह्मणोऽप्युक्तजन्मनः ।

कमण्डलुन्यितं वारि तिष्ठतीति हि शुश्रुम ॥७६॥

तदानयस्व तरसा तपसा नियमेन च ।

तेनामिपिश्च गामेता भगवन्भुवमाश्रिताम् ॥

ततो वत्स्यानहे सर्वे पूर्ववत्तत्र वेदनानि ॥७७॥

गौतम मुनि ने कहा—जब यह गौ किस प्रकार से उठ कर गड़ी होगी और जो कुछ भी बन पड़ा है उसका क्या प्रायश्चित्त होगा—इस सब की आप सोच बैठताइये—मैं निश्चय ही यह सभी बतलाऊंगा ॥७२॥ ब्राह्मणों ने कहा—हे गौतम ! हम सबकी राय से यह ब्राह्मण इस विषय में बतलायेंगे क्योंकि यह बहुत ही पक्षि बुद्धिमान् है। इनका वचन हम सबकी प्रमाण स्वस्व ही होता है और आपकी भी होना

चाहिए । इस प्रकार का सकेत विप्र रूपधारी विघ्नराज की ओर उस समय में सब ने किया था ॥७३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय में समस्त ब्राह्मणों के द्वारा तथा बलीमान् गौतम के द्वारा जब बंधुते ही अधिक प्रेरित किया गया था तो वह ब्राह्मण वेपधारी विघ्नराज सब से यह वचन बोले थे ॥७४॥ विघ्नराज ने कहा—आप सबकी सलाह से ही मैं बिल्कुल यथार्थ बात बतलाता हूँ । आप सब मुनिगण और यह गौतम भी मेरे वचन को मान लें ॥७५॥ महेश्वर प्रभु के जटा-जूट में अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्माजी के कमण्डलु में जो स्थित था वह इस समय में स्थित है—ऐसा सुनते हैं ॥७६॥ उस जल को बड़ी शीघ्रता से तपोबल से और नियत से लाइये । उस जल से इस गौ का अभिषिञ्चन करो जो कि है भगवन् ! इस समय में भूमि में एक भूछित दशा में पड़ी हुई है । तभी हम सब भी पूर्व के ही समान आपके इस आश्रम में निवास करेंगे अन्यथा नहीं रहेंगे ॥७७॥

इत्युक्तवति विप्रेन्द्रे ब्राह्मणानां च संसदि ।

तत्रापतत्पुष्पवृष्टिर्जयशब्दो व्यवर्धत ॥

ततः कृताञ्जलिर्नम्रो गौतमो वाक्यमब्रवीत् ॥७८॥

तपसाऽग्निप्रसादेन देवब्रह्मप्रसादितः ।

भवतां च प्रसादेन मत्संकल्पोऽनुसिध्यताम् ॥७९॥

एवमस्त्विति त विप्रा आपृच्छन्मुनिपुंगवम् ।

स्वानि स्थानानि ते जग्मुः समृद्धान्यन्नवारिमिः ॥८०॥

यातेषु तेषु विप्रेषु भ्रात्रा सह गणेश्वरः ।

जयया सह सुप्रीतः कृतकृत्यो न्यवर्तत ॥८१॥

गतेषु ब्रह्मवृन्देषु गणेशे च गते तथा ।

गौतमोऽपि मुनिश्रेष्ठस्तपसा हृतकल्मषः ॥८२॥

ध्यायस्तदर्थं स मुनिः किमिदं मम सस्थितम् ।

इत्येवं बहुशो ध्यायञ्ज्ञानेन शीतवान्निर्वृजे ॥८३॥

निश्चित्य देवकार्यैर्यमात्मनेः कित्विषां गतिम् ।

लोकानामुपकारं च शभोः प्रीणनमेव च ॥८४॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस ब्राह्मणों की सभा में उस विप्रेन्द्र के द्वारा ऐसा कहने पर उसी समय में आकाश से पुष्पो की वर्षा हुई थी और जयकार की ध्वनि भी हुई थी । इसके उपरान्त हाथ जोड़ते हुए गौतम मुनि ने अत्यन्त विनम्र होकर यह वाक्य कहा था ॥७८॥ गौतम ने कहा—तप से-अग्नि देव के प्रसाद से-देवों तथा ब्रह्मा की कृपा से और आप सब लोगों के प्रसाद से मेरा यह सत्य सङ्कल्प सिद्ध हो आवे ॥७९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उसी समय में उन समस्त ब्राह्मणों ने उस मुनियों में श्रेष्ठ गौतम से कहा था—ऐसा ही होगा अर्थात् आपका मनोरथ सफल हो जायगा । वे फिर सब विप्रगण अन्न-जल से समृद्ध होकर अपने आश्रमों को चले गये थे ॥८०॥ उन समस्त विप्रों के चले जाने पर गणेश्वर प्रभु अपने भाई के साथ तथा जया के सहित अत्यन्त प्रसन्न होते हुए कृत कृत्य होकर वहाँ से वापिस लौट आये थे ॥८१॥ उन विप्र वृन्दों के और गणेश के वहाँ से चले जाने पर मुनियों में परम श्रेष्ठ गौतम भी तप से क्षीण बलमयी बाले हुए ॥८२॥ उस गौतम मुनि ने उसके विषय में ध्यान करते हुए विचार किया था कि यह मुझे क्या परिस्थिति प्राप्त हो गयी है और अब मैंसे क्या करना चाहिए । इस प्रकार से बहुत ही अधिक सोचने पर हे द्विज नारद ! ध्यान करते हुए ज्ञान के द्वारा उस गौतम ने यह जाना था ॥८३॥ यह देवों का कार्य है और अपनी भी परम पूर्ण गति का निवारण इसमें होता है तथा सभी लोकों का इससे महान् उपकार होता है, अतएव भगवान् राम्भु को प्रसन्न करना ही इसका एक मात्र समुचित साधन होता है ॥८४॥

उमायाः प्रीणन चापि गङ्गानयनमेव च ।

सर्वं श्रेयस्कर मन्ये मयि नैव च कित्विपम् ॥८५॥

इत्येव मनसा ध्यायन्मुप्रीतोऽभूद्विजोत्तमः ।

आराध्य जगतामीश त्रिनेत्रं वृषभध्वजम् ॥८६॥

आनयिष्ये सरिच्छ्रेष्ठा प्रीतास्तु गिरिजा मम ।

सपत्नी जगदम्बाया महेश्वरजटास्थिता ॥८७॥

एवं हि संकल्प्य मुनिप्रवीरः,

स गौतमा ब्रह्मगिरेर्जंगम ।

कैलासमाधिष्ठितमुग्रधन्वना,

सुरार्चितं प्रियया ब्रह्मवृन्दैः ॥८८॥

इससे उमादेवी को प्रसन्नता होगी तथा गङ्गा का आनयन भी हो जायगा । यह सभी परम कल्याण कारक कार्य होगा और इससे मुक्त में भी कोई पाप दोष न होगा—ऐसा मैं मानता हूँ ॥८५॥ इस तरह से वह द्विजों में उत्तम गौतम मन में ध्यान करते हुए बहुत ही अधिक प्रसन्न हुए थे कि मैं त्रिलोचन वृषभ की ध्वजा वाले जगतों के स्वामी भगवान् शम्भु की समाराधना करके उस सरिताओं में श्रेष्ठ गंगा को यहाँ से आऊँगा तथा गिरिजा देवी भी मुक्त पर अत्यन्त प्रसन्न होगी क्योंकि यह गङ्गा महेश्वर प्रभु की जटाजूट में स्थित होकर उमादेवी की सपत्नी बनी हुई हैं ॥८६-८७॥ इस प्रकार से उस मुनियों में प्रकृष्ट वीर गौतम ने अपने मन में दृढ संकल्प किया था और वह फिर उग्र धनुष वाले शम्भु के द्वारा जो कि अपनी प्रिया एवं ब्राह्मणों के वृन्द से युक्त तथा सुरों के द्वारा समर्चित होते हुए ब्रह्मगिरि के कैलास पर समवस्थित थे वही पर वह गौतम भी चले गये थे ॥८८॥

—:❀:—

### ३५—गौतमकृतमुमामहेश्वरस्तवन

कैलाशशिखरं गत्वा गौतमी भगवानृषिः ।

किञ्चकार तपो वाऽपि काञ्चकैः स्तुतिमुत्तमाम् ॥१॥

गिरिं गत्वा ततो वत्स वार्चं संयम्य गौतमः ।

आस्तीर्य स कुशान्प्राज्ञः कैलासे पर्वतोत्तमे ॥२॥

उपविश्य शुचिभूत्वा स्तोत्रं चेदं ततो जगौ ।

अपतत्पुष्पवृष्टिश्च स्तूयमाने महेश्वरे ॥३॥

भोगार्थिनां भोगमभीप्सितं च, दातुं महान्त्येष्टवपुं पि धत्ते ।

सोमो जनानां गुणवन्तिनित्ये, देवं महादेवमिति स्तुवन्ति ॥४॥

कतुं स्वकीयैर्विषयैः सुखानि, भवतुं समस्त सचराचर च ।

संपत्तये ह्यस्य विवृद्धये च, महोभयं रूपमितीश्वरस्य ॥५॥

सृष्टेः स्थितेः सहरणाय भूमेराधारमाधातुमपां स्वरूपम् ।

भेजे शिवः शान्ततनुर्जनानां, सुखाय धर्माय जगत्प्रतिष्ठितम् ॥६॥

कालव्यवस्थाममृतस्रव च, जीवस्थितिं सृष्टिमयो विनाशनम् ।

मुद प्रजानां सुखमुन्नतिं च, चक्रेऽर्कचन्द्राग्निमयं शरीरम् ॥७॥

श्री नारदजी ने कहा—भगवान् गौतम ऋषि ने कैलास के शिखर पर पहुँच कर क्या किया था ? क्या कोई वहाँ पर उन्होंने तपस्या की थी अथवा कौन सी उत्तम स्तुति की थी ? ॥१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे यत्स ! फिर उस कैलास पर जाकर उस गौतम ने अपनी चाणी का सर्व प्रथम समय किया था । फिर उस पर्वतों में परम श्रेष्ठ कैलास पर उस परम प्राज्ञ गौतम ने भुजाओं को फैला दिया था । उस स्थल पर वह उपविष्ट हो गये थे और पवित्र होकर उन्होंने इस नीचे बताये जाने वाले स्तोत्र का गान किया था । इस प्रकार से महेश्वर प्रभु की स्तुति करने पर नभोमण्डल से पुष्पों की वृष्टि हुई थी ॥२-३॥ गौतम ने इस प्रकार से महेश्वर की स्तुति करते हुए कहा था—गौतम बोले—हे भगवन् ! आप भोगों के अभिलाषा रखने वाले अपने भक्तों को उनका अभीष्ट भोग प्रदान करने के लिये महान् आठ वपुओं की धारण किया करते हैं । आप उमादेवी के सहित अपने जनो के लिये ही नित्य उन गुणों से युक्त आठ शरीरों की धारण करते हैं । सभी उनका देव-महान् देव हैं—ऐसा स्तवन किया करते हैं ॥४॥ आप अपने विषयों के द्वारा सुखों का संवर्धन करने के लिये तथा इस सम्पूर्ण चराचर विश्व का भरण करने के वास्ते और इस विश्व की सम्पत्ति



एव विशेष वृद्धि के लिये ईश्वर आपका यह महीमय ही स्वरूप है ॥५॥ शिव प्रभु सृजन-स्थिति-और संहार के लिये तथा भूमि के आधार को रखने के वास्ते आप जल के स्वरूप को धारण किया करते हैं । शान्त स्वरूप वाले भगवान् शिव अपने भक्तजनों के सुख तथा धर्म के लिये ही इस जगत् में प्रतिष्ठित रहा करते हैं ॥६॥ इस काल की व्यवस्था को—अमृत के स्रवण को—जीवों की स्थिति—सृष्टि और विनाश-प्रजाओं का आनन्द-सुख और उन्नति को आपका चन्द्राग्निमय शरीर किया करता है ॥७॥

वृद्धि गतिं शक्तिमयाक्षराणि, जीवव्यवस्थां मुदमप्यनेकाम् ।  
 स्रष्टुं कृत वायुरितीशरूप, त्व वेत्सि नून भगवन्भवन्तम् ॥८॥  
 भेदं विना नैव कृतिर्न धर्मो, नाऽऽत्मीयमन्यन्नदिशोऽन्तरिक्षम् ।  
 द्यावापृथिव्यौ न च भुक्तिमुक्ती, तस्मादिदं व्योमवपुस्तवेश ॥९॥  
 धर्मं व्यवस्थापयितुं व्यवस्य, ऋक्सामशास्त्राणि यजुश्च शाखाः ।  
 लोके च गाथाः स्मृतयः पुराणमित्यादिशब्दात्मकतामुपेति ॥१०॥  
 यथा क्रतुर्यान्यपि साधनानि, ऋत्विक्प्रदेश(य)फलदेशकालाः ।  
 त्वमेव शंभो, परमार्थतत्त्व, वदन्ति यज्ञाङ्गमयं वपुस्ते ॥११॥  
 कर्ता प्रदाता प्रतिभूः प्रदानं, सर्वज्ञसाक्षी पुरुषः परश्च ।  
 प्रत्यात्मभूतः परमार्थरूप, स्त्वमेव सर्वं किमु वाग्विलासः ॥१२॥  
 न वेदशास्त्रं गुं रुमिः प्रदिष्टो, न नासि बुद्ध्यादिभिरप्रघृष्यः ।  
 अजोऽप्रमेयः शिवशब्दावाच्यस्त्वमस्ति सत्यं भगवन्नमस्ते ॥१३॥  
 आत्मकता स्वप्रकृति कदाचिदक्षच्छिवः सपदिवं ममेति ।  
 पृथक्त्वं वा भवदप्रतर्क्याचिन्त्यप्रभावो बहुविश्वमूर्तिः ॥१४॥

वृद्धि-गति-शक्ति-अक्षर और अनेक प्रकार का आनन्द तथा जीवों की व्यवस्था का सृजन करने के लिये ही ईश का वायु स्वरूप होता है । हे भगवन् ! आप निश्चय ही अपने आपको जानते हैं अर्थात् अपने आपका ज्ञान आपको ही होता है अन्य को नहीं है ॥८॥ भेदों के बिना न कोई कृति (यत्न) है और न धर्म ही होता है । अन्य कोई आत्मीय

नही है—न दिशाएँ हैं और न अन्तरिक्ष ही है । ये आकाश पृथिवी भी नही है और न भुक्ति है तथा न मोक्ष है । इसीलिये हे ईश ! आपका यह व्योम रूपी वपु होता है ॥१६॥ धर्म की व्यवस्था करने के ही लिये पृथक् ऋग्वेद-यजुर्वेद की साध्याँ-सामवेद-शास्त्र और लोक में गाथा-स्मृतियाँ-पुराण इत्यादि शब्द शास्त्रों के समुदाय के स्वरूप को आप ही स्वयं प्राप्त हुआ करते हैं ॥१७॥ यजन करने वाला-यज्ञ-यजन के सम्स्त साधन-ऋत्त्वक जन-यजन का स्थल-फल-देश और काल ये सभी कुछ हे शम्भो ! आप ही हैं अर्थात् आपके ही विभिन्न रूप हैं । परमार्थ तत्त्व आपको ही कहने हैं । यह यज्ञाङ्गमय आपका ही एव स्वरूप होता है ॥१८॥ कर्म करने वाला-प्रदान करने वाला-प्रतिभू प्रदान-सब कुछ का ज्ञाता-सबको देखने वाला-पर पुरुष-प्रत्येक आत्मा के रूप में रहने वाले और परमार्थ भूष सभी कुछ आप ही का रूप है जो भिन्नतया दिखाई दिया करता है । विशेष वाणी के विलासों से क्या लाभ है अर्थात् आपके विषय में कुछ अधिक कहना व्यर्थ है ॥१९॥ आप वेदों और शास्त्रों के द्वारा तथा गुरुओं के द्वारा प्रदिष्ट नहीं हो सकते हैं । बुद्धि आदि के द्वारा भी आप प्रघर्षण करने के योग्य नहीं हैं । आप अजन्मा हैं—प्रमा के द्वारा जानने के योग्य नहीं हैं । आप "शिव"—इस शब्द के द्वारा कहने के योग्य होते हैं । आप सत्य स्वरूप वाले हैं । हे भगवन् ! आपको मेरा सादर नमस्कार है ॥२०॥ अपनी आत्मा की स्वकीय प्रकृति को जिसी समय में भगवान् शिव ने यह दृष्टा की थी कि यह सब मेरी ही सम्पत्ति है उसी समय में सर्वनाश करने के योग्य और अचिन्तनीय प्रमाद वाले षट्पद्विम्बमूर्ति पृथक् हो गये थे ॥१४॥

भावेऽभिवृद्धा च भवे भवे च,  
स्वकारण कारणमास्थिता च ।  
नित्या शिवा सर्वमुलदाणा वा,  
विलक्षणा विद्वकरस्य शक्तिः ॥१५॥  
उत्पादन सस्थितिरन्नबृद्धि-  
लयासतां यत्र सनातनास्ते ।

एकं व मूर्तिनं समस्ति किञ्चिद-  
 साध्यमस्या दयिता हरस्य ॥१६  
 यदर्थमग्नानि धनानि जीवा,  
 यच्छन्ति कुर्वन्ति तपांसि धर्मान् ।  
 साऽपीयमम्वा जगतो जनित्री,  
 प्रिया तु सोमस्य महासुकीर्तिः ॥१७  
 यदीक्षित काङ्क्षति वासवोऽपि,  
 यन्नामतो मङ्गलमाप्नुयाच्च ।  
 या व्याप्य विश्व विमलीकरोति,  
 सोमा सदा सोमसमानरूपा ॥१८  
 ब्रह्मादिजीवस्य चराचरस्य,  
 बुद्ध्यक्षिचैतन्यमनः सुखानि ।  
 यस्याः प्रसादात्फलवन्नि नित्यं,  
 वागीश्वरो लोकगुरोः सुरम्या ॥१९  
 चतुर्मुखस्यापि मनो मलीनं,  
 किमन्यजन्तोरिति चिन्त्य माता ।  
 गङ्गाऽवतारं विविधैरुपायैः,  
 सर्वं जगत्पावयितुं चकार ॥२०  
 श्रुतीः समालक्ष्य हरप्रभुत्वं,  
 विश्वस्य लोकः सकलैः प्रमाणैः ।  
 कृत्वा च धर्मान्वुभुजे च भोगान्-  
 विभूतिरेषा तु सदाशिवस्य ॥२१

भाव मे अभिवृद्ध और भव-भव में अपने कारण स्वरूप कारण में समास्थित-नित्या-समस्त सुलक्षणो वासी तथा विलक्षण विश्व के करने वाले की शक्ति ही शिवा है । अर्थात् शिव की शक्ति ही गौरी का स्वरूप धारण करने वाली उमा है उनसे भिन्न नहीं है ॥१५॥ उत्पादन-संस्थिति-अन्न की वृद्धि-लय और सत्ता का जहाँ पर आपके सनातन हैं वे सभी एक ही मूर्ति हैं और कुछ भी नहीं है जो इसकी असाध्य

है। वह हर ही दयिता है ॥१६॥ जिसके लिये जीव अन्न और घनो को दिया करते हैं और घनों को तथा सपों को किया करते हैं वह भी यह जगदम्बा इस जगत् के जनन करने वाली है और यह भी सुकीर्ति वाली सोम की प्रिया है ॥१७॥ जिसकी कृपा दृष्टि की इन्द्र भी अभिलाषा रखता है और जिसके परम पावन नाम के स्मरण एवं उच्चारण से मङ्गल की प्राप्ति किया करता है। जो इस सम्पूर्ण विश्व को ध्यास करके उसको विमल किया करती है वह सोम के ही सदा समान स्वरूप वाली सोमा है ॥१८॥ ब्रह्मा से आदि लेकर चराचर जीवों के बुद्धि-नेत्र-चैतन्य और मन के सुख जिसके प्रसाद से ही नित्य फल वाले हुआ करते हैं वह लोको के गुरु भगवान् शिव परम सुरभ्य वागीश्वरी है ॥१९॥ षनुमुख (ब्रह्मा) का भी मन मग्न रहता है तो दूसरे जन्तु की बात ही क्या है-यही विचार करके माता ने इस सब जगत् को पावन करने के लिये अनेक उपायों के द्वारा गङ्गा का अवतरण किया था ॥२०॥ श्रुतियों को विश्व के हर-प्रभुत्व का अवलोकन कर सोरु समस्त प्रमाणों से घनों को करके भोगों का उपभोग किया करता था-यह सदा शिव भगवान् की विभूति है ॥२१॥

कार्यं क्रियाकारकसाधनाना,  
वेदोदितानामथ लौकिकानाम् ।  
यत्साध्यमुत्कृष्टतमं प्रियं च,  
प्रोक्ता च सा सिद्धिरनादिकर्तुः ॥२२॥  
ध्यत्वा वरं ब्रह्म पर प्रधान,  
यत्सारभूत यदुपासितव्यम् ।  
यत्प्राप्य मुक्ता न पुनर्भवन्ति,  
सद्योगिनो मुक्तिरुमापतिः सः ॥२३॥  
यथा यथा स भुरमेयमाया-  
रूपाणि धत्ते जगतो हिताय ।  
तद्योगयोग्यानि तथैव धत्से,  
पतिप्रतात्व त्वयि मातरेवम् ॥२४॥

इत्येवं स्तुवतस्तस्य पुरास्ताद्वृषभध्वजः ।

उमया सहितः श्रीमान्गणेशदिगणंवृतः ॥२५॥

साक्षादागत्य त श भुः प्रसन्नो वाक्यमब्रवीत् ॥२६॥

किं ते गीतम दास्यामि भक्तिस्तोत्र व्रतैः शुभैः ।

परितुष्टोऽस्मि याचस्व देवानामपि दुष्करम् ॥२७॥

वेदों के द्वारा वर्णित तथा लौकिक कार्य-क्रिया-कारक और साधनों का जो सबसे उत्कृष्टतम और प्रियसाध्य है वह उसी अनादि कर्ता की ही सिद्धि बतायी गयी है ॥२२॥ परम श्रेष्ठ और सर्व प्रमुख ब्रह्म का ध्यान करके जो भी सारभूत है और जो उपासना करने के योग्य है—जिसको प्राप्त करके मुक्त हो जाने वाले फिर प्राणी जन्म ग्रहण नहीं किया करते हैं और सद्योगियों की मुक्ति है वह उमा के ही पति देव हैं ॥२३॥ जैसे-जैसे भगवान् शम्भु इस जगत् के हित के लिये अमेय माया के रूपों को धारण किया करते हैं उसी-उस योग के योग्य उसी प्रकार के जगदम्बा भी आपके विषय में पतिव्रतात्व को धारण किया करती हैं ॥२४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस तरह से स्तवन करने वाले उस गीतम मुनि के सामने उमादेवी के सहित गणेश आदि से युक्त श्रीमान् वृषभध्वज भगवान् शम्भु साक्षात् उपस्थित होकर बहुत ही अधिक प्रसन्न होकर उस गीतम से यह वाक्य बोले—॥२५-२६॥ भगवान् शिव ने कहा—हे गीतम ! तुम्हारे भक्तिभाव से समन्वित परम शुभ स्तोत्रों से मैं तुमसे अत्यधिक प्रसन्न हो गया हूँ । मैं तुमको क्या दूँ ? तुम जो देवगणों को प्राप्त होना बहुत कठिन हो उसको मुझ से प्राप्त कर लो ॥२७॥

इति श्रुत्वा जगन्मूर्तेर्वाक्यं राक्यविशारदः ।

हर्षवाष्पपरीताङ्गो गीतमः पर्यचिन्तयत् ॥२८॥

अहो दंभमहा धर्मो ह्यहो व विप्रपूजनम् ।

अहो लोकगतिश्चित्रा अहो घातनमोऽस्तु ते ॥२९॥

जटास्थितां शुभा गङ्गा देहि मे त्रिदशार्चित ।

यदि तुष्टोऽसि देवेश त्रयीधाम नमोऽस्तु ते ॥३०॥

त्रयाणामुपकारार्थं लोकानां याचित त्वया ।  
 आत्मनस्तूपकाराय तद्याचस्वाकुतोभयः ॥३१॥  
 स्तोत्रेणानेन ये भक्तास्त्वा च देवो स्तुवन्ति वै ।  
 सर्वकामसमृद्धाः स्युरेतद्धि वरयाम्यहम् ॥३२॥  
 एवमस्विति देवेशः परितुष्टोऽप्रवीद्वचः ।  
 अन्यानपि वरान्मत्तो याचस्व विगतज्वरः ॥३३॥  
 एवमुक्तस्तु हर्षेण गौतमः प्राह शकरम् ॥३४॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन जगत्पूति भगवान् शम्भु के इस परम  
 मुरम्ब वचन का ध्वनि करके हर्षातिरेक से निकले हुए अधुओ से भीगे  
 हुए अङ्गो वाले तथा वचनो के कहने में बड़े पण्डित गौतम मुनि ने  
 विचार किया था ॥३२॥ अहो ! देव अर्थात् देव के विषय में कैसा  
 आश्चर्य है ! ओहो ! यह धर्म कितना अद्भुत है और विप्रों के पूजन  
 का कैसा विसक्षण प्रभाव होता है ! ओहा ! यह सोच की गति कैसी  
 अद्भुत है ! हे घाता ! आपकी सेवा में मेरा प्रणाम सादर समर्पित है  
 ॥३६॥ गौतम मुनि ने कहा—हे देवों के द्वारा अभ्यर्चित ! हे देवेश्वर !  
 यदि आप भुक्त पर परम प्रसन्न हैं तो अपनी जटा में स्थित गङ्गा को  
 जो शुभ है मुझे प्रदान कर दीजिए । हे मदीघाम ! अर्थात् वेदों के  
 द्वारा प्राप्त होने वाले धाम ! आपने लिये मेरा नमस्कार है ॥३७॥  
 ईश्वर ने कहा—यह जो गङ्गा की याचना तुमने की है वह तो सीनी  
 सोनी के उपकार के ही लिये की है अत्र अपने आपकी भलाई के लिये  
 भी सर्वथा निडर होकर मुझ से कुछ याचना करो ॥३८॥ गौतम मुनि  
 ने कहा—इस स्तोत्र से जिसके द्वारा मैं आपका स्तवन किया है  
 उससे भक्त गण आपकी और देवी जगद्धात्री की स्तुति करते हैं वे  
 अपनी सम्पूर्ण कामनाओं से समृद्ध हो जावें—यह मैं आप से वरदान  
 चाहता हूँ ॥३९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—परम परितुष्ट देवेश्वर ने यह  
 वचन कहा—ऐसा ही होगा अर्थात् जो तुमने वरदान माँगा है वह पूरा  
 होगा । हे गौतम ! इनने अतिरिक्त और भी वरदानों की तुम विगत  
 ज्वर होकर याचना करो ॥४०॥ इस प्रकार स भगवान् शिव के द्वारा

जब गीतम मुनि से कहा गया था तो वह बहुत प्रसन्नता से शंकर भगवान् से बोले—॥३४॥

इमां देवी जटासस्यां पावनी लोकपावनीम् ।  
तव प्रिया जगन्नाथ उत्तृज ब्रह्मणो गिरौ ॥३५॥  
सर्वासां तीर्थभूता तु यावद्गच्छति सागरम् ।  
ब्रह्महत्यादिपापानि मनोवाक्कायिकानि च ॥३६॥  
स्नानमात्रेण सर्वाणि विलय यान्तु शंकर ।  
चन्द्रसूर्योपरागे च अयने विपुवे तथा ॥३७॥  
सक्रान्तो वंघृती पुण्यतीर्थेष्वन्येषु यत्फलम् ।  
अस्यास्तु स्मरणादेव तत्पुण्य जायता हर ॥३८॥  
श्लाघ्य कृते तपः प्रोक्तं त्रेताया यज्ञकर्म च ।  
द्वापरे यज्ञदाने च दानमेव कलौ युगे ॥३९॥  
युगधर्माश्च ये सर्वे देशधर्मास्तथैव च ।  
देशकालादिसयोगे यो धर्मो यत्र शस्यते ॥४०॥  
यदन्यत्र कृत पुण्यं स्नानदानादिसयमैः ।  
अस्यास्तु स्मरणादेव तत्पुण्यं जायतां हर ॥४१॥  
यत्र यत्र त्वय याति यावत्सागरगामिनी ।  
तत्र तत्र त्वया भाव्यमेष चास्तु वरो वरः ॥४२॥

गीतम मुनि ने कहा—आपकी जटाओं में समवस्थित स्वयं परम पवित्र और सब लोकों को पावन करने वाली आपकी परम प्रिया गङ्गा को हे जगन्नाथ ! ब्रह्माजी के गिरि पर छोड़ दीजिए ॥३५॥ यह समस्त सरिताओं की भी तीर्थभूता है और जब तक यह सागर में जायगी तब तक ब्रह्म हत्या प्रभृति महान् पापों को और मन वाणी तथा शरीर से किये जाने वाले सब पाप हे शङ्कर ! इसके स्नान मात्र से ही विलीन हो जाया करें । चन्द्र-सूर्य के ग्रहण के समय में-अयन में-विपुव के ध्रुवसर पर- सक्रान्ति में-वंघृति में तथा अन्य पुण्य तीर्थों में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है हे हर ! इस गङ्गादेवी के केवल स्मरण मात्र से ही वह पुण्य-फल प्राप्त हो जाना चाहिए ॥३६-३८॥ कृत युग

मे तपश्चर्या करना परम श्लाघा करने के योग्य उत्तम कर्म समझा जाता था । त्रेतायुग में यज्ञादि का यजन करना सर्वोत्तम कर्म माना गया था । द्वापर में यज्ञों के साथ दान देने का परम श्रेष्ठ फल होता था । इस कलियुग में केवल दान का उत्तम फल माना गया है ॥३८॥ ये सभी युगों के धर्म तथा विभिन्न देशों के विभिन्न धर्म और देश तथा काल आदि के संयोग में जो धर्म प्रशस्त माना जाया करता है ॥४०॥ जो भी स्नान और दान आदि के द्वारा समयों से अन्य स्थलों में किये जाने पर पुण्यमय होता है वह इसके तो केवल स्मरण मात्र से ही है हर ! वह पुण्य हो जाया करे—यह भी वरदान मुझे प्रदान कीजिए क्योंकि मैंने ही इस गङ्गा के भूलोक में ले जाने की याचना की है ॥४१॥ जहाँ पर यह गङ्गा जावे जब तक कि यह सागर में गमन करे वहाँ-वहाँ पर कृपा करके आप भी विद्यमान रहें—यही मेरा श्रेष्ठ वरदान है जिसकी याचना मैं आप से कर रहा हूँ ॥४२॥

योजनाना तूपरि तु दश यावच्च सख्यया ।

तदन्तरप्रविष्टाना महापातकिनामपि ॥४३॥

तत्पितृणा च तेषा च स्नानायाऽऽगच्छता शिव ।

स्नाने चाप्यन्तरे मृत्योर्मुक्तिभाजो भवन्तु वै ॥४४॥

एकतः सर्वतीर्थानि स्वर्गमर्त्यरसातले ।

एषा तेभ्यो विदिष्टा तु अल शंभो नमोऽस्तु ते ॥४५॥

तद्गौतमवचः श्रुत्या तथाऽस्त्वित्यग्रवीच्छ्रियः ।

अस्याः परतरं तीर्थं न भूत न भविष्यति ॥४६॥

सत्य सत्य पुनः सत्यं वेदे च परिनिष्ठितम् ।

सर्वेषां गौतमी पुण्या इत्युक्त्वाऽन्तरं धीयत ॥४७॥

ततो गते भगवति लोकपूजिते,

तदाज्ञया पूर्णवत्सः स गौतमः ।

जटा समाश्रय सखिद्वरा ता,

सुरष्टं तो ब्रह्मगिरि दिवेश ॥४८॥



ततस्तु गौतमे प्राप्ते जटामादाय नारद ।

पुष्पवृष्टिरभूत्तत्र समाजग्मुः सुरेश्वराः ॥४६॥

ऋषयश्च महाभागा ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा ।

जयशब्देन तं विप्रं पूजयन्तो मुदान्विताः ॥४७॥

दश योजनाओं की सख्या मे अर्थात् दश योजन तक की जब गङ्गा दूरी पर हो और उसके भीतर जब महापात की लोग प्रवेश कर लेवे जो कि गङ्गा मे स्नान करने के लिये गगन कर रहे हो तो हे शिव ! उनकी तथा उनके पितरो की स्नान करने के अन्तर में ही अर्थात् मार्ग मे ही मृत्यु हो जावे तो वे सभी युक्ति के प्राप्त करने के अधिकारी हो जाया करें ॥४३-४४॥ हे शम्भो ! स्वर्गलोक-मनुष्य लोक और रसातल मे एक ओर तो अन्य समस्त बड़े से भी बड़े तीर्थ हों उन सभी तीर्थों से यह महान एव विशिष्ट होवे बस यही वरदान मेरे लिये पर्याप्त हैं । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥४५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा— उन गौतम मुनि के कहे हुए वचनों का श्रवण करके शिवजी ने कहा था यह सभी कुछ जो भी तुमने याचनाएं की हैं पूर्ण होंगी । अब इस गङ्गा से बड़ा कहीं पर भी कोई तीर्थ न था और न भविष्य मे भी होगा ॥४६॥ यह सर्वथा सत्य है और पुनरपि मैं यही कहता हूँ कि यह नितान्त सत्य है तथा वेद मे भी परिनिष्ठित है कि अन्य सभी तीर्थों मे गौतमी गङ्गा परमाधिक पुण्यमयी है—इतना कह कर भगवान् शम्भु वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे ॥४७॥ इसके अनन्तर लोको के द्वारा धन्दित भगवान् शिव के गमन कर जाने पर उनकी आज्ञा से पूर्ण वर से युक्त वह गौतम मुनि शम्भु की जटा से उस श्रेष्ठ सरिता को लाकर सुरमण से समावृत होते हुए गौतम ने ब्रह्मागिरि मे प्रवेश किया था ॥४८॥ हे नारद ! इसके अनन्तर जटा को लेकर गौतम मुनि के वर प्राप्त हो जाने पर वहाँ पर पुष्पों की वृष्टि हुई थी और सभी सुरेश्वर वहाँ पर समापत हो गये थे ॥४९॥ सब ऋषिगण-महान् भाग वाले ब्राह्मण और क्षत्रिय जयकार की ध्वनि के द्वारा परमानन्द से युक्त होकर उस विप्र गौतम की अभ्यर्चना करने लगे थे ॥५०॥

## ३६—स्वर्गादौपंचदशाकृत्यागङ्गायागमन

महेश्वरजटाजूटादगङ्गामादाय गौतमः ।  
 आगत्य ब्रह्मणः पुण्ये ततः किमकिरोद्गिरी ॥१॥  
 आदाय गौतमो गङ्गा शुचिः प्रयतमानसः ।  
 पूजितो देवगन्धर्वैः स्तथा गिरि निवासिभिः ॥२॥  
 गिरेर्मूर्ध्नि जटां स्थाप्य स्मरन्देव त्रिलोचनम् ।  
 उवाच प्राञ्चलिभूत्वा गङ्गा स द्विजसत्तमः ॥३॥  
 त्रिलोचनजटोद्भूते सर्वकामप्रदायिनि ।  
 क्षमस्व मातः शान्ताऽसि मुप याहि हितं कुरु ॥४॥  
 एवमुक्त्वा गौतमेन गङ्गा प्रोवाच गौतमम् ।  
 दिव्यरूपधरा देवी दिव्यसगनुलेपना ॥५॥  
 गच्छेय देवसदनमथवाऽपि कमण्डलुम् ।  
 रसातलं वा गच्छेय जातस्त्व सत्यवागसि ॥६॥  
 त्रयाणामुपकारार्थं लोकानां याचिता नया ।  
 शंभुना च तथा दत्ता देवि तन्नान्यथा भवेत् ॥७॥

देवपि श्री नारदजी ने कहा—गौतम ने महेश्वर की जटा-जूट से गङ्गा को लाकर ब्रह्माजी के पुण्य गिरि में समागत होकर इससे उपरान्त वहाँ पर क्या किया था ? ॥१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—गौतम मुनि गङ्गा को लाकर परम शुचि और प्रयत्न मन पाता हो गया था और वहाँ पर उस पर्वत के निवासी देवी और गन्धर्वों के द्वारा यह पूजित हुआ था ॥२॥ फिर उस गौतम ने उस पर्वत के शिखर पर जय को स्थापित करके त्रिलोचन देव का स्मरण करते हुए हाथ जोड़ कर यह द्विज धीरे गङ्गा से बोला—॥३॥ गौतम मुनि ने कहा—हे माता ! आप तो भगवान् त्रिलोचन देव की जटा से समुद्भूत हुई हैं और सभी मनोरथों को प्रदान करने वाली हैं । आप तो परम शान्त स्वरूप वाली हैं मुझे क्षमा करिए । अब आप मुझ पूर्वक गमन करिए तथा समया

हित करिए ॥४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से गौतम मुनि के द्वारा कही गयी गङ्गा ने फिर गौतम से कहा था जो गङ्गा उस समय मे परमाधिक दिव्य रूप के धारण करने वाली तथा दिव्य माला एवं अनुलेपन से युक्त देखी थी ॥५॥ श्री गङ्गा देवी ने कहा—मैं अब देवों के सदन स्वर्ग में जाऊँगी अथवा परमेष्ठी के कमण्डलु में पुनः प्राप्त हो जाऊँगी या रसातल को चली जाऊँगी । तुम तो सत्य वाणी वाले हो ही गये हो । तात्पर्य यह है कि तुमने मेरे लाने की प्रतिज्ञा की थी वह पूरी हो गई है ॥६॥ गौतम मुनि ने कहा—मैंने जो भगवान् शम्भु से आपके प्राप्त करने की याचना की थी वह याचना तीनों लोकों की भलाई के ही लिये की थी । भगवान् शम्भु ने भी उसी मेरे उद्देश्य की पूर्ति के लिए आपको मुझे दिया है । हे देवि ! वह वचन अन्यथा नहीं होना चाहिए ॥७॥

तद्गौतमवचः श्रुत्वा गङ्गा मेने द्विजेरितम् ।

त्रेधाऽऽत्मानं विभज्याथ स्वर्गमर्त्यंरसातले । ५

स्वर्गे चतुर्धा व्यगमत्सप्तधा मर्त्यमण्डले ।

रसातले चतुर्वेव सैव पञ्चदशाकृतिः ॥६॥

सर्वत्र सर्वभूतैव सर्वपापविनाशिनी ।

सर्वकामप्रदा नित्य सैव वेदे प्रगीयते ॥१०॥

मर्त्या मर्त्यगतामेव पश्यन्ति न तला गताम् ।

नैव स्वर्गगता मर्त्याः पश्यन्त्यज्ञानबुद्धयः ॥११॥

यार्वत्सागरगा देवी तावद्देवमयी स्मृता ।

उत्सृष्टा गौतमेनैव प्रायात्पूर्वार्णव प्रति ॥१२॥

ततो देवपिभिर्जुष्टां मातर जगतः शुभाम् ।

गौतमो मुनिशार्दूलः प्रदक्षिणमथाकरोत् ॥१३॥

त्रिलोचन सुरेशानं प्रथमं पूज्य गौतमः ।

उभयोस्तीरयोः स्नानं करोमीति दधे मतिम् ॥१४॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस गौतम के विनम्र वचन को सुन कर उस द्विज के द्वारा कथित वचन को गङ्गा ने स्वीकार कर लिया था ।

इनके अनन्तर स्वर्ग-सान्ताल और मनुष्य लोक में अपने स्वरूप को तीन भागों में उस देवी ने विभाजित किया था । ८। स्वर्ग में भी उसने पुनः चार भाग किये थे । मर्त्यलोक में अपने स्वरूप को सात भागों में विभाजित किया था और रसानल में भी चार भागों में अपना स्वरूप विभक्त किया था । इस प्रकार से वह पन्द्रह आकृतियों वाली हो गई थी ॥६॥ वह सर्वत्र सर्व भूता और समस्त पापों के विनाश कर देने वाली है । सब कामनाओं का पूर्ण करने वाली तित्य ही वही वेदों में गायी जाया करती है ॥१०॥ अज्ञान में पूर्ण बुद्धि वाले मनुष्य उसको इस मनुष्य लोक ही में रहने वाली देखते हैं । वे उसको रसानल में गमन करने वाली और स्वर्ग लोक में गई हुई नहीं देखते हैं ॥११॥ जब तक वह देवी सागर में गमन करने वाली थी तब तक वह देवमयी बही गयी है । गौतम मुनि के द्वारा उत्सृष्ट हुई वह पूर्वाण्व के प्रति गमन कर गयी थी ॥१२॥ इसके पश्चात् मुनियों ने शार्दूल के समान गौतम ने उस जगत् की परम शुभा-देवियों के द्वारा सेवित माता की प्रदक्षिणा की थी ॥१३॥ गौतम मुनि ने सर्व-प्रथम सुरेशान त्रिलोचन की पूजा की थी और फिर उसने मन में ऐसा विचार किया था कि मैं दोनों तटों पर स्नान करूँगा ॥१४॥

स्मृतमात्रस्तदा तत्राऽऽविरासीत्करणार्णवः ।  
 तत्र स्नानं कथं सिद्ध्येदित्येव सर्वमव्यूतो ॥१५॥  
 कृताञ्छलिपुटो भूत्वा भक्तिर्न अखिलोचनम् ॥१६॥  
 देवदेव महेशान तीर्थस्नानविधिं मम ।  
 ब्रूहि सम्यङ्महेशान लोमाना हिकाम्यया ॥१७॥  
 महर्षे ष्टणु मयं च विधिं गोदावरीभवम् ।  
 पूर्वं नान्दीमुख कृत्वा देहशुद्धिं विधाय च ॥१८॥  
 ग्राह्मणन्भोजयित्वा च तेषामाज्ञां प्रगृह्य च ।  
 ग्रहमचर्येण गच्छन्ति पतितालापवजिताः ॥१९॥  
 यस्य हस्तो च पादो च मनश्चैव मुसयतम् ।  
 विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥२०॥

भावदुष्टि परित्यज्य स्वधर्मपरिनिष्ठितः ।

श्रान्तसंवाहनं कुर्वन्दद्यादन्नं यथोचितम् ॥२१॥

अकिञ्चनेभ्यः साधुभ्यो दद्याद्वस्त्राणि कम्बलान् ।

शृण्वन्हरिकथां दिव्यां तथा गङ्गासमुद्भवाम् ॥

अनेन विधिना गच्छन्सम्यक्तीर्थफलं लभेत् ॥२२॥

उस अवसर पर वहाँ पर स्मरण मात्र करने से करुणा के सागर भगवान् शिव तुरन्त प्रकट हो गये थे उस समय में वहाँ पर स्नान किस प्रकार से सिद्ध होगा—यह इस प्रकार से शम्भु से पूछा था ॥१५॥ अपने दोनों हाथों को जोड़ कर भक्ति की भावना से अत्यन्त विनम्र होकर भगवान् त्रिलोचन से कहा था ॥१६॥ गौतम ने कहा—हे देवों के भी देव ! हे महेशान ! समस्त लोकों के हित की कामना से मुझे तीर्थों के स्नान की विधि बतलाइये ॥१७॥ भगवान् शिव ने कहा—हे महर्षे ! अब गोदावरी में होने वाली सम्पूर्ण विधि का मुझ से तुम श्रवण करो । सर्व प्रथम नान्दीमुख श्राद्ध करना चाहिए और फिर देह की शुद्धि करे ॥१८॥ ब्राह्मणों को भोजन करा कर उनकी आज्ञा को ग्रहण करना चाहिए । पतित प्राणियों के साथ वार्त्तालाप न करने वाले होकर ब्रह्मचर्या व्रत के साथ गमन किया करते हैं ॥१९॥ जिसके हाथ पैर और मन सुखयत होते हैं तथा विद्या-तप एव जिसकी कीर्ति होती है वही पुरुष तीर्थ के पुण्य-फल का भागी हुआ करता है ॥२०॥ भावों के दोषों का परित्याग करके अपने धर्म में परिनिष्ठित रहे और श्रान्तों का सेवाहन करते हुए यथोचित अन्न देना चाहिए ॥२१॥ जो अकिञ्चन हो अर्थात् जिनके पास कुछ भी वस्त्रादि के साधन न हों उन साधु पुरुषों को वस्त्र और कम्बल भी देने चाहिए । फिर गङ्गा से समुत्पन्न होने वाली श्री हरि की दिव्य कथा का श्रवण करते तीर्थ में इस उपर्युक्त विधि से गमन करें तो भली भाँति वह मनुष्य तीर्थ का पुण्य-फल प्राप्त कर सकेगा ॥२२॥

## ३७—गौतमीमहत्त्ववर्णन

त्र्यम्बकश्च इति प्राह गौतमं मुनिभिर्वृतम् ॥१॥

द्विहस्तमात्रे तीर्थानि सभविष्यन्ति गौतम ।

सर्वत्राह सनिहितः सर्वकामप्रदस्तथा ॥२॥

गङ्गाद्वारे प्रयागे च तथा सागरसगमे ।

एतेषु पुण्यदा पुंसा मुक्तिदा सा भगीरथी ॥३॥

नर्मदा तु सरिच्छ्रेष्ठा पर्वतेऽमरकण्ठके ।

यमुना सगता तत्र प्रभासे तु सरस्वती ॥४॥

कृष्णा भीमरथी चैव तुङ्गभद्रा तु नारद ।

तिसृणा संगमो यत्र तत्तीर्थं मुक्तिद नृणाम् ॥५॥

पयोष्णी सगता यत्र तत्रत्या तच्च मुक्तिदम् ।

इयं तु गौतमी वत्स यस्य कापि ममाऽऽज्ञया ॥६॥

सर्वेषां सर्वदा नृणा स्नानान्मुक्तिं प्रदास्यति ।

किञ्चित्काले पुण्यतम किञ्चित्तीर्थं सुरागमे ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय में मुनियों से आवृत गौतम से भगवान् त्र्यम्बकजी ने कहा ॥१॥ भगवान् शिष्य बोले—हे गौतम ! दो हाथ मात्र में तीर्थें होंगे । मैं कहा सर्वत्र सब कामों के प्रदान करने वाला मैं सनिहित रहा करता हूँ ॥२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—गंगा द्वार में प्रयाग में तथा सागर के साङ्गम में इन स्थलों में यह भगीरथी गङ्गा मनुष्यों को पुण्य फल प्रदान करने वाली तथा मुक्ति देने वाली हुआ करती है ॥३॥ अमर कण्ठक पर्वत में सरिताओं में परम श्रेष्ठा नर्मदा है । वहाँ पर यमुना सगता होती है और प्रभास क्षेत्र में सरस्वती है ॥४॥ हे नारद ! कृष्णा-भीमरथी-तुङ्गभद्रा-इन तीनों का जहाँ पर साङ्गम होता है वह तीर्थें मनुष्यों को मुक्ति के प्रदान करने वाला हुआ करता है ॥५॥ जहाँ पर वहाँ पर होने वाली पयोष्णी सरिता सगता हुआ करती है वह स्थल मुक्ति प्रदान करने वाला होता है । हे इत्या ! यह तो गौतमी गङ्गा है । जहाँ वही पर मेरी आज्ञा से सगता होती है ॥६॥ सर्वदा सभी मनुष्यों को यह स्नान करने से मुक्ति प्रदान करेगी ।

कुछ तीर्थ सुरो के आगमन होने पर किसी काल में विशेष पुण्य के प्रदाता होते हैं ॥७॥

सर्वेषां सर्वदा तीर्थं गौतमी नात्र संशयः ।

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च योजनानां शतद्वये ॥८॥

तीर्थानि मुनिशार्दूल समविष्यन्ति गौतम ।

इय माहेश्वरी गङ्गा गौतमी वंष्णवीति च ॥९॥

ब्राह्मी गोदावरी नन्दा सुनन्दा कामदायिनी ।

ब्रह्मतेजःसमानीता सर्वपापप्रणाशनी ॥१०॥

स्मरणादेव पापीघहन्त्री मम सदा प्रिया ।

पञ्चानामपि भूतानामापः श्रेष्ठत्वमागताः ॥११॥

तत्रापि तीर्थभूतास्तु तस्मादापः पराः स्मृताः ।

तासां भागीरथी श्रेष्ठा ताम्योऽपि गौतमी तथा ॥१२॥

आनीता सजटा गङ्गा अस्या नान्यच्छुभावहम् ।

स्वर्गे भुवि तले वाऽपि तीर्थं सर्वार्थदं मुने ॥१३॥

इत्येतत्कथितं पुत्र गौतमाय महात्मने ।

साक्षाद्वरेण तुष्टेन मया तव निवेदितम् ॥१४॥

एव सा गौतमी गङ्गा सर्वेभ्योऽप्यधिका मता ।

तत्स्वरूपं च कथितं कुताऽन्या श्रवणस्पृहा ॥१५॥

किन्तु यह गौतमी गङ्गा सर्वदा ही समस्त मनुष्यों के लिये तीर्थ है उसमें कुछ भी संशय नहीं है । दो सौ योजनो में साढ़े तीन करोड़ है मुनि शार्दूल गौतम ! तीर्थ समुत्पन्न होंगे । यह माहेश्वरी गङ्गा है तथा गौतमी और वंष्णवी है ॥८-९॥ ब्राह्मी गोदावरी-नन्दा-सुमन्दा कामदायिनी हैं ब्रह्म तेज के द्वारा समानीता हैं और सब प्रकार के पापों का प्रणाश कर देने वाली हैं ॥१०॥ मेरी प्रिया सदा ही केवल स्मरण मात्र से ही पापों के समुदाय को नष्ट कर देने वाली होती है । पाँचों भूतों में जल ही परम श्रेष्ठता की प्राप्त हुआ है ॥११॥ उनमें भी जो जल तीर्थ भूत हैं । इसी कारण से जल सबसे प्रमुख कहे गये हैं । उन सबमें भागीरथी गङ्गा श्रेष्ठ है और उनसे भी गौतमी परम श्रेष्ठ है

॥१२॥ यह गौतमी जटाओं के सहित ही लार्ई गयी थी । हे मुने ! इससे अन्य कोई भी शुभा यह तथा समस्त अर्थों के देने वाला तीर्थ स्वर्ग में तथा भूतल में भी नहीं है ॥१३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे पुत्र ! यह सब साक्षात् भगवान् हर ने परम तुष्ट होकर महारमा गौतम से कहा था और वह सब मैंने तुमको बतला दिया है ॥१४॥ इस रीति से यह गौतमी गङ्गा समस्त अन्य तीर्थों से अधिक श्रेष्ठा बताया गयी है । उसका स्वरूप मैंने पूर्ण रूप से आपको वर्णित करके बतला दिया है । अब आप को अन्य क्या ध्वन कराने की स्पृहा है सो मुझे बतलाइये जिसे मैं बतलाऊँ ॥१५॥

—\*—

३ = — घ.पोततीर्थवर्णन

कुशावतस्य माहात्म्यमह वक्तु न ते क्षमः ।  
 तस्य स्मरणमाभवेण कृतकृत्य भवेन्नरः ॥१॥  
 कुशावतमिति ख्यात नराणां सर्वकामदम् ।  
 कुशेनाऽऽर्चितं यत्र गौतमेन माहात्मना ॥२॥  
 कुशेनाऽऽवर्तयित्वा तु आनयामास ता मुनिः ।  
 तत्र स्नानं च दानं च पितृणां तृप्तिदायकम् ॥३॥  
 नीलगङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा निःसृता नीलपर्वतात् ।  
 तत्र स्नानादि यकिचिस्करोति प्रयतो नरः ॥४॥  
 सर्वं तदक्षयं विद्यात्पितृणां तृप्तिदायकम् ।  
 विश्रुतं त्रिषु लोकेषु कपोत तीर्थमुत्तमम् ॥५॥  
 तस्य रूपं च वक्ष्यामि मुने शृणु महाफलम् ।  
 तत्र ब्रह्मगिरी कश्चिद्व्याधः परमदारुणः ॥ ६॥  
 हिनस्ति ब्राह्मणान्साधून्वतीन्तोषदिणो मृगान् ।  
 एवभूतः स पापात्मा क्रोधनोज्ज्वलभाषणः ॥७॥



श्री ब्रह्माजी ने कहा—कुशावर्त का माहात्म्य बड़ा विशाल है । मैं । उसको तुम्हें बतला देने में समर्थ नहीं हूँ अर्थात् उसका वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहिर है उसका तो केवल स्मरण ही कर लेने से मनुष्य कृत कृत्य (सफल) हो जाया करता है ॥१॥ वह “कुशावर्त” इस नाम से ही प्रसिद्ध हुआ है और मनुष्यों के सब मनोरथों के प्रदान करने वाला है । जहाँ पर महात्मा गौतम ने इसको कुशा से आवर्तित किया था ॥२॥ उस महा मुनि ने कुशा से आवर्तन करके उसका आनयन किया था । वहाँ पर स्नान करना तथा दान करना पितृगणों को बहुत ही अधिक तृप्ति देने वाला होता है ॥३॥ नील गङ्गा समस्त सन्नि-  
ताओं में बहुत ही श्रेष्ठ है और वह नील पर्वत से निकली है । वहाँ पर कोई मनुष्य प्रयत्न होकर जो स्नान आदि जो कुछ भी किया करता है वह सभी अक्षय्य समझना चाहिए क्योंकि वह पितृगण को भी बहुत तृप्ति का देने वाला होता है । यह उत्तम तीर्थ तीनों लोकों में कपोत नाम से विख्यात है ॥४-५॥ हे मुने ! मैं उसका स्वरूप बतलाता हूँ । जिसका कि महान् फल हुआ करता है । उसका तुम श्रवण करो । उस ब्रह्मगिरि में एक व्याघ्र रहता था जो बहुत ही दारुण था ॥६॥ वह सर्वदा ब्राह्मणों को-साधुओं को-यतियों को गौओं को तथा पक्षियों को और मृगों को मारा करता था । वह पापात्मा इसी तरह का था जो अत्यन्त क्रोधी एवं मिथ्या भाषण करने वाला था ॥७॥

भीषणाकृतिरत्युग्रो नीलाक्षो ह्रस्वबाहुकः ।  
दन्तुरो नष्टनासाक्षो ह्रस्वपात्पृथुकुक्षिकः ॥८॥  
ह्रस्वोदरो ह्रस्वभुजो विकृतो गर्दभस्वनः ।  
पाशहस्तः पापचित्तः पापिष्ठः सधनुः सदा ॥९॥  
तस्य भार्या तथाभूता अपत्यान्यपि नारद ।  
तथा तु प्रेर्यमाणोऽसौ विवेश गहन वनम् ॥१०॥  
स जघान मृगान्पापः पक्षिणो बहुरूपिणः ।  
पञ्जरे प्राक्षिपत्कांश्चिज्जीवमानां स्तयेतरान् ॥११॥

क्षुधया परितस्ताङ्गो विह्वलस्तृपया तथा ।

भ्रान्तदेशो बहुतर न्यवतंत गृह प्रति ॥१२॥

ततोऽपराङ्मो सप्राप्ते निवृत्ते मधुमाधवे ।

क्षणात्तडिद्गजितं च साभ्रं चवाभवत्तदा ॥१३॥

ववो वायुः साश्मवर्षो वारिधारातिभीषणः ।

स गच्छेत्सुव्यधकः श्रान्तः पन्थान नावबुध्यतः ॥१४॥

वह बहुत ही भीषण आकृति वाला था । उसके नेत्र नीले वर्ण के थे और उसकी भुजाएँ बहुत छोटी थी । बड़े दाँतो वाला वनष्ट नास और आँखों वाला छोटे पैरों वाला तथा घड़ी कुसियों वाला वह था ॥८॥ उसका उदर छोटा था भुजाएँ भी छोटी थी तथा अत्यन्त विवृत स्वरूप वाला था । उसकी ध्वनि गधे के समान थी । वह सर्वदा अपने हाथों में पाश लेकर रहा करता था । चित्त में उसके पाप ही भरा रहता था और घनुष हाथ में लेकर वह महान् पापिष्ठ घूमा करता था ॥९॥ हे नारद ! उमरी भार्या भी वैसे ही दारुण और विवृत आकृति वाली थी और उसकी सन्तान भी उसी प्रकार की थी । उस पत्नी के द्वारा प्रेरित होकर गहन वन में प्रवेश किया करता था ॥१०॥ वन में प्रविष्ट होकर उस महान् पापी ने बहुत से स्वरूप वाले मृगों को और पक्षियों को मार डाला था । जो कुछ जीवित रह गये थे उन सबको उमने एक पिण्ड में डाल दिया था ॥११॥ भूय से परितप्त अश्रु वाला वह प्यास से भी बहुत घबड़ाया हुआ था । बहुत से वन के भागों में भ्रमण करने वाला वह अपने घर की ओर वापिस लौटा था ॥१२॥ जब दुपहर के बाद का समय हुआ तो उस समय में मधु माधव ने निवृत्त हो जाने पर क्षण मात्र में ही उस समय में मेघों के सहित बिजली की गर्जना हुई थी ॥१३॥ उस समय में जल की घोर धाराओं से अत्यन्त भीषण पत्थरों की वर्षा आँसों की वर्षा के सहित बड़ी भयानक वायु चलने लगी थी । वह व्याघ्र घर को जा ही रहा था कि मार्ग में ही ऐसी घटना घटने लगी थी । वह बहुत ही घबड़ाया हुआ था और महान् भयानक समय में अपने घर का मार्ग भूल गया था ॥१४॥

जल स्थलं गतमथो पन्थानमथवा दिशः ।

न वुबोध तदा पापः श्रान्तः शरणमप्यथ ॥१५

क गच्छामि क तिष्ठेयं किं करामोत्यचिन्तयत् ।

सर्वेषा प्राणिना प्राणानाहर्तः ह यथाऽन्तकः ॥१६

ममाप्यन्तकरं भूत सप्राप्त चाश्मवपणम् ।

आतारं नैव पश्यामि शिला वा वृक्षमन्तिके ॥१७

एवं बहुविध व्याधां विचिन्त्यापश्यदन्तिके ।

वने वनस्पतिमिवि नक्षत्राणा यथाऽग्निजम् ॥१८

मृगाणा च यथा सिंहमाश्रमाणा गृहाधिपम् ।

इन्द्रियाणां मन इव आतार प्राणिना नगम् ॥१९

श्रेष्ठ विटपिन शुभ्रं शाखापल्लवमण्डितम् ।

तमाश्रित्योपविष्टोऽभूत्क्लिन्नवासा स लुब्धकः ॥२०

स्मरन्भार्यायपत्यानि जीवेयुरथवा न वा ।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र चास्त प्राप्तो दिवाकरः ॥२१

उस समय मे वह पापी इतना थका हुआ था कि उस अन्धड़ और सूफान मे उसे जल-स्थल-गड्ढा-मार्ग और दिशाएँ कुछ भी सूझ नही पड़ता था । वह किसकी शरण ग्रहण करे-यह वह नही जान सका था ॥१५॥ उसने सोचा कि मैं अब क्या करूँ ? मैं यमराज की भाँति ही समस्त प्राणियों के प्राणों का आहरण करने वाला हूँ । मेरा भी अन्त कर देने वाली अश्मो ( ओलो ) की वर्षा हो रही है । मैं इस समय मे अपना परित्राण करने वाला कोई भी नही देख रहा हूँ । न इस समय में मेरे समीप मे कोई शिला है और न कोई वृक्ष ही है जिसका आश्रय मैं ले सकूँ ॥१६-१७॥ इस तरह से बहुत रीति से उस व्याध ने सोचा था इसके उपरान्त उसने समीप मे ही एक वृक्ष को देखा था जो उस उपवन में वनस्पति की भाँति तथा नक्षत्रों मे अग्निज के समान था । जिस तरह से सब पशुओं मे सिंह होता है और समस्त आश्रमों मे गृहस्थ होता है तथा सब इन्द्रियों मे मन होता है उनी प्रकार से प्राणियों के त्राण करने वाले उस वृक्ष को व्याध ने देखा था ॥१८-१९॥ वह वृक्ष परम श्रेष्ठ शुभ्र

और शाखाओ तथा पल्लवों से विभूषित था । उसी वृक्ष का समाश्रय लेकर भीगे हुए धस्त्रो वाला वह व्याध बैठ गया था ॥२०॥ वह व्याध अपनी भार्या और बच्चों का स्मरण कर रहा था कि वे इस भीषण समय में जीवित भी रहे होंगे या नहीं । इसी बीच में वही पर सूर्यदेव अस्ताचल को चले गये थे ॥२१॥

तमेव नगमाश्रित्य कपोतो भार्यया सह ।

पुनर्पुत्रः परिवृतो ह्यास्ते तत्र नगात्तमे ॥२२

सुपेन निर्भयो भूत्वा सुतृप्तः प्रीत एव च ।

वह्वा वत्सरा याता वसतस्तस्य पक्षि ॥२३

पतिव्रता तस्य भार्या सुप्रीता तेन च व हि ।

कोटरे सन्नगे श्रेष्ठे जलवाद्यग्निजिते ॥२४

भार्यापुत्रः परिवृतः सर्वदाऽऽस्ते कपोतकः ।

तस्मिन्दिने दैववशात्कपोतश्च कपोतकी ॥२५

भक्ष्यार्थं तु उभौ यातौ कपोतो नगमभ्यगात् ।

साऽपि दैववशात्पुत्र पञ्जरस्थैव वर्तते ॥२६

गृहीता लुब्धकेनाथ जीवमानेव वर्तते ।

कपोतकोऽप्यनत्यानि मातृहीनान्युदीक्ष्य च ॥२७

वर्षं च भीषण प्राप्तमस्त यातौ दिवःकरः ।

स्वकोटर तयाहीनमालोक्य विललाप सः ॥२८

उसी वृक्ष का आश्रय ग्रहण करके एक कपाल ( कबूतर ) अपनी भार्या के सहित पुत्र-पौत्रों से परिवृत होता हुआ उस उत्तम वृक्ष पर नवास किया करता था ॥२२॥ वह सुख के साथ निर्भय होकर परम मगुष्ट और प्रसन्न होकर वहाँ रहा करता था । उसको वहाँ पर निवास करते हुए बहुत से वर्ष व्यतीत हो गये थे ॥२३॥ उसकी भार्या पतिव्रता थी और उस अपने पति से भी वह परम प्रसन्न रहा करती थी । जस-अग्नि और वायु के मय से रहित उस श्रेष्ठ वृक्ष की खीतर में वह कबूतर अपनी भार्या और पुत्रों से परिवृत होता हुआ सर्वदा निवास किया करता है । उही दिन में दैव वश से वह कपोत और कबूतरों दोनों ही भक्ष्य के

लिये चले गये थे । हे पुत्र ! वह कपोती भी भाग्य के वश से पिंजरे में स्थित होकर व्याध के कब्जे में फँस गयी थी और वह कबूतर अपने आश्रम वाले वृक्ष पर समागत हो गया था । वह कपोती जीवित रहते हुए ही लुब्धक के द्वारा पकड़ ली गई थी । उस कपोत ने अपने मच्चों को माता से हीन देखा था ॥२४-२७॥ वर्षा बहुत ही भीषण हुई थी और सूर्यदेव भी अस्त हो गये थे । उस समय में उस कपोत ने अपनी आश्रय की खोतर को पत्नी से रहित देखा तो वह विलाप करने लग गया था ॥२८॥

तां वद्धां पञ्चरस्थां वा न बुबोध कपोतराट् ।  
अन्वारेभे कपोतो वै प्रियाया गुणकीर्तनम् ॥२९॥  
नाद्याप्यायाति कल्याणी मम हर्षविवर्धिनी ।  
मम धर्मस्य जननी मम देहस्य चेश्वरी ॥३०॥  
धर्मार्थिकाममोक्षाणां सैव नित्य सहायिनी ।  
तुष्टे हसन्ती रुष्टे च मम दुःखप्रमार्जनी ॥३१॥  
सखी मन्त्रेषु सा नित्य मम वाक्पारता सदा ।  
नाद्याप्यायाति कल्याणी सप्रयातेऽपि भास्करे ॥३२॥  
न जानाति व्रतं मन्त्रं देवं धर्मार्थमेव च ।  
पतिव्रता पतिप्राणा पतिमन्त्रा पतिप्रिया ॥३३॥  
नाद्याप्यायाति कल्याणी किं करोमि कं यामि वा ।  
किं मे गृह काननं च तथा हीन हि दृश्यते ॥३४॥  
तथा युक्तं श्रिया युक्तं भीषण वाऽपि शोभनम् ।  
नाद्याप्यायाति मे कान्ता यथा गृहमुदीरितम् ॥३५॥

वह कपोतो का राजा यह नहीं जानता था कि वह उसकी पत्नी पिंजरे में स्थित होकर बद्ध हो गयी है । तब तो अपनी पत्नी के वियोग में विलाप करते हुए उस कपोत ने अपनी प्रिया के गुणों का कीर्तन करना आरम्भ कर दिया था ॥२९॥ कपोत कह रहा था—वह कल्याणी मेरे हर्ष को बढ़ाने वाली अभी तक भी नहीं आ रही है । वह प्रिया मेरे धर्म की जमनी है और मेरे शरीर की स्वामिनी है ॥३०॥ धर्म, अर्थ,

धाम, मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों की निरंतर ही सहायता करने वाली भी वह ही मेरी प्रियतमा होती है । जब मैं परम मृदु होता था तो वह हँसती रहा करती थी और किसी कारण वश रुष्ट हो जाता था तो वह मेरे हार्दिक दुःख का परिमार्जन किया करती थी ॥३१॥ कभी किसी विषय में मन्त्रणा करने का अवसर होता था तो वह हमेशा मेरी सखी बन जाया करती थी अर्थात् हितैषी मित्र के समान सत्ताह दिया करती थी । वह सर्वदा मेरे वचनों में रति रक्ता करती थी । भगवान् भास्कर भी अस्त हो गये हैं और इतना विलम्ब होने पर भी वह कल्याणी भार्या अब तक भी नहीं आयी है ॥३२॥ वह मेरी पत्नी परम पतिव्रता है—पति को ही प्राण के समान मानने वाली है—पति ही उसका एक मात्र मन्त्र है और पति की वह बहुत ही प्यारी है । वह न कोई व्रत जानती है न मन्त्र का ही ज्ञान है—दैव को भी वह कुछ नहीं समझती और पति के सिवाय धर्मार्थ को भी नहीं जानती है ॥३३॥ वह मेरी परम कल्याणी प्रिया अभी तक भी नहीं आई है । मैं वहाँ जाऊँ और अब क्या करूँ ? अब यह मेरा घर क्या है—यह तो बन जंसा ही है । उसके बिना यह गृह बहुत बुरा दिखाई दे रहा है ॥३४॥ जब इस घर में वह रहती है तो यह गृह थी से सुसम्पन्न दिखाई देता है और चाहे यह कंसा भी भीषण हो तो अच्छा दिखलाई दिया करता है । वह मेरी कान्ता अभी तक भी नहीं आयी है जिसके होने पर ही यह गृह कहा गया है ॥३५॥

विनाऽनया न जीविष्ये त्यजे वाऽपि प्रियां तनुम् ।

किं कुर्वन्तु त्वपत्यानि लुप्तधर्मस्त्वह पुनः ॥३६

एव विलपस्तस्य भर्तुर्वाक्य निशम्य सा ।

पञ्चरस्येव सा वाक्य भर्तार मिदमब्रवीत् ॥३७

अत्राहमस्मि बद्धं व विवशाऽस्मि खगोत्तम ।

आनीताऽह लुब्धकेन बद्धा पार्श्वमंहामते ॥३८

धन्याऽस्म्यनुगृहीताऽस्मि पतिवन्ति गुणान्मम ।

सतो वाऽप्यसतो वाऽपि कृतार्याऽहं न सदायः ॥३९

तुष्टे भर्तरि नारीणा तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ।

विपर्यये तु नारीणामवश्यं नाशमाप्नुयात् ॥४०॥

त्व दैव त्व प्रभुर्मह्यं त्व सुहृत्त्व परायणम् ।

त्वं व्रतं त्वं पर ब्रह्म स्वर्गो मोक्षस्त्वमेव च ॥४१॥

मां चिन्तां कुरु कल्याण धर्मं बुद्धि स्थिरां कुरु ।

त्वत्प्रसादाच्च भुक्ता हि भोगाश्च विविधा मया ॥४२॥

अलं खेदेन मज्जेन धर्मं बुद्धि कुरु स्थिराम् ॥४३॥

उस कपोत ने उक्त प्रकार परनी के वियोग में क्रन्दन करते हुए कहा था कि अब मैं इसके बिना जीवित नहीं रहूँगा अथवा इस प्रिय शरीर का ही परित्याग कर दूँ । ये बच्चे क्या करेंगे ? मैं तो धर्म के लुप्त हो जाने वाला ही हो गया हूँ ॥३६॥ इस प्रकार से विलाप करते हुए अपने स्वामी के क्रन्दन पूर्ण इन वचनों को सुनकर पिंजड़े में स्थित होती हुई ही उस कपोती ने अपने भर्ता से यह कहा था ॥३७॥ उस कपोती ने कहा—हे स्वर्गोत्तम ! मैं हूँ तो यही पर, किन्तु पिंजड़े में बद्ध होने के कारण विवश हूँ । हे महती मति वाले ! पतिदेव ! इस सुव्यक्त के द्वारा पाशों से बाँध कर मुझे यहाँ लाया गया है ॥३८॥ मैं परम धन्य हूँ और अनुगृहीत हो गई हूँ कि मेरा स्वामी स्वयं अपने मुख से मेरे गुणों का कीर्तन करते हैं । चाहे वे गुण हों अथवा न भी हो तो भी मैं परम कृतार्थ हो गयी हूँ इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥३९॥ नारियो का यदि भर्ता पूर्णतया सन्तुष्ट है तो उससे सभी देवता परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न रहा करते हैं । यदि नारियो का पति ही उनसे सन्तुष्ट नहीं है तो अवश्य ही नाश के विपर्यय होने पर प्राप्त हो जाया करती हूँ क्योंकि नारियो का एक मात्र पति ही सब कुछ हुआ करता है ॥४०॥ हे पति देव ! मेरे आप ही दैव हैं—आप ही प्रभु हैं मेरे आप ही सुहृत् हैं और आप ही मेरे लिये परम देवता हैं । आप ही मेरे व्रत हैं—आप ही परमोपास्य देव हैं तथा ब्रह्म हैं और आप ही मेरे लिये स्वर्ग एवं मोक्ष है ॥४१॥ हे कल्याण स्वरूप ! आप मेरे लिये चिन्तित होकर ऐसा वरुण क्रन्दन मत करिए और आप अपनी धर्म सम्प्रदायिनी बुद्धि को ही सुस्थिर करिये । हे पति-

देव ! आपके प्रसाद से मैंने अनेक प्रकार के भोगों का उपभोग किया है । आप अब अत्यन्त खेद मेरे लिये न करिए और तिमिर की खिन्नता में निमग्न न होइए । आप तो मेरी चिन्ता का पूर्णतया त्याग करके धर्म में ही अपनी बुद्धि को सुस्थिर करिये ॥४२-४३॥

इति श्रुत्वा प्रिया वाक्यमुत्ततार नगोत्तमात् ।

यत्र सा पञ्जरस्था तु कपोति वर्तते त्वर(द्रुत)म् ॥४४

तामागत्य प्रिया दृष्ट्वा मृतवच्चापि लुब्धकम् ।

मोचयामीति तामाह निश्चेष्टो लुब्धकोऽधुना ॥४५

मा मुञ्चस्व महाभाग ज्ञात्वा सवन्धमस्थिरम् ।

लुब्धानां खेचरा ह्यहं जीवो जीवस्य चाशनम् ॥४६

नापराध स्मराम्यस्य धर्मबुद्धि स्थिरा कुरु ।

गुरुरग्निद्विजातीना वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ॥४७

पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ।

अभ्यागतमनुप्राप्तं वचनोस्तोपयन्ति ये ॥४८

तेषां वागीश्वरी देवी तृप्ता भवति निश्चितम् ।

तस्याहस्य प्रदानेन शक्रस्तृप्तिमवाप्नुयात् ॥४९

पितरः पादशौचेन अन्नार्घ्येन प्रजापतिः ।

तस्योपचाराद्धं लक्ष्मीविष्णुना प्रीतिमाप्नुयात् ॥५०

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार के अपनी प्रिया के वचनों का श्रवण करके वह कपोत उस अपने आश्रय वाले वृक्ष से नीचे उतर आया था और वह वहाँ पर पहुँच गया था जहाँ पर पिंजड़े में स्थित वह कपोती विद्यमान थी ॥४४॥ वह सुरन्त ही बहुत ही शीघ्रता से उसके समीप में पहुँच गया और उसने अपनी प्रिया को वहाँ पर देखा था तथा उस लुब्धक को भी देखा था जो मृतक के समान वही पर पड़ा हुआ था । उस कपोत ने अपनी प्रिया से कहा था कि मैं तुम्हारा मोचन करता हूँ क्योंकि यह व्याध तो इस समय में चेतनाहीन मूर्छित सा पड़ा हुआ है ॥४५॥ उस कपोती ने कहा—हे महाभाग ! इस सम्बन्ध को स्थिरता से धून्ध समझ कर मेरा मोचन मत करो । तात्पर्य यह है कि यह सांसारिक



पति-पत्नी का सम्बन्ध स्थायी नहीं है । व्याधों का घाघ अन्न तो पक्षी ही हुआ करते हैं क्योंकि जीव ही जीवों का भोजन हुआ करता है ॥४६॥ अब मैं तो इस व्याध के अपराध के विषय में कुछ भी स्मरण नहीं करती हूँ । आप भी धर्म की बुद्धि ही को स्थिर करिए । द्विजातियों का गुरु अग्निदेव होते हैं—वर्णों के गुरु ब्राह्मण होते हैं ॥४७॥ स्त्रियों का गुरु एक मात्र पति हुआ करता है और जो अम्यागत होता है वह तो सभी का गुरु हुआ करता है । अम्यागत अर्थात् अतिथि का सबसे अधिक महत्त्व शास्त्रों में माना गया है । जो लोग प्राप्त हो जानें वाले अम्यागत का परम सुमधुर वचनों के द्वारा तोप किया करते हैं उनके ऊपर वागीश्वरी देवी निश्चित रूप से तृप्त हो जाती है । उस अम्यागत को जो कुछ अन्न समर्पित किया जाता है तो उससे महेन्द्र देव परम संतुष्ट हो जाया करते हैं ॥४८-४९॥ अतिथि के चरणों को घोंने से पितृगण प्रसन्न होते हैं और अन्नादि के समर्पित करने से प्रजापति संतुष्ट होते हैं । अम्याग के अन्य उपचार करने से लक्ष्मी देवी तृप्त होती है और लक्ष्मी के साथ ही भगवान् भिष्णु भी परम प्रसन्न हुआ करते हैं ॥५०॥

शयने सर्वदेवास्तु तस्मात्पूज्यतमोऽतिथिः ।

अम्यागतमनुश्रान्त सूर्योऽढ गृहमागतम् ॥

त विद्यादेवरूपेण सर्वकनुफलो ह्यसौ ॥५१॥

अम्यागत श्रान्तमनुव्रजन्ति,

देवाश्च सर्वे पितरोऽग्नयश्च ।

तस्मिन् हि तृप्ते मुदमाप्नुवन्ति,

गते निराशेऽपि च ते निराशाः ॥५२॥

तस्मात्सर्वात्मना कान्त दुःख त्यक्त्वा क्षमं ब्रज ।

कृत्वा तिष्ठ शुभा बुद्धि धर्मकृत्य समाचार ॥५३॥

उपकारोऽपकारश्च प्रवराविति समती ।

उपकारिषु सर्वोऽपि करोत्युपकृति पुनः ॥५४॥

अपकारिषु यः साधु पुण्यमानस उदाहृतः ॥५५॥

अभ्यागत के शयन कराने पर समस्त देवगण सवृत हो जाते हैं । इस कारण मे जो अतिथि होता है वह तो परमाधिक पूजा करने के योग्य हुआ करता है । अनुश्रान्त-सूर्योद और गृह मे समागत अभ्यागत को साक्षात् देवता के ही रूप मे समझना चाहिए क्योंकि यह सब यज्ञो के फल के स्वरूप वाला ही हुआ करता है ॥५१॥ जो अभ्यागत परिश्रान्त हो उसके पीछे सब देवता-पितृगण और समस्त अग्नि गमन किया करते हैं अर्थात् उसके ही साथ पीछे २ चला करते हैं । जब वह अभ्यागत वृत हो जाता है तो ये सब भी परमानन्द को प्राप्त किया करते हैं और अतिथि निराश होकर किसी के घर से चला जाता है तो ये सब भी निराश होते हुए गमन किया करते हैं ॥५२॥ अतएव हे कान्त ! पूर्ण रूप से अपने हृदय के दुःख का त्याग करके शान्ति को प्राप्त करो । शुभ बुद्धि बना कर स्थित रहो तथा जो धर्म से परिपूर्ण पृथ्वी हो उसी को करना चाहिए ॥५३॥ उपकार और अपकार दोनों ही प्रवर है-ऐसा माना गया है । जो उपकार करने वाले हैं उनके विषय मे तो सभी उपकार किया करते हैं । जो साधु पुरुष अपकार करने वालो के विषय मे साधु होता है अर्थात् उन अपकारियो का भी उपकार करता है यही परम पुण्य का भागी बताया गया है ॥५४-५५॥

आवयोरनुरूपं च त्वयोक्तं साधु मन्यसे ।

किंतु वक्तव्यमप्यस्ति तच्छृणुष्व वरानने ॥५६॥

सहस्रं भरते कश्चिच्छतमन्यो दशापरः ।

आत्मानं च सुखेनान्यो वयं कष्टोदरभराः ॥५७॥

गर्तघान्यवनाः केचित्कृश्लघनिनोऽपरे ।

घटक्षिप्तघनाः केचिच्चञ्चुक्षिप्तघना वयम् ॥५८॥

पूजयामि कथं श्रान्तमभ्यागतमिमं शुभे ॥५९॥

अग्निरापः शुभा वाणी तृणकाष्ठादिकं च यत् ।

एतदप्यग्निने देयं क्षीतातो लुब्धकस्त्वयम् ॥६०॥

एतच्छ्रुत्वा प्रियावाक्यं वृक्षमारुह्य पक्षिराट् ।

आलोकयामास तदा वह्निं दूरं ददर्श ह ॥६१॥

स तु गत्वा बह्मिदेशं चञ्चुनोल्मुकमाहरत् ।

पुरोऽग्निं ज्वालयामास लुब्धकस्य कपोतकः ॥६२॥

शुष्ककाष्ठानि पर्णानि तृणानि च पुनः पुनः ।

अग्नौ निक्षेपयामास निशीथे स कपातराट् ॥६३॥

कपोत ने कहा—हे प्रिये ! तुमने हम दोनों के ही अनुरूप कथन किया है और तुम्हारा ज्ञान परमोत्तम है तथा तुम समुचित ही मानती हो किन्तु हे वरानने ! इस विषय मे मेरा कुछ वक्तव्य है उसका भी श्रवण कर लो ॥५६॥ इस ससार मे बहुत प्रकार के जीव हैं—कोई तो एक सहस्र प्राणियों का भरण-पोषण किया करता है—दूसरा सौ प्राणियों का पालन करता है, अन्य ऐसा है जो दश ही जीवों का पोषण किया करता है—कोई ऐसा ही है जो सुखपूर्वक अपना ही उदर-पोषण कर लेता है किन्तु हम लोग तो ऐसे प्राणी हैं जो अपना ही उदर बड़े कष्ट के साथ भरा करते हैं ॥५७॥ कुछ प्राणी ऐसे इसी ससार मे विद्यमान हैं जो अपने विशाल घन को भूमि के तहखानों मे गाढ़ कर रखते हैं—दूसरे ऐसे हैं जो कुशल घनी हैं । कतिपय ऐसे भी प्राणी हैं जो घटो मे भरकर घन को अर्थात् धान्य को रखते हैं किन्तु हम तो उन प्राणियों मे से हैं जो केवल अपनी चौच मे ही घन अर्थात् धान्य को रखते हैं । कथन का अन्तिमार्थ ऐसा ही है कि हमारे पास सग्रह तो होता ही नहीं है । हे शुभे ! भला फिर तुम ही बतलाओ मैं इस परम श्रान्त अभ्यागत का पूजन एवं सलाह किस तरह से करूँ क्योंकि हमारे पास मे तो कुछ भी संगृहीत नहीं है ॥५८-५९॥ उस कपोती ने कहा—हे प्राणनाथ ! इस समय मे विचारा यह लुब्धक शीत से अत्यन्त उत्पीडित हो रहा है । अग्नि-जल-परम मधुर एवं शुभ धाणी और जो भी तृण-काष्ठ प्रभृति कुछ हो वही इसको देना चाहिए ॥६०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपनी प्रिया के द्वारा कथित इस वचन को सुनकर वह पक्षियों का राजा अपने आश्रय वाले उस वृक्ष पर चढ़ा गया था और उस समय मे उसने देखा था कि बहुत दूरी पर कहीं अग्नि विद्यमान है ॥६१॥ वह उसी समय मे अग्नि के स्थल पर उड़ कर गया और अपनी चौच से बह्मि का एक कण वहाँ से

ले आया था । फिर उस सुव्यक्त के सामने उस कपोत ( कबूतर ) ने आग जलायी थी । उस आग में उमने सूखी हुई लकड़ियाँ-यत्ते तथा तृणों को बारम्बार डाल दिया था । वह उस समय में आधी रात का घोर शीत से पूर्ण समय था ॥६२-६३॥

तमग्निं ज्वलितं दृष्ट्वा लुब्धकः शीतदुःखितः ।  
 अवशानि स्वकाङ्क्षानि प्रताप्य सुखमाप्तवान् ॥६४॥  
 क्षुधाग्निना दह्यमानं व्याधं दृष्ट्वा कपोतकी ।  
 मा दुश्चस्व महाभाग इति भर्तारमब्रवीत् ॥६५॥  
 स्वशरीरेण दुःस्तार्तं लुब्धकं प्रीणयामि तम् ।  
 इष्टातिथीना ये लोकास्तास्त्व प्राप्नुहि सुव्रत ॥६६॥  
 मयि तिष्ठति नंवायं तव धर्मो विधीयते ।  
 इष्टातिथिर्मवामीह अनुजानीहि मा शुभे ॥६७॥  
 इत्युक्त्वाऽग्निं त्रिरावृत्यं स्मरन्देवं चतुर्भुजम् ।  
 विश्वात्मकं महाविष्णुं शरण्यं भक्तवत्सलम् ॥६८॥  
 यथासुखं जुषस्वेति घदन्नग्निं तथाऽऽविशत् ।  
 त दृष्ट्वाऽग्नौ क्षिप्तजीव सुव्यक्तो वाक्यमब्रवीत् ॥६९॥  
 अहो मानुषदेहस्य धिग्जीवितमिदं मम ।  
 यदिदं पक्षिराजेन मदर्थे साहसं कृतम् ॥७०॥

उस जली हुई अग्नि को देखकर वह व्याध जो शीत से अत्यन्त दुःखित था कुछ चेष्टा मुक्त हुआ और उसने अपने शीत की अधिकता से विषय अङ्गों को प्राप्त किया था और उससे उसे बहुत ही सुख प्राप्त हुआ था ॥६४॥ अब तो क्षुधा की अग्नि से दग्ध हुए उस व्याध को कपोती ने देखा था और फिर उसने अपने स्वामी से निवेदन किया कि हे ताप ! आर बड़े ही भाग्यशाली हैं अब मुझको इस पीछरे से मुक्त कर दीजिए अर्थात् पीछरे को खोलकर जाल में बद्ध मुझे खोलकर बाहिर निकाल दें जिससे मैं अपने शरीर के द्वारा जो कि एक दिन अवश्य ही विनाश को प्राप्त होने वाला है उस भूख से परम दुःखित व्याध को प्रसन्न करूँ । हे सुव्रत ! जो लोक अपने इष्ट अतिथियों के हैं

उनको आप प्राप्त करिए ॥६५-६६॥ कपोत ने अपनी प्रिया के उन वचनों का श्रवण करके कहा—कपोत बोला—मेरे जीवित एव विद्यमान रहते हुए तुम्हारा यह धर्म नहीं किया जाता है । हे शुभे ! यहाँ पर इष्टातिथि में ही होता हूँ—ऐसा ही तुम समझ लो ॥६७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इतना भर कहकर उस अग्नि की तीन प्रदक्षिणा उस कपोत ने की और भगवान् चतुर्भुज का स्मरण किया था जो इस विशाल विश्व के स्वरूप वाले क्षरणागति में सम्प्राप्त प्राणी की रक्षा करने वाले—अपने भक्तों पर बहुत ही प्यार करने वाले महाविष्णु हैं ॥६८॥ सुखपूर्वक प्रीति के साथ सेवन करो—इतना कहते हुए वह उस अग्नि में प्रवेश कर गया था । अग्नि में अपने सजीव शरीर को प्रक्षिप्त करने वाले उस कपोत को देखकर वह लुब्धक यह वचन कहने लगा । उस व्याघ्र ने कहा—ओहो ! मनुष्य का देह धारण करने वाले मेरे इस जीवन को धिक्कार है जब कि इस पक्षियों के राजा कपोत ने मेरे प्राणों की सुरक्षा के वास्ते इतना बड़ा साहस किया है अर्थात् अपने परम प्रिय प्राणों की आहुति दे दी है ॥६९-७०॥

एव ब्रुवन्त तं लुब्धं पक्षिणी वाक्यमब्रवीत् ॥७१

मा त्व मुञ्च महामाग दूर यात्येष मे पतिः ॥७२

तस्यातद्वचनं श्रुत्वा पञ्जरस्था कपोतकीम् ।

लुब्धको मोचयामास तरसा भीतवत्तदा ॥७३

साऽपि प्रदक्षिण कृत्वा पतिमग्निं तदा जगौ ॥७४

स्त्रीणामयं परो धर्मो यद्भर्तु रनुवेशनम् ।

वेदे च विहितो मार्गः सर्वलोकपु पूजितः ॥७५

व्यालग्राही यथा व्याल विलादुद्धरते वलात् ।

एव त्वनुगता नारी सह भर्ता दिव व्रजेत् ॥७६

तिस्रः कोटघोऽर्धकोटी च यानि रोमाणी मानुषे ।

तावत्काल वसेत्स्वर्गे भर्तारं याऽनुगच्छति ॥७७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार के वचनों को कहने वाले उस व्याघ्र से यह कपोती यह वचन कहने लगी थी ॥७८॥ कपोती ने कहा—

हे महानाथ ! जब आर नुते भी नुल कर दो कों जि मेरे स्वामी यह  
 बहूत दूर गनत कर रहे हैं ॥३०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उत्त पक्षिणी  
 के यह दबन खवन करके निखरे में निखर उत्त गङ्गावली को उत्त नुलक  
 में निखरे से नुल कर दिया पा । नदरि उत्तने कसोती को नुल ती  
 बडी तेडी से कर दिया पा किन्तु यह उत्त ननय में ननमीत ना हो  
 गया पा । उत्त गसोती ने नो निखरे से छूट कर उत्ती ननय में उत्त  
 बलि में निखर प्रदग्ग बनने पति की तीन परिहनादे को पों और  
 उत्ती ननय में यह गान किया पा । कसोती दोसी—इत्त सत्तार में  
 नारिणों का यही परन वन्न होडा है कि वे बन्ने नृत्त नर्ता के लप ही  
 चिता में बनना प्रवेश कर जावे । यही निखरों के लिदे वेद में नार्थ  
 निहित किया गया है और यह स्वामी का अनुसरन करना सभी लोकों  
 में पूजित नाग गया है ॥३१-३३॥ ब्यालों को पम्हने वाला नित  
 तरह से बलपूर्वक ब्यात (नर्त) को नित से उडूत कर लिदा करता है  
 इसी प्रकार से अनन पति के पीछे अनुसरन करने वाली नारी भी  
 बन्ने स्वामी के ही लप ननय लोक बती जादा करती है ॥३६॥  
 इत्त अनुप्य के शरीर में नाडे तीन करोड़ ओ रोन होते हैं उत्तने ही  
 वर्षों तक यह नारी स्वर्ग में निराम गिना करती है जो अनने स्वामी के  
 पीछे ही उत्तका अनुसरन किया करती है ॥३७॥

नमस्कृत्वा भुव देवान्नाङ्गा चानि वनस्तपोन् ।  
 आश्रास्य तान्पत्न्यानि लुब्धक वाक्यमब्रवीत् ॥३८॥  
 त्वत्प्रसादान्महामाग उवपन्नं ममेदृशम् ।  
 अनृत्यानां क्षमन्वेह भर्ता मामि विविष्टम् ॥३९॥  
 इत्तुक्त्वा पक्षिणी साध्वी प्रविवेश हृताशनम् ।  
 प्रविष्टाया हूतवहे जयशब्दो न्यवर्तत ॥४०॥  
 गमने सूर्यसकाम विमानमतिशोभनम् ।  
 तदाऽऽस्तौ नुरनिमी दपती दहये ततः ॥४१॥  
 हर्षेण प्रोचतुरनी लुब्धक वित्तयान्वितम् ॥४२॥

गच्छवस्त्रिदशस्थानमापृष्टोऽपि महामते ।

आवयोः स्वर्गसोपानमतिथिस्त्वं नमोऽस्तु ते ॥८३॥

विमानवरमारुढौ तौ दृष्ट्वा लुब्धकोऽपि सः ।

सधनुः पञ्चरं त्यक्त्वा कृताञ्जलिरभापत ॥८४॥

इसके अनन्तर उस कपोती ने भूमि की वन्दना की तथा देवों को-  
गङ्गा को और समस्त वनस्पतियों को प्रणाम किया था । फिर अपने  
बच्चों को समाश्रयन दिया था और अन्त में वह कपोती उस व्याघ्र  
से कहने लगी ॥७८॥ कपोती ने कहा—हे महाभाग ! आपके ही प्रसाद  
से मुझे यह सुअवसर प्राप्त हुआ है । अब आप मेरी सन्ततियों को क्षमा  
कर देना क्यों कि मैं तो अपने भर्त्ता के ही साथ स्वर्ग को गमन कर  
रही हूँ ॥७९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—बस, इतना कह कर वह पक्षिणी  
जो परम साध्वी थी अग्नि में प्रवेश कर गयी थी । उसके उस समय  
मे अग्नि में प्रविष्ट हो जाने पर जय ध्वनि हुई थी ॥८०॥ गमन करने  
के अवसर पर सूर्य के समान देदीप्यमान अत्यन्त शोभा वाला विमान  
वहाँ आया था और इसके पश्चात् देवों के समान वह दम्पती (पति-  
पत्नी का जोड़ा) उस विमान पर चढ़े हुए दिखलाई दिया था । उन दोनों  
ने बड़े ही हर्ष व साथ विस्मय से युक्त उस लुब्धक से कहा ॥८१-८२॥  
दम्पती ने कहा—हे महामते ! अब हम देवों के निवास स्थान को  
जा रहे हैं । आप से आज्ञा चाहते हैं । हम दोनों को स्वर्गारोहण की  
सीढ़ियाँ रूप आप ही अतिथि हुए हैं अर्थात् आपके ही आतिथ्य से हमको  
स्वर्ग की प्राप्ति हुई है और इसके कारण आप ही हैं अतएव आपको  
हमारा नमस्कार है ॥८३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस व्याघ्र ने भी  
परम श्रेष्ठ विमान पर चढ़े हुए उन दोनों को देखकर अपना धनुष और  
पिजरा छोड़ कर दोनों हाथों को जोड़ कर बोला ॥८४॥

न त्यक्तव्यो महाभागी देय किञ्चिदजानते ।

अहमत्रातिथिमन्यो निष्कृतिं वक्तुमर्हथः ॥८५॥

गौतमी गच्छ भद्रं ते तस्याः पाप निवेदय ।

तत्रैवाऽऽप्लवनात्पक्षं सर्वपापविमोक्षये ॥८६॥

मुक्तपापः पुनस्तत्र गङ्गायामवगाहने ।  
 अश्वमेधफल पुण्यं प्राप्य पुण्यो भविष्यति ॥८७॥  
 सरित्पङ्क्त्या गौतम्या ब्रह्मविष्णुशशभुवि ।  
 पुनराप्नवनादेव त्यक्त्वा देहं मलीमसम् ॥८८॥  
 विमानवरमास्तुः स्वर्गं गन्ताऽस्य पश्यम् ॥८९॥  
 तच्छ्रुत्वा वचनं ताम्या तथा चक्रं स लुब्धकः ।  
 विमानवरमास्तुः दिव्यरूपधरोऽभवत् ॥९०॥  
 दिव्यमात्याम्बरधरः पूज्यमानोऽप्सरोगणैः ।  
 कपोतश्च कपोती च तृतीयो लुब्धकस्तथा ॥  
 गङ्गायाश्च प्रभावेण सर्वे वं दिवमाक्रमन् ॥९१॥  
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं कापोतमिति विश्रुतम् ।  
 तत्र स्नानं च दानं च पितृपूजनमेव च ॥९२॥  
 जपयज्ञादिकं कर्म तदानन्त्याय कल्पते ॥९३॥

लुब्धक ने कहा—हे महाभाग बालो ! आपको मेरा त्याग नहीं करना चाहिए । मैं तो बहुत ही अज्ञानी हूँ । मुझे भी आप लोगो को कुछ देना चाहिए । मैं यहाँ पर मान्य अतिथि हूँ । आप मेरे पापों की कोई निष्कृति बतलाने के योग्य हैं ॥८५॥ दम्पती ने कहा—आप गौतमी गङ्गा के समीप में जाइये । आपका कल्याण वही पर होगा । गौतमी से अपने पापों के विषय में निवेदन करो । एक पक्ष पर्यन्त वहाँ पर आप्सवन करने से आप समस्त पापों से छुटकारा पाजायेंगे ॥८६॥ जब आप अपने किये हुए पापों से मुक्त हो जायें तो फिर विमुक्त होकर उक्त गौतमी गङ्गा में अवगाहन करने पर अश्वमेध यज्ञ के यजन करने का पुण्य-फल प्राप्त कर परम पुण्यवान् हो जायेंगे ॥८७॥ ब्रह्मा-विष्णु और शम्भु से समुत्पन्न हुई उन समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ गौतमी गङ्गा में फिर स्नान करने से ही इस महामतिव देह को त्याग कर आप परम श्रेष्ठ विमान पर समास्तु होकर निश्चित रूप से स्वर्गलोक को गमन करेंगे—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥८८-८९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन दोनों से कहे हुए उस वचन को सुनकर उस लुब्धक ने वंता ही



किया था और फिर उस पुण्य के प्रभाव से एक परम दिव्य विमान पर समावृष्ट होकर वह दिव्य रूप के धारण करने वाला हो गया था ॥६०॥ वह दिव्य मालाओं के धारण करने वाला तथा दिव्य वस्त्रधारी और अप्सराओं के द्वारा पूज्यमान हो गया था । वे कपोत-कपोती दोनों और तीसरा लुब्धक गौतमी गङ्गा के प्रभाव से सब के सब स्वर्गलोक को चले गये थे ॥६१॥ तभी से लेकर वह तीर्थ "कपोत तीर्थ"—इस शुभ नाम से विख्यात हो गया है । वहाँ पर किया हुआ स्नान-दान तथा पितृगण का अर्चन और जाप-यज्ञ प्रभृति सब अन्न एवं अक्षय माने जाते हैं ॥६२-६३॥

—:❀:—

### ३६—दशाश्वमेधतीर्थवर्णन

दशाश्वमेधिकं तीर्थं तच्छृणुष्व महामुने ।  
यस्य श्वगमात्रेण हयमेवफलं लभेत् ॥१॥  
विश्वकर्मसुतः श्रोमान्विश्वरूपो महाबलः ।  
तस्यापि प्रथमः पुत्रस्तत्पुत्रो भौवनो विभुः ॥२॥  
पुरोधः कश्यपस्तस्य सर्वज्ञानविशारदः ।  
तमपृच्छन्महाबाहुभौवनः सार्वभौवनः ॥३॥  
यक्ष्येऽहं हयमेघंश्च युगपद्दशभिर्मुने ।  
इत्यपृच्छद्गुरुं विप्रं क यक्ष्यामि सुरानिति ॥४॥  
सोऽवदद्देवयजनं तत्र तत्र नृपोत्तम ।  
यत्र यत्र द्विजश्रेष्ठाः प्रावर्तन्त महाक्रतून् ॥५॥  
तत्राभवन्नुपिगणा आत्विज्ये मखमण्डले ।  
युगपद्दशमेधानि प्रवृत्तानि पुरोधसा ॥६॥  
पूर्णता नाऽऽयुस्तानि द्वष्ट्वा चिन्तापरो नृपः ।  
विहाय देवयजनं पुनरन्यत्र तान्क्रतून् ॥७॥

उपक्रामत्तथा सत्र विघ्नदोषास्तमाययुः ।

दृष्ट्वाऽपूर्णंस्ततो यज्ञावाजा गुरुमभाषत ॥८॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे महामुने ! एक दशाश्वमेधिक तीर्थ है उसके विषय में ध्यान करिए जिसके बेंचल सुनने से ही अश्वमेध यज्ञ का पुण्य प्राप्त हो जाता है ॥१॥ विश्वकर्मा का पुत्र महान् बलवान् श्री सम्पन्न विश्व रूप था । उसका भी जो प्रथम पुत्र था उसका पुत्र विभु भीवन हुआ था ॥२॥ उसका पुरोहित कश्यप ऋषि थे जो कि सब प्रकार के ज्ञान के महान् पण्डित थे । महायाहु सार्व भीवन ने उन अपने पुरोहित जी से पूछा था ॥३॥ हे महामुने ! मैं एक ही धार में एक साथ दस अश्वमेधों के द्वारा यजन करूँगा । उसने अपने गुरु उन विप्रवर से यही पूछा था कि सब सूरों का यजन मैं कहाँ पर कर सकूँगा ॥४॥ उस पुरोहित कश्यप ने कहा—हे नृसिंह ! वहाँ-यहाँ पर ही देवों की यजन होता है जहाँ-जहाँ पर श्रेष्ठ द्विजों ने महान् क्रतुओं को पहिले किया था ॥५॥ वहाँ पर आतिथ्य मण्डप में ऋषियों का समुदाय एकत्रित हुआ और पुरोहित कश्यप मुनि के द्वारा एक साथ दस अश्वमेध यज्ञों का प्रारम्भ किया गया था ॥६॥ किन्तु वे पूर्ण नहीं हुए थे—उन यज्ञों की अपूर्णता को देखकर नृग बहुत ही चिन्ता युक्त हो गया था । उस राजा ने वहाँ पर देवों का यजन करना त्याग कर फिर किसी अन्य स्थल पर उन्हीं क्रतुओं को करने का उपक्रम किया था किन्तु वहाँ पर भी उसी दिनों के दैत्यों का समुदाय आगया । उस राजा ने अपने समारम्भ यज्ञों की अपूर्ण देखकर गुरुजी से कहा ॥७-८॥

देशदोषात्कालदोषान्मम दोषात्तवापि वा ।

पूर्णता नाऽऽप्नुवन्ति स्म दशमेधानि वाजिनः ॥९॥

ततश्च दुःखितो राजा कश्यपेन पुरोयसा ।

गोप्स तेभ्रतिर ज्येष्ठ गत्वा सवर्तमूचतुः ॥१०॥

भगव न्यु गपकार्याण्यश्वमे धानि मानद ।

दण सपूर्णता यान्ति त देश त गुरु वद ॥११॥

ततो घ्यात्वा ऋषिश्रेष्ठः सवर्तो भीषन सदा ।

अब्रवीद्गच्छ ब्रह्माणं गुरुं देशं वदिष्यति ॥१२

भौवनोऽपि महाप्राज्ञः कश्यपेन महात्मना ।

आगत्य मामब्रवीच्च गुरुं देशादिकं य यत् ॥१३

ततोऽहमब्रव पुत्र भौवनं कश्यपं तथा ।

गौतमी गच्छ राजेन्द्र स देशः क्रतुपुण्यवान् ॥१४

राजा ने कहा—हे भगवन् ! यह कोई देश का दोष है अथवा काल का दोष है ? मेरा ही कोई दोष या कमी है या कोई आपका दोष है ? क्या कारण है कि मेरे ये दश अश्वमेध यज्ञ एक साथ करने का जो मेरा सङ्कल्प था वह पूर्ण नहीं होता है ? ॥८॥ ब्रह्माजी ने कहा—इसके उपरान्त वह राजा अत्यन्त दुःखित होकर अपने पुरोहित कश्यप जी के साथ भगवान् वृहस्पति जी के जो ज्येष्ठ भाई सवर्त्त थे उनके समीप में जाकर उनसे उन दोनों ने कहा—कश्यप और भौवन ने कहा—हे मानद ! भगवन् ! दश अश्वमेध यज्ञ मुझे एक ही साथ करने हैं । वे दसो अश्वमेध यज्ञ पूर्णता को प्राप्त हो जावें—वह स्थल कौन सा है उमी देश को मेरे गुरुजी को बतलाने की कृपा कीजिए ॥१०-११॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके उपरान्त उमी समय में ऋषियों में परम श्रेष्ठ सम्बर्त्त जी ने योगाम्यास की रीति से ध्यान किया था और फिर उन्होंने कहा था कि ब्रह्माजी के समीप में चले जाओ । वे आपके गुरुजी को वह देश बतला देंगे ॥१२॥ इसके अनन्तर महान् पण्डित राजा भौवन महान् आत्मा वाले कश्यप ऋषि के साथ मेरे समीप में समागत हुए थे और वह गुरु तथा देशादि के सम्बन्ध में बोला था ॥१३॥ हे पुत्र ! इसके पश्चात् मैंने भौवन नृप और कश्यप मुनि से कहा था कि हे राजेन्द्र ! गौतमी गङ्गा के समीप में चले जाओ । वही देश क्रतुओं के लिये पुण्य वाला है ॥१४॥

अयमेव गुरुः श्रेष्ठः कश्यपो वेदपारगः ।

गुरोरस्य प्रसादेन गौतम्याश्च प्रसादतः ॥१५

एवेन हयमेधेन तत्र स्नानन वा पुनः ।

सेत्स्यन्ति तत्र यज्ञाश्च दशमेधानि वाजिनः ॥१६

यच्छ्रुत्वा भोवनो राजा गौतमीतीरमभ्यगात् ।

कश्यपेन सहायेन हयमेवाय दीक्षितः ॥१७॥

ततः प्रवृत्ते यज्ञेशे हयमेघे महाक्रतो ।

सपूर्णे तु तदा राजा पृथिवी दातुमुद्यतः ॥१८॥

ततोऽन्तरिक्षे वागुच्चैरुवाच नृपसत्तमम् ।

पूजयित्वा स्थित विप्रानृत्विजोऽय सदस्पतीन् ॥१९॥

पुरोधते कश्यपाय सशंलवनकाननाम् ।

पृथिवी दानुकामेन दत्त सर्वं त्वया नृपः ॥२०॥

भूमिदानस्पृहा त्यक्त्वा अन्नं देहि महाफलम् ।

नान्नदानसमं पुण्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥२१॥

हे राजन् ! आपके गुरु तो यह ही कश्यप मुनि परम श्रेष्ठ हैं क्यों कि यह वेदों के पारंगामी महान् मनीषी हैं । इन्हीं गुरुदेव के प्रसाद से और भगवती गौतमी गंगा की कृपा से वहाँ पर एक अश्वमेध यज्ञ से अथवा पुनः स्नान से वही पर दश अश्वमेध यज्ञ एक साथ पूर्ण हो जायेंगे ॥१२-१६॥ यह श्रवण करके राजा भोवन हयमेघ यज्ञ का यजन करने के लिये ही दीक्षित होकर कश्यप ऋषि को सहायक बनाकर गौतमी गंगा के तट पर पहुँच गया था ॥१७॥ इसके अनन्तर महान् क्रतु अश्वमेध के प्रवृत्त हो जाने पर जो कि सभी यज्ञों का ईश्वर है वह सम्पूर्ण हो गया था और उसके साङ्ग सम्पूर्ण हो जाने पर राजा समस्त भूमि का दान करने के लिये उद्यत हो गया था ॥१८॥ तब तो नभोमण्डल में आकाश वाणी ने उस राजाओं में श्रेष्ठ से कहा था जो विप्रों को ऋत्विजों को और सदस्पतियों को पूजकर वहाँ पर स्थित था ॥१९॥ आकाश वाणी ने कहा था—हे नृप ! आपने अपने पुरोहित मुनि के लिये पर्वतों और वनों से मुक्त पृथिवी को दान करने की कामना वाले ने सब कुछ दान कर दिया है ॥२०॥ अब आप भूमि के दान की स्पृहा का त्याग करके अब महान् फल वाले अन्न का दान दो क्योंकि अन्न के दान के समान पुण्य तीनों लोकों में अन्य किसी भी दान का पुण्य नहीं होता है ॥२१॥

विशेषतस्तु गङ्गायाः श्रद्धया पुलिने मुने ।  
 त्वया तु हयमेधोऽयं कृतः सबहुदक्षिणः ॥  
 कृतकृत्योऽसि भद्रं ते नार्थं कार्या विचारणा ॥२२॥  
 तथाऽपि दातुकामं तं महीं प्रोवाच भौवनम् ॥२३॥  
 विश्वकर्मज सार्वभौम मा मां देहि पुनः पुनः ।  
 निमज्जेऽहं सलिलस्य मध्ये तस्मान्न दीयताम् ॥२४॥  
 ततश्च भौवनो भीतः किं देयमिति चाब्रवीत् ।  
 पुनश्चोवाच सा पृथ्वी भौवनं ब्राह्मणंवृतम् ॥२५॥  
 तिला गावो घनं घान्यं यत्किञ्चिद्गौतमीतटे ।  
 सर्वं तदक्षयं दानं किं मां भौवन दास्यसि ॥२६॥  
 गङ्गातीरं समाश्रित्य ग्रासमेक ददाति यः ।  
 तेनाहं सकला दत्ता किं मां भौवन दास्यसि ॥२७॥  
 तद्भवो वचनं श्रुत्वा भौवनः सार्वभौवनः ।  
 तथैतं मत्वा विप्रेभ्यो ह्यन्नं प्रादात्सुविस्तरम् ॥२८॥  
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं दशाश्वमेधिकं विदुः ।  
 दशानामश्वमेधानां फलं स्नानादवाप्यते ॥२९॥

हे मुने ! विशेष रूप से श्रद्धा के साथ गङ्गा के पुलिन पर आपने बहुत दक्षिणा वाला यह अश्वमेध यज्ञ किया है । अब आप पूर्णतया कृतकृत्य (सफल) हो गये हैं । आपका कल्याण होगा । इसमें कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए ॥२२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—तो भी दान करने की कामना वाले उस राजा भौवन से महीं ने कहा था ॥२३॥ पृथिवी धोली—हे विश्वकर्मा से समुत्पन्न होने-वाले ! हे सार्वभौम ! मुझे आप बारम्बार मत दीजिए । मैं समुद्र के मध्य में निमग्न हो जाती हूँ वतएव मेरा दान मत करिए ॥२४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके पश्चात् वह राजा भौवन मय से डरा हुआ हो गया था और उसने कहा था कि मुझे क्या दान करना चाहिये । इसके अनन्तर फिर वह पृथ्वी ब्राह्मणों से समावृत भौवन से धोली ॥२५॥ भूमि ने कहा—हे भौवन ! इस गौतमी के तट पर तिल-गोएँ, घन-घान्य जो कुछ भी दान किया

जाता है वह अदाय होता है फिर आप मुझको क्यों देते हैं ॥२६॥ इस मोतमी गङ्गा के तीर पर रामाश्रय करके जो कोई एक भी ग्रास का दान दिया करता है उसने समस्त भूमि का दान ही कर दिया है ऐसा समझना चाहिए फिर हे भोवन ! मुझको क्यों दे रहे हैं ? ॥२७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा--उस सार्ध भोवन रामाद् भोवन ने भूमि के इस वचन का श्रवण करके उसे उगी तरह से मान लिया था और फिर उसने बहुत अधिक अन्न का दान विप्रों को दिया था ॥२८॥ उसी दिन से आरम्भ करके वह तीर्थ दशाश्वमेधिक विभूत हो गया है । वहाँ पर उस तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य को दश अश्वमेध यज्ञों के यजन करने का पुण्य-फल प्राप्त होता है ॥२९॥



### ४०—पैशाचतीर्थवर्णन

पैशाचं तीर्थमपर पूजितं ब्रह्मवादिभिः ।  
 तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि गोतम्या दक्षिणे तटे ॥१॥  
 गिरिर्ग्रहमगिरेः पार्श्वे अञ्जनो नाम नारद ।  
 तस्मिञ्शैले मुनिवर शापभ्रष्टा घराप्सरा ॥२॥  
 अजना नाम तत्राऽऽसीदुत्तमाङ्गेन वानरी ।  
 केसरी नाम तद्भर्ता अद्रिकेति तथाऽपरा ॥३॥  
 साऽपि केसरिणो भार्या शापभ्रष्टा घराप्सरा ।  
 उत्तमाङ्गेन मार्जरी साऽप्यास्तेऽञ्जनपर्वते ॥४॥  
 दक्षिणार्णवमभ्यागातो सरो लोकविश्रुतः ।  
 एतस्मिन्नन्तरेऽगस्त्योऽञ्जन पर्वतमभ्यगात् ॥५॥  
 अजना चाद्रिका चैव अगस्त्यमृषिसत्तमम् ।  
 पूजयामासतुरुभे यथान्याय यथामुखम् ॥

ततः प्रसन्नो भगवानाहोमे त्रियतां वरः ।

ते आहतुरुभेऽगस्त्यं पुत्री देहि मुनीश्वर ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—वहाँ पर गौतमी गङ्गा के दक्षिण तट पर एक दूसरा पेशाच तीर्थ है जो ब्रह्म वादियों के द्वारा समर्पित होता है । अब मैं उसका पूर्ण स्वरूप को बतलाता हूँ ॥१॥ हे नारद ! ब्रह्म गिरि के पार्श्व में एक अञ्जन नाम का गिरि है । हे मुनिवर ! उस पर्वत पर एक परम श्रेष्ठ अप्सरा शाप से भ्रष्ट हो गई थी ॥२॥ वहाँ पर उत्तम अङ्गो से युक्त अञ्जना नाम वाली नारी थी । केसरी नाम वाला उसका स्वामी था । और दूसरी अद्रिका नाम वाली थी ॥३॥ वह भी केसरी की ही भार्या थी जो कि वरा अप्सरा शाप से भ्रष्ट हो गयी थी उत्तमाङ्ग से वह मारजागी भी उस अञ्जन पर्वत पर रहती थी ॥४॥ वह सोको में परम प्रख्यात केसरी दक्षिण सागर को चला गया था । इसी अन्तर में अगस्त्य उस अञ्जन पर्वत पर समापत हो गये थे ॥५॥ उस समय में अञ्जना और अद्रिका इन दोनों ने श्रृपिणों में श्रेष्ठ अगस्त्य का न्यास पूर्वक यथा सुख पूजन किया था ॥६॥ तब तो भगवान् अगस्त्य उन दोनों पर बहुत ही अधिक प्रसन्न होकर उन दोनों से बोले कि मुझ से सुम दोनों वरदान माँग लो । हे मुनीश्वर ! उन दोनों ने अगस्त्य मुनि से कहा था कि हम दोनों को पुत्र होने का वरदान प्रदान करिये ॥७॥

सर्वेभ्यो बलिनी श्रेष्ठो सर्वलोकोपकारको ।

तथेत्युक्त्वा मुनिश्रेष्ठो जगमाऽऽशां स दक्षिणाम् ॥८॥

ततः कदाचित् काले अञ्जना चाद्रिका तथा ।

गीतं नृत्यं च हास्यं च कुर्वन्त्यौ गिरिमूधनि ॥९॥

वायुश्च निःश्रुतिश्चापि ते दृष्ट्वा सस्मितौ सुरौ ।

कामाक्रान्तधियौ चोभौ तदा सत्वरमीयतुः ॥१०॥

भार्ये भवेतामुभयोरायां देवी वरप्रदौ ।

ते अप्यूचतुरस्त्रेतद्रेमाते गिरिमूधनि ॥११॥

अंजनायां तथा वायोर्हनुमान्सजायत ।

अद्रिकायां च निऋतेरद्रिर्नाम पिशाचराट् ॥१२॥

पुनस्ते आहतुरुभे पुत्रौ जातौ मुनेर्वरात् ।

आवयोर्विकृत रूपमुत्तमाङ्गेन दूषितम् ॥१३॥

शापाच्छचीपतेस्तत्र युवामाज्ञातुमर्हथः ।

सतः प्रोवाच भगवान्वायुश्च निऋतिस्तथा ॥१४॥

वे पुत्र भी ऐसे होने चाहिए कि सबसे अधिक बलवान्-श्रेष्ठ और सभी लोको की भलाई करने वाले होंगे । उस मुनि श्रेष्ठ ने ऐसा ही होगा । यह कह दिया था और फिर वे दक्षिण दिशा को वहाँ से चले गये थे ॥८॥ इसके अनन्तर वे दोनों अञ्जना और अद्रिका किसी समय में उस पर्वत की शिखर पर गीत-नृत्य और हास्य कर रही थी । उसी समय में वायु और निऋति इन दोनों ने उन दोनों को देखा था और वे दोनों सुरस्मित युक्त हो गये थे । वे दोनों ही देव काम वासना से आक्रान्त बुद्धि वाले होकर बहुत ही शीघ्र वहाँ पर उसी समय में समागत होगये थे ॥९-१०॥ उन्होंने वहाँ पर उनसे कहा था कि दोनों हम दोनों की भार्या हो जाओ । हम दोनों वरदान देने वाले देव हैं । उन दोनों ने भी उनके कथन को स्वीकार कर लिया था और उन दोनों ने उस पर्वत की चांटी पर रमण किया था ॥११॥ उस अञ्जना नाम वाली वानरी के उदर से वायुदेव के द्वारा हनुमान ने जन्म ग्रहण किया था और अद्रिका के उदर से निऋति के द्वारा अद्रि नाम वाला पिशाचराट् समुत्पन्न हुआ था ॥१२॥ फिर उन दोनों ने कहा था कि दोनों पुत्र मुनि घर से समुत्पन्न हुए हैं । उन दोनों का रूप उत्तमाङ्ग ने विकृत एवं दूषित कर दिया है ॥१३॥ वहाँ पर शची के पति महेन्द्र के शाप से ऐसा हुआ है तो आप दोनों आज्ञा प्रदान करने के योग्य होते हैं । इसके अनन्तर भगवान् वायु देव तथा निऋति ने कहा था ॥१४॥

गीतम्या स्नानदानाभ्यां शापमोक्षो भविष्यति ।

इत्युक्त्वा तावुभौ प्रीतौ तत्रैवान्तरधीयताम् ॥१५॥



ततोऽञ्जनां समादाय अद्रिः पैशाचमूर्तिमान् ।  
 भ्रातुर्हनुमतः प्रीत्यै स्नापयामास मातरम् ॥१६॥  
 तथैव हनुमान्गङ्गामादायाद्रिमतिस्वरम् ।  
 मार्जाररूपिणीं नीत्वा गौतम्यास्तीरमाप्तवान् ॥१७॥  
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं पैशाचं चाऽऽञ्जनं तथा ।  
 ब्रह्मणो गिरिमासाद्य सर्वकामप्रदं शुभम् ॥१८॥  
 योजनानां त्रिपञ्चाशन्मार्जारं पूर्वतो भवेत् ।  
 मार्जारसज्जितात्तस्माद्धनूमन्तं वृषाकपिम् (?) ॥१९॥  
 फेनासंगममाख्यातं सर्वकामप्रदं शुभम् ।  
 तस्य स्वरूपं व्युष्टिश्च तत्रैव प्रोच्यते शुभा ॥२०॥

गौतमी यज्ञा में स्नान और दान करने से उस शाप से छुटकारा हो जायगा । इतना कह कर वे दोनों परम प्रसन्न हुए थे और वहीं पर वे अन्तर्धान हो गये थे ॥१५॥ इसके पश्चात् पैशाच मूर्ति वाले अद्रि ने अञ्जना को लेकर भाई हनुमान् की प्रीति के लिये माता का स्नपन कराया था ॥१६॥ उसी प्रकार से हनुमान भी बहुत ही शीघ्रता करते हुए मार्जार रूपिणी अद्रि को लेकर गौतमी के तट पर प्राप्त हो गये थे ॥१७॥ उसी समय से लेकर वह तीर्थ पैशाच तथा अञ्जन प्रसिद्ध हो गया था । ब्रह्मा के पिरि पर प्राप्त होकर वह परम शुभ तथा सब मनोरथों को पूर्ण करने वाला हो गया था ॥१८॥ त्रिपञ्च योजन पूर्व मार्जार होता है और उस मार्जार सज्जा वाले से वृषाकपि हनुमन्त फेना संगम नाम वाला है जो शुभ और सब मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला है । उसका स्वरूप और व्युष्टि परम शुभ वही पर कही जायः करती है ॥१९-२०॥

## ४१—क्षुधातीर्थवर्णन

क्षुधातीर्थमिति स्यातं शृणु नारद तन्मनाः ।  
 कथ्यमानं महापुण्यं सर्वकामप्रदं नृणाम् ॥१॥  
 शृपिरासितपुरा कण्वस्तपस्वी वेदवित्तमः ।  
 परिभ्रमन्नाश्रमाणि क्षुधया परिपीडितः ॥२॥  
 गौतमस्याऽऽश्रमं पुण्यं समृद्धं चान्नवारिणा ।  
 आत्मनं च क्षुधायुक्तं समृद्धं चापि गौतमम् ॥३॥  
 वीक्ष्य कण्वोऽथ वैषम्यं वैराग्यमगमत्तदा ।  
 गौतमोऽपि द्विजश्रेष्ठो ह्यहं तपसि निष्ठितः ॥४॥  
 समेन याच्न्नाश्रुक्ता स्यात्तस्माद्गौतमवेदमनि ।  
 न भोक्ष्येऽहं क्षुधातोऽपि पीडितोऽपि कलेवरे ॥५॥  
 गच्छेयं गौतमीं गङ्गामर्जयेयं च संपदम् ।  
 इति निश्चित्य मेधावी गत्वा गङ्गां च पावनोम् ॥६॥  
 स्नात्वा शुचिर्यतमना उपविश्य कुशासने ।  
 तुष्टाव गौतमीं गङ्गां क्षुधां च परमापदम् ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद ! एक क्षुधा तीर्थ नाम वाला परम विख्यात है । जब तुम सन्मस्क होकर उसका ध्वजण करो । उससे विषय में कथन करना मनुष्यों के लिये महान् पुण्य का प्रदान करने वाला तथा सब अभीप्सित मनोरथों को पूर्ण करने वाला होता है ॥१॥ बहुत प्राचीन काल में एक कण्व नाम धारी परम तपस्वी और वेदों के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ शृपि हुए थे । वह आश्रमों में इधर-उधर भ्रमण करते हुए भूख से अत्यन्त पीडित हो गये थे ॥२॥ अन्न और जल से समृद्ध एक परम पुण्य-मय गौतम मुनि का आश्रम था । अपने आपकी क्षुधा से युक्त और गौतम को पूर्णतया सभी प्रकार से समृद्ध देखा था । जब कण्व ने इतनी अपने आप में और गौतम में विषमता देखी तो उसी समय में कण्व मुनि को उत्कण्ठ वैराग्य हो गया था । उन्होंने अपने मन में विचार किया था कि गौतम श्री द्विजों में परम श्रेष्ठ है और मैं भी सर्वदा तपश्चर्या में

निष्ठित रहने वाला हूँ ॥३-४॥ एक अपने ही समान मुनि से याञ्चा करना भी उचित नहीं प्रतीत होती है । अतएव मैं गौतम के घर में यद्यपि मैं क्षुधा से अत्यन्त उत्पीड़ित होते हुए भी और भारीर के पीड़ित होने पर भी वहाँ भोजन नहीं करूँगा ॥५॥ मुझे अब गौतमी गङ्गा के समीप में ही चलना चाहिए और वही सम्पदाओं का अर्जन करना चाहिए । ऐसा ही अपने मन में दृढ़ निश्चय करके मेधा से सम्पन्न कण्व मुनि ने परम पावनी गौतमी गङ्गा के समीप में गमन किया था । वहाँ पर पहुँच कर कण्व ने स्नान किया था और परम पवित्र एव सयत्त मन वाला होकर एक कुशा के आसन पर उपवेशन किया था । वहाँ पर उस कण्व मुनि ने गौतमी गङ्गा का स्वतन किया था और परमापदा क्षुधा के विषय में भी प्रार्थना की थी ॥६-७॥

नमोऽस्तु गङ्गे परमातिहारिणि,

नमः क्षुधे सर्वजनार्तिकारिणि ।

नमो महेक्षानजटोद्भवे शुभे,

नमो महामृत्युमुखाद्विनिसृते ॥८॥

पुण्यात्मना शान्तरूपे क्रोधरूपे दुरात्मनाम् ।

सरिद्रूपेण सर्वेषां तापपापाहारिणी ॥९॥

क्षुधारूपेण सर्वेषां तापपापप्रदे नमः ।

नमः श्रेयस्करि देवि नमः पापप्रतदिनि ॥

नमः शान्तिकरि देवि नमो दारिद्र्यनाशिनि ॥१०॥

इत्येवं स्तुतस्तस्य पुरस्तादभवद्वयम् ।

एक गङ्गा मनोहारि ह्यपर भीषणाकृति ॥

नमः कृताञ्जलिभूत्वा नमस्कृत्वा द्विजोत्तमः ॥११॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये ब्राह्मि माहेश्वरि शुभे ।

चण्डवि श्यम्बके देवि गोदावरि नमोऽस्तु ते ॥१२॥

श्यम्बकस्य जटोद्भूते गौतमस्याघनाशिनि ।

सप्तधा सागरं यान्ति गोदावरि नमोस्तु ते ॥१३॥

सर्वपापकृतां पापे धर्मकामार्थनाशिनि।

दुःखलोभमयि देवि क्षुधे तुम्यं नमो नमः ॥१४॥

श्री कश्यप मुनि ने कहा—हे गये ! आपकी सेवा में मेरा सादर प्रणाम समर्पित है । आप तो परम आपत्तियों के हरण करने वाली हैं । हे क्षुधे ! आपको भी मेरा नमस्कार है । आप तो समस्त जनों की आत्ति (भीड़ा) दूर कर देने वाली हैं । हे शुभे ! आप तो भगवान् महेश्वर की जटाओं से समुत्पन्न होने वाली हैं । आपको मेरा नमस्कार है । आप महामृत के मुख से विनिःसृत होने वाली हैं आपको प्रणाम है ॥१५॥ आप पुण्यात्मा जनों के लिये तो परम शान्त स्वरूप वाली हैं और जो दुष्ट आत्मा वाले जन हैं उनके लिये आप क्रोध रूपिणी हैं । आप एक सरिता के स्वरूप के द्वारा सभी जनों के तापो और पापो का हरण करने वाली हैं ॥१६॥ आप ही क्षुधा का स्वरूप धारण करके सबको तापो और पापो को प्रदान किया करती हैं । आपको मेरा नमस्कार है । हे श्रेय करने देवि ! आपकी सेवा में मेरा प्रणाम है । हे पापो का प्रतर्दन करने वाली देवि ! आपको नमस्कार है । हे देवि ! आप शान्ति कर देने वाली हैं और हे देवि ! आप दरिद्रता का विनाश करने वाली हैं । आपको नमस्कार है ॥१७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस रीति से स्तुति करने वाले उन कश्यप मुनि के समक्ष में दो स्वस्म्य प्रवट होकर उपस्थित हो गये थे । एक तो उन दो में गङ्गा का मनोहर स्वरूप था और दूसरा परम भीषण आकृति वाला था । वह द्विजोत्तम दोनों हाथों को जोड़ कर नमस्कार करके उनके सामने खड़ा हो गया था ॥१८॥ कश्यप मुनि ने कहा—हे समस्त मङ्गलो के भी मङ्गल रूप वाली ! हे ब्राह्मि ! हे शुभे ! माहेश्वरि ! हे वैष्णवि ! हे श्रम्यके ! हे देवि गोदावरि ! आपकी सेवा में मेरा सादर प्रणाम है । हे गीतम मुनि के अधो का विनाश कर देने वाली ! आपका उद्भव तो भगवान् श्रम्यक की जटाओं से ही हुआ था । आप साग स्वस्म्यो से सागर में गमन किया करती हैं । हे गोदावरि ! आपको मेरा नमस्कार है ॥१९-२०॥ हे क्षुधे ! आप तो सब पापो के करने वाली को शत्रु रूप वाली हैं तथा धर्म और काम तथा अर्थ इन तीनों का आश

विनाश कर देने-वाली हैं । हे देवि ! आप परमाधिक दुःख और लोभ से परिपूर्ण हैं । आपकी सेवा में मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥१४॥

तत्कण्ववचनं श्रुत्वा सुप्रीते आहतुद्विजम् ॥१५

अभीष्टं वद कल्याण वरान्वरय सुव्रत ॥१६

प्रोवाच प्रणतो गङ्गा कण्वः क्षुधां यथाक्रमम् ॥१७

देहि देवि मनोज्ञानि कामानि-विभव मम ।

आयुर्वित्तं च भुक्तिं च मुक्तिं गङ्गे प्रयच्छ मे ॥१८

इत्युक्त्वा गौतमी गङ्गा क्षुधां चाऽऽह द्विजोत्तमः ॥१९

मयि मद्दंशजे चापि क्षधे तृष्णे दरिद्रिणि ।

याहि पापतरे रूक्षे न भूयास्त्व कदाचन ॥२०

अनेन स्तवेन ये वं त्वां स्तुवन्ति क्षुधातुराः ।

तेषा दारिद्र्यदुःखानि न भवेयुर्वरोऽपरः ॥२१

श्री ब्रह्माजी ने कहा—कण्व मुनि की इस स्तुति के वचनों को सुनकर वे दोनों देवियाँ बहुत प्रसन्न होकर उस द्विज कण्व से कहने लगी । गङ्गा और क्षुधा दोनों ने कहा—हे सुव्रत ! हे कल्याण ! अब तुम अपने अभीष्ट वरदानों की याचना कर लो ॥१५-१६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—कण्व मुनि ने परम प्रणत होकर गङ्गा देवी और क्षुधा से यथाक्रम निवेदन किया था ॥१७॥ कण्व ने कहा—हे देवि ! हे देवि ! मेरी मनोज्ञ कामनाओं को विभव-आयु वित्त और भुक्ति तथा मुक्ति को हे गङ्गे ! मुझे प्रदान कीजिए ॥१८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—वह उत्तम द्विज कण्व इस प्रकार से गौतमी गङ्गा देवी से निवेदन करके फिर क्षुधा से कहने लगा था ॥१९॥ कण्व ने कहा—हे क्षुधे ! हे तृष्णे ! हे दरिद्रिणि ! हे पापतरे ! हे रूक्षे ! मुझ में और मेरे वन में समुत्पन्न में फिर आप कभी भी मत गमन करना, यही मैं आपसे वरदान चाहता हूँ । इस स्तव के द्वारा जो लोग क्षुधा से आतुर होकर आपकी स्तुति किया करते हैं उनको कभी भी दरिद्रता या दुःख न होवे—यही मेरा दूसरा वरदान है जिसको मैं आपसे प्राप्त करता चाहता हूँ ॥२०-२१॥

अस्मिस्तीर्थे महापुण्ये स्नानदानजपादिकम् ।  
 ये कुर्वन्ति नरा भक्त्या लक्ष्मीभाजो भवन्तु ते ॥२२  
 यस्त्विदं पठते स्तोत्रं तीर्थे वा यदि वा गृहे ।  
 तस्य दारिद्र्यदुःखेभ्यो न भयं स्याद्वरोऽपरः ॥२३  
 एवमस्त्विति चोक्त्वा ते कण्व याते स्वमालयम् ।  
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं कण्वं गाङ्गं क्षुधाभिधम् ॥  
 सर्वपापहरं वत्स पितृणा प्रीतिवर्धनम् ॥२४-२५

इस महा पुण्यमय महान् तीर्थ में जो पुरुष स्नान-दान-होम और जप आदि किया करते हैं और भक्ति की भावना से युक्त होते हैं वे सभी लक्ष्मी के भाजन हो जावे ॥२२॥ जो पुरुष इस स्तोत्र का पाठ करता है चाहे किसी तीर्थ में इसका पाठ करे या घर में ही बैठकर करे उसको दारिद्र्यता के दुःखों से भय कभी भी न होवे—यह भी मुझे एक अन्य वरदान प्रदान कीजिए ॥२३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उसी समय में “ऐसा ही होगा”—यह कण्व मुनि से कहकर वे दोनों गङ्गा और क्षुधा देवियाँ अपने निवास गृह को चली गयीं थीं । तभी से आरम्भ करके वह तीर्थ क्षुधा नाम वाला कण्व और गाङ्ग इन नामों से विख्यात हो गया था । हे वत्स ! यह तीर्थ समस्त पापों का हरण करने वाला है और पितृगणों की प्रीति के वर्धन करने वाला होता है ॥२४-२५॥

—\*#—

### ४२—जनस्थानतीर्थवर्णन

तस्मादप्यपरं तीर्थं जनस्थानमिति श्रुतम् ।  
 चतुर्योजनविस्तीर्णं स्मरणान्मुक्तिदं नृणाम् ॥१  
 वैवस्वतान्वये जातो राजाऽभूज्जनकः पुरा ।  
 सोऽपापतेस्तु तनुजामुपयेमे गुणार्णवाम् ॥२

धर्मार्थकाममोक्षाणां जनकां जनको नृपः ।

अनुरूपगुणत्वाच्च तस्य भार्या गुणार्णवा ॥३॥

याज्ञवल्क्यश्च विप्रेन्द्रस्तस्य राज्ञः पुरोहितः ।

तमपृच्छन्तृपश्चेष्टो याज्ञवल्क्यं पुरोहितम् ॥४॥

भुक्तिमुक्ती उभे श्रेष्ठे निर्णीते मुनिसत्तमः ।

दासीदासेमतुरगरथाद्यं भुक्तिरुत्तमा ॥५॥

कित्वन्तविरसा भुक्तिर्भुक्तिरेका निरत्यया ।

भुक्तेर्भुक्तिः श्रेष्ठतमा भुक्त्या भुक्ति कथं व्रजेत् ॥६॥

सर्वसङ्गपरित्यागान्मुक्तिप्राप्तिः सुदुःखतः ।

तद्ब्रूहि द्विजशार्दूल सुखान्मुक्तिः कथं भवेत् ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उससे भी दूसरा एक तीर्थ है जो “जन-स्थान”—इस शुभ नाम से प्रसिद्ध है। इस तीर्थ का विस्तार चार योजन का है और यह केवल स्मरण करने ही से मुक्ति मनुष्यों को प्रदान कर दिया करता है ॥१॥ बहुत प्राचीन समय में पहिले वैवस्वत मनु के वंश में एक जनक नामधारी राजा ने जन्म ग्रहण किया था। उस राजा ने जलो के स्वामी की गुण गणों की सागर पृथ्वी के साथ विवाह किया था ॥२॥ राजा जनक की वह भार्या धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष की जनक थी। उस राजा के रूप और गुणों के अनुरूप होने से ही उसकी भार्या भी गुणों की खान थी ॥३॥ विप्रों का स्वामी याज्ञवल्क्य उस राजा जनक का पुरोहित था। उस नृपों में परम श्रेष्ठ जनक ने अपने पुरोहित याज्ञवल्क्य जी से एक बार पूछा था ॥४॥ राजा जनक ने कहा—परम श्रेष्ठ मुनियों के द्वारा भुक्ति ( सासारिक सुखों का उपभोग ) और मुक्ति ये दोनों ही श्रेष्ठ बतलाई गयी है। दासी-दास-हाथी-घोड़े-रथ आदि के द्वारा सुखों का उपभोग करना भुक्ति होती है जो कि परमोत्तम है और प्रायः सभी इसकी अभिलाषा रखते हैं ॥५॥ किन्तु विषयों के रस का भोग करना अच्छा सो प्रतीत होता है अन्त में वह भुक्ति निरस हो जाया करती है अर्थात् उसका आनन्द नष्ट हो जाता है क्योंकि इसकी एक अवधि हुआ करती है। हाँ, मुक्ति एक ऐसी है जिसका कभी विनाश

नही होना है और उसमें नीरसता आनी ही नहीं है । अतएव इस भुक्ति से मुक्ति परम श्रेष्ठतम होती है तो हे भगवन् ! यह बतलाइये इस भुक्ति से मुक्ति की प्राप्ति के लिये कैसे गमन किया जाता है ? ॥६॥ सभी के सङ्ग के परित्याग कर देने से जो मुक्ति की प्राप्ति बतलायी गयी है वह तो बहुत ही दुःखों के साथ हो सकती है क्योंकि सबके संग का परित्याग करना ही बहुत दुष्कर कार्य है । हे द्विज शार्ङ्ग ! अब आप कृपा कर यही बतलाइये कि सुख पूर्वक मुक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है ? ॥७॥

अपापतिस्तवः गुरुः श्वशुरः प्रियकृत्तया ।

त गत्वा पृच्छ नृपते उपदेक्ष्यति ते हितम् ॥८॥

याज्ञवल्क्यश्च जनको राजान वरुण सदा ।

गत्वा धोचतुरव्यग्रौ मुक्तिमार्गं यथाक्रमम् ॥९॥

द्विधा तु सत्स्थितः मुक्ति कर्मद्वारेऽप्यकर्मणि ।

वेदे च निश्चितो मार्गः कर्म ज्यायो ह्यकमणः ॥१०॥

सर्वं च कर्मणा बद्धं पुरुषार्थं चतुष्टयम् ।

अकर्मणोवाऽऽप्स्यत इति मुक्तिमार्गो मृषोच्यते ॥११॥

कर्मणा सर्वधान्यानि सेत्स्यन्ति नृपसत्तम ।

तस्मात्सर्वात्मना कर्म कर्तव्यं वेदिक नृभिः ॥१२॥

तेन भुक्ति च मुक्ति च प्राप्नुवन्तीह मानवाः ।

अकमणः कर्म पुण्य कर्म चाभ्याश्रमेषु च ॥१३॥

जात्याश्रितं च राजेन्द्र सत्रापि शृणु धर्मवित् ।

आश्रमाणि च चत्वारि कर्मद्वाराणि मानद ॥१४॥

याज्ञवल्क्य महामुनि ने कहा—जलो का स्वामी वरुण देव आपके गुरु-श्वशुर तथा आपके प्रिय करने वाले हैं । हे नृप ! आप उन्हीं वरुण देव के समीप में गमन करिये । वे आपके हित की बात का उपदेश अवश्य ही करेंगे ॥८॥ उसी समय में याज्ञवल्क्य मुनि और राजा जनक राजा वरुण देव के समीप में पहुँचे थे । वहाँ जाकर इन दोनों ने व्यग्रता से रहित होकर यथाक्रम मुक्ति के मार्गों की पूछा या ॥९॥ वरुण देव ने कहा—यह मुक्ति दो प्रकार की सत्स्थित होती है । कर्मद्वार में और



अकर्म मे भी मुक्ति होती है अर्थात् कर्मों के करते हुए भी मुक्ति होती है तथा कर्मों का सर्वथा त्याग करके भी मुक्ति प्राप्त की जाया करती है । वेद मे इसका मार्ग निश्चित किया गया है । कर्म न करने से कर्मों का करना अधिक श्रेष्ठ होता है ॥१०॥ ये चारों प्रकार के पृत्त्यर्थ सभी कर्मों के द्वारा बद्ध है और अकर्म से भी है अतएव यह मुक्ति का मार्ग ही मृपा कहा जाता है ॥११॥ हे नृप श्रेष्ठ ! समस्त धान्य कर्म से ही हुआ करते हैं इसी लिये मनुष्यों को सर्वात्मभाव से वैदिक कर्म के द्वारा मानव भुक्ति एव मुक्ति दोनों को इस लोक मे प्राप्त किया करते हैं । कर्म न करने से कर्मों का करना पुण्यमय होता है और वह कर्म भी आश्रमो में रह कर ही करना चाहिए ॥१२-१३॥ हे राजेन्द्र ! वह जाति के आश्रित है । उनमे भी धर्म के चेत्ता धवण करो । वे आश्रम चार होते हैं, जो हे मानव ! कर्मों के द्वारा हुआ करते हैं ॥१४॥

चतुर्णामाश्रमाणां च गार्हस्थ्य पुण्यदं स्मृतम् ।  
तस्माद्भुक्तिश्च मुक्तिश्च भवतीति मतिर्मम ॥१५॥  
एतच्छ्रुत्वा तु जनको याज्ञवल्क्यश्च बुद्धिमान् ।  
वरुण पूजयित्वा तु पुनर्वचनमूचतुः ॥१६॥  
को देशः किं च तीर्थं स्याद्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।  
तद्वदस्व सुरश्रेष्ठ सर्वज्ञोऽसि नमोऽस्तु ते ॥१७॥  
पृथिव्यां भारत वर्षे दण्डक तत्र पुण्यदम् ।  
तस्मिन्क्षेत्रे कृतं कर्म भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् ॥१८॥  
तीर्थानां गौतमी गङ्गा श्रेष्ठा मुक्तिप्रदा नृणाम् ।  
तत्र यज्ञेन दानेन भोगान्मुक्तिमवाप्स्यति ॥१९॥  
याज्ञवल्क्यश्च जनको वाच श्रुत्वा ह्यपांपतेः ।  
वरुणेन ह्यनुज्ञातौ स्वपुरी जग्मतुस्तदा ॥२०॥  
अश्वमेधादिकं कर्म चकार जनको नृपः ।

याजयामास विप्रेन्द्रो याज्ञवल्क्यश्च तं नृपम् ॥२१॥

इन चारो आश्रमो मे गार्हस्थ्य आश्रम परम पुण्य के प्रदान करने वाला बताया गया है । इस गार्हस्थ्य आश्रम मे रहने से भुक्ति और

मुक्ति ये दोनों ही हो जाती है—मेरा ऐसा ही विचार है ॥१५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—राजा जनक और परम बुद्धिमान् याज्ञवल्क्य मुनि ने वरुण देव के उन वचनों का श्रवण करके उन दोनों ने पुनः वरुण देव का पूजन करके फिर उनसे पूछा था ॥१६॥ कौन सा वह देश है और कौन सा तीर्थ है जो मुक्ति और मुक्ति इन दोनों के प्रदान करने वाला होता है ? हे गुरो मे परम श्रेष्ठ ! यही आप हमको बतलाने की कृपा कीजिए । आप तो सभी कुछ के ज्ञाता है ॥१७॥ वरुण देव ने कहा—पृथिवी में भारत वर्ष है और उस भारत में भी एक दण्डक नामक क्षेत्र है जो परम पुण्य का प्रदान करने वाला है । उस क्षेत्र में किया हुआ कर्म मनुष्यों को मुक्ति और मुक्ति दोनों के प्रदान करने वाला हुआ करता है ॥१८॥ सब तीर्थों में गौतमी गङ्गा परम श्रेष्ठ है जो कि मानवों को भोग और मोक्ष दोनों के प्रदान करने वाली होती है । वहाँ पर यज्ञ का यजन करने से और दान देने से भोग से ही मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर लिया करता है ॥१९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपो ( जलो ) के स्वामी ( वरुण ) के इन वचनों का श्रवण करके याज्ञवल्क्य मुनि और जनक नृप दोनों ही वरुण के द्वारा आज्ञा प्राप्त कर उस समय में अपनी पुरी को चले गये थे ॥२०॥ फिर राजा जनक ने अश्वमेध आदि कर्म किये थे और विप्रेन्द्र याज्ञवल्क्य ने उस नृप को यजन कराया था ॥२१॥

गङ्गातीर समाश्रित्य यज्ञान्मुक्तिमवाप राट् ।

तथा जनकराजानो बहवस्तत्र कर्मणा ॥२२॥

मुक्तिं प्रापुमहाभागा गौतम्याश्च प्रसादतः ।

सतः प्रभूतिं तत्तीर्थं जरस्थानेति विश्रुतम् ॥२३॥

जनकानां यज्ञसदो जनस्थानं प्रकीर्तितम् ।

चतुर्योजनविस्तीर्णं स्मरणात्सर्वपापनुत् ॥२४॥

तत्र स्नानेन दानेन पितृणां नर्पणेन तु ।

तीर्थस्य स्मरणाद्वाऽपि गमनाद्भक्तिसेवनात् ॥२५॥

सर्वान्कामानवाप्नोति मुक्तिं च समवाप्नुयात् ॥२६॥

उस राजा ने गौतमी गंगा के तट पर समाश्रित होकर यज्ञ का यजन करने से मुक्ति प्राप्त की थी । तथा वहाँ पर कर्म के द्वारा जनक आदि राजाओं ने जो महान् भाग वाले थे, गौतमी गङ्गा के प्रसाद से मुक्ति को प्राप्त किया था । तभी से लेकर वह तीर्थ 'जनस्थान'—इस नाम से संसार में विख्यात हो गया है ॥२२-२३॥ जनको के जो यज्ञों के यजन करने के स्थल हैं वे ही जनस्थान नाम से प्रख्यात हैं । ये स्थल धार योजन के विस्तार वाले हैं और इनके केवल स्मरण करने ही से समस्त पापों का विनाश कर देने वाला होता है ॥२४॥ वहाँ पर पहुँच कर स्नान-दान और पितृगणों का तर्पण करने से अथवा केवल इस तीर्थ के स्मरण करने से भी एवं वहाँ गमन करके भक्ति भाव से सेवन करने से मनुष्य सभी मनोरथों को प्राप्त कर लेता है और मुक्ति को भी निश्चित रूप से प्राप्त कर लिया करता है ॥२५-२६॥

### ४३—गरुड़तीर्थवर्णन

गरुडं नाम यत्तीर्थं सर्वविघ्नप्रशान्तिदम् ।  
तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः ॥१॥  
मणिनाग इति त्वासीच्छेपपुत्रो महाबलः ।  
गरुडस्य भयाद्भक्त्या तोषयामास शकरम् ॥२॥  
ततः प्रसन्नो भगवान्परमेष्ठी महेश्वरः ।  
तमुवाच महानागं वरं वरय पद्मग ॥३॥  
नागः प्राह प्रभो मह्यं देहि मे गरुडाभयम् ।  
तथेत्याह च त शंभुर्गरुडादभयं भवेत् ॥४॥  
निर्गंतो निर्भयो नागो गरुडादरुणानुजात् ।  
क्षीरोदशायी यत्राऽऽस्ते क्षीराणं वसमीपतः ॥५॥  
इतश्चेतश्च चरति नागोऽसी सुखशीतले ।  
गरुडोऽपि च यत्राऽऽस्ते तं देशमपि यात्यसी ॥६॥

गरुडः पद्मगं दृष्ट्वा चरन्तं निर्भयेन तु ।

त गृहीत्वा महानागं प्राक्षिपत्स्वस्यै वैरमनि ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—गरुड नाम वाला जो तीर्थ है वह सब विष्णुओं की प्रशान्ति के प्रदान करने वाला है । हे नारद ! उस तीर्थ के प्रभाव की मैं बतलाऊंगा । उसको आप श्रवण करो और यत्न के साथ ही भली-भांति सुन लो ॥१॥ एक महान् बलशाली शेषनाग का पुत्र मणिनाग था । उसने गरुड के भय से डर कर बहुत ही भक्ति की प्रबल भावना से भगवान् शङ्कर को प्रसन्न किया था ॥२॥ उसकी भक्ति से भगवान् परमेश्वरी महेश्वर अत्यन्त प्रसन्न हो गये थे और उस महानाग से उन्होंने कहा था—हे पन्नग ! वरदान या वरण कर लो ॥३॥ उस नाग ने कहा था—हे प्रभो ! आप यदि मुझ पर प्रसन्न हो गये हैं तो मुझको गरुड से कोई भी भय न रहने का वरदान मुझे प्रदान कीजिए । तब तो भगवान् शम्भु ने उससे कहा था कि तुझे गरुड से अभय हो जायगा ॥४॥ फिर वह नाग अरण के अनुज गरुड से सर्वथा निडर होकर निकल गया था और जहाँ पर क्षीर सागर के समीप से क्षीर सागर में स्नान करने वाले रहते थे ॥५॥ यह नाग सुख पीतल स्थल में इधर-उधर विचरण किया करता था । जहाँ पर गरुड भी रहा करता था उस भाग में भी यह जाया करता था क्योंकि इसको फिर उसको गरुड से तो कोई भय शेष नहीं रह गया था ॥६॥ निर्भयता पूर्वक संचरण करने वाले उस पन्नग को देखकर गरुड ने उस महानाग को पकड़ कर अपने ही घर में डाल दिया था ॥७॥

त वदन्त्या गरुडे. पार्श्वगंरुडो नागसत्तमम् ।

एतस्मिन्नन्तरे नन्दी प्रोवाचेष्ट जगत्प्रभुम् ॥८॥

नून नागो न चाऽऽप्याति भक्षितो वद्ध एव वा ।

गरुडेन सुरेशान जीवन्नागो न सत्रजेत् ॥९॥

नन्दितो वचन श्रुत्वा ज्ञात्वा शम्भुरयाग्रीत् ॥१०॥

गरुडस्य गृहे नागो वद्धस्तिष्ठति सत्वरम् ।

गत्वा तं जगतामीश विष्णुं स्तुहि जनादेनम् ॥११॥

वद्धं नागं काश्यपेन मद्वाक्यादानय स्वयम् ।  
तत्प्रभोर्वचनं श्रुत्वा नन्दी गत्वा श्रियः पतिम् ॥१२॥  
व्यज्ञापयत्स्वयं वाक्यं विष्णुं लोकपरायणम् ।  
नारायणः प्रीतमना गरुडं वाक्यमब्रवीत् ॥१३॥

गरुड़ ने उस नागो मे धोष्ठ को गरुड़ पाशो से बाँध कर घर मे डाल रखवा था । इसी बीच में नन्दी ने जगत् के प्रभु ईश्वर से कहा था ॥८॥ नन्दिकेश्वर ने निवेदन किया था—वह नाग यहाँ पर नहीं आता है अतः निश्चय ही या तो वह खा लिया गया है अथवा बाँधकर कहीं पर उसे डाल दिया है । हे सुरेशान ! गरुड़ के द्वारा ही ऐसा किया गया है कि यदि वह जीवित भी है तो कहीं पर गमन नहीं कर रहा है ॥९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—नन्दी के इस वचन का श्रवण करके और जान करके भगवान् शम्भु ने कहा था ॥१०॥ शिवजी ने कहा—इस समय मे वह नाग गरुड़ के घर मे बाँधा हुआ पड़ा है । तुम शीघ्र जाओ और जगतो के स्वामी भगवान् जनार्दन विष्णु का स्तवन करो ॥११॥ काश्यप अर्थात् कश्यप मुनि के पुत्र गरुड़ के द्वारा बद्ध किये गये नाग को मेरे वचन मे स्वयं तुम यहाँ ले आओ । प्रभु शिव के उस आदेश वचन को सुन कर तुरन्त ही नन्दी धी के स्वामी भगवान् विष्णु के समीप में पहुँच गया था और उस नन्दी ने लोक परायण विष्णु की सेवा मे भगवान् शिव के आदेश को बतला दिया था तब तो प्रसन्न मन वाले नारायण ने गरुड़ से यह वचन कहा था ॥१२-१३॥

विततात्मज मे वाक्यान्नन्दिने देहि पद्मगम् ।  
कम्पमानस्तदाकण्यं नेत्युवाच त्रिहंगमः ॥  
विष्णुमप्यब्रवीत्कोपात्सुपर्णो नन्दितोऽन्तिके ॥१४॥  
यद्यत्प्रियतम किञ्चिद्भूत्येभ्यः प्रभविष्णवः ।  
दास्यन्त्यन्ये भवान्नेव मयाऽऽनूत हरिष्यति ॥१५॥  
पश्य देव त्रिनयन नाग मोक्षयति नन्दिना ।  
मयोपपादित नाग त्वं तु दास्यसि नन्दिने ॥१६॥

त्वा वहामि सदा स्वामिन्मम देय सदा त्वया ।  
 मयोपपादित नाग प्रक्तुं देहीति नोचितम् ॥१७॥  
 सता प्रभूणां नेय स्याद्वृत्तिः सद्वृत्तिकारिणाम् ।  
 सन्तो दास्यन्ति भृत्येभ्यो मदुपात्तहरो भवान् ॥१८॥  
 दैत्याञ्छपसि सग्रामे मद्वलेनैव केशव ।  
 अहं महाबलीत्येव मुग्धं व श्लाघते भवान् ॥१९॥  
 गरुडस्येति तद्वाक्यं श्रुत्वा चक्रगदाधरः ।  
 विहस्य नन्दिनः पार्श्वं पश्यदिभलोकपालकैः ॥२०॥  
 इदमाह महाबुद्धिर्मा समुह्य कृशो भवान् ।  
 त्वद्वचनमसुरान्तर्वाञ्छेऽहं खगसत्तम ॥२१॥

भगवान् विष्णु ने कहा—हे विनता के पुत्र ! मेरी आज्ञा से उस  
 पक्षी को इसी समय मे नन्दी को दे दो । यह सुन कर कपिले हुए पक्षी  
 गरुड ने 'नहीं दूंगा'—यह वचन कहा था । उस नन्दी के समीप में ही  
 उस सुपर्ण ( गरुड ) ने कोप से भगवान् विष्णु को भी ऐसा कह दिया  
 था ॥१४॥ गरुड ने कहा — जो जो भी कुछ प्रियतम हुआ करता है  
 समर्थ स्वामी अपने भृत्यों को दिया करते हैं यह तो अन्य स्वामियों की  
 बात है । आप मेरे द्वारा लाये हुए इस नाग को नहीं हरण करेंगे ॥१५॥  
 आप त्रिनेत्र देव भगवान् शिव को ही देव लीजिए कि वे नन्दी के द्वारा  
 नाग को छुड़वा रहे हैं । मेरे द्वारा लाये हुए नाग को मेरे स्वामी होकर  
 भी आप इस नन्दी को दिला रहे हैं ॥१६॥ हे स्वामिन् ! मैं तो आपका  
 बाहुन सदा किया करता हूँ । मुझे तो सदा ही आपको देना चाहिए ।  
 मेरे द्वारा प्राप्त किये गये नाग को आप कहते हैं 'दे दो'—यह तो सर्वथा  
 अनुचित ही है ॥१७॥ सद्वृत्तिकारी सत् प्रभुओं की वृत्ति ऐसी होती है  
 कि प्राप्त करना चाहिए और सत्पुरुष तो अपने भृत्यों के लिये दिया ही  
 करते हैं किन्तु आप तो मेरे द्वारा जो प्राप्त किया गया है उसका भी  
 हरण करने वाले हो रहे हैं ॥१८॥ हे केशव ! सग्राम में आप मेरे ही  
 बल के द्वारा दैत्यों के ऊपर विजय प्राप्त किया करते हैं । आपकी जो  
 यह श्लाघा है कि मैं बड़ा भारी वनवान् हूँ यह तो मिथ्या ही है ॥१९॥

॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—समस्त लोक पालको के देखते हुए गरुड़ के इन ध्वजों को धनु और गदा के धारण करने वाले प्रभु ने सुनकर नन्दी के समीप में उनको हँसी आ गई थी ॥२०॥ भगवान् महा बुद्धिमान् विष्णु ने कहा था कि हे खगो मे परम धेष्ट ! आह मेरा वहन करके कुश हो गये है क्योंकि मैं तुम्हारे ही बल से सब असुरों को जीतूँगा ॥२१॥

इत्युक्त्वा श्रीपतिर्ब्रह्मञ्जान्तकोपोऽब्रवीदिदम् ।  
 बहाङ्गुलिं करस्याऽऽशु कनिष्ठां नन्दिनोऽन्तिके ॥२२॥  
 गरुडस्य ततो मूर्ध्नि न्यस्येदं पुनरब्रवीत् ।  
 सत्यं मां बहसे नित्यं पश्य धर्मं विहङ्गम ॥२३॥  
 न्यस्तायां च ततोऽङ्गुल्यां शिरः कुक्षौ समाविशत् ।  
 कुक्षिश्च चरणस्यान्तः प्राविशच्चूणितोऽभवत् ॥  
 ततः कृतास्त्रलिर्दोनो व्यधितो लज्जयाऽन्वितः ॥२४॥  
 ब्राहि ब्राहि जगन्नाथ भृत्य मामपराधिनम् ।  
 त्वं प्रभुः सर्वलोकानां धर्ता धार्यस्त्वमेव च ॥२५॥  
 अपराधसहस्राणि क्षमन्ते प्रभविष्णवः ।  
 कृतापराधेऽपि जने महती यस्य वै कृपा ॥२६॥  
 वदन्ति मुनयः सर्वे त्वामेव करुणाकरम् ।  
 रक्षस्वाऽऽर्तं जगन्मातर्माम्बुजनिवासिनि ॥  
 कमले बालक दीनमार्तं सनयवत्सले ॥२७॥

हे ब्रह्मा ! इतना कहकर श्री पति ने अपने कोप को शान्त करके उससे यह कहा था कि इस नन्दी के समीप में बहुत ही शीघ्र मेरे हाथ की कनिष्ठा अंगुलि का वहन करो ॥२२॥ इसके पश्चात् गरुड़ के मस्तक पर उसको रखकर फिर यह कहा था—हे विहङ्गम ! यह सर्वथा सत्य है कि तुम नित्य ही मेरा वहन किया करते हो अर्थात् मुझे अपने ऊपर धठाकर ले जाया करते हो । अब उसके धर्म को देखो ॥२३॥ इसके उपरान्त उस अंगुलि के रखने पर उस गरुड़ का शिर कुक्षि में घुस गया था और वह कुक्षि भी चरणों में अन्दर प्रविष्ट होकर चूणित हो गया था । सब तो वह हाथों को जोड़कर अत्यन्त दीन होखे हुआ बहुत

ही पीडित हो गया था और लज्जा से भी युक्त हो गया था ॥२४॥  
 गरुड ने कहा—हे जगन्नाथ ! मुझ परमाधिक अपराधी का परित्राण  
 करिए, मैं आपका भृत्य हूँ मेरी रक्षा कीजिए । आप तो सभी लोको के  
 प्रभु और सबके धारण करने वाले हैं तथा आप ही धारण करने के योग्य  
 भी हैं ॥२५॥ प्रभाविष्णु सहस्रो अपराधो को भी क्षमा किया करते हैं ।  
 जो अपना भक्तजन कोई अपराध भी कर देता है तो उस पर भी जिन  
 दयालु प्रभु की बहुत बड़ी कृपा हुआ करती है आप ऐसे ही प्रभु हैं । सब  
 मुनिजन परम कृपा करने वाले दया के सागर आप ही को कहा करते  
 हैं । हे कमल में निवास करने वाली माता ! आप तो समस्त जगत् की  
 अम्बा है । अधिक आर्त मेरी आप रक्षा करिए । हे कमले ! आप तो  
 अपने पुत्रों पर कृपा एवं प्यार करने वाली हैं । इस परम दीन आर्त  
 बालक की रक्षा कीजिए ॥२६-२७॥

ततः कृपान्त्रिता देवी श्रीरप्याह जनार्दनम् ॥२८॥  
 रक्ष नाथ स्वक भृत्य गरुड विपदं गतम् ।  
 जनादन उवाचेद नन्दिन शभुवाहनम् ॥२९॥  
 नय नाग सगरुडं शभोरन्तिकमेव च ।  
 तत्प्रसादाच्च गरुडो महेश्वरनिरीक्षितः ॥  
 आत्मीय च पुनरूप गरुडः समवाप्स्यति ॥३०॥  
 तथेत्युक्त्वा च वृषभो नागेन गरुडेन च ।  
 शनैः स शकर गत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयत् ॥  
 शंकरोऽपि गरुत्मन्त प्रोवाच शशिशेखरः ॥३१॥  
 याहि गङ्गा महाबाहो गौतमी लोकपावनीम् ।  
 सर्वकामप्रदा शान्ता तामाप्लुत्य पुनर्वपुः ॥३२॥  
 प्राप्स्यसे सर्वकामाश्च शतघाऽथ सहस्रधा ।  
 सर्वपापोपतप्ता ये दुर्देवोन्मूलितोद्यमाः ॥  
 प्राणिनोऽभीष्टदा तेषा शरण खग गौतमी ॥३३॥  
 तद्वाक्यं प्रणतो भूत्वा श्रुत्वा तु गरुडोऽम्यगात् ।  
 गङ्गामाप्लुत्य गरुडः शिव विष्णु ननामु सः ॥३४॥



ततः स्वर्णमयः पक्षी वज्रदेहो महाबलः ।

वेगी भवन्मुनिश्रेष्ठ पुनर्विष्णुमियात्सुधीः ॥३५॥

ततः प्रभृति तत्तीर्थं गरुडं सर्वकामदम् ।

तत्र स्नानादि यत्किञ्चित्करोति प्रयतो नरः ॥

सर्वं तदक्षयं वत्स शिवविष्णुप्रियावहम् ॥३६॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस रीति से प्रार्थना करने पर श्री देवी के हृदय में कृपा उभर आई और वे श्री जनार्दन से कहने लगी थी ॥३८॥ कमला देवी ने कहा—हे नाथ ! अब आप कृपा करके अपने भृत्य गरुड की रक्षा कीजिए क्योंकि वह इस समय में विपत्ति से ग्रस्त हो रहा है । तब तो जनार्दन प्रभु ने भगवान् शम्भु के वाहन नन्दी से यह कहा था ॥३९॥ श्री विष्णु देव ने कहा—जाओ गरुड के सहित इस नाग को भगवान् शम्भु के समीप में ले जाओ । आपके प्रसाद से यह गरुड भी महेश्वर प्रभु के द्वारा निरीक्षित होने का सुअवसर प्राप्त कर लेगा । तथा यह गरुड पुनः अपने आत्मोद्य रूप को भी प्राप्त कर लेगा ॥४०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—ऐसा ही किया जायगा—यह कहकर वह कृपम नन्दी उस नाग और गरुड के साथ धीरे २ भगवान् शङ्कर के समीप चला गया था और वहाँ पर पहुँच कर उनसे सम्पूर्ण हाल निवेदन कर दिया था । भगवान् शङ्कर भी उस समय से गरुड से कहने लगे ॥४१॥ श्री शिव ने कहा—हे महाबाहो ! सब लोको को पावन बना देने वाली गौतमी गङ्गा पर चले जाओ । सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाली परम शान्तस्वरूप से युक्त उस गौतमी गङ्गा में निमज्जन करके पुनः शरीर प्राप्त करो और सभी कामनाओं को संकड़ो तथा सहस्रो रूप से पा लोगे । जो सभी तरह के पापों से सतृप्त होते हैं और जो दुर्भाग्य से उन्मूलित उद्यम दाते हैं ऐसे प्राणियों के लिये वह अभीप्सित मनोरथों को पूर्ण कर देने वाली है । हे स्वयं ! गौतमी उनकी क्षरण अर्थात् रक्षिका हुआ करती है ॥४२-४३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—परम प्रणत होकर उनके वचन को सुनकर गरुड गौतमी पर चला गया था और वहाँ गौतमी गङ्गा में निमज्जन करके उस गरुड ने भगवान् शिव एवं विष्णु को

प्रणाम किया था ॥३४॥ उसके पश्चात् वह पक्षी वज्र देह वाला महान् बलवान् वेग से युक्त हो गया था और हे मुनिश्रेष्ठ ! फिर वह सुधी भगवान् विष्णु की सन्निधि में प्राप्त हो गया था ॥३५॥ तभी से लेकर वह गारुड तीर्थ प्रस्थात हो गया है जो कि ममस्त कामनाओं की पूर्ण कर देने वाला है । वहाँ पर जो कोई मनुष्य प्रणत होकर स्नान तथा दान आदि जो कुछ भी सत्कर्म किया करता है हे वत्स ! वह सभी शिव और विष्णु के प्रिय करने वाला तथा अक्षय हो जाता है ॥३६॥

—:❀:—

### ४४—अग्नितीर्थवर्णन

अग्नितीर्थमिति ख्यातं सर्वकृतुफलप्रदम् ।  
 सर्वविघ्नोपशमनं तत्तीर्थस्य फलं शृणु ॥१॥  
 जातवेदा इति ख्यातो अग्नेर्भ्राता स हव्यवाद् ।  
 हव्यं वहन्त देवाना गौतम्यास्तीर एव तु ॥२॥  
 ऋषीणां सन्नसदने अग्नेर्भ्रातरमुत्तमम् ।  
 भ्रातुः प्रियं तथा दक्षं मधुदितिसुतो बली ॥३॥  
 जघान ऋषिमुख्येषु पश्यत्तु च सुरेष्वपि ।  
 हव्यं देवा नैव चाऽऽपुमृते वै जातवेदसि ॥४॥  
 मृते भ्रातरि स त्वग्निः प्रिये वै जातवेदसि ।  
 कोपेन महताऽऽविष्टो गङ्गाम्भसि ममाविशत् ॥५॥  
 गङ्गाम्भसि समाविष्टे ह्यग्नी देवाश्च मानुषाः ।  
 जीवमुत्सर्जयामासुरग्निजीवा यतो मताः ॥६॥  
 यत्राग्निर्जलमाविष्टस्त देश सर्व एव ते ।  
 आजग्मुर्विबुधाः सर्वे ऋषयः पितरस्तथा ॥७॥  
 विनाऽग्निना न जीवामः स्तुवन्तोऽग्निं विशेषतः  
 अग्निं जलगतं दृष्ट्वा प्रियं चोचुर्दिवीकसः ॥८॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—सब ऋतुओं के पुण्य-फल को प्रदान करने वाला अग्नि तीर्थ-इस नाम से तीर्थ सप्ताह में प्रसिद्ध है । यह तीर्थ समस्त विघ्नों का उपशमन करने वाला है । अब इस अग्नि तीर्थ का फल सुनो ॥१॥ वह अग्नि का भाई हव्यवाट् 'जातवेदा'—इस नाम से प्रख्यात है । गौतमी के तट पर ही वह देवों के लिये हव्य का वहन किया करता है ॥२॥ दिति के पुत्र मधु ने जो बहुत बलवान् या ऋषियों के सन सदन में भाई के परम प्रिय तथा अतीव दक्ष अग्नि के उत्तम भाई को सब ऋषियों के तथा सुरों के देखते हुए ही मार दिया था । उस जात वेदा के मृत हो जाने पर देवगण अपना हव्य नहीं प्राप्त किया करते थे ॥३-४॥ वह अग्नि परम प्रिय अपने भाई जात वेदा के मर जाने पर महान् क्रोध में आविष्ट होकर गङ्गा के जल में समाविष्ट हो गया था ॥५॥ अग्नि देव के गङ्गा के जल में समाविष्ट हो जाने पर सब देवगण और मनुष्यों ने अपने जीव का उत्सर्ग कर दिया था क्योंकि ये सभी अग्नि जीव ही माने गये हैं ॥६॥ जिस स्थान पर अग्नि जल में प्रविष्ट हुआ था उसी स्थान पर वे सब देवगण-समस्त ऋषि लोग और सब पितृमण वहाँ पर आयये थे ॥७॥ सदन विशेय रूप अग्नि का स्तवन किया था और कह रहे थे कि हम बिना अग्नि के नहीं जीवित रहेंगे । अग्नि को जल के अन्दर गया हुआ देखकर देवों ने उसका प्रिय कहा था ॥८॥

देवास्त्रिवय हव्येन कव्येन च पितृस्तया ।

मानुषान्नपाकेन वीजानां क्लेदनेन च ॥८॥

अग्निरप्याह तान्देवाञ्शक्तो यो मे गतोऽनुजः ।

क्रियामारो भवत्कार्यं या गतिर्जातिवेदसः ॥९॥

सा चाऽपि स्यान्मम सुरा नोत्सहे कार्यसाधने ।

कार्यं तु सर्वतस्तस्य भवतां जातवेदसः ॥१०॥

इमां स्थितिमनुप्राप्सो न जाने मे कथं भवेत् ।

इह चामुत्र च व्याप्तौ शक्तिरप्यत्र नो भवेत् ॥११॥

अथापि क्रियमाणो वै कार्ये सेव गतिर्मम ।

देवास्तमूचुर्मविन सर्वेण ऋषयस्तथा ॥१३॥

आयुः कर्मणि च प्रीतिर्व्याप्तौ शक्तिश्च दीयते ।

प्रयाजाननुयाजाश्च दास्यामो हव्यवाहन ॥१४॥

देवो ने कहा था—हे अग्ने ! आप हव्य के द्वारा देवों को जीवन प्रदान करो—कर्य पहुँचा कर पितरों को जीवित रखो—अन्न के परिपाक के द्वारा मनुष्यों को जीवन हो तथा बलेदन से बीजों को जीवन दो ॥१३॥ थी ब्रह्माजी ने कहा—उस समय में अग्नि ने भी उन देवों से कहा था कि जो समर्थ मेरा छोटा भाई था वह तो अब चला ही गया है अर्थात् मृत हो गया है । आप लोगों के कर्म के करने पर भी जात वेदा की जो यह गति हुई है वही मेरी भी गति हो सकती है अतएव हे सुरगणों ! मुझे आप लोगों के कार्य के साधन करने में कुछ भी उत्साह नहीं होता है । सब प्रकार से आप लोगों के कार्य को करने वाले उस जात वेदा की यह स्थिति हो गयी है तो मैं नहीं जानता हूँ कि मेरी किस प्रकार की गति हो जावे । यहाँ पर और परलोक में व्याप्ति में भी हमारी शक्ति है ॥१०-१२॥ तो भी कार्य के करने पर वही मेरी भी गति हो जायगी जो जात वेदा मेरे भाई की हुई है । तब तो देवों ने उससे कहा था तथा ऋषियों ने भी सर्व भाव से कहा था कि कर्म में आयु और व्याप्ति में प्रीति तथा शक्ति दी जाती है । हव्य वाहन ! प्रयाज अनुयाजों को देंगे ॥१३-१४॥

देवाना त्व मुख श्रेष्ठमाहुत्यः प्रथमास्तव ।

त्वया दत्त तु यद्द्रव्य भोक्ष्याम. सुरसत्तम ॥१५॥

ततस्तुष्टोऽभवद्वह्निर्देववाक्प्राद्ययाक्रमम् ।

इह चामुत्र च व्याप्तौ हव्ये वा लौकिके तथा ॥१६॥

सर्वत्र वह्निरभयः समर्थोऽभूत्सुराज्ञया ।

जातवेदा बृहद्भानुः सप्तार्चिर्नीललोहित. ॥१७॥

जलगर्भं शमीगर्भो यज्ञगर्भः स उच्यते ।

जलादाकृष्यविबुधा अभि(म्य, पिच्यवि(ञ्चन्वि)भावसूम. ॥१८॥

उभयत्र पदे वासः सर्वगोऽग्निस्ततोऽभवत् ।  
यथागतं सुरा जग्मुर्वह्नितीर्थं तदुच्यते ॥१६  
तत्र सप्त शतान्यासंस्तोर्थानि गुणवन्ति च ।  
तेषु स्नानं च दानं च यः करोति जितात्मवान् ॥२०  
अश्वमेधफलं साग्रं प्राप्नोत्यविकलं शुभम् ।  
देवतीर्थं च तत्रैव आग्नेयं जातवेदसम् ॥२१  
अग्निप्रतिष्ठितं लिङ्गं तत्राऽऽस्तऽनेकवर्णवत् ।  
तद्देवदर्शनादेव सर्वऋतुफलं लभेत् ॥२२

हे अग्ने ! आप देवों के परम श्रेष्ठ मुख हैं और प्रथम आहुतियाँ आपकी ही हैं । हे सुरों में श्रेष्ठ ! आप के द्वारा दिया हुआ द्रव्य ही हम ग्रहण कर भक्षण करेंगे ॥१५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर वह क्रमानुसार देवों के वाक्य से वह वह्नि सन्तुष्ट हुआ था । यहाँ पर-परलोक में- ध्याति में-हव्य में तथा लौकिक में सर्वत्र वह्नि अभय और समर्थ सुरों की आज्ञा से होगया था । वह फिर जात वेदा-वृहद्भानु सप्तारि-नील लोहित-जलगर्भ-रामी गर्भ और यज्ञ गर्भ कहा जाया करता है । देवों ने उसको जल से आकृष्ट करके और विष्णुवसु का अभिषेचन करके उभयत्र पद में वास वाला-सर्वत्र गमन करने वाला तत्र से अग्नि हो गया था । सुरगण जिस मार्ग से वहाँ समागत हुए थे उसी से वे फिर चले गये थे और वह वह्नि तीर्थ नाम से कहा जाता है ॥१६-१६॥ वहाँ पर सात सौ तीर्थ हैं जो गुणों वाले हैं । उन तीर्थों में जो कोई जितात्मा पुरुष स्नान और दान किया करता है वह साग्र अश्वमेध यज्ञ के यजन करने का सम्पूर्ण एव परम शुभ पुण्य फल का लाभ किया करता है । वहाँ पर ही देव तीर्थ है और वहाँ पर ही जात-वेदस आग्नेय है ॥२०-२१॥ वहाँ पर अनेक वर्णों वाला अग्नि प्रतिष्ठित लिङ्ग है । उस देव के दर्शन मात्र से ही सब ऋतुओं के करने का फल प्राप्त हो जाया करता है ॥२२॥

## ४५—ऋणप्रमोचनतीर्थवर्णन

ऋणप्रमोचनं नाम तीर्थं देवविदो विदुः ।  
 तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु नारद तन्मनाः ॥१॥  
 आनीतपृथुश्रवा नाम प्रियः कक्षीवतः नुतः ।  
 न दारसप्रहं लेभे वैराग्यान्नाग्निपूजनम् ॥२॥  
 कनीयास्तु समयोऽपि परिवित्तिनयान्मुने ।  
 नाकरोद्धारकर्मादि नैवान्नीनानुपासनम् ॥३॥  
 ततः प्रोचुः पितृगणाः पुत्र-कक्षीवतः शुभम् ।  
 ज्येष्ठं चैव कनिष्ठं च पृथक्पृथग्निद वचः ॥४॥  
 ऋणप्रयापनोदायं क्रियता दारसप्रहः ॥५॥  
 नेत्सुवाच ततो ज्येष्ठः किमृणं केन पुज्यते ।  
 कनीयास्तु पितृन्प्राह न योग्यो दारसप्रहः ॥६॥  
 ज्येष्ठे सति महाप्राज्ञः परिवित्तिनयादिति ।  
 तावुभौ पुनरप्येवमूचुस्ते वं पितामहाः ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—ऋण प्रमोचन नाम वाला एक तीर्थ है  
 जिसको वेदों के ज्ञाता लोग मन्त्री भीति जानते हैं । हे नारद ! अब  
 हम उस तीर्थ के स्वरूप का वर्णन करेंगे । तुम सन्मनस्क होकर चसका  
 श्रवण करो ॥१॥ एक पृथुश्रवा नामधारी कक्षीवान् का परम प्रिय पुत्र  
 था । इनने वैराग्य से दार का सप्रह नहीं किया था और अग्नि पूजन  
 भी नहीं किया था ॥२॥ हे मुने ! कनीयान् वह समय भी था किन्तु  
 परिवित्ति के भय से दार कर्मादि को नहीं किया था और अग्नियों की  
 भी उपासना नहीं की थी ॥३॥ इसके अनन्तर पितृगणों ने उस कक्षी-  
 वान् के पुत्र पुत्र से पूछा था । पितरों ने ज्येष्ठ तथा कनिष्ठ दोनों ही  
 से पृथक् पृथक् वचनों द्वारा कहा था ॥४॥ पितृगणों ने कहा—तीन  
 प्रकार के ऋणों के अपमोदन करने के लिये दाराओं का सप्रह करो ।  
 देव ऋण ऋषि ऋण और पितृऋण य तीन ऋण सभी के ऊपर हुआ  
 करते हैं जिनका बुझाना सबको परमावश्यक है और गृहस्थ होकर उन

ऋणों को चुकाया जाता है ॥१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—पितरों के ऐसा कहने पर उनमें जो ज्येष्ठ था उसने निषेध कर दिया था और कहा क्या ऋण होता है और किस के द्वारा युक्त किया जाता है । जो कनीयान् छोटा था उसने भी पितरों से कहा था कि दाराओं का संग्रह करना योग्य नहीं है ॥६॥ क्योंकि ज्येष्ठ के होने पर मुझे दार संग्रह क्यों करना है । उस महा प्राज्ञ ने यह भी कहा था परिवर्त्ति का भय भी दार-संग्रह में रहता है अतएव मैं नहीं करता हूँ । तब तो पितमहों ने उन दोनों से पुनः इस प्रकार से कहा था ॥७॥

याताभुमौ गौतमी तु पुण्यां कक्षीवतः सुतो ।  
 कुरुतां गौतमीस्नानं सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥८॥  
 गच्छतां गौतमी गङ्गा लोकत्रितयपावनोम् ।  
 स्नानं च तर्पणं तस्या कुरुता श्रद्धयाऽन्वितौ ॥९॥  
 दृष्ट्वाश्चनमिता ध्याता गौतमी सर्वकामदा ।  
 न देशकालजात्यादिनियमोऽत्रावगाहने ॥  
 ज्येष्ठोऽनृणस्ततो भूयात्परिवित्तिर्न चेतः ॥१०॥  
 ततः पृथुश्रवा ज्येष्ठः कृत्वा स्नानं सतर्पणम् ।  
 त्रयाणामपि लोकानां काक्षीवतोऽनृणोऽभवत् ॥११॥  
 ततः प्रभृति तत्तीर्थमृणमोचनमुच्यते ।  
 श्रोतस्मात्तं शृणुम्यश्च इतरेभ्यश्च नारद ॥  
 तत्र स्नानेन दानेन ऋणी मुक्तः सुखी भवेत् ॥१२॥

पितृगण ने कहा—आप दोनों ही कक्षीवान् के पुत्र परम पुण्यमयी गौतमी गङ्गा पर जाइए और वहाँ पहुँच कर समस्त अभीष्टों के प्रदान करने वाला गौतमी में स्नान करिए ॥८॥ गौतमी गंगा पर जाइये वह तीनो लोकों को पावन करने वाली है । उसमें स्नान और तर्पण भी परमाधिक धृष्टा से युक्त होकर करिए ॥९॥ उस गौतमी का दर्शन—उमरी अवतमन-ध्यान करने पर वह गौतमी गङ्गा सब कामनों को देने वाली है । इसमें जो अवगाहन लिया जाता है उसमें देश-काल और जाति आदि का कुछ भी विशेष नियम नहीं होता है । उसके प्रभाव से

तुममे जो ज्येष्ठ है वह ऋण रहित हो जायगा और जो छोटा दूसरा भाई है उसकी परिवृत्ति नहीं होगी ॥१०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर उस ज्येष्ठ भाई ने वहाँ पर स्नान और चर्चन किया था वह कक्षीवान् का पुत्र तीनों सोचो मे ऋण रहित हो गया था ॥११॥ सभी से आरम्भ करके वह तीर्थ ऋण मोचन नाम से पुकारा जाया करता है । हे नारद ! तीन-स्मात्तं ऋणो से और अन्य ऋणो से भी वहाँ पर स्नान तथा दान से ऋणो मुक्त हो जाता है और सुखी होता है ॥१२॥



### ४६ — पिप्पलतीर्थवर्णन

पिप्पल तीर्थमास्यात चक्रतीर्थादनन्तरम् ।  
 यत्र चक्रेश्वरो देवश्चक्रमाप यतो हरिः ॥१॥  
 यत्र विष्णुः स्वयं स्यित्वा चक्रायं शकर विभुम् ।  
 पूजयामास वत्तीयं चक्रतीर्थं मुदाहृतम् ॥२॥  
 यत्र प्रीतोऽभवद्विष्णोः शम्भुस्तपिप्पल विदुः ।  
 महिमानं यस्य वक्तुं न क्षमोऽप्यहिनायकः ॥३॥  
 चक्रेश्वरो पिप्पलेशो नामधेयस्य कारणम् ।  
 शृणु नारद तदभक्त्या साक्षाद्देदोदितं मया ॥४॥  
 दधीचिरिति विख्यातो मुनिरासीद्गुणान्वितः ।  
 तस्य भार्या महाप्राज्ञा कुलीना च पतिव्रता ॥५॥  
 लोपामुद्रेति या ख्याता स्वसा तस्या गमस्तिनो ।  
 इति नाम्ना च विख्याता बढवेति प्रकीर्तिता ॥६॥  
 दधीचेः सा प्रिया नित्यं तपस्तेपे तथा महत् ।  
 दधीचिरग्निमाश्रित्य गृहधर्मपरायणः ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—चक्रतीर्थ के अनन्तर पिप्पल तीर्थ महा गया है जहाँ पर चक्रेश्वर देव हैं जिनसे श्री हरि ने चक्र को प्राप्त किया था



॥१॥ जहाँ पर भगवान् विष्णु ने स्वयं स्थित होकर सुदर्शन चक्र को प्राप्त करने के लिये विष्णु शङ्कर का अभ्यर्चन किया था । वही तीर्थ “चक्र तीर्थ”—कीर्तित हुआ है ॥२॥ जिस स्थल पर भगवान् शंकर विष्णु पर परम प्रसन्न हुए थे वह शम्भुस्थलपिप्पल जाने गये हैं । जिसकी महिमा को शेष नाग भी वर्णन करने में असमर्थ हैं ॥३॥ पिप्पलेश चक्रेश्वर नाम का भी एक विशेष कारण है । हे नारद ! भक्ति की भावना से उस कारण को जो वेदों के द्वारा बताया गया है आप इस समय में मुझ से श्रवण करो ॥४॥ एक दधीचि नामधारी मुनि परम विख्यात थे जो अनेक गुणगणों से युक्त हुए हैं । उन महामुनि की भार्या महापण्डिता एव कुलीना और परमाधिक पतिव्रता थी ॥५॥ वह सोपा मुद्रा—इस नाम से विख्यात थी और उसकी बहिन गमस्तिनी हुई थी । वह इसी नाम से प्रसिद्ध थी और बड़वा इस नाम से कही गयी थी ॥६॥ वह मुनिश्वर दधीचि की परम प्रिया थी । और उसके साथ वह नित्य ही तपश्चर्या का तपन किया करते थे । दधीचि नित्य ही अग्निमान् थे तथा धर्म के कर्मों में परम तत्पर रहा करते थे ॥७॥

भागीरथी समाश्रित्य देवातिथिपरायणः ।

स्वकलशरतः शान्तः कुम्भयोनिरिवापरः ॥८॥

तस्य प्रभावात्त देश नारयो दैत्यदानवाः ।

आजग्मुर्मुनिशार्दूल यन्नागस्त्यस्य चाऽऽश्रमः ॥९॥

तत्र देवाः समाजग्मू रुद्रादित्यास्तयाऽश्विनौ ।

इन्द्रो विष्णुर्यमोऽग्निश्च जित्वा दैत्यानुपागतान् ॥१०॥

जयेन जातसहर्षाः स्तुताश्चैव मरुद्गणैः ।

दधीचि मुनिशार्दूल दृष्ट्वा नेमुः सुरेश्वराः ॥११॥

दधीचिर्जातसहर्षः सुरान्पूज्य पृथक्पृथक् ।

गृहकृत्य ततश्चक्रे सुरेभ्यो भार्यया सह ॥१२॥

पृष्टाश्च कुशल तेन कथाश्रक्नुः सुरा अपि ।

दधीचिमब्रुवन्देवा भार्यया सुखित पुनः ॥१३॥

आसीत् हृष्टमनस श्रुत्वा पुनः पुनः ॥१४॥

भगवती भागीरथी गङ्गा का समाश्रय ग्रहण करके देवगण, तथा अतिथियों की सेवा में वे परायण रहा करते थे । अपनी ही पत्नी में रति रखने वाले थे और परम शान्त स्वरूप से सम्पन्न एवं दूसरे कृष्ण योनि के ही समान थे ॥८॥ उनके तप के प्रभाव से उस देश में अरि दैत्य तथा दानव नहीं आये थे । हे मुनिशार्ङ्ग ! वहाँ पर अगस्त्य महामुनि का भी आश्रम था ॥९॥ वहाँ पर रुद्र, आदित्य, अश्विनी कुमार, इन्द्र, विष्णु, यम, अग्नि, उपागत दैत्यो को जीव कर अपनी विजय होने के कारण अधिक हर्ष पाते एवं मरुद्गणों के द्वारा स्तुत होते हुए समागत हुए थे । मुनिशार्ङ्ग दधीचि का दर्शन करने वे सब सुरेश्वर उनको प्रणिपात करने वाले हुए थे ॥१०-११॥ दधीचि भी परम हर्षित हुए और उन्होंने उन देवों की पृथक्-पृथक् पूजा की थी । इसने उपरान्त अपनी भार्या के साथ उन्होंने सुरों के लिये गृह-वृत्त्य किया था ॥१२॥ वन मुनिवर ने उन समस्त देवों से क्षेम-कुशल पूछा था और सुरगण कथाएँ करने लगे थे । फिर अपनी भार्या के साथ परम सुखी दधीचि से देवों ने कहना आरम्भ किया था । सभी देव अत्यधिक प्रसन्न मन वाले थे और वहाँ समवस्थित मुनि को बारम्बार उन सबने प्रणाम किया था ॥१३-१४॥

किमद्य दुर्लभ लोके श्रुयेऽस्माक भविष्यति ।

त्वादृशः सकृपो येषु मुनिभूक्तवपादपः ॥१५॥

एतदेव फल पु सा जीवता मुनिसत्तम ।

तीर्थाज्जितिभूतदया दर्शनं च भवादृशाम् ॥१६॥

यत्स्नेहादुच्यतेऽस्माभिरवधारय तन्मुने ।

जित्वा दैत्यानिह प्राप्ता हत्वा राक्षसपगवान् ॥१७॥

वयं च सुखिनो ब्रह्मं स्त्वयि दृष्टे विदोषतः ।

नाऽऽयुधैः फलमस्माक वोढुं नैव क्षमा वयम् ॥१८॥

स्थाप्यदेशं न पश्याम आयुधाना मुनीश्वर ।

स्वर्गे सुरद्विषो ज्ञात्वा स्यापितानि हरन्ति च ॥१९॥

नयेयुरायुधानीति तथैव च रसातले ।

नैवात्र किञ्चिद्भयमस्तिविप्र,  
न दानवेभ्यो राक्षसेभ्यश्च धोरम् ।  
त्वदाज्ञया रक्षितपुण्यशेषो,  
न विद्यते तपसा ते समानः ॥२१॥

देवगण ने कहा—हे ऋषिवर ! लोक में अब हम लोगो के लिये क्या वस्तु दुर्लभ हो सकती है जिन हम सब पर आप परमाधिक कृपा करने वाले आप विद्यमान है जिनको कि इस भूमण्डल का कल्प वृक्ष ही कहना चाहिए जो हृदय में समुत्थित सभी मनोरथो को तुरन्त पूर्ण कर दिया करता है ॥१५॥ हे मुनियो-मे परम श्रेष्ठ ! जीवनधारी पुरुषो का यही सबसे बड़ा फल होता है कि तीर्थों में अभिवेदन करना प्राणियों पर परमाधिक दया का भाव रखना और आप सरीखे महामुनियो का दर्शन प्राप्त कर लेना—ये सब पुण्य-फल होते हैं ॥१६॥ जिनके अधिक स्नेह होने के कारण से ही हे मुनिवर ! हम लोगो के द्वारा निवेदन किया जाता है । आप उसका अवधारण कीजिए । हम लोग दैत्यों के ऊपर विजय प्राप्त करके तथा बड़े २ महा राक्षसों को मारकर ही इस समय में आपकी सेवा में समुपस्थित हुए हैं ॥१७॥ हे ब्रह्मन् ! हम इस समय में परम सुख से सम्पन्न हैं और आप का दर्शन करके अधिक सुखी हुए हैं । अब हमको आयुधो से कुछ भी फल नहीं है और न हम उनके वहन करने में समर्थ ही हैं ॥१८॥ हे मुनीश्वर ! उन समस्त आयुधो के स्थापित करने के योग्य किसी भी स्थल को हम लोग नहीं पा रहे हैं । स्वर्ग में उनको स्थापित करें तो वहाँ पर सुगो के द्वेषीगण जान लेते हैं और उनका हरण कर लिया करते हैं ॥१९॥ यदि हमने उन सब आयुधो को जान लेते हैं तो सबको लेकर वे रसातल को ले जायेंगे । हे मानव ! इसी कारण से आपके ही इस पुण्यमय आश्रम में उन अस्त्रों को स्थापित दिया जाना है ॥२०॥ हे विप्र ! यहाँ पर कुछ भी भय नहीं है । न तो दानवों के आने का डर है और न राक्षसों से ही धोर भय यहाँ पर है । यदि आपकी आज्ञा ऐसी हो जावे तो बहुत

ही अच्छा हो । यह तो परम सुरक्षित एवं पवित्र स्थल है क्यों कि तप-  
स्या में आपने सहस्र अन्य कोई भी विद्यमान नहीं है ॥२१॥

जितारयो ब्रह्मविदा वरिष्ठं,

वयं च पूर्वं निहता दैत्यसघाः ।

अस्त्ररत्न भारभूतः कृतार्थः,

स्याम्य स्थान ते समीपे मुनीश ॥२२॥

दिव्यान्भोगान्कामिनीभिः समेता-

न्देवोद्याने नन्दने सभजामः ।

ततो यामः कृतकार्याः सहेन्द्राः,

स्व स्व स्थान चाऽऽयुधाना च रक्षा ॥२३॥

त्वया कृता जायतां तत्प्रशाधि ।

समर्थस्त्व रक्षणे धारणे च ॥२४॥

तद्वाक्यमाकर्ण्य दधोचिरेव,

वाक्य जगो विबुधानेवमस्तु ।

निवार्यमाणः प्रियशीलया स्त्रिया,

किं देवकार्येण विरुद्धकारिणा ॥२५॥

ये ज्ञातशास्त्राः परमार्थनिष्ठाः,

ससारचेष्टासु गतानुरागाः ।

तेषा पराथ व्यसनेन किं मुने,

येनाथ वाऽमुष्य सुखं न किञ्चित् ॥२६॥

देवद्विषो द्वेषमनुप्रयान्ति,

दत्ते स्थाने विप्रवयं शृणुष्व ।

नष्टे हूने चाऽऽयुधाना मुनीश,

कृप्यन्ति देवा रिपवस्ते भवन्ति ॥२७॥

- तस्मान्नेद वेदविदा वरिष्ठ,

युक्तं द्रव्ये परकीये ममत्वम् ।

तावच्च मैत्री द्रव्यभावश्च ताव-

द्वष्टे हूते रिपवस्ते भवन्ति ॥२८॥

आप तो ब्रह्म के ज्ञाताओं में परम वरिष्ठ हैं । और हम लोग अपने अरियो के जीत लेने वाले हैं । और हमने सब दैत्यों के संधो को पूर्व मे ही मार दिया है । अब ये सब अस्त्र ध्यर्य ही हैं क्यों कि हम सफल हो चुके हैं अतएव केवल ये सब एक भार के ही समान प्रतीत हो रहे हैं । हे मुनीश्वर ! अब आपके ही समीप मे इस स्थान मे इनको स्थापित कर देना चाहिए ॥२२॥ अब तो आप लोग देवों के उद्यान नन्दन वन मे कामिनियो से युक्त होकर दिव्यभोगो के सुख का भोग करें । इसलिये कृतकार्य हम सब इन्द्रदेव के सहित वापिस गमन करते हैं और अपने २ आश्रमो को जाते हैं क्योंकि आयुधो की तो सुरक्षा है यहाँ पर आयुधों की रक्षा आपके द्वारा हो ही गयी है । अब आप हमको आज्ञा दीजिए । आप इनके धाग्ण एव सरक्षण करने मे पूर्णतया समर्थ हैं ॥२३-२४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन देवों के इस वचन को सुन कर दधीचि मुनि ने उन देवों से ऐसा ही होगा—यह वाक्य कह दिया था । उस समय में प्रिय शील स्वभाव वाली पत्नी के द्वारा निवरण भी किया गया था कि विरुद्ध कार्य करने वाले इस देवों के इस कार्य से हमको क्या प्रयोजन है ॥२५॥ जिन्होंने घास्त्रो का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और जो परमार्थ मे ही निष्ठा रखते हैं तथा जिनका सांसारिक चेष्टाओं मे अनुराग सर्वथा गत हो गया है हे मुने ! उनको दूसरों के अर्थ के ध्यसन से क्या प्रयोजन है जिससे न तो इस लोक मे और न परलोक में ही कुछ सुख है वे दूसरों के झगड़ो मे क्यों पड़ें क्यों कि उनके लिये सब व्यर्थ ही हैं ॥२६॥ हे विप्रवर्य ! देवों से द्वेष करने वाले द्वेष करेंगे जब कि आप इन देवों के लिये आयुधों के रखने का स्थान देदेगे । आप यह मुनिये कि यदि किसी कारण से नष्ट होगये या हे मुनिवर ! ह्रण कर लिये गये तो ऐसा हो जाने पर ये ही देवगण आप पर क्रोधित हो जायेंगे और फिर आपके ही ये सब शत्रु बन जायेंगे जोकि इस समय आपकी बड़ी वन्दना अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये कर रहे हैं ॥२७॥ हे धेदों के ज्ञाताओं मे परम श्रेष्ठ ! इस कारण से दूसरों के द्रव्य मे ममता रखना युक्त नहीं है । ये सब अभी तक धापहे

मैत्री का भाव रखते हैं और द्रव्य भाव भी इनका सभी तक है । नष्ट हो जाने या अपहृत हो जाने पर ये सब आपके शत्रु हो जायेंगे ॥२८॥

चेदस्ति शक्तिर्द्रव्यदाने ततस्ते,

दातव्यमेवार्थिने किं विचार्यम् ।

नो चेत्सन्तः परकार्याणि कुर्यु-

वाग्भिर्मनोभिः कृतिभिस्तैर्येव ॥२९॥

परस्वसधारणमेतदेव,

सद्भिर्निरस्तं त्यज कान्त सद्यः ॥३०॥

एव प्रियाया वचन स विप्रो,

निशम्य भार्यामिदमाह सुभ्रूम् ॥३१॥

पुरा सुराणामनुमान्य भद्रे,

नेतीति वाणी न सुखं ममिति ॥३२॥

श्रुत्वेरित पत्युरिति प्रियाया,

देव विनाऽन्यन्न नूना समर्थम् ।

तूष्णीं स्थितायां सुरसत्तमास्ते,

सस्थाप्य चास्याप्यतिदीप्तिमन्ति ॥३३॥

नत्वा मुनीन्द्रं ययुरेव लोका-

न्दंत्यद्विषो न्यस्तशस्त्राः कृतार्थाः ।

गतेषु देवेषु मुनिप्रवर्यो

हृष्टोऽवसदभार्याया धर्मयुक्तः ॥३४॥

गते च काले ह्यतिविप्रयुक्ते,

दैवे वर्षे सख्यया वै सहस्रे ।

न ते सुरा आयुधाना मुनीश,

वाच मनश्चापि तथैव चक्रुः ॥३५॥

यदि आपकी द्रव्य के दान में शक्ति है तो याचना करने वाले को दे ही देना चाहिए—इसमें विचार ही क्या करना है । यदि कुछ देना नहीं है तो सन्त पुरुष दूसरो के कार्यों को कर दिया करते हैं और कर भी देना चाहिए । अपनी वाणी से—मन से और प्रयत्नों के द्वारा परकार्य

कर देने चाहिए और सन्त पुरुष ऐसा ही किया भी करते हैं ॥२६॥  
किन्तु हे कान्त ! पराये धन का रखना ऐसा है कि सत्पुरुषों ने इसका  
नियेध ही किया है सो हे स्वामिन् ! इसका आप तुरन्त ही त्याग कर  
दीजिए ॥३०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से कहे हुए अपनी  
प्रिय पत्नी के वचनों का श्रवण करके उस विप्र ने सुन्दर मृकुटियों वाली  
भार्या से यह कहा था ॥३१॥ दधीचि मुनि ने कहा—हे भद्र ! पहिले  
सुरों का समादर पूर्वक कथन मान कर अब नियेध करना मृष्टे सुख-  
कर प्रतीत नहीं होता है ॥३२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपने स्वामी  
के कथित वचन को सुन कर प्रिया के विषय में दैव के विना मनुष्यों के  
लिये अन्य कोई भी समर्थ नहीं है । वह मुनि पत्नी चुपचाप स्थित हो  
गई तो वे सब सुरगण अपने दीप्ति से युक्त अस्त्रों को वहाँ पर सस्थापित  
करके उन महामुनि को नमस्कार करके अपने-२ लोकों को वापिस चले  
गये थे क्योंकि वे दैत्यों के शत्रु देवगण शस्त्रों को रखने में सफल हो  
गये थे ! जब सब देवगण चले गये तो उनके जाने पर मुनियों में परम  
श्रेष्ठ दधीचि प्रसन्न होकर अपनी भार्या के साथ धर्म से युक्त होते हुए  
अपने आश्रम में निवास किया करते थे ॥३३-३४॥ फिर एक सहस्र  
दैव वर्षों के काल के व्यतीत हो जाने पर भी हे मुनीश्वर ! उन देवों  
ने अपने आयुधों के विषय में कुछ भी न कहा और न उन्होंने मन में  
आयुधों का स्मरण भी नहीं किया था ॥३५॥

दधीचिरप्याह गभस्तिमोजसा,

देवारयो मा द्विपतीह भद्रे ।

न ते सुरा नेतुकामा भवन्ति,

सस्थापितान्यत्र वदस्व युक्तम् ॥३६॥

सा चाऽऽह कान्त विनयादुक्तमेव,

त्व जानीषे नाथ यदत्र युक्तम् ।

दैत्या हरिष्यन्ति महाप्रवृद्धा-

स्तपोयुक्ता वलिनः स्वायुधानि ॥३७॥

तदस्त्ररक्षार्थमिदं स चक्रे,  
 मन्त्रंस्तु सक्षाल्य जलैश्च पुष्पैः ।  
 तद्वारि सर्वास्त्रमयं सुपुष्प,  
 तेजोयुक्तं तच्च पपौ दधीचिः ॥३८॥  
 निर्वीर्यरूपाणि तदायुधानि,  
 क्षयं जग्मुः क्रमशः कालयोगात् ।  
 सुराः समागत्य दधीचिमुचु-  
 मंहाभयं ह्यागतं शास्त्रव नः ॥३९॥  
 ददस्व चास्त्राणि भुनिप्रवीर,  
 यानि त्वदन्ते निहितानि देवैः ।  
 दधीचिरप्याह सुरारिभीत्या,  
 अनागत्या भवता चाचिरेण ॥४०॥  
 अस्त्राणि पीतानि शरीरसस्या-  
 न्युक्तानि युक्तं मम तद्वदन्तु ।  
 श्रुत्वा तदुक्तं वचनं तु देवाः,  
 प्रोचुस्तमित्थं विनयावनम्राः ॥४१॥  
 अस्त्राणि देहीति च वक्तुमेव-  
 ष्छक्यं न वाऽन्यत्प्रतिवक्तुं मुनीन्द्र ।  
 विना च तैः परिभूयेम नित्यं,  
 पुष्टारयः कं प्रयामो मुनीश ॥४२॥

दधीचि मुनि ने भी ओज के साथ गमस्ति से कहा था कि हे भद्र !  
 देवों के रिपुगण मुझ से द्वेष करते हैं । वे सुरगण तो इन अपने शस्त्रों  
 को ले जाने की इच्छा वाले ही नहीं हैं । ये उनके आमुष यहाँ पर  
 सस्यापित नये हुए हैं । अब क्या करना उचित है मुझे बतलाओ ॥३९॥  
 उसने विनय पूर्वक अपने स्वामी से आ पूर्व कथित बात यही कह  
 दी । उसने कहा था कि हे नाथ ! यहाँ पर क्या उचित है इसे आप  
 स्वयं ही जानते हैं । दंत्य महान् प्रवृद्ध हैं । वे तप से भी युक्त हैं तथा  
 बहुत बल वाले हैं । वे अपने आमुषों का हरण कर लेंगे ॥४०॥ अब



तो उन महामुनि ने उनके अस्त्रों की सुरक्षा के लिये यह किया था कि मन्त्रों के द्वारा तथा पुण्यमय जलों के द्वारा उनका संक्षालन कर दिया और दधीचि ने सब अस्त्रों से परिपूर्ण-पुण्य से युक्त उस जल का जो तेज से भी युक्त था स्वयं पान कर लिया था ॥३८॥ वीर्य से हीन स्वरूप वाले ने उनके आयुध काल के योग से क्रम से क्षय को प्राप्त हो गये थे । फिर शुरगण वहाँ पर समागत हो गये थे और दधीचि मुनि से कहने लगे थे कि हमको शत्रुओं का महान् भय समागत हो गया है ॥३९॥ हे मुनि प्रवीर ! देवों में जो आपके पास में निहित किये थे वे अस्त्र हमको दे दीजिए । दधीचि मुनि ने कहा था कि सुरों के शत्रुओं के भय के कारण से और शीघ्र आप लोगों के न आने के कारण से वे सब मैंने पा लिये हैं । अब जो भी युक्त हो वह आप लोग मुझको बतलायें । इस प्रकार से ऋषि के द्वारा कथि यवन का श्रवण करके देवों ने विनय से अवनत होकर इस प्रकार से उन मुनि से कहा था ॥४०-४१॥ इस समय में तो हमारे अस्त्रों को आप दे देवें' यही कहा जा सकता है इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं कहा जा सकता है हे मुनीन्द्र ! विना अपने उन आयुधों के तो हम नित्य ही महान् पराभव को प्राप्त करेंगे । हे मुनीश ! हमारे शत्रुगण तो बड़े ही परिपुष्ट हो गये हैं । आप ही बतलाइये कि हम कहाँ पर जायें ॥४२॥

न मर्त्यलोके न तले न नाके,

वासः सुराणां भविताऽद्य तात ।

त्वं विप्रवर्यस्तपसा चैव युक्तो,

नान्यद्वक्तुं युज्यते ते पुरस्तात् ॥४३॥

विप्रस्तदोवाच मदस्थिसस्या-

न्यस्त्राणि गृह्णन्तु न संशयोऽत्र ।

देवास्तमप्याहुरनेन किं नो,

हास्त्रंहीनाः स्त्रीत्वमाप्ताः सुरेन्द्राः ॥४४॥

पुनस्तदा चाऽऽह मुनिप्रवीर-

स्त्यक्ष्ये जीवान्दहिकान्योगयुक्तः ।

अस्त्राणि कुर्वन्तु मदस्थिभूता-

न्यनुत्तमान्युत्तमरूपवन्ति ॥४५॥

कुरुष्व चेत्याहुरदीनसत्त्व,

दधीचिमित्युत्तमग्निकल्पम् ।

तदा तु तस्य प्रियमीरयन्ती,

न सानिध्ये प्रातिथेयी मुनीश ॥ ६

ते चापि देवास्तामदृष्ट्वं शीघ्रं,

तस्या भीता विप्रमूचुः कुरुष्व ।

तत्याज जीवान्दुस्त्यजान्प्रीतियुक्तो

यथासुखं देहमिमं जुषध्वम् ॥४७॥

मदस्थिभिः प्रीतिमन्तो भवन्तु,

सुराः सर्वे किंतु देहेन कार्यम् ॥४८॥

हे तात ! इस समय मे तो ऐसी परिस्थिति बन गई है कि सुरों का मर्त्यलोक मे-पाताल मे और स्वर्ग मे कही पर भी निवास नहीं हो सकेगा । हे भगवन् ! आप तो विप्रों मे परम भेष्ठ हैं और तपश्चर्या से भी युक्त हैं । आपके समक्ष मे हम लोग अन्य कुछ भी कह नहीं सकते हैं ॥४३॥ तब तो विप्र दधीचि ने कहा था कि वे अस्त्र तो मेरी अस्थियों मे इस समय मे सस्यित हैं । आप मेरी अस्थियों को ही ग्रहण कर लेवें-इसमे कुछ भी संशय नहीं है । देवों ने कहा था कि इससे हमारा क्या भला होगा ? अब तो हम लोग अस्त्रों से हीन होकर सब सुरेन्द्र स्त्री को ही प्राप्त होगये हैं अर्थात् स्त्रियों के समान ही बन विहीन बन गये हैं ॥४४॥ तब तो उसी समय मे वह मुनियो मे परम श्रेष्ठ दधीचि ने कहा—मैं योगाभ्यास से युक्त होकर अपने देह के अङ्गों मे रहने वाले प्राणों का त्याग कर दूँगा । आप लोग फिर अत्यन्त स्वल्प सम्पन्न और उत्तम मेरी अस्थियों से अपने अस्त्रों या निर्माण कर लीजिए ॥४५॥ उन देवों ने अदीन सत्त्व वाले अग्नि के सदृश दधीचि को 'करो'—यही उत्तर मे कहा था । हे मुनीश ! उस समय मे उसके प्रिय का कथन करने वाली प्रातिथेयी वहाँ समीप मे नहीं थी ॥४६॥ उन देवों ने भी

उसको न देख कर बहुत ही शीघ्र उसके भय से डरे हुए होकर विप्र दधीचि से कहा—‘करिये’ । बहुत ही प्रीति से युक्त होकर दधीचि ने परम दुस्त्यज जीवों का परित्याग कर दिया था । तथा उस समय में देवो से मुनीन्द्र ने कहा था कि आप लोग सुख पूर्वक इस मेरे देह का सेवन करिए ॥४७॥ आप समस्त सुरगण मेरे देह से जो भी आपका करना हो उसे करिए और आप लोग मेरी अस्त्रियों से परम प्रीति वाले होइये ॥४८॥

इत्युक्त्वाऽसौ वद्धपद्मासनस्यो,

नासाग्रदत्ताक्षिप्रकाशप्रसन्नः ।

धायुं सर्वह्नि मध्यमोदघाटयोगा-

न्नीत्वा शनैर्दहराकाशगर्भम् ॥४८॥

यदप्रमेयं परमं पदं य-

द्यद्ब्रह्मरूप यदुपासितव्यम् ।

तत्रैव विन्यस्य धिय महात्मा,

सायुज्यतां ब्रह्मणोऽसौ जगाम ॥४९॥

निर्जीवतां प्राप्तमभीक्ष्य देवाः,

कलेवर तस्य सुराश्च सम्यक् ।

त्वष्टारमप्सूचुरतित्वरन्तः,

कुरुष्व चास्त्राणि बहूनि सद्यः ॥५०॥

स चापि तानाह कथं नु कार्यं,

कलेवरं ब्राह्मणस्येह देवाः ।

विभेमि कतुं दारुणं चाक्षमोऽहं,

विदारितान्यायुधान्युत्तमानि ॥५१॥

तदस्थिभूतानि करोमि सद्य-

स्ततोदेवा गाः समूचुस्त्वरन्तः ॥५२॥

वज्रं मुखं वः कियते हितार्थं,

गावो देवैरायुधार्थं क्षणेन ।

दधीचिदेहं तु विदायं यूय-

मस्थीनि शुद्धानि प्रयच्छताद्य ॥५४॥

ता देववाक्याच्च तथैव चक्रुः,

सलिह्य चास्थीनि ददुः सुराणाम् ।

सुरास्त्वरजग्मुरदीनसत्त्वाः,

स्वमालय चापि तथैव गावः ॥५५॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन मुनीश्वर दधीचि ने इतना देवों से निवेदन करके पचासन को बाँध कर स्थित होगये और अपनी नासिका के अग्र भाग में नेत्रों के प्रकाश को लगाकर परम प्रसन्न हो गये थे तथा मध्यमों द्वारा योग से शनैः बह्नि के सहित वायु को दहराकान् गर्भ में ले गये थे ॥५४॥ फिर जो प्रमाण करने के योग्य परम पद है और जो उपासना करने के योग्य ब्रह्म का स्वरूप है । उस महान् आत्मा वाले ब्राह्मण ने वही पर अपनी बुद्धि का न्यास करके सायुज्यता की प्राप्ति कर ली थी ॥५०॥ देवों ने जब देखा कि यह मुनीश्वर निर्जीवता को प्राप्त हो गये तो सुरगण ने उनके कसेवर को लेकर अत्यन्त शीघ्रता करते हुए त्वष्टा से मली भाँति कहा था कि इसकी अस्थियों से तुरन्त बहुत से अस्त्रों की रचना कर डालो ॥५१॥ उस त्वष्टा ने भी उन देवों से कहा था कि हे देवों ! यहाँ पर इस ब्राह्मण के शरीर से मैं कैसे क्या करूँ और क्या बनाऊँ ? मैं तो इस महान् दारुण कर्म के करने में डरता हूँ । हे देवगण ! मैं तो इस कर्म करने की क्षमता नहीं रखता हूँ । उसमें आयुध विदारित हो गये हैं ॥५२॥ मैं तो उनको सुरन्त अस्थि भूत कर देना हूँ । इसके अनन्तर देवगण शीघ्रता करते हुए गायों से बोले ॥५३॥ देवों ने कहा—क्षण मात्र में आयुधों के लिये हे गौओं ! आपका मुख देवों के द्वारा यज्ञ किया जाता है । आप दधीचि के देह को विदीर्ण करके इस समय विषुद्ध अस्थियों को हमको देवें ॥५४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन गायों ने देवों के वाक्य से उसी भाँति किया था । अस्थियों को भसी-भाँति घाट कर सुरों को दे दिया था । अदीन

सत्त्व वाले सुरगण वही शीघ्रता से अपने२ आश्रमों को चले गये थे और वे गौएं भी चली गयी थी ॥१५॥

कृत्वा तथाऽस्त्राणि च देवताना,

त्वष्टा जगमाथ सुराज्ञया तदा ।

ततश्चिराच्छीलवती सुभद्रा,

भर्तुःप्रिया बालगर्भा त्वरन्ती ॥१६॥

करे गृहीत्वा कलश वारिपूर्ण-

मुमानत्वा फलपुष्पैः समेत्य ।

अग्निं च भर्तारिमथाऽऽश्रमं च,

सद्राष्टुकामा ह्याजगामाथ शीघ्रम् ॥१७॥

आगच्छन्तो तां प्रातियेयी तदानीं,

निवारयामास तदोल्कपातः ।

सा सभ्रमादागता चाऽऽश्रमं स्व,

नैवापश्यत्तत्र भर्तारिमग्रे ॥१८॥

क वा गतश्चेति सविस्मया सा,

पप्रच्छ चार्ग्निं प्रातियेयी तदानीम् ।

अग्निस्तदोवाच सविस्तरं ता,

देवागम याचन वै शरीरे ॥१९॥

अस्थनामुपादानमथ प्रयाण,

श्रुत्वा सर्वं दुःखिता सा बभूव ।

दुःखोद्वेगात्सा पपाताय पृथ्व्या,

मन्दं मन्दं वह्निनाऽऽश्वासिता च ॥२०॥

शापेऽमराणां तु नाहं समर्था,

अग्निं प्राप्स्ये किं नु कार्यं भवेन्मे ॥२१॥

कोपं च दुःखं च नियम्यसाध्वी,

तदाश्वादीदमयुक्तं च भर्तुः ॥२२॥

उत्पद्यते यत्तु विनाशि सर्व,  
न शाच्यमस्तीति ममुप्यलोके ।

गोविप्रदेवार्थमिह त्यजन्ति,  
प्राणान्प्रयान्पुण्यभाजो मनुष्याः ॥ ६३ ॥

उसी समय में मुरा की आज्ञा से देवों के अस्त्रों का निर्माण करके खड़ा चला गया था । इसके पश्चात् बहुत समय के अनन्तर शील वाली मुनद्रा अपने स्वामी की प्रिया-बालक को गर्भ में धारण करती हुई बहुत ही शीघ्रता करती हुई हाथ में ब्रल से भरा हुआ कलश लेकर फलों और पुष्पों से उमादेवी को नमस्कार करके तथा अग्नि को नमन करके अपने भर्ता को देखने की इच्छा वाली आश्रम में बहुत शीघ्र ही आगयी थी ॥ ५६-५७ ॥ उस समय में आगमन करती हुई उस प्रातिथेयी को उत्त्वा-पात ने निवारित किया था वह बहुत ही सभ्रम के साथ अपने आश्रम में समागत हो गयी और वहाँ पर उसने आगे अपने भर्ता को नहीं देखा था ॥ ५८ ॥ मेरे स्वामी वहाँ पर चले गये हैं इस विस्मय से बहुत सम-न्वित हो गई थी क्यों कि वह उनको वही पर छोड़ कर गयी थी । उस समय प्रातिथेयी ने अग्नि से पूछा था । उस समय में अग्नि ने विस्तार के साथ उससे वहाँ पर देवों का समागमन और शरीर की याचना करना बतला दिया था ॥ ५९ ॥ उनकी अस्थियों का उपादान करना और इसके अन्तर शीघ्रता से प्रयाण कर जाना सभी कुछ घटना को अग्नि ने बतला दिया था । इस दुर्घटित घटना का ध्वण कर वह बहुत ही दुःखित हुई थी । उस महात् दुःख के उद्वेग के कारण वह भूमि पर गिर पड़ी थी फिर धीरे-धीरे वह बल्लि के द्वारा उसको समाश्रय नहीं दिया गया था ॥ ६० ॥ प्रातिथेयी ने कहा—मैं देवों को क्षाप देने में जो समर्थ नहीं हूँ किन्तु अब मैं अग्नि में प्राप्त हो जाऊँगी क्यों कि मेरे यहाँ पर रहने से क्या प्रयोजन होगा ॥ ६१ ॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस परम साध्वी ने अपने हादिक दुःख और कोप का नियमन करके अपने भर्ता के उस धर्म से मुक्त कार्य के विषय में कहा था ॥ ६२ ॥ प्रातिथेयी

ने कहा—जो इस जगत् में समुत्पन्न होता है वह सभी कुछ विनाश-शील होता है अतएव इस मनुष्य लोक में भी शोच करने के योग्य नहीं है । बहुत ही पुण्यशाली मनुष्य ही गो-विप्र और देवों के लिये अपने परम प्रिय प्राणों का परित्याग किया करते हैं ॥६३॥

संसारचक्रे परिवर्तमाने

देहं समर्थं धर्मयुक्तं त्ववाप्य ।

प्रियान्प्राणान्देवविप्रायंहेतो-

स्ते वै धन्याः प्राणिनो ये त्यजन्ति ॥६४॥

प्राणाः सर्वेऽस्यापि देहान्वितस्य,

यातारो वै नात्र सदेहलेशः ।

एवं ज्ञात्वा विप्रगोदेवदीना-

द्यर्थचैनानुत्सृजन्तीश्वरास्ते ॥६५॥

निवार्यमाणोऽपि मया प्रपन्नया,

चकार देवास्त्रपरिग्रहं सः ।

मनोगतं वेत्त्यथवा विधातुः,

को मर्त्यलोकातिगचेष्टितस्य ॥६६॥

इत्येवमुक्त्वाऽऽज्य चाग्नीन्यथाव-

द्भृतुंस्त्वचालोभभिः सा विवेश ।

गर्भंस्थितं बालकं प्रातियेयी,

कुक्षि विदार्यायि करे गृहोत्वा ॥६७॥

नत्वा च गङ्गा भुवमाश्रम च,

वनस्पतीनोपधीराश्रमस्यान् ॥६८॥

पित्रा हीनो बन्धुभिर्गोत्रजैश्च,

मात्रा हीनो बालकः सर्व एव ।

रक्षन्तु सर्वेऽपि च भूतसंधा-

स्तथोपध्यो बालकं लोकपालाः ॥६९॥

ये बालकं मातृगितृप्रहीणं,  
सन्निविशेष स्वतनुप्रहृष्टः ।

पश्यन्ति रक्षन्ति त एव नून,  
ब्रह्मादिकानामपि वन्दनीयाः ॥७०॥

इस परिवर्तनशील ससार रूप चक्र में इस परम सामर्थ्य से युक्त मानवीय-धर्म से युक्त शरीर को प्राप्त करके अपने परमाधिक प्रिय प्राणों को देखो और विप्रों के कार्य की सिद्धि के लिये जो प्राणी त्याग किया करते हैं वे वास्तव में बहुत ही घन्य हैं ॥६४॥ ये प्राण तो सब ही देह-धारी मनुष्य के गमन करने वाले हुआ करते हैं अर्थात् जो भी कोई देहधारी है वे सभी अवश्य ही एक न एक दिन अवश्य ही अपने प्राणों का त्याग किया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इस तरह से ज्ञान प्राप्त करके जो ब्राह्मण भी और देवों के हित-सम्पादन करने के लिये इनका उत्सर्ग कर दिया करते हैं वे परम समर्थ ईश्वर ही होते हैं ॥६५॥ मेरु द्वारा बहुत कुछ निवारण करने पर जो कि मैं परम प्रपन्न अपने पतिदेव की भी मेरे स्वामी ने देवों के अस्त्रों को अपने आश्रय में रख सेना स्वीकार कर लिया था। अथवा मनुष्य लोक के अतिगमन करने वाली चेष्टा से युक्त विधाता के मन में रहने वाली बात को कौन जानता है अर्थात् विधाता के हृदय की बात को कोई भी नहीं जान सकता है ॥६६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा था। ब्रह्माजी बोले—इस तरह से उस दधीचि मुनि की पत्नी ने कहकर यथोचित रीति से अग्नियों का पूजन करके जो अपने भर्ता की त्वचा और लोमादि वहाँ पर छेप थे उनके साथ उसने अग्नि में प्रवेश कर लिया था उसके गर्भ में स्थित जो बालक था उसको उस प्रातिघेयी ने कृक्ष को विदारित करके हाथ में ग्रहण कर लिया था। फिर गङ्गा का, भूदेवी का और अपने आश्रम का तथा उस आश्रम में स्थित वनस्पतियों का और ओषधियों का प्रणिपात किया था ॥६७-६८॥ प्रातिघेयी ने कहा—यह बालक इस समय में पिता सब बन्धुगण गोत्रज और माता से भी हीन है अर्थात् इसका इस समय में कोई भी रक्षा करने वाला नहीं है। सर्वथा अनाथ ही है इसका संरक्षण



समस्त भूतसंघ, ओषधियाँ और सब लोकपाल करें ॥६६॥ इस माता-पिता से हीन बालक को अपने शरीर से प्ररूढ़ों के द्वारा विशेष रूप से अपना ही समझकर देखेंगे और इसकी सुरक्षा करेंगे वे निश्चय ही ब्रह्मादि देवों के भी वन्दनीय होंगे । अर्थात् ब्रह्मा प्रभृति देव भी उसकी वन्दना करेंगे ॥७०॥

इत्युक्त्वा चात्यजद्वालं भर्तृचित्तपरायणा ।  
पिप्पलानां समीपे तु न्यस्य वाल नमस्य च ॥७१॥  
अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य यज्ञपात्रसमन्विता ।  
विवेशाग्निं प्रातिथेयी भर्ता सह दिव ययौ ॥७२॥  
रुद्रुश्चाऽऽश्रमस्या ये वृक्षाश्च वनवासिनः ।  
पुत्रवत्पोपिता येन ऋपिणा च दधीचिना ॥७३॥  
विना तेन न जीवामस्तया मात्रा विना तथा ।  
मृगाश्च पक्षिणः सर्वे वृक्षाः प्रोचुः परस्परम् ॥७४॥  
स्वर्गमासेदुपोः पित्रोस्तदपत्येष्वकृत्रिमम् ।  
ये कुर्वन्त्यनिश स्नेहं त एव कृतिनो नराः ॥७५॥  
दधीचिः प्रातिथेयी वा वीक्षतेऽस्मान्यथा पुरा ।  
तथा पिता न माता वा धिगस्मान्पापिनो वयम् ॥७६॥  
अस्माकमपि सर्वेषामतः प्रभृति निश्चितम् ।  
वालो दधीचिः प्रातिथेयी वालो घर्मः सनातनः ॥७७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपने स्वामी मे अपने चित्त को उत्पर रखने वाली प्रातिथेयी ने इतना निवेदन करके उस बालक को पिप्पलों के समीप में रखकर तथा नमस्कार करके उस बालक का त्याग कर दिया था फिर यज्ञ के पात्रों से समन्वित होकर अग्नि की प्रदक्षिणा की थी और तदनन्तर उस प्रातिथेयी ने अग्नि में प्रवेश कर लिया था और अपने स्वामी के साथ ही वह दिवलोक को चली गयी थी ॥७१-७२॥ उस समय में वहाँ पर बहुत ही करुणापूर्ण दृश्य उपस्थित हो गया था जो भी आश्रम में स्थित वृक्ष एवं वन में निवास करने वाले थे वे सभी रुदन करने लगे थे क्योंकि दधीचि ऋषि ने उन सबको अपने ही पुत्र के समान

पोषित किया था । वहाँ के सभी पक्षी मृग और वृक्ष परस्पर में कह रहे थे कि हम अब उस ऋषि के बिना तथा परम करुणामयी माता के बिना अब जीवित नहीं रहेंगे ॥७३-७४॥ वृक्षों ने कहा—स्वर्ग में गमन करने वाले माता-पिता के अपत्यों में जो अकृत्रिम स्नेह निरन्तर किया करते हैं वे ही मनुष्य परम पुण्यात्मा होते हैं ॥७५॥ पहिले महर्षि दधीचि और प्रातिघेयी हम लोगों को जिस तरह से देखा करते थे अर्थात् हम सबकी पूर्णतया देखभाल रखते थे वैसे देखभाल माता-पिता भी नहीं किया करते हैं । हम बड़े ही पापी हैं हमको धिक्कार है ॥७६॥ इसी लिये हम सबका भी आज से लेकर यही निश्चय है कि यह बालक ही दधीचि ऋषि हैं और यह बालक ही प्रातिघेयी माता के सदृश है एव सनातन धर्म धर्म स्वरूप है । तात्पर्य यह है कि अब तो यह बालक ही उनका स्वरूप है ॥७७॥

एवमुक्त्वा तदोपध्यो वनस्पतिसमन्विताः ।  
 सोम राजानमभ्येत्य याचिरेऽमृतमुत्तमम् ॥७८॥  
 स चापि दत्तवास्तेभ्य सोमोऽमृतमनुत्तमम् ।  
 ददुर्वालाय ते चापि अमृतं सुरवल्लभम् ॥७९॥  
 स तेन तृप्तो बभूव शुक्लपक्षे यथा शशी ।  
 पिप्पलः पालितो यस्मात्पिप्पलादः स बालकः ।  
 प्रवृद्धः पिप्पलानेवमुवाच त्वतिविस्मितः ॥८०॥  
 मानुषेभ्यो मानुषास्तु जायन्ते पक्षिभिः खगाः ।  
 बीजेभ्यो बोरुघो लोके वैषम्यं नैव दृश्यते ॥  
 याक्षंस्त्वहं कथं जातो हस्तपादादिजीववान् ॥८१॥  
 वृक्षास्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वमूर्चयंथाक्रमम् ।  
 दधीचेर्मरणं साध्व्यास्तथा चाग्निप्रवेशनम् ॥८२॥  
 अस्थनां सहरणं देवरेतत्सर्वं सविस्तरम् ।  
 श्रुत्वा दुःखसमाविष्टो निपपात तदा भुवि ॥८३॥  
 आश्रासितः पुनर्वृक्षैर्विक्रयं धर्मार्थसहितैः ।  
 आश्वस्तः स पुनः प्राद तदोपधिवनस्पतीन् ॥८४॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से कहकर उन सब ओपधियों ने और वृक्षों ने तथा वनस्पतियों ने राजा सोम के समीप में जाकर उत्तम अमृत की याचना की थी ॥७८॥ उस सोम राजा ने भी उनको परमोत्तम अमृत का प्रदान कर दिया था । उन्होंने फिर उस सुरों का परम प्रिय अमृत को लाकर उस शिशु को दे दिया था । वह बालक उस अमृत से संवृष्ट होकर शुक्ल पक्ष में चन्द्र के ही समान वर्धमान हो गया था । पिप्पलों के द्वारा वह पालित किया गया था इसी कारण से वह बालक पिप्पलाद नाम वाला हो गया था । जब वह बड़ा हो गया था तो उसने अत्यन्त विस्मित होकर उन पिप्पलो से इस तरह कहा था । पिप्पलाद बोला—मनुष्यों से मनुष्य समुत्पन्न हुआ करते हैं—पक्षियों से पक्षी पैदा होते हैं तथा बीजों से सताएँ, और वृक्ष आदि की समुत्पत्ति हुआ करती है—इस प्राकृतिक नियम में कहीं पर भी विषमता नहीं दिखलाई दिया करती है । मैं फिर वृक्ष से समुत्पन्न होने वाला हाथ-पैर आदि से युक्त जीवधारी मनुष्य कैसे उत्पन्न हुआ हूँ ? यहाँ पर इस सार्वदिक नियम में विषमता कैसे होगयी है ? ॥७९-८१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस बालक के इस प्रकार के समुचित प्रश्न-वचनों का श्रवण करके उन आश्रम में रहने वाले वृक्षों ने सम्पूर्ण वृत्तान्त क्रम पूर्वक उस बालक को बतला दिया था जिस तरह से महर्षि दधीचि का मरण हुआ और जैसे साध्वी प्रातिथेयी का अग्नि में प्रवेश हुआ था तथा जिस रीति से देवों के द्वारा दधीचि की अस्थियों का सहकरण किया गया था यह सभी सुविस्तृत रूप से कहकर उस बालक को श्रवण करा दिया गया था । यह समस्त वृत्तान्त सुनकर वह बालक दुःख से समाविष्ट हो गया था और उसी समय में भूमि पर गिर पड़ा था ॥८२-८३॥ फिर उन वृक्षों ने धर्मार्थ समन्वित वाक्यों के द्वारा उसको समाश्रयित किया था । आश्वस्त होकर फिर उस बालक ने उन ओपधि और वनस्पतियों से कहना आरम्भ कर दिया था ॥८४॥

पितृहन्तृन्हनिष्येऽहं नान्यथा जीवितुं क्षमः ।

पितुमित्राणि शत्रूँश्च तथा पुत्रोऽनुवर्तते ॥८५॥

स एव पुत्रो योऽन्यस्तु पुत्ररूपो रिपुः स्मृतः ।  
 वदन्ति पितृमित्राणि तारयन्त्यहितानपि ॥८६॥  
 वृक्षास्त बालमादाय सोमान्तिकमथाऽऽययुः ।  
 बालवाक्यं तु ते वृक्षाः सोमायाय न्यवेदयन् ॥  
 श्रुत्वा सोमोऽपि त बाल पिप्पलादमभाषत ॥८७॥  
 गृहाण विद्यां विधिवत्समग्रा,

तप सभृद्धिं च शुभा च वाचम् ।

शौर्यं च रूपं च बलं च बुद्धिं,

सप्राप्स्यसे पुत्रं मदाज्ञया त्वम् ॥८८॥

पिप्पलादस्तमप्याह ओषधीश विनीतवत् ॥८९॥

सर्वमेतद्वृथा मन्ये पितृहन्तृविनिष्कृतिम् ।

न करोम्यत्र यावच्च तस्मात्तत्प्रथमं यद ॥९०॥

यस्मिन्देशे यत्र काले यस्मिन्देवे च मन्त्रके ।

यत्र तीर्थं च सिध्येत मत्सकल्पः सुरोत्तम ॥९१॥

पिप्पलाद ने कहा—मैं अपने माता पिताओं के हनन करने वालों को  
 अवश्य ही मार डालूँगा अन्यथा मैं जीवित रहने में समर्थ नहीं रहूँगा ।  
 पुत्र का वक्तव्य होता है कि यह माता-पिता के जो मित्र होते हैं अथवा  
 शत्रु होते हैं उनके साथ वैसा ही व्यवहार किया करता है ॥८९॥ वही  
 वास्तव में पुत्र है तथा इसके विपरीत आचरण करने वाला तो पुत्र नहीं  
 होता है प्रस्युत यह पुत्र के रूप में रिपु ही हुआ करता है ऐसा ही कहा  
 गया है । पितृ मित्र कहते हैं और वे अहिर्नो को भी तार दिया करते  
 हैं ॥८६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—वे वृक्ष उस बालक को साथ लेकर  
 राजा सोम के समीप में समागत हुए थे और उन वृक्षों ने यह समस्त  
 वृत्तान्त जो उस बालक ने कहा था सोम से निवेदन कर दिया था । यह  
 श्रवण करके सोम ने भी उस पिप्पलाद बालक से कहा था ॥८७॥ राजा  
 सोम कहने लगा—हे पुत्र ! पहिले तुम विधि पूर्वक समग्र विद्या को ग्रहण  
 करो—तपश्चर्या की पूर्ण समृद्धि को सम्प्राप्त करो और परम शुभ वाणी का  
 भी तुमको ग्रहण करना चाहिए । तथा शौर्य, रूप, बल, विद्वान् और

कुशाग्र बुद्धि को ग्रहण कर लो । फिर मेरी भी आज्ञा है कि तुम सब कुछ प्राप्त कर लोगे ॥८८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय में उस पिप्पलाद ने परम विनम्र होकर ओषधियों के स्वामी उस सोम से कहा था । पिप्पलाद बोला—मैं तो इन सब विद्याओं तथा सिद्धियों को प्राप्त करना व्यर्थ ही समझता हूँ जब तक कि मैं पिता के हनन करने वालों की विनिष्कृति नहीं करूँ अर्थात् पिता के मारने वालों से बदला न ले लूँ । अतएव आप कृपा करके सबसे प्रथम मुझे वही बदला लेने का उपाय बतलाइये ॥८९-९०॥ हे सुरोत्तम ! जिस देश में, जिस काल में, जिस देव में, जिस मन्त्र में, और जिस तीर्थ में मेरा मन का सत्य सङ्कल्प पूर्ण हो जावे वही मुझे आप पहिले बतलाइये ॥९१॥

चन्द्रः प्राह चिरं ध्यात्वा भुक्तिर्वा मुक्तिरेव वा ।

सर्वं महेश्वराद्देवाज्जायते नात्र संशयः ॥९२॥

स सोमं पुनरप्याह कथं द्रक्ष्ये महेश्वरम् ।

बालोऽहं बालबुद्धिश्च न सामर्थ्यं तपस्तथा ॥९३॥

गौतमी गच्छ भद्रं त्वं स्तुहि चक्रेश्वरं हरम् ।

प्रसन्नस्तु तवेशानो ह्यल्पायासेन वत्सक ॥९४॥

प्रीतो भवेन्महादेवः साक्षात्काश्रणिकः शिवः ।

आस्ते साक्षात्कृतः शम्भुर्विष्णुना प्रभुर्विष्णुना ॥९५॥

वरं च दत्तवान्विष्णोश्चक्रं च त्रिदशार्चिम् ।

गच्छ तत्र महाबुद्धे दण्डके गौतमी नदीम् ॥९६॥

चक्रेश्वरं नाम तीर्थं जानन्त्योषधयस्तु तत् ।

तं गत्वा स्तुहि देवेश सर्वभावेन शकरम् ॥

स ते प्रीतमनास्तात सर्वान्कामान्प्रदास्यति ॥९७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—चन्द्र देव ने बहुत अधिक समय तक ध्यान करके भुक्ति अथवा मुक्ति सभी कुछ महेश्वर देव की उपासना एवं समाराधना से हुआ करती हैं—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है ॥९२॥ उस बालक पिप्पलाद ने पुनः उस सोमदेव से पूछा था कि मैं भगवान् महेश्वर का दर्शन किस रीति से प्राप्त कर सकूँगा । मैं तो अत्यन्त

छोटा बालक हूँ और मेरे अन्दर अभी बाल बुद्धि है । मुझ में न तो इतनी शक्ति ही है और न कोई तपोबल ही विद्यमान है ॥६३॥ चन्द्र देव ने कहा—हे भद्र ! तुम गौतमी गङ्गा पर घले जाओ और वहाँ पर पहुँच कर चक्रेश्वर हर का स्तवन करो । हे भक्त ! वहाँ पर थोड़े से ही परिश्रम ने करने से भगवान् ईशान तुम पर परम प्रसन्न हो जायेंगे ॥६४॥ भगवान् शिव बहुत ही अधिक दयालु हैं और महादेव साक्षात् होकर तुझ पर प्रसन्न हो जायेंगे । वहाँ पर प्रभाविष्णु के द्वारा शिव का साक्षात्कार किया है ॥६५॥ भगवान् शम्भु ने वहाँ पर विष्णु को वरदान दिया था तथा देवों के द्वारा समर्पित सुदर्शन चक्र भी दिया था । अतएव हे भक्त ! तुम तो महान् बुद्धिमान बालक हो दण्डकारण्य में गौतमी नदी पर शीघ्र ही गमन करो ॥६६॥ वहाँ पर चक्रेश्वर नामक दीर्घ है और ये समस्त ओषधियाँ उस सौर्य को जानती हैं । वहाँ पर पहुँच कर सर्वभाव से देवेश्वर भगवान् शङ्कर की स्तुति करो । वह प्रसन्न मन वाले होकर हे तात ! तुम्हारे समस्त मनोरथों को अवश्य ही पूर्ण कर देंगे ॥६७॥

तद्राजवचनाद्ब्रह्मन्पिप्पलादो महामुनिः ।

आजगाम जगन्नाथो यत्र रुद्रः स चक्रदः ॥६८॥

त बाल कृपयाऽऽविष्टाः पिप्पलाः स्वाश्रमान्ययुः ।

गोदाधर्या ततः स्नात्वा नत्वा त्रिभुवनेश्वरम् ॥

तुष्टाव सर्वभावेन पिप्पलादः शिव शुचिः ॥६९॥

सर्वाणि कर्माणि विहाय धीरा-

स्त्यक्तपणा निर्जितचित्तवाताः ।

यं यान्ति मुक्त्यै शरणं प्रयत्ना-

समादिदेव प्रणमामि शम्भुम् ॥१००॥

यः सर्वसाक्षी सकलान्तरात्मा,

सर्वेश्वरः सर्वकलानिधानम् ।

विज्ञाय भवित्तगतं समस्तं,

स मे स्मरारिः करुणा करोतु ॥१०१॥

दिगीश्वराक्षित्य सुराचितस्य,  
 कंलासमान्दोलयतः पुरारेः ।  
 अङ्गुष्ठकृत्यैव रसातलादधो-  
 गतस्य तस्यैव दशाननस्य ॥१०२॥  
 आलूनकायस्य गिरं निशम्य,  
 विहस्य देव्या सह दत्तमिष्टम् ।  
 तस्मै प्रसन्नः कुपितोऽपि तद्व-  
 दयुक्तदाताऽसि महेश्वर त्वम् ॥१०३॥  
 सौत्रामणीमृद्धिमघः स चक्रे,  
 योऽर्चा हरीरे, नित्यमतीव कृत्वा ।  
 वाणः प्रशस्यः कृतवानुच्चपूजां,  
 रम्यां मनोज्ञां शशिखण्डमौलेः ॥१०४॥  
 जित्वा रिपून्देवगणान्प्रपूज्य,  
 गुरुं नमस्कर्तुं मगाद्विशाखः ।  
 चुकोप दृष्ट्वा गणनायमूढ-  
 मङ्घ्रे तमारोप्य जहास सोमः ॥१०५॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! उस राजा सोम देव के वचन से वह महामुनि पिप्पलाद वहाँ पर समागत हो गया था जहाँ पर इस जगत् के स्वामी चक्र प्रदान करने वाले रुद्रदेव विराजमान थे ॥६८॥ उस बालक को वहाँ पहुँचा कर दया से परिपूर्ण पिप्पल वृक्ष अपने आश्रमों को चले गये थे । उस पिप्पलाद बालक ने गोदावरी में स्नान किया था । फिर उसने भगवान् त्रिभुनेश्वर को प्रणाम किया था । पिप्पलाद ने परम शुचि होकर सर्वभाव से भगवान् शिव का स्तवन किया था ॥६९॥ पिप्पलाद ने शिव । निवेदन किया था कि धीर पुरुष सब एगणाओं का त्याग करके और अन्य सब कर्मों को छोड़कर अपनी चित्त की वृत्ति पर विजय पाकर जिन देवेश्वर की धरणागति में प्रयत्न पूर्वक मुक्ति के लिये आया करते हैं उन्हीं आदि देव भगवान् शम्भु के चरणों में मेरा प्रणाम समर्पित है ॥१००॥ जो सबका साक्षी है और जो सबका अन्तरात्मा है

अर्थात् सबके अन्दर अन्तर्यामी रूप से विराजमान है । जो सबका ईश्वर तथा समस्त कुलाजो की खान है वही प्रभु मेरे चित्त में स्थित मनोरथ को समझकर कामदेव को मस्म कर देने वाले भगवान् दाम्मुदेव मुझ पर कृपा की वृष्टि करें ॥१०१॥ समस्त दिक्पालो को जीत कर सुरो के द्वारा समर्पित भगवान् पुरारि के आश्रय भूत कैलास पर्यंत को हिला देने वाले अगुष्ठकृति से ही रगातल से भी नीचे गये हुए आलूनवाय दशानन की याणी को सुनकर देवी के साथ हँस कर जिसने अभीष्ट दिया था । क्रुपित होकर भी उस पर परम प्रमत्त हो गये थे उसी की भाँति हे महेश्वर ? आप अमुक्त दाता हैं ॥१०२-१०३॥ जिस बाण ने हर की नित्य अर्चा को करके सौनामणी ऋद्धि को भी तुच्छ कर दिया था उस प्रशस्त बाण ने दक्षि खण्ड को मस्तक पर धारण करने वाले प्रभु की परम रम्य एव मनोज्ञ समुच्च पूजा की थी ॥१०४॥ विशाख रिपुओ को जीतकर देवगणों की पूजा करके गुरु को प्रणाम करने के लिये गया और उड़ गणनाथ को देखकर क्रुपित हो गया था उसको सोम ने अश्रु में समारोपित कर हास किया था ॥१०५॥

ईशाङ्कखडोऽपि शिशुस्वभावा-

स मातुरङ्कं प्रमुमोच बालः ।

क्रुद्धं सुत बोधितुमप्यशक्त-

स्ततोऽर्धनारित्वमवाप सोमः ॥१०६॥

ततः स्वयभूः सुप्रीतः पिप्पलादमभापत ॥१०७॥

वरं वरय भद्रं ते पिप्पलाद यथेप्सितम् ॥१०८॥

हतो देवैर्महांदेव पिता मम महायशाः ।

अदाम्भिकः सत्यवादी तथा माता पतिव्रता ॥१०९॥

देवेभ्यश्च तयोर्नाशं श्रुत्वा नाथ सविस्तरम् ।

दुःखकोपसमाविष्टो नाहं जीवितुमुत्सहे ॥११०॥

तस्मान्मे देहि सामर्थ्यं नाशयेय मुरान्यथा ।

अवध्यसेव्यस्त्रैलोक्ये त्वमेव दक्षिशेखर ॥१११॥



ईश के अङ्क ( गोद ) में समाच्छेद होते हुए भी शिशु के स्वभाव के कारण बालक ने माता की गोद को नहीं छोड़ा था उस समय मे क्रुद्ध सुत को समझाने मे असमर्थ होकर सभी से सोम अर्घनारित्व को प्राप्त हो गये थे ॥१०६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से स्तवन का श्रवण करके स्वयम्भू प्रभु परम प्रसन्न हो गये थे और उसी समय में पिप्पलाद से कहने लगे ॥१०७॥ भगवान् शिव ने कहा—हे पिप्पलाद ! मुझ से वरदान का वरण कर लो । जो भी कुछ तुमको अभीष्ट हो माँग लो ॥१०८॥ पिप्पलाद ने कहा—हे महादेव प्रभो ! महान् यशस्वी मेरे पिता दधीचि का देवों के द्वारा हनन किया गया था । मेरे पिता श्री दम्भ से सर्वथा रहित थे और सत्यवादी थे । मेरी माता पूर्ण पतिव्रता थी ॥१०९॥ हे नाथ ! देवों से उन दोनों का सविस्तृत विनाश सुनकर मैं अत्यन्त दुःख और कोप से समाविष्ट हो गया हूँ और अब मैं जीवित रहने का उत्साह नहीं करता हूँ । अतएव आप कृपा करके मुझ मे ऐसी शक्ति दीजिए कि मैं जिसके द्वारा सुरों का विनाश कर सकूँ । हे शशि को मस्तक पर धारण करने वाले स्वामिन् ! आप ही ऐसे प्रभु त्रिलोकी मे हैं जो अवध्य हैं और सेव्य हैं ॥११०-१११॥

तृतीयं नयन द्रष्टुं यदि शक्नोपि मेऽनघ ।

ततः समर्थो भविता देवांश्छेदयितुं भवान् ॥११२

ततो द्रष्टु मनश्चक्रे तृतीयं लोचन विभोः ।

न शशाक तदोवाच न शक्तोऽस्मीति शकरम् ॥११३

किञ्चित्कुरु तपो बाल यदा द्रक्ष्यसि लोचनम् ।

तृतीयं त्व तदाऽभीष्टं प्राप्स्यसे नात्र सशयः ॥११४

एतच्छ्रुत्वेशानवाक्यं तपसे कृतनिश्चयः ।

दधीचिसूनुर्धर्मात्मा तत्रैव बहुलाः सप्ताः ॥११५

शिवाध्यानकनिरतो बालोऽपि बलवानिव ।

प्रत्यहं प्रातरुत्थाय स्नात्वा नत्वा गुरुन्कमात् ॥११६

सुखासीनो मनः कृत्वा सुपुम्नायामनन्यधीः ।

हस्तस्वस्तिकमारोप्य नामो विस्मृतसंसृतिः ॥११७

स्थानात्स्थानान्तरोत्कर्षान्विदध्यां शांभव महः ।

ददर्श चक्षुर्देवस्य तृतीय पिप्पलाशनः ।

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विनीत इदमब्रवीत् ॥११८॥

ईश्वर ने कहा—हे अनघ ! यदि तुम मेरे तीसरे नेत्र को देख सकते हो तो तुम निश्चय ही सब देवों का छेदन करने में समर्थ हो सकते हो ॥११२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर उस पिप्पलाद ने विभु के तीसरे नेत्र को देखने का मन में विचार किया था किन्तु वह ऐसा न कर सका था । उसी समय में उसने भगवान् शङ्कर से कहा था—हे भगवन् ! मैं तो आपका तृतीय नेत्र देखने की शक्ति नहीं रखता हूँ ॥११३॥ भगवान् ईश्वर ने कहा—हे बच्चे ! अभी तुम कुछ तप करो तभी तुम मेरा तीसरा नेत्र देख लोगे । और जब मेरा तीसरा लोचन देख लोगे तो उसी समय से अपना अभीप्सित मनोरथ भी अवश्य ही प्राप्त कर लोगे इसमें शेषमात्र भी संशय नहीं है ॥११४॥ यह ईशान देव का वचन सुनकर उस बालक ने तपश्चर्या करने का निश्चय किया था और दधीचि महर्षि के पुत्र ने वहीं पर परम धर्मात्मा दधीचि के पुत्र ने बहुत से वर्षों तक तप किया था ॥११५॥ यद्यपि वह बालक था, तो भी एक बलवान् पुरुष की ही भाँति शिवजी के ध्यान में निरत होकर तपश्चर्या कर रहा था । प्रतिदिन प्रातः काल में उठकर स्नान किया करता था और क्रम से अपने गुरुजनो को प्रणाम करता था ॥११६॥ सुख पूर्वक फिर बैठकर अनन्य बुद्धि वाला होते हुए अपने मन को सुषुम्ना नाडी में करके हस्त स्वस्तिक का नाभि में आरोप करके एकदम सवार को विस्मृत कर देता था ॥११७॥ शनं शनः एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपना उत्कर्ष करके भगवान् शम्भु के तेज का चिन्तन किया करता था । उस पिप्पलाशन ने देवेश्वर के तीसरे नेत्र को देख लिया था । जैसे ही तृतीय लोचन का उसने दर्शन प्राप्त किया था वैसे ही हाथ जोड़कर परम विनम्र होते हुए यह वचन बोला था ॥११८॥

शम्भुना देवेदेवेन वरो दत्तः पुरा मम ।

तार्तीयचक्षुषो ज्योतिर्यदा पश्यसि तत्क्षणात् ॥११९॥

सर्व ते प्रार्थितं सिध्येदित्याह त्रिदशेश्वरः ।  
 तस्माद्रिपुविनाशाय हेतुभूतां प्रयच्छ मे ॥१२०॥  
 तदैव पिप्पलाः प्रोचुर्वडवाऽपि महाद्युते ।  
 माता तव प्रातियेयी वदन्त्येव दिवं गता ॥१२१॥  
 पराभिद्रोहनिरता विस्मृतात्महिता नराः ।  
 इतस्ततो भ्रान्तचित्ताः पतन्ति नरकावटे ॥१२२॥  
 तन्मातृवचन श्रुत्वा कुपितः पिप्पलाशनः ।  
 अभिमाने ज्वलत्यन्तः साधुवादो निरर्थकः ॥१२३॥  
 देहि देहीति तं प्राह कृत्या नेशविनिर्गता ।  
 वडवेति स्मरन्विप्रः कृत्याऽपि यडवाकृतिः ॥१२४॥  
 सर्वसत्त्वविनाशाय प्रभूताऽनलग्निभिणी ।  
 गभस्तिनो बालगर्भा या माता पिप्पलाशिनः ॥१२५॥  
 तद्दयानयोगात्तु जाता कृत्या साऽनलग्निभिणी ।  
 उत्पन्ना सा महारौद्रा मृत्युजिह्वैव भीषणा ॥१२६॥

पिप्पलाद ने कहा—भगवान् शम्भु ने पहिले मुझे वरदान दिया था कि जिस समय मे तृतीय नेत्र मे होने वाली ज्योति का दर्शन करेगा तुरन्त ही उसी क्षण मे तेरा सभी प्रार्थना किया हुआ मनोरथ सिद्ध हो जावेगा—यही मुझसे भगवान् त्रिदशेश्वर ने आदेश प्रदान किया । अतएव मेरे शत्रुओं के विनाश करने के लिये जो भी हेतुभूता हो उसका प्रदान कीजिए ॥११९-१२०॥ उसी समय मे पिप्पलों ने कहा था—हे महती द्युति वाले ! आपकी माता प्रातियेयी और वडवा ने भी दिवलोक को गमन करने के समय में यह कह रही थी ॥१२१॥ पराये द्रोह मे अभिरति रखने वाले तथा आत्मा के हित को भुला देने वाले मनुष्य इधर-उधर भ्रान्त चित्त होकर भटकते हुए अन्त मे नरकावट मे पतन किया करते हैं ॥१२२॥ उस माता के द्वारा कथित वचन का श्रवण करके पिप्पलाशन बहुत ही कुपित हो गया था और अभिमान में उसका अन्तःकरण जलने लगा था । उसने कहा था कि यह साधुवाद निरर्थक ही है ॥१२३॥ उस अवसर पर भगवान् शम्भु के तृतीय नेत्र से निकली हुई

कृत्या ने उनमें 'दो-दो'—यह कहा था । विप्र ने बढ़ता का स्मरण करने हुए देखा था कि वह कृत्या भी बढ़ता के नमान ही आकृति वाली थी ॥१२४॥ समस्त जीवों के विनाश करने के लिये वह अनलनानिनी समु-  
त्पन्न हुई थी जो पप्पनासी की बालक की गर्भ धारण करने वाली गमस्तिनी माता थी ॥१२५॥ उनके ध्यान योग से वह अन्त गमिणी कृत्या होकर समुत्पन्न हुई थी । और अधिक भीषण मृत्यु की जिह्वा के ही समान वह रौद्र रक्त वाली समुत्पन्न हुई थी ॥१२६॥

अवोचत्पिप्पलादं त किं कृत्य मे वदस्व तत् ।  
पिप्पलादाऽपि तां प्राह देवान्त्वाद रिपून्नम ॥१२७॥  
जग्राह सा तथेत्युक्त्वा पिप्पलादं पुरस्थितम् ।  
स प्राह किमिदं कृत्ये सा चाग्राह त्वयोदितम् ॥१२८॥  
देवंश्च निर्मितं देह ततो नीतः शिव ययौ ।  
तुष्टाव देव स मुनिः कृत्या प्राह तदा शिवः ॥१२९॥  
योजनान्तःस्थिताङ्गीवाघ्न गृहाण मदाज्ञया ।  
तस्माद्याहि ततो दूर कृत्ये कृत्य ततः कुरु ॥१३०॥  
तीर्यात्तु पिप्पलात्पूर्वं यावद्योजनसत्रयया ।  
प्रातिष्ठद्बडवारूपा कृत्या सा ऋषिनिमिता ॥१३१॥  
तस्या जातो महानग्निर्लोकसहरणक्षमः ।  
त दृष्ट्वा विवृषाः सर्वे अस्ता शम्भुमुपागमन् ॥१३२॥  
चक्रेश्वर पिप्पलेश पिप्पलादेन तोषितम् ।  
स्तुवन्तो भीतमनसः शम्भुमूर्च्छादिवीकसः ॥१३३॥

उस कृत्या ने उनी समय में पिप्पलाद से कहा था कि मुझे क्या करना है उसे भीष्म बतला दो । इन वचन के कहने पर पिप्पलाद ने भी उनकी यही उत्तर दिया था कि मेरे शत्रु देवों का भक्षण करो ॥१२७॥ 'ऐसा ही होगा'—यह कहकर उसने अपने समक्ष में स्थित पिप्पलाद को ही सर्व प्रथम पकड़ लिया । तब तो उस पिप्पलाद ने उससे कहा—हे कृत्ये ! यह क्या कर रही हो ? उस कृत्या ने उसको

उत्तर देते हुए कहा था कि तुमने ही तो मुझे यह करने के लिये अभीष्ट कहा था ॥१२८॥ यह तुम्हारा देह भी तो देवों के ही द्वारा निर्मित हुआ है । तब तो वह पिप्पलाद परमाधिक भयभीत होकर भगवान् शिव की शरण में गया था और उस मुनि ने शिव का स्तवन किया था । उस समय में भगवान् शङ्कर ने कृत्या से कहा था । श्री शिवजी ने कहा—हे कृत्ये ! मेरी आज्ञा है कि एक योजन के अन्दर जो भी जीव हैं उनका तुम ग्रहण मत करो । इस कारण से हे कृत्ये ! तुम दूर चली जाओ और फिर वहाँ जाकर अपना कार्य करो ॥१२९-१३०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—पिप्पल तीर्थ से पूर्व जहाँ तक योजन की संख्या होती है वह बढ़ा स्था कृत्या जो ऋषि निर्मित है प्रतिष्ठित हो गयी थी ॥१३१॥ उस में महान् अग्नि समुत्पन्न हो गयी थी जो सम्पूर्ण लोक के संहार कर देने में समर्थ थी उस महान् संहारक भीषण अग्नि को देख कर सब देवगण भयभीत हो गये थे और भाग कर भगवान् शङ्कर के समीप में पहुँचे थे ॥१३२॥ भगवान् चक्रेश्वर पिप्पलेश को पिप्पलाद मुनि ने प्रसन्न कर लिया है अतएव बहुत डरे हुए मन वाले देवों ने स्तुति करते हुए भगवान् शम्भु से प्रार्थना की थी ॥१३३॥

रक्षस्व शभो कृत्याऽस्मान्वाधते तद्भवानलः ।

शरणं भव सर्वेश भीतानामभयप्रद ॥१३४॥

सर्वतः परिभूतानामातर्नां श्रान्तचेतसाम् ।

सर्वेषामेव जन्तूना त्वमेव शरणं शिव ॥१३५॥

ऋषिणाऽभ्यर्चिता कृत्या त्वच्चक्षुर्वह्निर्निर्गता ।

सा जिघांसति लोकास्त्रोस्त्व नस्त्राता न चेतः ॥१३६॥

तानब्रवीजगन्नायो योजनान्तर्निवासिनः ।

न बाधते त्वसौ कृत्या तस्माद्यूयमर्हन्निशम् ॥१३७॥

इहैवाऽऽसृज्यममरास्तस्या वो न भयं भवेत् ॥१३८॥

पुनरुचुः सुरेशानं त्वया दत्तं त्रिविष्टपम् ।

तत्त्यक्त्वाऽत्र कथं नाथ वत्स्यामस्त्रिदशार्चित ॥१३९॥

देवानां वचनं श्रुत्वा शिवो वाक्यमथाब्रवीत् ॥१४०॥

देवो ने कहा—हे शम्भो ! हमारी रक्षा कीजिए । यह वृत्त्या हमको सता रही है उसके द्वारा अनल समुत्पन्न हो गया है । हे सर्वेश्वर ! आप हमारे रक्षक होइये । आप तो सर्वदा भय से भीतो को अमय प्रदान करने वाले हैं ॥१३४॥ हे शिव ! सब ओर से जो परिभव को प्राप्त करने वाले—परमाधिक आर्त्त-आन्त विस्तार वाले समस्त जन्तुओं की रक्षा करने वाले आप ही हैं ॥१३५॥ विष्णुसाद श्रुति ने उससे प्रार्थना की है और वह वृत्त्या आपके तीसरे नेत्र से प्रकट होने वाली ही बह्नि है । वह तीनों लोकों का सहार करना चाहती है । अब आप ही हमारे रक्षक हैं अन्य कोई भी नहीं है ॥१३६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—जगत् के नाथ भगवान् शम्भु ने उन देवगणों से कहा था कि यह वृत्त्या जो एक योजन के अन्दर निवास करने वाले हैं उनको कोई बाधा नहीं पहुँचाती है । इस लिये आप सब लोग यहाँ पर ही अहनिश रहिए । हे अमरो ! फिर यहाँ पर आपको उस वृत्त्या से कुछ भी भय नहीं होगा ॥१३७-१३८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन्होंने पुनः सुरेशान से प्रार्थना की थी कि आपने ही हम सबको निवास करने के लिये स्वर्ग लोक प्रदान किया था । हे नाथ ! अब उसका त्याग करके यहाँ पर कैसे निवास करेंगे । आप तो देवों के द्वारा अर्चित देव हैं ॥१३९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् शिव ने देवों के वचन को सुन कर फिर यह वाक्य कहा था ॥१४०॥

देवोऽसौ विश्वतश्चक्षुर्यो देवो विश्वतोमुखः ।

यो रश्मिभिस्तु धमते नित्यं यो जनको मतः ॥१४१॥

स सूर्य एक एवान्न साक्षाद्रूपेण सर्वदा ।

स्थितिं करोतु तन्मूर्तौ भविष्यन्त्यतिलाः स्थिताः ॥१४२॥

तथेति शशुवचनात्पारिजाततरोस्तदा ।

देवा दिवाकार चक्रस्त्वष्टा भास्करमब्रवीत् ॥१४३॥

इहैवाऽऽस्व जगत्स्वामिषक्षेमाम्बिबुधान्स्वयम् ।

स्वाशैश्च वयमप्यत्र तिष्ठामः शशुसनिधौ ॥१४४॥

चक्रेश्वरस्य परितो यावद्योजनसख्यया ।

गङ्गाया उभयं तीरमासाद्याऽऽसन्सुरोत्तमाः ॥१४५॥

अङ्गुल्यर्धार्धमात्रं तु गङ्गातीरं समाश्रिताः ।

तिस्रः कोट्यस्तथा पञ्च शतानि मुनिसत्तम ।

तीर्थानां तत्र व्युष्टिं च कः शृणोति ब्रवीति वा ॥१४६॥

भगवान् शङ्कर भोले—यह सूर्य देव सम्पूर्ण विश्व के नेत्र है और यह समस्त विश्व का मुख है । तथा जो अपनी किरणों के द्वारा नित्य धमन किया करते हैं तथा जो सबके जनक माने गये हैं वे सूर्यदेव एक ही यहाँ पर सर्वदा साक्षात् रूप से विद्यमान रहा करते हैं । उन सूर्य देव की मूर्ति में आप लोग अपनी स्थिति करिए । वहाँ पर आप सभी स्थिति हो लीयेंगे ॥१४१-१४२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् शम्भु के वचन से देवों ने ऐसा ही करेंगे—यह कर उनकी आज्ञा को स्वीकार कर लिया था और उसी समय में पारिजान तरु के समीप देवगण ने भगवान् दिवाकर का दर्शन प्राप्त किया । उस समय में स्वष्टा ने भास्कर प्रभु से कहा था ॥१४३॥ स्वष्टा ने कहा—हे जगत् के स्वामिन् ! आप यहाँ पर ही ठहरिये और इन देवों की आप स्वयं रक्षा कीजिए । और अपने अशो के द्वारा हम भी यहाँ पर शम्भु की सन्निधि में ठहरेंगे ॥१४४॥ भगवान् चक्रेश्वर दोनों ओर जहाँ तक एक योजन के विस्तार की सख्या समाप्त होती है गङ्गा के दोनों तटों को प्राप्त करके वे सुरोत्तम रहते थे ॥१४५॥ अङ्गुलि के अर्ध-अर्ध मात्र तक वे गङ्गा के तीर पर समाश्रित हुए थे । हे मुनियों मे परमश्रेष्ठ ! वहाँ पर तीन करोड़ पाच सौ तीर्थों की व्युष्टि है । उन सबको कौन तो बतलाता है और कौन श्रवण करता है । तात्पर्य यह है कि तीर्थों की सख्या इतनी अधिक है कि उन सबको न तो कोई बतला सकता है और न कोई श्रवण करने की ही शक्ति रखता है ॥१४६॥

ततः सुरगणाः सर्वे विनीताः शिवमब्रुवन् ॥१४७॥

पिप्पलादं सुरेशानं रामं नय जगन्मय ॥१४८॥

ओमित्युक्त्वा जगन्नाथः पिप्पलादमवोचत ॥१४६॥  
 नाशितेष्वपि देवेषु पिता ते नाऽऽगमिष्यति ।  
 दत्ताः पित्रा तव प्राणा देवानां कार्यसिद्धये ॥१४७॥  
 दीनार्तकरुणाबन्धुः को हि तादृग्भवे भवेत् ।  
 तथा याता दिव तात तव माता पतिव्रता ॥१४८॥  
 समा काऽप्यत्र मतया लोपामुद्राऽप्यरुन्धती ।  
 यदस्थिभिः सुराः सर्वे जयिनः सुखिनः सदा ॥१४९॥  
 तेनावाप्तं यशः स्फीतं तव मात्राऽक्षयं कृतम् ।  
 त्वया पुत्रेण सर्वत्र नातः परतरं कृतम् ॥१५०॥  
 त्वत्प्रतापभयात्स्वर्गच्छिद्युतास्त्व पातुमर्हसि ।  
 नाऽऽर्तत्राणादभ्यधिकं सुकृतं कापि विद्यते ॥१५१॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके पश्चात् फिर सब देवों ने विनम्र होकर  
 भगवान् शिव से प्रार्थना की की ॥१४७॥ देवों ने कहा—हे जगन्मय !  
 आप तो सूरों के स्वामी हैं । जब आप उस पिप्पलाद को शान्त कीजिए  
 ॥१४८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—अच्छा ऐसा करे मे । इस तरह से देवों  
 की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया, और फिर वे पिप्पलाद से बोले ।  
 श्री शिव ने कहा—हे पिप्पलाद ! इन सब देवों के विनम्र कर देने पर  
 भी तेरे पिता दधीचि तो मृत्युगत हो जाने के कारण पुनः अब यहाँ  
 पर आयेगे नहीं । उन देवों ने ही तेरे प्राणों को देव कार्य की सिद्धि के  
 लिये प्रदान किया है ॥१४९-१५०॥ तुम्हारे पिताजी तो दीनों आत्तों  
 पर करुणा करने वाले और उनके बन्धु के समान थे । उन सरीखा इस  
 ससार में अन्य कौन हो सकता है ? अर्थात् वैसा दयालु तो कोई ही हो  
 नहीं सकता । हे तात ! तुम्हारी माता भी परम पुनीत पतिव्रता थी ।  
 वे दोनों ही स्वर्ग वासी हो गये हैं ॥१५१॥ लोपामुद्रा और अरुन्धी  
 के द्वारा भी सम्मानित उस तुम्हारी माता के समान यहाँ पर कौन है ?  
 अर्थात् कोई भी नहीं है । जिसकी अस्थियों से सभी सुरगण सदा विजयी  
 और सुखी रहते हैं । उस तुम्हारे पिता ने अपना सुयशः प्रलोक्य मे  
 फँसा दिया है और तुम्हारी माता ने तो उस यश को अक्षय ही बना



दिया है । तुम पुत्र ने सर्वत्र ही उस यश को कर दिया है । इससे अधिक किसी ने भी ऐसा यश अब तक नहीं किया है ॥ ५२-१५३ ॥ तुम्हारे प्रताप के भय से ये सब देवगण स्वर्ग से भी च्युत हो गये हैं अब इनकी रक्षा करने के लिये भुम योग्य होते हो । जो कोई भी आर्त हो उनके परित्ताण से अधिक सुकृत कही भी नहीं होता है ॥१५४॥

यावद्यशः स्फुरति चारु मनुष्यलोके,  
अहानि तावन्ति दिवं गतस्य ।  
दिने दिने वर्षसख्या(ख्य) परस्मि-  
ल्लोके वासो जायते निर्विकारः ॥१५५॥

मृतास्त एवात्र यशो न येषा-  
मन्धास्त एव श्रुतवजिता ये ।  
ये दानशीला न नपुंसकास्ते,  
ये धर्मशीला न त एव शोच्याः ॥१५६॥  
भाषितं देवदेवस्य श्रुत्वा शान्तोऽभवन्मुनिः ।  
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा नत्वा नाथमथान्नवीत् ॥१५७॥  
वाग्भिर्मनोभिः कृतिभिः कदाचि-  
न्ममोपकुर्वन्ति हिते रता ये ।

तेभ्यो हितार्थं त्विह चापरेषां,  
सोम नमस्यामि सुरादिपूज्यम् ॥१५८॥  
संरक्षितो यैरभिवर्धितश्च,  
समानगोत्रश्च समानधर्मा ।  
तेषामभीष्टानि शिवः करोतु,  
वालेन्दुमूर्तिं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥१५९॥

यैरहं वर्धितो नित्यं मातृवत्पितृवत्प्रभो ।  
तन्नाम्ना जायता तीर्थं देवदेव जगत्त्रये ॥१६०॥  
यशस्तु तेषां भविता तेभ्योऽहमृणस्ततः ।  
यानि क्षेत्राणि दवानां यानि तीर्थानि भूतले ॥१६१॥

तेभ्यो यदिदमधिकमनुमन्यन्तु देवता- ।

ततः क्षमेऽहं देवानामपराधं निरक्षतः ॥१५२॥

जब तक यह सुम्हारा यश इस मनुष्य लोक में बहुत ही सुन्दरता के साथ फैला रहेगा उतने दिन तक स्वर्गलोक में गये हुए वा, विकार से रहित निवास स्वर्ग में हुआ करता है ॥१५५॥ वे ही लोग वास्तव में मरे हुए हैं जिनका यश यहाँ पर कुछ भी नहीं होता है और वे ही लोग अन्धे हैं जो मृत से रहित होते हैं । जो दान करने के शील स्वभाव वाले होते हैं वे नपुंसक नहीं होते हैं और जो धर्मशील पुरुष होते हैं उनका तो कभी भी शोक करना ही नहीं चाहिए अर्थात् धार्मिक पुरुषों की मृत्यु हो जाने पर भी उनके विषय में चिन्ता या शोक कभी नहीं करना चाहिए ॥१५६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से देवेश्वर प्रभु के इस भाषित को सुन कर पिप्पलाद मुनि परम शान्त हो गया था । फिर उस मुनि ने दोनों अपने हाथों को जोड़ कर नमस्कार किया था और फिर अपने नाथ की सेवा में सयिनय निवेदन किया ॥१५७॥ पिप्पलाद मुनि ने कहा—ओ वचनों के द्वारा-मनों के द्वारा और यत्नों के द्वारा मेरा उपकार किया करते हैं तथा मेरे हित करने में रति रखते हैं उनके हित के लिये और दूसरों को भलाई के लिये सुरगण आदि के द्वारा पूज्य सोम को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१५८॥ जिन्होंने मेरी सुरक्षा की थी और जिनके द्वारा मेरा अभिवर्धन हुआ था जो मेरे समान गोत्र वाले एवं समान धर्म वाले हैं उन सबके अभीष्टों को भगवान् शिव पूर्ण करें । मैं उन वासुचन्द्र को मस्तक में धारण करने वाले प्रभु को नित्य ही प्रणाम करना हूँ ॥१५९॥ हे प्रभो ! जिन्होंने नित्य ही माता पिता के समान मुझे सबन्धित किया है हे देवों के देव ! त्रैलोक्य में उनके ही नाम से यह तीर्थ होना चाहिए ॥१६०॥ उनका यश होगा तो मैं उनसे फिर मैं अनुण हो जाऊँगा अर्थात् किये हुए उनके उपकार श्रृण का भार मेरे शिर से उतर आतगा । जो भी देवों के क्षेत्र है और जो भी भूतल में तीर्थ है उन सबसे यह तीर्थ अधिक माना जावे

और सब देवता भी इसको सबसे बड़ा मानें तभी निरखन में देवों के अपराधों को क्षमा कर दूँगा ॥१६१-१६२॥

ततः समक्ष सुरसाक्षरां गिरं,

सहस्रचक्षुःप्रमुखास्तथाऽग्रतः ।

उवाच देवा अपि मेनिरे वचो,

दधीचिपुत्रोदितमादरेण ॥१६३

बालस्य बुद्धिं विनयं च विद्या,

शौर्यं बलं साहसं सत्यवाचम् ।

पित्रोर्भक्तिं भावसुद्धिं विदित्वा,

तदाऽवादीच्छकरः पिप्पलादम् ॥१६४

वत्स यद्वै प्रियं काम यच्चापि सुरवल्लम् ।

प्राप्स्यसे वद कल्याण नान्यथा त्व मनः कृयाः ॥१६५

ये गङ्गायामाप्लुता धर्मनिष्ठाः,

सपश्यन्ति त्वत्पदाब्ज महेश ।

सर्वान्कामानाप्लुवन्तु प्रसह्य,

देहान्ते ते पदमायान्तु शैवम् ॥१६६

तातः प्राप्तस्त्वत्पद चाम्बिका मे,

नाथ प्राप्ता पिप्पलश्चामराश्च ।

सुखं प्राप्ता नाथनाथ विलोक्य,

त्वा पश्येयुस्त्वत्पद ते प्रयान्तु ॥१६७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसने अनन्तर महेन्द्र आदि देवों के आगे उसने परम सुरस असुरों वाली वाणी को कहा था और उस दधीचि के पुत्र के द्वारा कथित वचन को देवों ने भी बहुत आदर के साथ मान लिया था ॥१६३॥ उस समय में उस बालक की बुद्धि-विनय-विद्या-शौर्य-बल-साहस-सत्य वचन माता-पिता की भक्ति और भावना की विरुद्धि को जानकर भगवान् शिव ने पिप्पलाद से कहा था ॥१६४॥ भगवान् शम्भु ने कहा—हे वत्स ! जो भी तुम्हारा प्रिय हो और जो सुरों का प्रिय हो उसको तुम प्राप्त करोगे । हमेशा कल्याण का कथन करो और अन्यथा

अर्थात् कल्याण के विपरीत कर्मों भी करने मन को मत करना ॥१६५॥  
 पिप्पलाद ने कहा—ओ धर्मनिष्ठ पुरुष गङ्गा में स्नान करने वाले हैं और  
 हे नहेय ! आपके चरण कन्तों का दर्शन करते हैं वे अपने समस्त  
 अमीप्सितों को बलात् प्राप्त कर लेवे और देह के अन्न समय में शैव पद  
 को गमन किदा करें । मेरे पिताजी और मेरी माता आपके पद की  
 प्राप्त हो गये हैं । हे नाथ ! पिप्पल तथा अमरगण भी नाथों के नाथ  
 आपका अवलोकन करके कुछ पूर्वक प्राप्त हो गये हैं । ओ भी आपके  
 चरण हमसों का दर्शन करें वे सभी आपके पद की प्राप्ति कर लिया  
 करें ॥१६६-१६७॥

तथेत्युक्त्वा पिप्पलाद देवदेवो महेश्वरः ।  
 अभिनन्द्य च त देवः साध वाक्यमथाब्रवीत् ॥१६८॥  
 देवा अपि मुदा युक्ता निर्भयास्तत्कृताद्भयात् ।  
 इदमूचुः सर्व एव दाधीच शिवस्तनिधौ ॥१६९॥  
 सुराणा यदनीष्टं च त्वया कृतमसदयम् ।  
 पालिता देवदेवस्य आज्ञा त्रैलोक्यमण्डनौ ॥१७०॥  
 याचित च त्वया पूर्वं परार्थं नाञ्जमने द्विज ।  
 तस्मादन्यतम ब्रूहि किंचिद्दास्यामहे वयम् ॥१७१॥  
 पुनः पुनस्तदेवोचुः सुरसंघा द्विजोत्तमम् ।  
 कृताञ्जलिपुटः पूर्वं नत्वा धामुत्तुरानिदम् ॥  
 उवाच पिप्पलादस्र उमा नत्वा च पिप्पलान् ॥१७२॥  
 पितरौ द्रष्टुकामोऽस्मि सदा मे शब्दगोचरौ ।  
 ते धन्याः प्राणिनो लोके मातापित्रोर्वंशे स्थिताः ॥१७३॥  
 शुश्रूषणपरा नित्य सत्पादाज्ञाप्रतीक्षकाः ।  
 इन्द्रियाणि शरीरं च कुल शक्ति धिय वपुः ॥१७४॥  
 परिलभ्य तयोः कृत्ये कृतकृत्यो भवेत्स्वयम् ।  
 पद्मना पक्षिणा चापि सुलभ मातृदर्शनम् ॥१७५॥  
 दुर्लेभं मम तच्चापि पृच्छे पापफलं नु किम् ।  
 दुर्लेभं च तथा चेत्स्यात्सर्वेषा यस्य कस्यचित् ॥१७६॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—देवो के देव महेश्वर ब्रम्ह ने पिप्पलाद से ऐसा ही होगा—यह कह देवों के साथ ही उसका अभिनन्दन करके वाक्य कहा था । फिर तो सब देवगण भी आनन्द से युक्त तथा उसके किये हुए भय से निहट होकर भगवान् शिव की सन्निधि में ही सब उस दधीचि के पुत्र से इस वचन को बोले थे ॥१६८-१६९॥ देवों ने कहा—देवो का जो अभीप्सित मनोरथ था वह आपने बिना किसी संशय के पूर्ण कर दिया है और आपने देवो के देव भगवान् शिव की त्रैलोक्य मण्डनी आशा का भी पूर्णतया पालन किया है ॥१७०॥ हे द्विज ! आपने जो कुछ भी याचना की है वह भी पहिले दूसरो के ही हितार्थ की है अपने लिये आपने कुछ भी नहीं माँगा है । अतएव आप कुछ अन्य भी बोलिए हम लोग आपको प्रदान करेंगे ॥१७१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन सुरो के सघो ने उस उत्तम द्विज से बारम्बार यही वान कही थी । तब तो उस पिप्पलाद ने दोनों हाथो को जोड़कर पहिले भगवान् ब्रम्ह तथा सुरो को एव जगदम्बा उमा देवी को और पिप्पलो को प्रणाम करके यह वचन कहा था ॥१७२॥ पिप्पलाद ने कहा—मैं अपने माता-पिता के दर्शन करने की कामना रखता हूँ वे सदा मेरे शब्द गोचर हों । वे प्राणी इस जगत् में परम धन्य एव महान् भाग्यशाली हैं जो सर्वदा अपने माता-पिता के धरा में ही स्थित रहा करते हैं ॥१७३॥ जो नित्य ही माता-पिता की शुद्धी में तत्पर रहते हैं और उन चरणो की आशा की प्रतीक्षा किया करते हैं । इन्द्रियाँ-शरीर-कुल-शक्ति-धी-वपु को प्राप्त कर माता-पिता के कृत्य में स्वयं कृतकृत्य होना ही चाहिए । पशुओ को और पक्षियों को भी माता का दर्शन सुलभ होता है किन्तु मुझे वह भी दुर्लभ हो गया था । मैं यही पूछना चाहता हूँ कि कौन से मेरे पाप का यह फल उदय हुआ था । यदि वह दुर्लभ ही होता है तो सभी में त्रिस किसी को ही होना चाहिए ॥१७४-१७६॥

नोपपद्येत सुलभं मत्तो नान्योऽस्ति पापकृत् ।

तयोर्दर्शनमात्रं च यदि प्राप्स्ये सुरोत्तमाः ॥१७७॥

मनोवाक्यायकर्मभ्यः फलं प्राप्तं भविष्यति ।  
 पितरो ये न पश्यन्ति समुत्पन्ना न (स्तु) ससृतो ॥  
 तेषा महापातकानां कः सख्यां कर्तुमीश्वरः ॥१७८  
 तद्वपेर्वचनं श्रुत्या मिथः समन्व्य ते सुराः ।  
 विमानवरमारुढौ पितरो दम्पती शुभौ ॥१७९  
 तव सददर्शनाकाङ्क्षो द्रक्ष्यसे वाञ्छ निश्चितम् ।  
 विषाद लोभमोहो च त्यक्त्वा चित्तं शमय ॥१८०  
 पश्य पश्येति तं प्राहुर्दधीच सुरसत्तमाः ।  
 विमानवरमारुढौ स्वर्गिणो स्वर्णभूषणौ ॥१८१  
 तव सददर्शनाकाङ्क्षो पितरो दम्पती शुभौ ।  
 वीज्यमानो सुरस्त्रीभिः स्तूयमानो च किन्नरैः ॥१८२

यदि यह सुलभ नहीं होता है तो मुझसे अग्य कोई भी पापों के करने वाला नहीं है । तुमसमो ! यदि मैं उनका वेषत दर्शन भी प्राप्त कर लूँगा तो मेरे मन-धाणी और यन्मों का फल प्राप्त हो जायगा । जो अपने माता पिता का दर्शन नहीं करते हैं वे तो मानो इस ससार में उत्पन्न ही नहीं हुए हैं । ये वास्तव में महान् पातकी हैं और उनके महापातकों की सख्या करने की विसमर्थता है अर्थात् कोई उनको गिन कर नहीं बता सकता है ॥१७७-१७८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस ऋषि के इन वचनों का श्रवण कर उन सब सुरों ने परस्पर में मन्थना की थी । वे शुभ दम्पती तुम्हारे माता-पिता परम श्रेष्ठ विमान में समावृद्ध हुए हैं और तुम्हारे दर्शन की आकाङ्क्षा वाले हैं । आज तुम निश्चित रूप से उनको देख लोगे । विषाद तथा लोभ एवं मोह का त्याग करके अपने चित्त को शान्त करो ॥१७९-१८०॥ फिर सुरन्त ही उन देव-गणों ने दधीचि के पुत्र से कहा था—देखो, देखो वे परमाधिक श्रेष्ठ विमान पर चढ़े हुए, स्वर्ग में रहने वाले, स्वर्ण के भूषणों को धारण करने वाले तथा तुम्हारे देखने की आकाङ्क्षा रखने वाले शुभ दम्पती तुम्हारे माता-पिता हैं जो देवाङ्गनाओं के द्वारा पसे जा रहे हैं और किन्नरों के द्वारा स्तुति किये जा रहे हैं ॥१८१-१८२॥

दृष्ट्वा स मातापितरो ननाम शिवसन्निधौ ।  
 हर्षवाष्पाभ्रुनयनौ स कथंचिदुवाच तौ ॥१८३॥  
 तारयन्त्येव पितरावन्ये पुत्राः कुलोद्वहाः ।  
 अहं तु मातुरुदरे केवल भेदकारणम् ॥  
 एवभूतोऽपि तौ मोहात्पश्येवमतिदुर्मतिः ॥१८४॥  
 तावालोक्ष्य ततो दुःखाद्वक्तुं नैव शक्ताक सः ।  
 देवाश्च मातापितरौ पिप्पलादमथाब्रुवन् ॥१८५॥  
 घन्यस्त्वं पुत्र लोकेषु यस्य कीर्तिर्गता दिवम् ।  
 साक्षात्कृस्त्वया श्र्यक्षो देवाश्चाऽऽश्वासितास्त्वया ॥  
 त्वया पुत्रेण सल्लोका न क्षीयन्ते कदाचन ॥१८६॥  
 पुष्पवृद्धिस्तदा स्वर्गात्पपात तस्य मूर्धनि ।  
 जयशब्दः सुररुक्तः प्रादुर्भूतो महामुने ॥१८७॥  
 आशिषं तु सुते दत्त्वा दधीचिः सह भार्यया ।  
 शशुं गङ्गा सुरन्नत्वा पुत्र वास्यमथान्नवीत् ॥१८८॥  
 प्राप्य भार्या शिवे भक्तिं कुरु गङ्गा च सेवय ।  
 पुत्रानुत्पाद्य विविचयज्ञानिष्ट्वा सदक्षिणान् ॥  
 कृतकृत्यस्ततो वत्स आक्रमस्व चिरं दिवम् ॥१८९॥

भगवान् शिवजी की सन्निधि में उस ऋषि ने अपने माता-पिता का दर्शन करके उनको उसने प्रणाम किया था । वे दोनों ही हर्ष के अश्रुओं से भरे हुए लोचनों वाले थे । उस समय में वह ऋषि बड़ी ही कठिनता से उनसे बोला था ॥१८३॥ उस ऋषि पुत्र ने कहा—अपने कुल के उद्बहन करने वाले अन्य पुत्र अपने माता पिता को तार दिया करते हैं । मैं तो ऐसा बभाषा हूँ कि माता के उदर में रह कर केवल उसके भेदन करने का ही कारण बन गया था । इस प्रकार का होते हुए भी अत्यन्त दुर्मति वाला मैं उन दोनों की मोह में देख रहा हूँ ॥१८४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन दोनों माता-पिता का दर्शन करके उसे इतना अधिक दुःख हुआ था कि वह और कुछ सोलने में समर्थ न हो सका था । इसके अनन्तर देवगण और उसके माता-पिता ने उस पिप्पलाद से कहा था

॥१८५॥ देवो ने कहा—हे पुत्र ! तुम परम धन्य हो, लोको में जिनकी कीर्ति विद्यमान है और दिवलोक में भी पहुच गयी है । हे पुत्र ! तुमने भगवान् त्रिलोचन प्रभु का साक्षात्कार किया है और समस्त देवो को भी समाश्वासन दिया है । हे पुत्र ! तेरे द्वारा सवलोक कर्मो भी क्षीण नहीं किये जा रहे हैं अर्थात् तुने अच्छे लोक मदा अक्षय ही होगे ॥१८६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उषी समय में उसके मस्तक पर स्वर्ग से पुष्पो की वर्षा हुई थी । हे महामुने ! सुरो के द्वारा यमित जयकार का शब्द प्रादुर्भूत हो गया था अर्थात् देवो ने जय-जयकार किया था ॥१८७॥ भार्या के साथ ही दधीचि ने अपने पुत्र को आशीर्वाद किया था और भगवान् शम्भु-गङ्गा और सुरो की सेवा में प्रणाम करके फिर अपने पुत्र से कहा था ॥१८८॥ दधीचि ने कहा—हे वरत ! तुम भार्या को प्राप्त करो तथा शिव की भक्ति करो और गङ्गा का सेवन करो । गार्ह-स्थ्य आयम की विधि के साथ पुत्रों को उत्पन्न करने तथा दक्षिणा के सहित यज्ञो का यजन करके तुम फिर कृतवृत्त हो जाओगे । इसके पश्चात् चिरकाल तक स्वर्ग में सक्रमण करना ॥१८९॥

करोम्येवमिति प्राह दधीचि पिप्पलाशनः ।

दधीचिः पुत्रमाश्वास्य भार्यया च पुनः पुनः ॥१९०॥

अनुज्ञातः सुरगणैः पुनः स दिवामाक्रमत् ।

देवा अप्पूचिरे सर्वे पिप्पलादं ससन्नमाः ॥१९१॥

कृत्या शमय भद्र ते तदुत्पन्न महानलम् ॥१९२॥

पिप्पलादस्तु तानाह न शक्तोऽहं निवाररो ।

असत्य नैव वक्ताऽहं यूय कृत्या तु ब्रूत ताम् ॥१९३॥

मा दृष्ट्वा सा महारौद्रा विपरीत करिष्याति ।

तामेव गत्वा विबुधाः प्रोचुस्ते शान्तिकारणम् ॥१९४॥

अनल च यथाप्रीति ते उभे नेत्यवोचताम् ।

सर्वेषा भक्षणायैव सृष्टा चाहं द्विजन्मना ॥१९५॥

तथाच मत्प्रसूतोऽग्निरन्यथा तत्कथ्य भवेत् ।

महाभूतानि पञ्चापि स्थावरं जङ्गमं तथा ॥१९६॥



श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय में उस पिप्पलाशन ने मैं ऐसा ही करूँगा—यह अपने पिता दधीचि से कहा था । दधीचि मुनि ने अपनी भार्या के सहित अपने पुत्र का बारम्बार समाश्रासन किया और फिर सुरगणों के द्वारा आमा प्राप्त कर दिवलोक में चला गया । फिर उन देवों ने सब ने मिलकर बहुत ही सभ्रम के साथ पिप्पलाद से कहा था ॥१६०-१६१॥ देवों ने कहा—इस कृत्या का अब शमन कर दो—तुम्हारा कल्याण होगा क्योंकि उसके मुख से महान् भयानक अनस उत्पन्न हो गया है ॥१६२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय में उन सुरों से पिप्पलाद ने कहा था कि मैं उसका निवारण करने में समर्थ नहीं हूँ । मैं कभी असत्य भाषण करने वाला नहीं हूँ । आप उस कृत्या से स्वयं पूछिये । मुझको देख कर तो वह महान् रौद्र रूप वाली विपरीत ही कर्म्म करेगी । तब तो देवों ने उसके समीप में उपस्थित होकर उसकी शान्ति का कारण पूछा था ॥१६३-१६४॥ देवों ने यही कहा था कि जैसे यह अनस शान्त हो और आप प्रसन्न होवें वह बतलाइये, हम ये दोनों का होना चाहते हैं । उस कृत्या ने कहा था कि विप्र के द्वारा मैं सभी के भक्षण करने के लिये समुत्पन्न की गयी हूँ ॥१६५॥ अतएव मेरे द्वारा उत्पादित की हुई यह अग्नि अन्यथा कैसे हो सकती है । पाँचों महाभूत तथा स्यावर एव जगम इन सब को मेरे मुख में समक्षता चाड़िए ॥१६६॥

सर्वमस्मन्मुखे विद्याद्वक्तव्य नावशिष्यते ।

मया समन्व्य ते देवाः पुनरुचुर्भावपि ॥१६७

भक्षयेतामुभौ सर्वं यथानुक्रमतस्तथा ।

वडवाऽपि सुरानेवमुवाच शृणु नारद ॥१६८

भवतामिच्छया सर्वं भक्ष्यं मे सुरसत्तमाः ॥१६९

वडवा सा नदी जाता गङ्गाया संगता मुने ।

तद्भवस्तु महानग्निर्यं आसीदतिभीषणः ॥

तमाहुरमरा वह्नि भूतानामादितो विदुः ॥२००

आपो ज्येष्ठतमः ज्ञेयास्तथैव प्रथमं भगवान् ।

तत्राप्यपापतिं ज्येष्ठं समुद्रं (तिज्येष्ठस्तस्यात्वं) मशनं कुरु ॥

यथैव तु दयं ब्रूमो गच्छ भुङ्क्ष्व यथा सुज्ञम् ॥२०१॥

अनलस्त्वमरानाह आपस्तनं कथं त्वहम् ।

ब्रजेय यदि मा तत्र प्रापयन्त्युदकं महत् ॥२०२॥

भवन्त एव तेऽप्याहुः कथं तेऽग्ने गतिर्भवेत् ।

अग्निरप्याह तान्देवान्कन्या मा गुणशालिनी ॥२०३॥

हिरण्यकलशे स्थाप्य नयेद्यत्र गतिर्मम ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कन्वामूचुः सरस्वतीम् ॥२०४॥

विशेष कुछ कहना अवगिष्ट ही नहीं रह जाता है । तब तो ब्रह्मा-  
जी ने कहा—मेरे साथ मे मन्त्रणा करके उन देवों ने पुनः उन दोनों से  
कहा । आप अनुक्रम से दोनों सब का भक्षण कर सेवें । हे नारद ! उस  
समय मे यह बड़वा भी सुरों से इस माँति कहने लगी जिसका आप  
श्रवण करिए ॥१८७-१८८॥ बड़वा ने कहा—हे सुरसत्तमो ! आप लोगो की  
इच्छा से मेरा सब ही भक्षण है । श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुने ! यह  
बड़वा नदी हो गयी थी और यज्ञ के साथ संगत हो गयी थी । उससे  
समुत्पन्न हुआ अग्नि महान् एव अत्यन्त भीषण था । अमरगणों ने उस  
बह्मि से कहा था कि भूतो को आदि से जान लो ॥१८९- ००॥ सुरों ने  
कहा—समस्त भूतो मे जत ही सबसे बड़े हैं उसी क्रम से सर्व प्रथम  
आप उनका ही भक्षण करिए । उन जलो मे भी अपापति समुद्र सबसे  
ज्येष्ठ है उस समुद्र का भक्षण करें । जिस प्रकार से हम लोग आपको  
बतलायें उसी रीति से सुख पूर्वक आप भक्षण करें ॥२०१॥ श्री ब्रह्माजी  
ने कहा—उस समय मे उस अनल ने देवों से कहा था कि जल तो यहाँ  
पर है, मैं यहाँ कैसे गमन करूँ ? आप लोग यदि मुझको उस महान् जल  
तक प्राप्त करा दें तो ऐसा हो सकता है । तब तो उन देवों ने भी कहा  
हे कि हे अग्ने ! यहाँ पर आपका गमन कैसे हो सकता है ? तब तब  
उस अग्नि ने कहा कि यदि कोई गुण शालिनी कन्या मुझको सुवर्ण के  
कलश मे स्थापित करके से जावे तो मेरी गति यहाँ पर हो सकेगी ।

इसे जीवन पर्यन्त दुःख ही भोगना होगा ॥ ४१ ॥ क्योंकि सुरभि का वचन कभी मिथ्या नहीं होता, इसलिए जीवन पर्यन्त दुःख भोगेगी, मैं दुःखित चित्त से इसके स्नेहवश ही यहाँ आई हूँ ॥ ४२ ॥

यतोविशेषोर्नवास्तिस्वसखीनिजदेहयोः ।

यद्येपाभिमतवीरपतिमाप्नोतिशोभना ॥४३॥

ततस्त्वहंतपःकुर्यानिर्व्यलीकेनचेतसा ।

त्वंतुकोवाविमार्थवासंप्राप्तोत्तमहामते ॥४४॥

देवोदैत्योनुगंधर्वःपन्नगःकिन्नरोपिवा ।

नह्यत्रमानुषगतिर्नचेदृङ्मानुषीगतिः ॥४५॥

तत्त्वमाख्याहिकोसित्वंयथैवावितथंमया ।

यन्मांपृच्छसिधर्मज्ञेकस्त्वकिंवासमागतः ॥४६॥

तच्छृणुष्वामलप्रज्ञेकथयाम्यादितस्त्वव ।

राज्ञःशत्रुजित पुत्रपित्तासंप्रेषित शुभे ॥४७॥

मुनिरक्षणमुद्दिश्यगालवाश्रमागतः ।

कुर्वंतोममरक्षांचमुनीनांधर्मचारिणाम् ॥४७॥

विघ्नार्थमागतःकोपिशौकरवपुरास्थित ।

मयासविद्धोवाणेनचद्राद्विकारवर्चसा ॥४८॥

क्योंकि मैं इसके और अपने देह में पृथक्त्व नहीं मानती यदि इसे अपनी इच्छानुसार पति मिल जाय ॥ ४३ ॥ तो मैं स्वस्थ मन से तप करूँ । हे महामते ! तुम कौन हो ? यहाँ क्यों आये हो ? ॥ ४४ ॥ क्या तुम देवता, दैत्य, गंधर्व, नाग या उरग हो ? क्योंकि मनुष्य का तो शरीर ही ऐसा नहीं होता, जिससे वह यहाँ आ सके ॥ ४५ ॥ इसलिए जैसे मैंने अपना सब वृत्तान्त सुनाया है वैसे ही तुम भी अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त मत्स्य सत्य सुनाओ । कुवलयाम्ब बोले—तुमने पूछा है कि तुम कौन हो और यहाँ क्यों आये हो ? ॥ ४६ ॥ वह सब मैं तुम्हें बताता हूँ, सुनो । मैं राजा शत्रुजित् का पुत्र हूँ और अपने पिता की प्रेरणा से ॥ ४७ ॥ मुनियों के रक्षणार्थ गालव मुनि के आश्रम में रह कर मुनियों की रक्षा करता था ॥ ४८ ॥ उमी समय एक मूँकर उनके नर्म में विघ्न उपस्थित करने को यहाँ आया और मैंने उसे अर्धचन्द्र वाण से

भीष दिवा ॥ ४६ ॥

अपक्रांतोतिवेगेनतमस्म्यनुगतोहयी ।

पपानसहमागर्त्तसक्रोशोश्चश्चमामकः ॥५०॥

सोहमश्च समाहूटस्तमस्येकपरिभ्रमन् ।

प्रकाशमामादिनवान्दृष्टाचमवतीमया ॥५१॥

पृष्टाचनचमेकिचिद्भुवत्यादत्तमुत्तरम् ।

त्वाचंवानुप्रविष्टोहमिमप्राप्तादमुत्तमम् ॥५२॥

इत्येतत्कथितसत्प्रनदेवोहनदानवः ।

न गोमगधर्वं किन्नरोवाशुचिस्मिते ॥५३॥

समस्ता पूज्यपक्षावदेवाद्याममकुडले ।

मनुष्योस्मि विशकातेनकर्त्ताव्यानकर्हिचित् ॥५४॥

ततः प्रहृष्टासाकन्यासखीवदनमुत्तमम् ।

लज्जाजडवीक्षमाणार्किचिन्नोवाचभामिनी ॥५५॥

तत्सखीपुनरप्येनाप्रहृष्टाप्रत्युवाचह ।

यथावत्कथिततेनमुरन्यावचनानुगम् ॥५६॥

तब वह अत्यन्त वेग में दौड़ा और मैंने भी अश्वारोहण पूर्वक उसका पीछा किया, फिर वह एक विनाल गर्त में गिरा और मैं भी उसका पीछा करता हुआ अपने अश्व सहित उसमें गिर गया, परन्तु अपने अश्व पर चढ़ा हुआ चलता रहा और इस प्रकाशमय स्थान में आकर तुम्हें देखा ॥ ५०-५१ ॥ तुमसे पूछने पर तुमने कोई उत्तर नहीं दिया, तब मैं तुम्हारे पीछे-पीछे इस भवन में चला आया ॥ ५२ ॥ यह मैंने सत्य ही कहा है, मैं देव, बानव, पन्नग, गधर्व अथवा किन्नर में से कोई भी नहीं हूँ ॥ ५३ ॥ मैं मनुष्य हूँ देवता इत्यादि तो सभी मेरे पूज्य हैं, तुम मेरे मनुष्य हो ने मैं किसी प्रकार का संदेह मत करो ॥ ५४ ॥ पुत्री ने कहा—हे पिता, तब वह नन्या मदालसा अत्यन्त हर्षित होकर सज्जा से मोन हुई सखी की ओर देखने लगी ॥ ५५ ॥ तब सखी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर मदालसा से कहा—हे सखि ! तू सुरभि के वचन में सत्वर है, इन्होंने यथार्थ वृत्तान्त कहा है, फिर वह राजकुमार से बोली ॥ ५६ ॥

वीरसत्यमसंदिग्धंभवताभिहितंवचः ।  
 नान्यत्रहृदयंह्यस्यादृष्ट्वास्थैर्यप्रयास्यति ॥५७॥  
 चद्रमेवधिकाकांतिःसमुपैतिरविप्रभा ।  
 भूतिर्धन्यंघृतिर्धीरक्षांतिरभ्येतिचोत्तमम् ॥५८॥  
 त्वयैवविद्धोसदिग्धंसपापोदानवाधमः ।  
 सुरभिःसागवांमाताकथंमिथ्यावदिष्यति ॥५९॥  
 तद्वन्येयंसभाग्याचत्वत्संबंधमवेत्यवै ।  
 कुरुष्ववीरयत्कार्यंविधिनैवसमाहितम् :॥६०॥  
 परवानहमित्याहराजपुत्रःसदापितुः ।  
 सचापितत्क्षणात्प्राप्तोनिगृहीतसमित्कुशः ।  
 मदालसायाःसंप्रीत्याकुण्डलागौरवेणच ॥६१॥  
 प्रज्वात्यपावकंह्रुत्वामंत्रवित्कृतमगलाम् ।  
 वैवाहिकेविधौकन्यांप्रतिपाद्यायथागतम् ॥६२॥

कुण्डला ने कहा—हे वीर ! आपने जो कुछ कहा है वह सत्य न होता तो यह आपके दर्शन मात्र से ही अपने हृदय में स्थिरता को क्यों प्राप्त होती ? ॥ ५७ ॥ क्योंकि चन्द्रमा को ही अधिक कान्ति और सूर्य को ही अधिक प्रभा प्राप्त है, ऐश्वर्यं पुरुष को धन्य करता है, घृति धीर को और शान्ति श्रेष्ठ पुरुष को ही प्राप्त होती है ॥ ५८ ॥ इसलिए आपने ही इस दानवाधम को विद्ध किया है, इसमें सदेह नहीं, गोमाता सुरभि कभी मिथ्या नहीं बोल सकती ॥ ५९ ॥ इसलिए आपके साथ सम्बन्ध प्राप्त करके यह सखी सौभाग्यवती और धन्य हुई है, अब आप विधिवत् कर्तव्य का अनुष्ठान करिये ॥ ६० ॥ पुत्रो ने कहा—हे पिता ! राजपुत्र उससे बोले—मैं पराधीन हूँ, पिता की आज्ञा के बिना इस बाला से विवाह कैसे कर सकता हूँ ! इस पर कुण्डला ने कहा है, यह देवकन्या है, आप इसके साथ विवाह कीजिये, तब राजपुत्र ने स्वीकृति दी और विवाह के लिए तत्पर हुए, उस समय मदालसा ने अपने कुल गुरु तुम्बरु का स्मरण किया ॥ ६१ ॥ तभी तुम्बरु समिध और कुश लेकर वहाँ आगए ॥ ६२ ॥ और घृताहुति देकर अग्नि को प्रज्वलित करके विधि पूर्वक मदालसा और राजपुत्र का विवाह सम्पन्न कराया और फिर अपने

स्थान को चले गये ॥ ६३ ॥

जगामतपसेधीमान्स्वमाश्रमपदंततः ।

साचाहतासखीवालाकृतार्थास्मिवरानने ॥६४॥

सयुक्तामनुनादृष्ट्वात्वामहंरूपशालिनीम् ।

तपस्तपस्येहमतुलंनिर्व्यलीकेनचेतसा ॥६५॥

तीर्थाबुधोतपापाचभवित्रीनेदृशीयथा ।

तंचाहराजपुत्रंसाप्रश्रयोपनतंवचः ॥६६॥

गतुकामानिजसखीस्नेहविकलवभाषिणी ।

पुंभिरप्यमितप्रज्ञेनोपदेशोभवद्विधे ॥६७॥

दातव्य किमुतस्त्रीभिरतो नोपदिशामिते ।

कित्वस्यास्तनुमध्यायास्नेहाकृष्टेनचेतसा ॥६८॥

त्वयाविश्रमिताचास्मिस्मारयाम्यरिसूदन ।

भर्तव्यारक्षितव्याचभार्याहिपतिनासदा ॥६९॥

धर्मार्थकामससिद्धयैभार्याभक्तुं सहायिनी ।

याचभार्याचभर्ताचपरस्परमनुव्रतो ॥७०॥

वह अपने आश्रम में तप करने के लिए जब चले गये तब कुण्डला ने मदालसा से कहा—कि अब मैं कृतार्थ हो गई ॥ ६४ ॥ हे रूपवती ! तुझे इनके साथ मिली देखकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई, अब मैं निर्विकार मन से तपस्या करूँगी ॥ ६५ ॥ अब मुझे फिर इस प्रकार न रहना पड़े, इसलिए तीर्थ जल से स्नान कर पाप-रहित होऊँगी, फिर उसने राजकुमार से नम्रता पूर्वक कहा ॥ ६६ ॥ इच्छित स्थान में जाने को तत्पर अपनी सखी के स्नेह से व्याजुल कुण्डला ने कहा—हे अत्यन्त बुद्धिमान् ! आपके समान पुरुष को जानती पुरुष भी उपदेश देने में समर्थ नहीं है ॥ ६७ ॥ मैं तो स्त्री हूँ, आपको उपदेश नहीं देती, फिर भी मेरा मन अपनी सखी के स्नेह में आकर्षित है ॥ ६८ ॥ हे शत्रुनाशक ! आप पर विश्वास करती हुई मैं आपको याद दिलाती हूँ कि पति को पत्नी की सदैव रक्षा करनी चाहिये ॥ ६९ ॥ पत्नी भी पति की सहायिका होती है और धर्म, अर्थ तथा काम की सिद्धि के लिए दोनों ही परस्पर वशीकृत रहते हैं ॥ ७० ॥

तदाधर्मार्थिकामानां त्रयाणामपि संगतम् ।  
 कथं भार्यामृते धर्ममर्थं वा पुरुषः प्रभो ॥ ७१ ॥  
 प्राप्नोति काममर्थं वा तस्यां त्रितयमाहितम् ।  
 तथैव भर्तारमृते भार्या धर्मादिसाधने ॥ ७२ ॥  
 न समर्था त्रिवर्गो यं दांपत्यं समुपाश्रिताः ।  
 देवतापितृभृत्यानामतिथीनां च पूजनम् ॥ ७३ ॥  
 न पुंभिः शक्यते कर्तुं मृते भार्या नृपात्मज ।  
 प्राप्तोपि चार्थो मनुजैरानीतोपि निजंगृहम् ॥ ७४ ॥  
 क्षयमेति विना भार्या कुम्भार्या संग्रहेऽपि वा ।  
 कामस्तु तस्य नैवास्ति प्रत्यक्षेणोपलक्ष्यते ॥ ७५ ॥  
 दांपत्योः सह धर्मेण त्रयी धर्ममवाप्नुयात् ।  
 पुत्राणां यो निरन्यावै नान्यतो भार्यया विना ।  
 पितृन्पुत्रैस्तथैवान्न साधनैरतिथीनपि ॥ ७६ ॥  
 पूजाभिरमरांस्तद्वत्साध्वीं भार्या नरो वति ।  
 स्त्रियाश्चापि विना भर्त्रा धर्मकामार्थसंततिः ॥ ७७ ॥

तभी धर्म, अर्थ और काम का सिद्धि सम्भव है, यह तीनों धर्म पत्नी मे समाहित होने से, जैसे पत्नी के बिना कभी धर्म, अर्थ ॥ ७१ ॥ प्राप्त करने मे समर्थ नहीं होता वैसे ही धर्मादि के साधन मे पति के बिना पत्नी भी ॥ ७२ ॥ समर्थ नहीं होती, क्योंकि धर्म, अर्थ और काम पति-पत्नी दोनों के ही आश्रित हैं । हे राजकुमार ! देवता, पितर भृत्य और अतिथियों का सत्कार ॥ ७३ ॥ न हो तो धर्माचरण नहीं हो सकता तथा पुरुष द्वारा अनायास उपाजित धन भी गृह मे लाने पर ॥ ७४ ॥ यदि पत्नी न हो अथवा कुमार्या हो तो वह सब नष्ट हो जाता है, पत्नी के बिना, न होने वाला यह कार्य तो प्रत्यक्ष ही है ॥ ७५ ॥ यदि स्त्री-पुरुष दोनों ही समान धर्म को पालें तभी, अर्थ, काम मे समर्थ होते हैं, साध्वी पत्नी को प्राप्त करके पुत्रोत्पादन द्वारा पितरों को तथा अन्नादि से अतिथियों को ॥ ७६ ॥ और पूजन द्वारा देवताओं को प्रसन्न करने मे समर्थ होते हैं, स्वामी के बिना नारी के भी धर्म और काम का भले प्रकार विस्तार नहीं हो सकता ॥ ७७ ॥

नैवतस्मात्त्रिवर्गोयंदांपत्यमधिगच्छति ।  
 एतन्मयोक्तं युवयोर्गमिष्यामियथेप्सितम् ॥७८॥  
 वर्धस्त्वमनयासार्द्धधनपुत्रसुखायुषा ।  
 इत्युक्त्वा सपरिष्वज्य स्वसखी तनमस्य च ॥७९॥  
 जगाम दिव्ययागत्यायथाभिप्रेतमात्मनः ।  
 सोपिशश्रुजितः पुत्रस्तामारोप्यतुरंगमम् ॥८०॥  
 निर्गतुकाम पातालाद्विज्ञातो दनुसंभवेः ।  
 ततस्तै सहसोत्कुष्टं ह्रियते ह्रियते त्विति ॥८१॥  
 कन्यारत्नमदानीत दिवः पातालकेतुना ।  
 तत परिधनिस्त्रिशगदाशूलशरायुधम् ॥८२॥  
 दानवानावलप्राप्तसहपातालकेतुना ।  
 तिष्ठतिष्ठेति जल्पतस्ते तदा दानवोत्तमाः ॥८३॥  
 शरवर्षैस्तथाशूलैर्ववपुर्नृपनन्दनम् ।  
 सतुशश्रुजितः पुत्रस्ततस्तान्प्रतिवीर्यवान् ॥८४॥

यह त्रिवर्ग दोनों मे ही आश्रित है, यही मेरा कहना है, अब मुझे आज्ञा दीजिये, जिससे मे अपने इच्छित स्थान मे चली जाऊ ॥ ७८ ॥ मेरा आशीर्वाद है कि आप इससे युक्त होकर धन, पुत्र, आयु और सुख मे वृद्धि को प्राप्त हो नागपुत्री ने कहा-इस प्रकार कहती हुई कुण्डला अपनी सखी को आलिंगन और राजकुमार को नमस्कार करके ॥ ७९ ॥ दिव्यगति से अपने इच्छित स्थान को गई और श्रुतध्वज ने मदालसा को अश्व पर चढ़ा कर ॥ ८० ॥ जैसे ही पाताल से निकलना चाहा, वैसे ही दानवो को उसका पता लग गया कि 'स्वर्ग' से जिस कन्या को पाताल केतु लाया था, उसे हरण लिये ले जा रहा है, यह कहते हुए दानव चीत्कार करने लगे और पातालकेतु के साथ मिल कर दानव सेना परिध, खड्ग, गदा, शूल, बाण इत्यादि ॥ ८१-८२ ॥ आयुधो को ग्रहण कर ठहरो, ठहरो, कहने हुए ॥ ८३ ॥ राजकुमार पर शस्त्र-वर्षा करने लगे ॥ ८४ ॥

चिच्छेदशरजालेन प्रहसन्निवलीलया ।

क्षणेन पातालतलमसि शक्त्युष्टिसायकैः ॥८५॥



छिन्नैःसंछन्नमत्यर्थमृतुध्वजशरोत्करैः ।  
 ततोऽस्त्रं त्वाष्ट्रमादायचिक्षेपप्रतिदानवान् ॥८६॥  
 तेनतेदानवाःसर्वेसहपातालकेतुना ।  
 ज्वालामालातितीव्रेणस्फुटदस्थिचयास्तदा ॥८७॥  
 निर्द्गन्धाःकापिलतेजःसमासाद्येवसागराः ।  
 ततःसराजपुत्रोऽश्वीनिहत्यासुरसत्तमान् ॥८८॥  
 श्रीरत्नेनसमंतेनसमागच्छत्पितुःपुरम् ।  
 प्रणिपत्यचतत्सर्वंसतुपित्रेन्यवेदयत् ॥८९॥  
 पातालगमनंचैवकुण्डलायाश्चदर्शनम् ।  
 तद्वन्मदालसाप्राप्तिदानवैश्चापिसगरम् ॥९०॥  
 वधश्चतेषामस्रेणपुनरागमनंतथा ।  
 इतिश्रुत्वापितातस्यचरितंचात्रचेतसः ॥९१॥  
 प्रीतिमानभवच्चैनपरिष्वज्याहचात्मजम् ।  
 सत्पुत्रेणत्वयापुत्रतारितोऽहंमहात्मना ॥९२॥

तब शत्रुजित् के अत्यन्त बली पुत्र ने अपने बाणों से उनके सब शस्त्र घात की बात में काट डाले और उसके बाणों से कट-कट कर गिरे शस्त्रास्त्रों से पातालतल ॥ ८५ ॥ मर गया, तब राजकुमार ने बड़े-बड़े बाण चलाये और फिर त्वाष्ट्र अस्त्र लेकर दानवों पर छोड़ा ॥ ८६ ॥ उस ज्वालामाला वाले भयकर अस्त्र ने सभी दानवों के सहित पातालवेतु की हड्डियाँ तोड़ डाली ॥ ८७ ॥ और वह तुरन्त ही, जैसे कपिल मुनि के तेज से सगरपुत्र भस्म हुए थे, उसी प्रकार भस्म हो गये, इस प्रकार दैत्य कुल का नाश करके वह राजकुमार स्त्री के महित अश्व पर चढ़ कर अने नगर में आये और अपने पिता को प्रणाम पूर्वक सम्पूर्ण वार्त्ता सुनायी ॥ ८८-८९ ॥ पाताल में जाना, कुण्डला का देखना, मदालसा का प्राप्त होना, दैत्यों के साथ युद्ध ॥ ९० ॥ अस्त्र से उनका सहार और पुनः वापिस लौटना आदि सब वृत्तान्त कहा, जिसे सुन कर वह सुन्दर चित्त वाले राजा ॥ ९१ ॥ अत्यन्त प्रसन्न हुए और पुत्र को आलिंगन पूर्वक बोले कि हे सत्पुत्र ! तूने मुझे तार दिया ॥ ९२ ॥

भयेभ्योमुनयस्त्रातायेनसद्धर्मचारिणा ।  
 मत्पूर्वैःरयातिमान्नीतंमयाविस्तारितंपुनः ॥६३॥  
 पराक्रमवतावीरत्वयातद्वहुलीकृतम् ।  
 यदुपात्तायशःपित्राधनंवीर्यमथापिवा ॥६४॥  
 तन्नहापयतेयस्तुसनरोमध्यमःस्मृतः ।  
 तद्वीर्यादधिकंयस्तुपुनरन्यत्स्वशक्तितः ॥६५॥  
 निष्पादयतितंप्राज्ञावदतिनरमुत्तमम् ।  
 यःपित्रासमुपात्तानिधनवीर्ययशांसिवै ॥६६॥  
 न्यूनतानयतिप्राज्ञास्तमाहुःपुरुषाधमम् ।  
 तन्मयाग्रह्मणस्त्राणकृतमासीद्यथात्वया ॥६७॥  
 पातालगमनयच्चयच्चासुरविनाशनम् ।  
 एतदभ्यधिकवत्सतेनत्वपुरुषोत्तमः ॥६८॥

जिसके द्वारा मुनियो की रक्षा हुई उसी सत्तात्र द्वारा मैं भी तर गया,  
 मेरे पूर्व पुरुष जिससे विख्यात हुए और मैंने भी जिसका विस्तार किया  
 ॥ ६३ ॥ वह यश तुम्हारे द्वारा और भी वृद्धि को प्राप्त हुआ, जो यश, बल  
 अथवा धन पिता के द्वारा उपाजित है ॥ ६४ ॥ उसकी रक्षा करने वाला  
 पुरुष मध्यम है परन्तु जो उसे अपनी शक्ति से बढ़ाता है ॥ ६५ ॥ उसे पण्डित-  
 जन उत्तम पुरुष कहते हैं । तथा जो पिता द्वारा उपाजित यश, बल धन  
 को ॥ ६६ ॥ नष्ट करता है, अधम कहा जाता है, पहिले मैंने तुम्हारे समान  
 ब्राह्मणों का रक्षण मात्र किया था ॥ ६७ ॥ तुमने पाताल में जाकर असुरों का  
 नाश और ब्राह्मणों की रक्षा की, इस प्रकार मुझसे अधिक कार्य किया है,  
 इसलिए तुम उत्तम पुरुष हो ॥ ६८ ॥

तद्वन्योस्म्यथवानत्वमहमेवगुणाधिकः ।  
 त्वांपुनमीदृशप्राप्यइलाध्यपुण्यवतामपि ॥६९॥  
 नसत्पुत्रकृतांप्रीतिमन्यःप्राप्नोतिमानवः ।  
 पुत्रैरुपनातिशयितोयःप्रज्ञादानविक्रमैः ॥१००॥  
 धिक्त्वत्स्यजन्मयःपितृलोकेविज्ञायतेनरः ।  
 यत्पुत्रात्कृतातिमभ्येतितस्यजन्मसजन्मनः ॥१०१॥

सब तो देवों ने उसका वचन सुन कर कन्या सरस्वती से प्रार्थना की थी ॥२०२-२०४॥

नयैनमनलं शीघ्रं शिरसा वरुणालयम् ॥२०५

सरस्वती सुरानाह नैका शक्ता च धारणे ।

युक्ता चतसृभिः शीघ्रं वह्नेयं वरुणालयम् ॥२०६

सरस्वत्या वचः श्रुत्वा गङ्गां च यमुनां तथा ।

नर्मदा तपतीं चैव सुराः प्रोचुः पृथक्पृथक् ॥२०७

ताभिः समन्वितोवाह हिरण्यकलशेऽनलम् ।

सस्थाप्य शिरसाऽऽधार्य ता जग्मुर्वरुणालयम् ॥२०८

सस्थाप्य यत्र देवेशः सोमनाथो जगत्पतिः ।

अध्यास्ते विबुधैः सार्धं प्रभासे शशिभूषणः ॥२०९

प्रापयामासुरनलं पञ्चनद्यः सरस्वति ।

अध्यास्ते च महानग्निः पिवन्वारि शनैः शनैः ॥२१०

देवों ने कहा—हे सरस्वति ! इस अनल को अति शीघ्र शिर पर रख कर समुद्र में ले जाओ ॥२०५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—सरस्वती देवी ने कहा था कि मैं अकेली उसके धारण करने में समर्थ नहीं हूँ । मैं चार अन्य कन्याएँ हूँ जो मैं शीघ्र इसका वहन कर समुद्र में पहुँचा दूँगी ॥२०६॥ सरस्वती ने इस वचन को सुन कर देवों ने अलग-अलग गङ्गा-यमुना-नर्मदा और तपती से यही प्रार्थना की थी ॥२०७॥ उन चारों से समन्विता होकर उस सरस्वती ने एक सुवर्ण के कल में उस अनल को संस्थापित करके शिर पर धारण किया था और वे सब वरुणालय (सागर) में चली गयी थी ॥२०८॥ उसको भली-भाँति स्थापित करके वे चली थी और जहाँ पर जगत् के पति देवेश्वर सोमनाथ शशि का भूषण धारण किये हुए प्रभास में देवों के साथ विराजमान थे वह सरस्वती और अन्य चारों के साथ पाँचों नदियों ने उस अनल को वहाँ पर पहुँचा दिया था । वह महान् अग्नि शनैः शनैः उस जल का पान करता हुआ वहाँ पर स्थिति हो गया था ॥२०९-२१०॥

वापृच्छन्न निम्पलादं त सुराः स्वं सदनं ययुः ।  
 पिप्पलाः कालपययि स्वर्गं जग्नुर्गयाक्षयम् ॥२११॥  
 पादयाना पदं विप्रः पिप्पलादः प्रज्ञापवान् ।  
 लेनाधिपत्ये सत्याप्य पूजयामास शकरम् ॥२१२॥  
 दधोचित्तुनुर्निरप्रतेजा,

अवाप्य नार्पा गौतमस्याऽऽत्मजां च ।

पुत्रानपावाप्य श्रियं यमाश्रय,

सुहृज्जनः स्वर्गमवाप धीरः ॥२१३॥

ततः प्रभृति तृतीयं पिप्पलेश्वरमुच्यते ।

सर्वकृतुफलं पुण्य स्मरणादधनाशनम् ॥२१४॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—स्मिर निम्पलाद मुनि से पूछ कर वे सब सुराज्य अपने सदन को गये थे । काल का पदार्थ प्राप्त होने पर निम्पल भी उन ब्रह्म स्वर्ग को प्राप्त हो गये ॥२११॥ प्रज्ञान दाता निम्पलाद विदु ने मादवो के स्थान कंट सत्यापित करके नगवान् शङ्कर की पूजा की थी ॥२१२॥ तब तेज दाते मुनि दधोचि के पुत्र ने गौतम ऋषि की पुत्री को अपनी भार्या प्राप्त किया । उसके गर्भ से पुत्रों को प्राप्त कर अपना दश तमा श्री का लान करके सुहृज्जनों के सहित उस धीर ने अन्त में स्वर्ग का निवास प्राप्त किया था ॥२१३॥ तभी से लेकर वह तीर्थ पिप्पलेश्वर कहा जाता है । वहा पर सब कृतुओं के करने का पुण्य-फल होता है और वह तीर्थ सनस्त बर्षों का विनाश कर देने वाला है ॥२१४॥